श्रीः ।

कल्किपुराण ।

महर्षिकृष्णद्वैपायन (वेदव्यास) प्रणीत ।

मुरादाबादनगरनिवासी पण्डितवर बलदेवप्रसाद
मिश्रद्वारा हिन्दीभाषामें अविकल अनुवादित
और वेद, पुराण, इतिहास, ...
नाशास्त्रसंकलित ...

दोहा-जय सतयुग थापन, करन ...
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि ...

पुराणेतिहास...

श्रीः ।

कल्किपुराण–कल्क्यवतार ।



श्लोक ।

यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः
नेतुःसत्करवालदण्डदलिताभूपाःक्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत्सैन्धववाहनोद्विजजनिःकल्किः परात्माहरिः
पायात्सत्ययुगादिकृत्सभगवान्धर्म्मप्रवृत्तिप्रियः ।

"श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालय–मुम्बई.

KALKI-PURANA.

TRANSLATED BY

P. BALDEW PRASAD MISHRA OF MORADABAD

printed and Published

BY

KHEMRAJ SHREEKRISHNADAS

Shree Venkateshwar (Steam) Press.

BOMBAY.

1906

भूमिका ।

सनातन धर्मावलम्बियोंमें इस बातका प्रचार है कि, अठारह महापुराण महाभारत अष्टादश उपपुराण श्रीवेदव्यास जीके ही बनाए हुए हैं। कोई २ सज्जन सन्देह करतेहैं कि, एक मनुष्यसे इतने ग्रंथोंका प्रणीत होना संभव नहीं है। विशेष बात वह लोग यह भी कहते हैं कि "यदि उपरोक्त ग्रंथ एकही आदमीके बनाये हैं तो परस्पर उनमें मतभेद क्यों है? एक आदमीने एक स्थानमें तो कुछ और कहा, व दूसरे स्थानमें उसके विरुद्ध कहने लगा, भला यह बात किस प्रकारसे संभव हो सकती है? पुराणोंकी रचनाप्रणाली को देखकर ज्ञात होताहै कि, यह एकही कविके बनाए हुए नहीं हैं"। आदि २। वास्तवमें यद्यपि साधारण मनुष्यके साथ भगवान् वेद व्यासजीकी तुल्यता नहीं दीजा सकती, तथापि जो लोग उपरोक्त युक्तियोंका अवलम्बनकरके समस्त पुराणोंको वेद व्यासजीका बनाया हुआ नहीं बताते, उनका अनुमान अत्यन्त भ्रान्तिमूलक नहीं है।

सत्ययुगादि युगोंके ब्राह्मणगण गुरुमुखसे चारों वेदोंको सुनकर कंठ कर लेतेथे। कुछ समय उपरान्त भगवान् वेद व्यासजीने देखा कि, युगानुसार मनुष्योंकी तीक्ष्णता और धारण शक्ति बराबर घटती चली जाती है, तब उन्होंने समस्त वेदोंको चार भागोंमें विभक्त करके एक २ भाग पढ़ाया। यही कारण है जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद अलग २ हुए। इन शिष्य गणोंनेभी पढ़े हुए वेदके अंशको फिर विभक्त करके अपने शिष्योंको दियाथा इसही भाँतिसे केवल एक सामवेदकी ही सहस्र शाखा होगई। भगवान् वेदव्यासजी केवल वेदका विभाग करके निश्चिन्त नहीं हुए। इन्होंने विचार किया कि, वेदरूपी अभेद कठोर शैल मालाको भेदकर ज्ञानरूपी अमूल्य महारत्नका संग्रह करना कालियुगके उत्पन्न हुए मनुष्योंकी सामर्थ्य से बाहर होगा। अतएव उनके निमित्त, वेदरूप पर्वतके अन्तरमें स्थित हुए ज्ञानरूपी रत्नको संकलन करके उपाख्यान रूपी डोरेमें गूँथ दिया जाय तो वह उसको सरलता पूर्वक कंठमें धारण करलेंगे। इस प्रकारका विचार करके महर्षि वेदव्यासजीने वेदके अर्थोंको संग्रह करके उपाख्यानके मिषसे एक अपूर्व सरल ग्रंथ बनाया। इस ग्रंथके अनेक अंशोंमें प्राचीन इतिवृत्तके रहनेसे यह पुराण संहिताके नामसे विख्यात हुआ। इस ग्रंथमें चार लक्ष श्लोक थे।

भगवान् वेदव्यासजीने अपने छैः शिष्योंको यह पुराण संहिता पढ़ाई। इन छैः शिष्योंमें से तीन शिष्योंने इस पुराण संहिताका अवलम्बन करके पृथक २ तीन पुराण बनाए। ग्रंथकारोंके नामानुसार इन तीन पुराणोंका नाम सावर्णीसं-

हिता, सांख्यायनसंहिता और अकृतव्रणसंहिता हुआ । फिर इन चार (?) पुराण संहिताओंसे १८ महापुराण और ३६ उपपुराण बने । परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि, उपपुराण ऋषियोंके बनाये हुए हैं । क्योंकि, नैमिषारण्यमें महर्षि शौनकजीके द्वादश वार्षिक यज्ञमें समस्त पुराण व उपपुराणोंका पाठ हुआथा ।

समस्त पुराण वेद व्यासजीके बनाए हैं इस बातके विख्यात होनेका यह कारण है कि, भगवान् वेद व्यासजीनेही पुराण संहिताको बनायाथा । फिर उनके शिष्योंने पुराण संहिताको अवलम्बन करके तीन पुराण बनाए । फिर उनके शिष्य प्रशिष्योंने इन चारों (?) पुराणोंसे संग्रह करके १८ पुराण और उपपुराण प्रकाशित किये । भगवान् वेदव्यासजी पुराणके बनानेवाले और सन्तान ऋषिगण पुराणोंके संग्रह कर्ता हैं । संग्रह कर्ता महर्षियोंने संग्रह कार्यको साधारण समझकर अपने नामको प्रकाशित करनेकी आवश्यकता जानकर पुराण शास्त्रके प्रवर्तक आदि गुरु भगवान् वेदव्यासजीका ही नाम लिख दिया । यद्यपि समस्त पुराण एकही महापुराणसे उत्पन्न हुए हैं, तथापि उनमें परस्परकी अनैक्यताका कारण यह है कि, किसी पुराणमें कोई उपाख्यान विस्तारित रूपसे वर्णन किया गया है और किसी पुराणमें कोई उपाख्यान संक्षिप्त हुआहै, किसी पुराणमें कोई उपाख्यान छोड़दिया गयाहै, किसी पुराणमें कोई उपदेश रूपकाकारकी भाँति उपाख्यान रूपसे प्रकाशित हुआ है, किसी पुराणमें वही उपदेश स्पष्ट रूपसे प्रकाशित होरहा है । यही कारण है जो पुराणोंमें परस्पर मतभेद पाया जाता है, परन्तु अनेक स्थलोंमें यहांतक एकता दिखाई देती है कि, कोई २ श्लोक सबही पुराणोंमें प्रायः एक-रूपसे लिखा हुआ है । वर्त्तमान समयसे अनुमान ४४०० वर्ष पहिले महर्षि वेदव्यासजीने भारतवर्षको उज्ज्वल कियाथा * तदुपरान्त सौ वर्षके मध्यमेंही उनके शिष्य उप शिष्योंने पुराणोंको बनाया और यही पुराण नैमिषारण्यमें

---

* भारतवर्षके मध्य हस्तिनापुरमें युधिष्ठिर, द्वारकामें श्रीकृष्ण, तपोवनमें वेदव्यास, यह तीनों महानुभाव एक समयमें विराजमान थे । महाराज विक्रमादित्यके सभासद महा कवि कालिदासजीने अपने बनाए हुए ज्योतिर्विदाभरण नामक ज्योतिष ग्रंथमें और ज्योतिःशास्त्र पारदर्शी माहात्मा वराहजीने स्वप्रणीत वृहत्संहितामें लिखा है कि " शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले । कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः । " कलिके ६५३ वर्ष गत होनेपर कुरुक्षेत्रमें कौरव पाण्डवोंका घोर युद्ध हुआ । उपरोक्त दोनों ग्रन्थकारोंने उक्त समयको निरूपण करनेके लिये गणनाकी है कि "आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ । षड्द्विकपंचद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञो वै ।" एकसौ वर्षके अन्तरमें सप्तर्षि मण्डल एक एक नक्षत्रमें गमन करता है । २२५ वर्षमें सप्तर्षि मण्डलकी एकराशि और १७०० वर्षमें एकभगण अर्थात् राशिचक्रका एकवार परिभ्रमण होता है ।

पढ़े गये । भगवान् वेदव्यासजीके अन्तर्धान होनेपर एक वर्षके मध्यमेंही महर्षि शौनकजीने नैमिषारण्यमें द्वादश वार्षिक यज्ञानुष्ठानके समयमें समस्त पुराणोंको श्रवण किया ।

जिस समयमें भली भाँतिसे कलिका प्रादुर्भाव होजायगा और जिस समय सूर्य, चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और राहु यह आठग्रह एक राशीपर आजांयगे, उसी समयमें भगवान् विष्णुजी कल्कि अवतार धारण-कर, बौद्ध, म्लेच्छ यवन और पाखण्डी लोगोंका संहार करके पुनर्वार धर्मात्मा महापुरुषोंको राज्यपर स्थापनकर दुबारा सतयुग और सनातन वैदिक धर्मकी अवतारणा करेंगे। यह समस्त बातें इस पुराणमें अतीत उपाख्यानकी भाँति वर्णित हुई हैं । होनहार बातोंको अतीतकी भाँतिसे वर्णन करना सब देशोंके धर्मशास्त्रकी रीति है। " उसने स्वर्गसे अपने पुत्रको पुकारा । इस प्रकारकी

महाराज युधिष्ठिरजी जिस समयमें राज्य करतेथे उस समयमें सप्तर्षि मंडल मघानक्षत्रमें था । महाराज विक्रमादित्यके संवत्सरका आरंभ होनेके समय यह सप्तर्षि मंडल पुष्यनक्षत्रमें था । इस लेखसे प्रमाणित होता है कि, महाराज युधिष्ठिरके राज्यसे लेकर महाराज विक्रमके शकारम्भ तक प्रायः ढाई हजार वर्ष बीते हें । विशेष बात यह है कि, महाराज विक्रमादित्यके संवत्‌का प्रचार होनेसे पहिले युधिष्ठिराब्द प्रचलित था । जिस समय महाराज विक्रमादित्यकी सभाके सभासद वराहजीने बृहत्संहिता बनाई तब युधिष्ठिराब्द २५२६ थे । इस समय संवत् १९५४ हैं । दोनोंका जोड़ ४४८० हुआ । अतएव प्रमाणित होता है कि, ४४८० वर्ष पहिले महाराज युधिष्ठिरका जन्म हुआ । राजत-रंगिणी नामक काश्मीरके इतिहास ग्रंथमें इस विषयका प्रभागभी दिया गया है । विशेषतः उसमें यहभी लिखा है कि, काश्मीरके गोनर्द नामक राजाने किसी समय मथुरा पुरीको घेर लियाथा । शेषमें देवताओंसे पराजित होकर वह अपनी राजधानीको लौट आया । इस चढ़ाईके ४ । ५ वर्ष पीछे बलदेव सेना सजायकर युद्ध करनेके लिये काश्मीरमें आया । पहले वैरकी याद करके गोन-र्दको मारकर उसके शिशुकुमारको वहांका राज्य दिया । उस समयसे लेकर काश्मीरमें जितने राजा हुए हैं उन सबके राज्य–भोग–कालको जोड़ा जाय तो न्यूनाधिक ४४५० वर्ष होंगे । इस समय कलिके ४९९८ वर्ष बीते हैं । कुरु पाण्डवोंके युद्ध कालमें स्वाब्दप ६५३ थे (?) इनको उपरोक्त संख्यामेंसे घटादिया जाय तो ४३४५ बचेंगे । अतएव ज्ञात होता है कि ४३४५ वर्ष पहले कुरुपाण्डवोंका घोर संग्राम हुआथा । इस बातमेंभी कुछ अनैक्य पाया जाता है कि जिसका कारण निर्णय करना कठिन है । परन्तु अनुमानसे इस प्रकार जाना जाता है कि, राजा युधिष्ठिरके और राजाविक्रमादित्यके जन्म कालसे उनका शक प्रचलित हुआथा । जिस समय महाराजविक्रमादित्यकी उमर ६० वर्षकीथी तब बृहत्संहिता बनी । जिस समय महाराज युधिष्ठिरकी आयु ७५ वर्षकी थी तब कुरु क्षेत्रमें युद्ध हुआ । दोनोंकी समष्टि १३५ वर्ष होती है । ४४८० वर्षमें १३५ घटादिये जायं तो ४३४५ रहते हैं, अतएव ४३४५ वर्ष पहिले कुरु पाण्डवोंका युद्ध हुआथा, ऐसा अनुमान किया जाता है ।

भविष्यदुक्तियें वायबलमेंभी दिखाई देती हैं। मूल बात यह है कि, सिद्ध पुरुषगण होनहार बातोंकोभी अतीतकी समान देखते हैं।

कहीं २ ऐसा लिखा है कि, कल्किपुराणमें छैः सहस्र श्लोक हैं, परन्तु छैः हजार श्लोक इसमें मिलते नहीं, इसही कारणसे किसी २ का मत है कि यह कल्किपुराण सम्पूर्ण नहीं है। इस पुस्तकका शेष अंश विशेषतः इसका निर्घण्ट अध्याय पढ़नेसे इस बातमें कोई सन्देहही नहीं रहता। छैः हजार श्लोकोंका होना लिखातोहै परन्तु १६ अक्षरका अर्थात् दो चरणकाभी तो श्लोक होसकता है। "व्यास उवाच" इस पांच अक्षरके वाक्य को भी श्लोक कहा जाता है।

यदि कल्किपुराणके इस अनुवादका पाठ करके धर्मजिज्ञासु मनुष्योंको कुछभी संतोष होगा तो मैं अपने समस्त परिश्रमको सार्थक समझूंगा।

जगदुपकारक माननीय सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीको वारम्वार धन्यवाद दिया जाता है कि, जिन्होंने अपने व्ययसे इस ग्रंथको स्वकीय "श्रीवेंकटेश्वर" यंत्रालयमें मुद्रितकर हिन्दी हिन्दू हिन्दोस्थानपर अत्यन्त उपकार किया, व सदाकेलिये अपनी कीर्तिरूपी ध्वजाको शास्त्ररूपी दंडमें बांधकर देववत अजर अमर होगये।

परम माननीय ज्वालाप्रसादजीमिश्र ने सौहार्द प्रेमसे इस ग्रंथकी पाण्डु-लिपिको आद्योपान्त देखकर शुद्ध कर दिया है इस कारण वारम्वार उनके चरण-कमलको प्रणाम किया जायगा।

उपसंहारमें अपने परममित्र लाला शालिग्रामजी वैश्य श्रीयुत ललताप्रसा-दजी शर्मा, श्रीयुत जयन्तिप्रसादजी उपाध्याय। बाबू किशनलालजी पर्वतवासी बाबू हंसमिश्र एम्. ए. तथा बाबू रामलाल, श्रीमान् बाबू उदितनारायण लालजी वर्मा वकील गाजीपूर, शंकर दाजी शास्त्री पदे संपादक आर्यभिषक बंबई-आदि महाशयोंको वारम्वार धन्यवाद देकर भूमिकाको समाप्त करताहूं उपरोक्त महाशयगण सम्पत्ति विपत्ति आदि सर्वकालमेंही मेरी सहायता किया करते तथा ग्रंथादि निर्माण करनेमें उत्साह दिलाया करते हैं किमधिकमिति।

आश्विन कृष्ण ३, सोमवार संवत् १९९४ } बलदेवप्रसाद मिश्र, दीनदारपुरा-मुरादाबाद.

कल्किपुराणकी विषयसूची ।

प्रथम अंश । प्रथम अध्याय ।

मंगलाचरण, सूतजीसे शौनकादि महर्षियोंका भविष्य प्रश्न । कल्किपुराणकी प्राप्तिका विवरण । कलिकी उत्पत्ति । कलि विवरण कलिकालमें आचार भ्रंश । पृथ्वी सहित देवताओंका ब्रह्मलोकमें जाना । ब्रह्मलोक वर्णन ।

प्रथम अंश । तृतीय अध्याय ।

ब्रह्माजीके समीपमें कलिके दोष कीर्तन । ब्रह्माजीके साथ देवताओंका गोलोकमें जाना विष्णु समीपमें निवेदन । विष्णुयशाके गृहमें विष्णुका अवतार अङ्गीकार करना विष्णुयशाकी पत्नी सुमतिका गर्भ । विष्णुके जन्मसे देवगणोंका हर्ष विष्णुका चतुर्भुज मूर्ति त्यागकर मनुष्यरूप धारणकरना । रामरूप, व्यासजी आदिका कल्कि दर्शनके लिये जाना । कल्किका नामकरण । कल्किके उपनयन कालमें पिताका उपदेश ।

द्वितीय अंश । षष्ठ अध्याय ।

कल्कि महाराजकी आज्ञासे शंभलमें विश्वकर्माका पुरी निर्माण करना । सस्त्रीक कल्कि महाराजका शंभलमें प्रत्यागमन । कल्कि महाराजकी सुतोत्पत्ति ।

द्वितीय अंश । सप्तम अध्याय ।

बौद्धोंके साथ संग्राम । जिन विनाश । बौद्ध जय ।

तृतीय अंश । प्रथम अध्याय ।

म्लेच्छ जय । म्लेच्छकामिनियोंके साथ कल्किमहाराजका संग्राम ।

तृतीय अंश । द्वितीय अध्याय ।

वालखिल्य नामक ऋषियोंका आना । निकुम्भ दुहिताका उपाख्यान । कुथोदरी संहारके लिये कल्कि भगवानकी यात्रा । कुथोदरीवध ।

तृतीय अंश । तृतीय अध्याय ।

नारद प्रभृति महर्षियोंका आगमन । मरुके आत्मपरिचयके निमित्त सूर्य-वंश वर्णन । श्रीराम चरित । रावणवध सीता परित्याग । सीताजीका भूतल-प्रवेश । रामचंद्रका स्वर्गारोहण ।

तृतीय अंश । चतुर्थ अध्याय ।

रामकी वंशावली और मरुकी उत्पत्ति विवरण । चंद्रवंशमें देवापी उत्पत्ति वर्णन । देवापि और मरुको दिव्यरथ प्राप्ति ।

तृतीय अंश । पंचम अध्याय ।

सतयुगका आगमन । मन्वन्तर वर्णन । कलिके साथ संग्रामोद्योग ।

तृतीय अंश । षष्ठ अध्याय ।

कल्कि महाराजकी दिग्विजय यात्रा । धर्मके सहित कल्कि महाराजका आना । धर्मका आत्मनिवेदन । कलिके साथ कल्कि महाराजका संग्राम । मरु देवापि आदिका खशकांबोज बर्बर चीन आदिके सहित संग्राम ।

तृतीय अंश । सप्तम अध्याय ।

कलि सहचरगणोंकी पराभव । कोक विकोक वध ।

तृतीय अंश । अष्टम अध्याय ।

कल्कि महाराजका भल्लाट नगरमें जाना । शशिध्वज राजाका समरोद्योग ।

तृतीय अंश । नवम अध्याय ।

मूर्छित कल्कि महाराजको लेकर शशिध्वजका गृह गमन ॥

तृतीय अंश । दशम अध्याय ।

सुशान्ताका गीत । शशिध्वजकी कन्याके सहित कल्कि महाराजका विवाह ॥

तृतीय अंश । एकादश अध्याय ।

शशिध्वजकी हरिभक्तिका कारण । शशिध्वजके पूर्वजन्मका वृत्तान्त कथन तथा भक्ति लक्षण ।

तृतीय अंश । द्वादश अध्याय ।

हरिभक्तव्यक्तिके संग्राम प्रभृतिका कारण ।

तृतीय अंश त्रयोदश अध्याय ।

द्विविदोपाख्यान । कृष्ण अवतार वृत्तान्त ।

तृतीय अंश । चतुर्दश अध्याय ।

कल्कि महाराजका काञ्चन पुरीमें प्रवेश । विषकन्या संवाद । कल्कि महाराजके अनुचरोंका पृथकपृथक् राज्याभिषेक । कल्कि महाराजका संभल में जाना । सत्ययुग प्रवृत्ति ।

तृतीय अंश । पंचदश अध्याय ।

मायास्तव ।

तृतीय अंश । षोडश अध्याय ।

विष्णु यशाका राजसूययज्ञारम्भ । नारदका आगमन । माया और जीवका कथोपकथन । विष्णु यशाका वन गमन । परशुरामका आगमन ।

तृतीय अंश सप्तदश अध्याय ।

रुक्मिणी व्रत कथन ।

तृतीय अंश । अष्टादश अध्याय ।

कल्कि महाराजका पत्नीके सहित विहार ।

तृतीय अंश । ऊनविंश अध्याय ।

संभलमें देवताओंका आना । कल्कि महाराजका स्वर्गारोहण ।

तृतीय अंश । विंश अध्याय ।

गंगास्तोत्र ।

तृतीय अंश । एकविंश अध्याय ।

कल्किपुराणकी सूची । कल्किपुराणके श्रवणादिका फल । कल्किपुराणकीसमाप्ति ।

इति कल्किपुराण विषयसूची-समाप्ता ।

भूमिका।

सनातन धर्मावलंबिगण ! आजकल समयमें बहुत परिवर्त्तन होगयाहै, इसी कारण आप लोगोंको विज्ञापन देकर समझाना पड़ता है कि, "कल्किपुराण" क्या है? लक्ष रुपयोंके बदलेमें, प्राणपणसे परिश्रम करनेपरभी कल्किपुराणके दर्शनमें सन्देह था। आज मुद्रणयंत्र (छापाखाना) के कल्याणसे उसही पुराणको हमने सरलतासे प्राप्त करलिया।

कल्किपुराण—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका देनेवाला है।
,, उपन्यास व नाटकके समान रहस्यमय है।
,, इतिहास, भगोल और मनुष्यचरित्रका पूर्ण आदर्श है।
,, होनहार इतिहासके युद्धविग्रहकी ऋषिगण कथित आश्चर्यमयी भविष्यद्वाणी है।

कल्किपुराणके पाठ करनेसे ऋषि लोगोंकी बुद्धि, शक्तिके होनहार दिखावेके आश्चर्यसे अत्याश्चर्य, असम्भवसे असम्भव, सत्य समाचार जाने जाते हैं। कल्किपुराणके पढ़नेसे हमारा पहला इतिहास प्रत्यक्ष होजाता है। इसके अतिरिक्त यहभी प्रकट होता है कि, वेदज्ञ ब्राह्मणसे कलिके ब्राह्मणोंकी, समस्त जातियोंकी और समस्त आश्रमोंकी कहांतक अवनति हुई है। कल्किपुराणके पढ़नेसे ज्ञात होजाता है कि, यथार्थ सनातन हिन्दुधर्म क्या है ? इसीकारणसे कथा बाँचने वाले पंडित, संन्यासी, धर्मप्रचारक, सनातन हिन्दूधर्मावलम्बी, न और सबके लियेभी कल्कि पुराणके पढ़नेका प्रयोजन हुआ।

यथार्थ "कल्किपुराण" अबतक अप्रकाशितथा, इसी कारणसे अनुवादक श्रीमान् पंडित बलदेवप्रसाद जी मिश्रसे अति मनोहर गद्यमें प्रत्येक श्लोकका श्लोकांक लगाकर इसका अनुवाद कराया है। जहां तहां;—वेद, पुराण, इतिहास दर्शनादि शास्त्रोंका सार करके टिप्पणियें लगाई गई हैं। प्रत्येक स्थानका वर्णन इतना स्पष्ट किया गया है कि, यात्री लोग अनायासही विना किसीकी सहायताके तीर्थस्थानोंका दर्शनकर सकते हैं। इसपर भी विशेषता यह है कि, अनुवादकने स्वयं शम्भल ग्राममें जाय (जहाँपर कल्कि अवतार होगा) वहांके प्रसिद्ध २

स्थानोंको निहारकर सम्पूर्ण विस्तारित वृत्तान्त भूमिकामें सन्निवेशित किया है। अब अधिक न कहकर यही विनय है कि, एकबार इसका पाठकर लेनेसे-लोक परलोक दोनोंही बनजाते हैं। कौन ऐसा अहिन्दु होगा जिसका हृदय पूर्ण सदानन्द ब्रह्मावतार कल्किजीके चरित्रको श्रवणकर द्रवीभूत न हो। प्रत्येक हिन्दू सन्तानको उचित है कि, इसकी एक २ प्रति ले करके हमें उत्साहित करें कागज, छापा सबही उत्तम है।

आपका कृपापात्र-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालय, खेतवाड़ी-मुंबई.

श्रीः ।

अथ कल्किपुराणविषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठांक.

प्रथमांशः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

इति प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता.

इति

॥ श्रीः ॥

कल्किपुराणम् ।

प्रथम-अंश-प्रथम-अध्याय ।

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरजना लोकाः सपालाः सदा
स्वं स्वं कर्म्म सुसिद्धये * प्रतिदिनं भक्त्या भजन्त्युत्तमाः ।
तं विघ्नेशमनन्तमच्युतमजं सर्व्वज्ञसर्व्वाश्रयम् ।
वन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविविधैः शास्त्रैः पुरो वन्दितम् ॥ १ ॥

देवराज इन्द्र, देवता, श्रेष्ठ महर्षि, और लोकपालगण (१) अपने कार्यको सिद्ध करनेके लिये प्रतिदिन भक्तिके सहित जिसकी उपासना करते हैं; पूर्वकालमें जो देवता वैदिक तांत्रिकादि अनेक शास्त्रोंसे आराधित (पूजित) हुआ है; जो सर्वज्ञ अर्थात् सब कुछ जानता है, सबका आधार है; जिसका जन्म नहीं है, ऐसे समस्त विघ्नोंके नाश करनेवाले अविनाशी विष्णुजीकी वन्दना करताहूं ॥ १ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥

---

* यं सर्व्वार्थसुसिद्धये इत्येवं पाठः सङ्गच्छते ।

१ देवता विशेष । यह दशों दिशाओंमें विराजमान रहकर सब लोकोंकी रक्षा करते हैं । अग्नि पुराणमें लोकपालोंका नाम लिखाहै ।

इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्निर्ऋतिर्वरुणोऽनिलः । धनदः शङ्करश्चैव लोकपालाः पुरातनाः ॥

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति (अमर कोषमें नैर्ऋत कहाहै) वरुण, पवन कुबेर, और महादेव, यह आठ जन क्रम २ से पूर्वादि दिशाओंके स्वामीहैं । कोई २ कहतेहैं कि ऊपर ब्रह्मा और नीचे अनन्त यह दो देवताभी लोकपालहैं; इस प्रकार सब दश लोकपालहैं । अग्नि पुराण या अमर केषमें इसका कोई वर्णन नहीं ।

नारायण (१) नरोत्तम नर (२) और सरस्वती देवीको

(१) विष्णुजीका नामहै। पुराणोंमें नारायण नामके अनेक तात्पर्य और अनेक व्याख्या दृष्टि आतीहैं ॥ यथा;-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ (विष्णुपुराण)
मनुमें पहले मतके अनुसार। यथा;-
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥ अ० १० ॥

नर शब्द, जीव और ईश्वरका स्वामी शुद्ध स्वरूप ब्रह्मवाची है; आप् वा जल, उस ब्रह्मसे उत्पन्न हुआहै। साम विधान ब्राह्मणके प्रथम प्रपाठक--' ब्रह्म हवा इदमग्र आसीत्। तस्य तेजो रसोऽतिरिच्यता ' यह वचन " जल नरसूनु " को प्रमाणित करताहै। जल करके उत्पन्न होनेके कारण जलका दूसरा नाम नारहै; नारायण (प्रलयसमयमें) जीने उस नारको अयन अर्थात् आश्रय कियाथा इस कारणसे उनका ' नारायण ' नाम हुआ।

नारायण नामकी व्युत्पत्तिमेंभी मतभेदहै, यहांपर ब्रह्मवैवर्त्त पुराणके कुछ श्लोक लिखतेहैं।

सारूप्यमुक्तिवचनं नारेति च विदुर्बुधाः। यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः ॥
नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम्। यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः ॥
नारञ्च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम्। तयोर्ज्ञानं भवेत् यस्मात् सोऽयं नारायणः स्मृतः ॥
(श्रीकृष्णजन्म खण्ड, १०९ अध्याय)

(२) विष्णुजीके अवतार ऋषि विशेष। विष्णु वो धर्मके औरस और दक्षकी कन्या मूर्तिके गर्भसे नर नारायणका जन्म हुआथा। इन दोनोंने ऋषि रूपसे घोर तप कियाथा। श्रीमद्भागवत ग्रंथमें कहा है-

धर्मस्य दक्ष दुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥ (२ स्कन्ध)
(७ अ० ७ श्लोक।)

तुर्ये धर्मकलासर्गे नर नारायणा वृषी,
भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥ (१ स्कं०३अ०७श्लो०)

" दूसरे पुराणमें नर नारायणकी उत्पत्ति दूसरे प्रकारसे लिखीहै। महादेवजीने शरभ रूप धारण कर दांतकी नोकके प्रहारसे विष्णुजीकी नरसिंह मूर्तिके दो खण्ड किये; उनके नर भागसे नर और सिंह भागसे नारायण, यह दो दिव्यरूप ऋषि उत्पन्न हुए। " कालिका पुराणमें लिखाहै--

ततो देह परित्यागं कर्त्तुं समभवद्यदा। तदा दंष्ट्राग्रभागेन नरसिंहं महाबलम्।
शरभो भगवान् भर्गो द्विधामध्ये चकारह। नरसिंहे द्विधाभूते नरभागेन तस्यं तु।
नर एव समुत्पन्नो दिव्यरूपी महानृषिः। तस्य पंचास्यभागेन नारायण इति श्रुतः।
अभवत् स महातेजा मुनिरूपी जनार्दनः ॥ नरो नारायणश्चोभौ सृष्टिहेतू महामती।
ययोः प्रभावो दुर्द्धर्षः शास्त्रे वेदे तपःसु च ॥ २९ अ० ॥

कोई २ नर शब्दसे अविद्यावच्छिन्न जीवको कहते हैं;-जो उस अविद्यासे छूट गयाहै वही नरोत्तम है। परन्तु ऐसे अर्थका विशेष कोई मूल या प्रमाण नहीं है। पहले दो विवरण दो श्रेष्ठ पुराणों के मतानुसार हैं। पुराणका अर्थ करनेपर पुराणके मतके अनुसारही अर्थ करना चाहिये। ऐसे स्थानमें कपोल कल्पित मतकी प्रधानता नहीं है ॥

नमस्कार करके जय (१) उच्चारण करना चाहिये ॥ २ ॥

यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वालद्विग्रहाः
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपाः क्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत् सैन्धववाहनो द्विजजनिः कल्किः परात्मा हरिः
पायात्सत्ययुगादिकृत्स भगवान्धर्म्मप्रवृत्तिप्रियः ॥ ३ ॥

जब राजालोग (बहुत सा अत्याचार करके) पृथ्वीकी शान्तिका नाशकरेंगे, उस समय जिस देवताके बाहुरूप भयंकर भुजंगकी विषज्वालासे उन समस्त अत्याचार करनेवाले राजाओंके शरीर भस्म हो जांयगे और जिसकी तीक्ष्ण तरवारसे वह राजा मारे जांयगे; जो देवता ब्राह्मण वंशमें जन्मलेकर सिन्धुदेशके उत्पन्न हुए घोडेपर सवारहो (दुबारा) सत्यादि (२) युगोंकी अवतारणा करेंगे; वह परेसे परे, धर्मकी प्रवृ

(१ रामायणमहाभारतादि इतिहास और १८ पुराण इत्यादि शास्त्रके पढनेसे संसारकी जय होती है; अर्थात् जीव जन्म मृत्युरूप संसार रूपी जंजीरसे छूट जाता है। इसी लिये उन शास्त्रोंका नाम जय है। भविष्यपुराणमें लिखाहै–

अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा। कार्ष्णं वेदं पंचमं च यन्महाभारतं विदुः ॥
तथैव शिवधर्माश्च विष्णुधर्माश्च शाश्वताः। जयेति नाम तेषाञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः ।
संसारजयनं ग्रन्थं जयनामानमीरयेत् ॥

इस विषयमें और मतभी दिखाई देता है। यथा;–

चतुर्णां पुरुषार्थानामपि हेतौ जयोऽस्त्रियाम् ।

इसका भाव यह है कि चार पुरुषार्थोंका जो कारण है, तिस पदार्थ विशेषका नाम जय है। यह अर्थ ठीक मालूम नहीं होता ॥

(२) प्रथम सत्य, दूसरा त्रेता, तीसरा द्वापर और चौथा कलियुग है। पुराणमें कहा है–

चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ (मत्स्यपुराण ११८ अध्याय)

भागवतके मतसे १७२८००० वर्ष सत्ययुग, १२९६००० त्रेता, ८६४००० द्वापर, और ४३२००० वर्ष कलियुगका परिमाण है। सत्यके बाद त्रेता, त्रेताके बाद द्वापर और द्वापरके पीछे कलियुगका आगमन हुआ है। सत्ययुग धर्ममय था, क्रमसे युग २ में धर्मकी हानि हुई है। कलिकालके पिछले भागमें एकबारही धर्मका लोप होगया। युगके बदलनेसे जगतके नियम बिगडकर विध्वंस होजाते हैं, फिर नया संस्कार होता है। सत्ययुगमें धर्मके चारचरण, अर्थात् पूरी मूर्त्तिका पूर्ण विकाश है; त्रेतायुगमें तीनचरण, अर्थात् धर्मके अंगकी हानि होती है; द्वापरमें दोचरण; धर्मका आधा अंग लोप होगया है; कलियुगमें एक चरण रहा, सोभी सबल नहीं निर्बल है; यही धर्मकी पिछली गति है। इस प्रकार युग २ में धर्मकी हानि और युगका अदलबदल होता आयाहै ॥

त्तिको प्यार करनेवाले, कल्किरूपधारी भगवान् श्रीहरी सदा तुह्मारी रक्षाकरें ॥ ३ ॥

इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ।
शौनकाद्या महाभागाः पप्रच्छुस्तं कथामिमाम् ॥ ४ ॥

नैमिषारण्यके रहनेवाले (१) शौनक (२) आदि उदार चरित मह-

---

(१) इस स्थानमें भगवान् विष्णुजीने एक निमेष (पलक मारते) में दानवोंको जीता इससेही इसका नैमिष नाम हुआ है। " भगवान्ने गौरमुख ऋषिसे कहाथा कि मैंने इस वनके मध्य एक निमिषमें, दानवोंकी अजीत सेनाको मारडाला । इस लिये यह नैमिष नामसे प्रसिद्ध होगा । " वराह पुराणमें लिखता है—

एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा । उवाच निमिषेनेदं निहतं दानवं बलम् ।
अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्यसंज्ञितम् ॥

इत्यादि श्लोककहे हैं । वायु पुराणमें नैमिष शब्दका और वृत्तान्त लिखा है, और षकारके स्थानमें शकार हुआ है । यथा;—

एतन्मनो मयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते । यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसः शुभः ॥
इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोरमम् । प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः ॥
तेऽपि हृष्टतरा विप्राः प्रणम्य जगतः प्रभुम् । प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते ।
तद्वनं तेन विख्यातं निमिशं मुनिपूजितम् ॥

कूर्म पुराणमेंभी यह उपाख्यान लिखा हुआ है, केवलभाषाकी अलगता है । कूर्म पुराणमें नैमिषका षकार दिखाई देता है । निःसन्देह यह सबही एक स्थान है । इस उपाख्यानका संक्षिप्त भाव यह है—कि पहले ब्रह्माजीने कहा; कि मैंने इस रमणीक चक्रको छोड़दिया है, जहांपर चक्रकी नेमि थमजायगी, वही देश तपके लिये अनुकूल है । तिसकेही अनुसार जिज्ञासुलोग उस गतिवान चक्रका अनु सरण करते २ देखेंगे कि एक स्थानमें चक्रनेमि थमगई । वही नैमिषारण्य नामसे इन पुराणोंमें प्रसिद्ध हुआ है । पुराणोंके पढ़नेसे जाना जाता है कि पहले नैमिषक्षेत्र परम पवित्र यज्ञकाक्षेत्रथा, पीछेसे तीर्थ गिना जानेलगा नैमिषारण्य पुराणोंके विचार करनेका प्रधानकेन्द्रहुआ । कूर्मपुराणके चालीसवें अध्यायमें नैमिषकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कहा है ।

(२) शुनक मुनिकापुत्र ऋषि विशेष । यह प्रसिद्ध यज्ञकरने वालाथा और नैमिषारण्यमें वास करताथा । और २ ग्रंथोंमें शौनकका कुलपति नाम है । यह मुनि अन्नदानादि द्वारा दश हजार मुनियोंका पालन और अध्यापन करतेथे । शौनकजी ज्ञानवान और अत्यन्त यज्ञ करनेवाले थे । जब वह बारह वर्षका यज्ञ करचुके, तब नैमिष क्षेत्रमें महाभारत कहा गयाथा ।

र्षिगण उग्रश्रवाके (१) यह वचन सुनकर उनसे पूछते हुए ॥ ४ ॥

हे सूत ! सर्व्वधर्म्मज्ञ ! लोमहर्षणपुत्रक ! ।
त्रिकालज्ञ ! पुराणज्ञ ! वद भागवतीं कथाम् ॥ ५ ॥

हे लोमहर्षण पुत्र (२) सूत ! तुम भूत, भविष्यत और वर्तमान यह

---

(१) उग्रश्रवा पौराणिक था । यह जनक लोमहर्षण नामसे प्रसिद्धथा । इसने सूत वंशमें जन्म ग्रहण कियाथा । ब्राह्मणीके गर्भ और क्षत्रीके औरससे उत्पन्न प्रति लोमज संकीर्ण जातिको ' सूत ' शब्दसे पुकारा जाता है । याज्ञवल्क्य संहितामें लिखा है–

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात् सूतः । (प्रथम अध्याय)

बलदेवजीके वरदानसे सूतका पुत्र उग्रश्रवा पुराण वक्ता हुआथा ।

(२) लोम हर्षण, कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीके विख्यात शिष्यथे । श्री व्यासजीने प्रसन्नहो इनको अपने बनाए सब ग्रंथदेदिये । इसीकारण लोमहर्षण पुराण वक्ता हुयेथे । लोमहर्षण सब जगह सूत नामसे प्रसिद्ध हैं । परन्तु यह उनके कुलकानाम है, ठीक नाम नहीं है । यदि ऐसा होता तो पुराणमें सूत पुत्र शब्दसे लोमहर्षणका विशेषण नहीं होता । लगभग सबही ग्रंथोंमें साधारण सूत शब्दसे इनका नाम लियागया है, इसकारण बहुत इनका लोमहर्षणयही यथार्थ नाम समझते हैं । परन्तु इस सिद्धान्तकी कोई जड़ नहीं है, केवल भ्रम है । इस कल्कि पुराणके तीसरे अंशके त्रयोदश अध्यायके मध्य २० श्लोकमें, सूत पुत्र शब्दसे लोमहर्षणका विशेषण लगाया है–

तथाक्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षणः । बलरामास्त्रयुक्तात्मा नैमिषेऽभूत् स्वावाञ्छया ॥

जो सूत उनका असली नाम होता तो उसमें सूत पुत्र विशेषण नहीं लगाया जाता । अब इसका प्रमाण लीजिये कि वह व्यासके शिष्यथे ।

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै लोमहर्षणः । पुराण संहितास्तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः ॥

(विष्णुपुराण ३ अंश, ६ अध्याय १६ श्लो०)

इनका आदि नाम लोमहर्षण नहीं, उनके मुखसे पुराण कथा श्रवण करनेपर श्रोताओंको रोमाञ्च होजाताथा; इसीकारणसे उनका लोमहर्षण नाम हुआ । यह वृत्तान्त कूर्म पुराणमें लिखाहै–

लोमानि हर्षयाञ्चक्रे श्रोतॄणाँ यः स्वभाषितैः । कर्मणा प्रथितस्तेन लोमहर्षण संज्ञया ॥

बलरामजीके अस्त्रलगनेसे लोमहर्षणकी मृत्युहुई । वह व्यासासनपर विराजमान होकर, नेमिष-वासी ऋषिलोगोंको पुराण श्रवण करताथा, इसी समय तीर्थ यात्रा करते २ बलदेवजी वहां आगये 'सब ऋषिलोगोंने उठकर उनका आदर सत्कार किया । परन्तु लोमहर्षण नहीं उठे । बलदेवजी लोमहर्षणको गर्वित समझकर क्रोधित हुए, और कुशकीनोक मारकर उसका प्राणनाश किया । जब ऋषिलोगोंने उसे फिर जीवित करनेको कहा तब बलदेवजी बोले कि;–

यह लोम हर्षण फिर नहीं जीवित होगा । इसका पुत्र उग्रश्रवा आप लोगोंको पुराण श्रवण करा-वैगा । श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध ७ अध्यायके १३ । १५ । १९ । २७ श्लोकमें यह वृत्तान्त लिखाहै इन बलदेवजीके वरसे उग्रश्रवा पुराणवक्ता हुए; और तिसके अनुसार वही वक्ष्यमाण कल्कि पुराणके वक्ता हुएहैं ।

तीनों काल, सब प्रकारके धर्म और समस्त पुराणोंको जानते हो (अतएव) भगवानकी कथाको कहो ॥ ५ ॥

कः कलिः ? कुत्र वा जातो जगतामीश्वरः प्रभुः ।
कथं वा नित्यधर्म्मस्य विनाशः कलिना कृतः ? ॥ ६ ॥

कलिकौनहै, वहकहां जन्माथा, और किसप्रकारसे पृथ्वीका स्वामी हुआ उसनें किसप्रकारसे नित्यधर्मका नाश किया, सो कहो ॥ ६ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो ध्यात्वा हरिं प्रभुम् ।
सहर्षपुलकोद्भिन्नसर्व्वाङ्गः प्राह तान्मुनीन् ॥ ७ ॥

महर्षियोंके यह वचन सुनकर उग्रश्रवाने नारायण जीका ध्यानकिया, हर्षमें भरजानेसे उनका सर्व शरीर पुलकायमान हुआ । उन्होंने महर्षियोंसे कहा कि ॥ ७ ॥

सूत उवाच ।

शृणुध्वमिदमाख्यानं भविष्यं परमाद्भुतम् ।
कथितं ब्रह्मणा पूर्व्वं नारदाय विपृच्छते ॥ ८ ॥

हे महर्षियो ! यह अत्यन्त विस्मय कारी होनहार उपाख्यान आपसुनैं । पूर्वकालमें नारदजीके (यह वार्ता) पूछनेपर ब्रह्माजीने उनसे यह कहाथा ॥८॥

नारदः प्राह मुनये व्यासायामिततेजसे ।
स व्यासो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ॥ ९ ॥

नारदजीने अमित तेजस्वी व्यासजीसे (१) इसविषयको वर्णन किया । व्यासजीने अपने बुद्धिमान् पुत्र ब्रह्मरातसे यह कहाथा ॥ ९ ॥

---

(१) इन्होंने महाभारतकी रचना और वेदका विभाग किया । साधारण लोग वेदको नहीं समझ सकेंगे, इसी कारणसे वेदव्यासजीने वेदार्थकासार संग्रह करके इस अमृत मय महाभारतको बनाया । " वेद व्यासजीका यथार्थ नाम कृष्णद्वैपायनहै वह वेदका विभाग करके व्यास वेदव्यास, इत्यादि नामको प्राप्तहुए । सांवरे थे, इस कारण कृष्ण, और यमुनाके एक द्वीपमें जन्मनेके कारण द्वैपायन कहलाए । यह दो शब्द समष्टि और व्यष्टि, दोनों भांतिसेही व्यास बोधकहैं । " व्यासजी चिरञ्जीवीहैं ।

स चाभिमन्युपुत्राय विष्णुराताय संसदि ।
प्राह भागवतान्धर्मानष्टादशसहस्रकान् ॥ १० ॥

ब्रह्मरातने अभिमन्युके पुत्र विष्णुरातके समीप सभामें यह भागवत धर्म कीर्त्तन किया। उसमें १८००० श्लोकथे ॥ १० ॥

तदा नृपे लयं प्राप्ते सप्ताहे प्रश्नशेषितम् ।
मार्कण्डेयादिभिः पृष्टः प्राह पुण्याश्रमे शुकः ॥ ११ ॥

उस समय एक सप्ताह बीत जानेपर विष्णुरात राजाने लोकयात्राको पूराकिया; परन्तु तबभी प्रश्न पूरानहीं हुआ । (इसके उपरान्त) मार्कण्डेय (१) आदि महर्षियोंके पुण्याश्रममें (इस भागवत धर्मका) शेष अंश पूछनेपर भगवान शुकदेवजीने तिसको कहाथा ॥ ११ ॥

तत्राहं तदनुज्ञातः श्रुतवानस्मि याः कथाः ।
भविष्याः कथयामीह पुण्या भागवतीः शुभाः ॥ १२ ॥

शुकदेवजीकी अनुमति लेकर, मैंने उस पुण्याश्रममें जो होनहार बातें सुनीथीं, यहांपर वही शुभदायी भागवत धर्म कहताहूं ॥ १२ ॥

ताः शृणुध्वं महाभागाः समाहितधियोऽनिशम् ।
गते कृष्णे स्वनिलयं प्रादुर्भूतो यथा कलिः ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णजीके वैकुण्ठमें चलेजाने पर जिसप्रकार कलिकी उत्पत्ति हुई सो आपलोग सर्व प्रकारसे सावधान होकर तिसको श्रवणकरें १३

प्रलयान्ते जगत्स्रष्टा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ससर्ज्ज घोरं मलिनं पृष्ठदेशात् स्वपातकम् ॥ १४ ॥

प्रलयकालके बीतजानेपर जगत्के उत्पन्नकरनेवाले समस्त लोकके पितामह, पद्मयोनि ब्रह्माजीने अपनी पीठसे अपने पातकको उत्पन्न किया

स चाधर्म्म इति ख्यातस्तस्य वंशानुकीर्त्तनात् ।
श्रवणात्स्मरणाल्लोकः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

(१) मृकण्ड मुनिके पुत्र, महर्षि विशेष । इनके बनाए हुए पुराणका नाम मार्कण्डेय पुराणहै । यह भी चिरजीवीहैं ।

वह पातक अधर्म नामसे प्रसिद्ध हुआ; उसके वंशका वर्णन कीर्त्तन, श्रवण, अथवा स्मरण करनेसे मनुष्योंके समस्त पाप छूट जातेहैं ॥ १५ ॥

अधर्म्मस्य प्रिया रम्या मिथ्या मार्ज्जारलोचना ।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दम्भः परमकोपनः ॥ १६ ॥

अधर्मकी भार्या मिथ्या, मनको अत्यन्त रमानेवाली और बिल्लीकी समान नेत्रवालीहुई । तिसका दम्भ नामक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी और स्वभावका क्रोधी हुआ ॥ १६॥

स मायायां भगिन्यान्तु लोभं पुत्रञ्च कन्यकाम् ।
निकृतिं जनयामास तयोः क्रोधः सुतोऽभवत् ॥ १७ ॥

मिथ्याके माया नामक एक कन्या उत्पन्न हुई । दम्भने अपनी बहन मायाके गर्भसे लोभनामक पुत्र और निकृति नामक कन्या उपजाई । लोभ और निकृतिके संगसे क्रोधनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥

स हिंसायां भगिन्यान्तु जनयामास तं कलिम् ।
वामहस्तधृतोपस्थं तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम् ॥ १८ ॥

क्रोधके हिंसा नामक एक बहन जन्मी । उसहिंसाके गर्भमें क्रोधके औरससे, कलिका जन्म हुआ । कलिने बांयें हाथमें उपस्थ (लिंग) धारणकिया। इसके शरीरकी कान्ति तेलमिलेहुए अंजनके पुंजकी समानकालीहुई ॥१८॥

काकोदरं करालास्यं लोलजिह्वं भयानकम् ।
पूतिगन्धं द्यूतमद्यस्त्रीसुवर्णकृताश्रयम् ॥ १९ ॥

कलिका उदर कागकी समान हुआ, वदन कराल, विलोल जीभ अत्यन्त भयानक हुई । तिसके गन्धमें सडीहुई गन्ध निकलतीहै । जुआ, मद्य, स्त्री और सुवर्णमें कलिका वास हुआ ॥ १९ ॥

भगिन्यान्तु दुरुक्त्यां स भयं पुत्रञ्च कन्यकाम् ।
मृत्युं स जनयामास तयोश्च निरयोऽभवत् ॥ २० ॥

इस कलिने दुरुक्ति नामक अपनी बहनके गर्भसे भयनामक पुत्र और मृत्यु नामक कन्या उपजाई । मृत्युके गर्भमें भयके औरससे निरयने जन्मलिया ॥ २० ॥

यातनायां भगिन्यान्तु लेभे पुत्रायुतायुतम् ।
इत्थं कलिकुले जाता बहवो धर्म्मनिन्दकाः ॥ २१ ॥

निरयके एक यातना नामक बहन जन्मी । निरयने इस यातनाके गर्भसे कई हजार पुत्र उपजायेथे । इस प्रकार कलिके कुलमें बहुतसे धर्म निन्दकोंने जन्मलियाथा ॥ २१ ॥

यज्ञाध्ययनदानादिवेदतन्त्रविनाशकाः ।
आधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयाश्रयाः ॥ २२ ॥

वह समस्त धर्म निन्दक, यज्ञ, स्वाध्याय, दान और धर्मादि धर्मके कार्योंको, और वेद तंत्रादि धर्मशास्त्रको लोपकरने लगे । उन्होंने आधि, व्याधि, जरा, ग्लानि, दुःख, शोक और भयमें अपना वास किया ॥ २२ ॥

कलिराजानुगाश्चेरुर्यूथशो लोकनाशकाः ।
बभूवुः कालविभ्रष्टाः क्षणिकाः कामुका नराः ॥ २३ ॥

कलिराजके सेवक लोग संसारका नाशकरते हुए, झुंडके झुंड (पृथ्वीमें) घूमने लगे । कलिके सेवकोंने समयके हेरफेरसे (पहली अवस्थासे) चलायमानहो, क्षणभरमें होजानेवाला और काम—परायण मनुष्यदेह धारणकिया ॥ २३ ॥

दम्भाचारदुराचारास्तातमातृविहिंसकाः ।
वेदहीना द्विजा दीनाः शूद्रसेवापराः सदा ॥ २४ ॥

वह अत्यन्तदम्भी और दुराचारी होकर माता पिताकी हत्याकरने लगे जिन्होंने ब्राह्मण योनिमें जन्मलियाथा वह वेद शास्त्रको नजाननेवाले और

अत्यन्त दरिद्र होकर सदा शूद्रजातिकी उपासनाकरते हुए (१) ॥ २४ ॥

कुतर्कवादबहुला धर्म्मविक्रयिणोऽधमाः ।
वेदविक्रयिणो व्रात्या रसविक्रयिणस्तथा ॥ २५ ॥
मांसविक्रयिणः क्रूराः शिश्नोदरपरायणाः ।
परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारकाः ॥ २६ ॥

वह अधर्मी लोग बहुतसे कुतर्कोंका विचार करते और धर्मको बेंचते; यथाकालमें उनका यज्ञोपवीत संस्कार न होता; इसलिये वह जातिसे निकाले जाकर पतित होते (२); वेद रस और मांसको बेंचकर (३)

---

(१) वेद पढ़ना द्विजातीके अवश्य करने योग्य कार्योंमें गिना जाताथा । यह ब्राह्मण जातिका प्रधान धर्म है । मनुजीने कहा है;—

वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना । (मनु २ अ० १६५ श्लोक)

अर्थात्—" द्विजातिको रहस्य सहित (मंत्र, ब्राह्मण और उपनिषत् समेत) समस्त वेद पढना चाहिये ।"

वेद न पढनेवाला द्विजातिको जातिसे भ्रष्ट होताहै । मनुजी कहते हैं;—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥
(मनु २ अ० १६८)

अर्थात्—'जो द्विजाति वेदको न पढ़कर और कहीं परिश्रम करता है वह वंश सहित जीते हुएही शूद्रपनको प्राप्त होजाताहै ।'

शूद्रपनका प्राप्त होनाही पतितता है । यह होनहार अति उत्कट् पापके वीचमें गिनी जाती है । इसी कारण कलिके ब्राह्मण दोषके बीच यह वार्त्ता लिखी है ॥

(२) गर्भसे अष्टम वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारह वर्षमें क्षत्रीका, और बारह वर्षमें वैश्यका उपवीत संस्कार करना चाहिये । विशेष कारणसे नियत समयके सिवाय और समयमेंभी उपवीतसंस्कारकी विधिका विधानथा । ब्राह्मणका सोलह वर्ष, क्षत्रीका बाईस, और वैश्यका चौबीस वर्षकी आयुतक उपवीतसंस्कारका समय है । इस समयके बीतजानेपर मनुष्य तिनको व्रात्य कहते और अत्यन्त नीच समझते हैं । मनुजीने कहा है,—

अतऊर्द्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥
(मनु० २ अ० ६९)

ऐसा होना बहुत बुराहै । इसी कारण कलियुगके ब्राह्मणोंके लक्षणोंमें व्रात्य दोष गिना गया है ।

(३) वेद, मांस और रसका बेचना द्विजातिके लिये निषिद्ध है । मनुके तीसरे अध्यायमें " भृतकाध्यापको यश्च " इत्यादि स्थलमें वेदके बेंचनेकी असाधुता दिखाई है । १५२ श्लोकमें " मांसविक्रयिणस्तथा " इत्यादि स्थलमें मांसके बेंचनेकी और १५९ श्लोकमें ' रसविक्रयी ' इस स्थलमें रसके बेंचनेका निषेध कियाहै । मनुके तीसरे अध्यायमें इसका वर्णन विस्तारसे लिखाहै ।

जीवन व्यतीत करते । वह क्रूर लोग इन्द्रियोंके चारितार्थ करने और पेटपूजा करनेमें भलीभांति तत्पर हुएथे ! मतवाले कलियुगके सेवक पराई स्त्रीका धर्म नाश करके अनेक प्रकारके वर्ण संकरोंको उत्पन्न करने लगे ॥ २५ ॥ २६ ॥

ह्रस्वाकाराः पापसाराः शठा मठनिवासिनः ।
षोडशाब्दायुषः श्यालबान्धवा नीचसङ्गमाः ॥ २७ ॥

कलिके मनुष्योंका आकार अत्यन्त छोटा होगया; पापपरायण शठ मठमें वासकरने लगे । मनुष्योंका जीवन–काल सोलह वर्ष नियत हुआ । कलियुगके सेवक सालेके साथ भायपन स्थापित करके असाधुके साथरहते ॥ २७ ॥

विवादकलहक्षुब्धाः केशवेशविभूषणाः ।
कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वार्द्धुषिका द्विजाः ॥ २८ ॥

झगडे और क्लेशमें चलायमान होते और केश, वेश सजानेमें ही अत्यन्त आसक्त हुएथे । कलिकालमें धनीलोग कुलीन और वार्द्धुषिक (१) ब्राह्मण पूज्य हुएथे ॥ २८ ॥

सन्यासिनो गृहासक्ता गृहस्थास्त्वविवेकिनः
गुरुनिन्दापरा धर्म्मध्वजिनः साधुवञ्चकाः २९ ॥

सन्यासी लोग गृहस्थ धर्ममें अनुरागी हुए, गृहस्थोंमें विचार शक्ति नहीं थी । मनुष्य गुरुजनोंकी निन्दा करते । धोखादेनेवाले धर्मकी ध्वजा धारण करके साधुओंको ठगते ॥ २९ ॥

---

(१) जो ब्राह्मण " वृद्धि " अर्थात् व्याजके धनसे जीविका निर्वाह करताहै वह अत्यन्त पापीहै । विपत्तिके समय वृद्धि प्रयोगको विधिथी तो, परन्तु ब्राह्मण और क्षत्रीके लिये निषिद्ध थी । यद्यपि मनुके दशवें अध्यायके १७ श्लोकमें–" ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत् ,, विधि साधारणतः नियतहै, और फिर थोडे सूदसे रुपयेके उधार देनेकी विधि लिखीहै, तथापि वह घृणाकरहै । यहांपर 'वार्द्धुषिक ' शब्द उनहींके लिये लखाहै जो सदाही सूद ग्रहण करतेहैं ।

प्रतिग्रहरताः शूद्राः परस्वहरणादराः ।
द्वयोः स्वीकारमुद्वाहः शठे मैत्री वदान्यता ॥ ३० ॥
प्रतिदाने क्षमाशक्तौ विरक्तिकरणाक्षमे ।
वाचालत्वञ्च पाण्डित्ये यशोऽर्थे धर्म्मसेवनम् ॥ ३१ ॥

शूद्रलोग दानका प्रतिग्रह और दूसरेका सर्वस्व हरणकरलेते । पुरुष और नारी इन दोनोंकी सम्मति विवाहके नामसे गिनी जाने लगी । शठोंके साथ लोग मित्रता करते । प्रतिदानके समय दान शीलताका परिचयदेते, अपराधीके अपराधका दंडदेनेमें असमर्थ होनेपर क्षमा दिखाते और दुर्बलके प्रति विरक्ति प्रकट कियाकरते । बहुत बोलनेसे पंडित गिने जाते, यशके प्राप्त करनेकी आशासे धर्मका विचार करते ॥ ३० ॥ ३१ ॥

धनाढ्यत्वञ्च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता ।
सूत्रमात्रेण विप्रत्वं दण्डमात्रेण मस्करी ॥ ३२ ॥

धनवान् पुरुष साधुगिनेजाते, और दूरदेशका जल तीर्थ समझकर पूजा जानेलगा ब्राह्मणका लक्षण केवल यज्ञोपवीत रहगया, और दंडका धारण करना सन्यासीका चिह्न हुआ ॥ ३२ ॥

अल्पशस्या वसुमती नदीतीरेऽवरोपिता ।
स्त्रियो वेश्यालापसुखाः स्वपुंसा त्यक्तमानसाः ॥ ३३ ॥

पृथ्वी थोड़ासा अन्नदेनेलगी, जल न रहनेके कारण नदियें किनारे पर बहनेवाली हुई । स्त्रियें वेश्याकी समान बातें करके सुखको अनुभवकरने लगीं, अपने पतिके ऊपर तिनका अनुराग नहीं रहा ॥ ३३ ॥

परान्नलोलुपा विप्राश्चण्डालगृहयाजकाः ।
स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रियाः ॥ ३४ ॥

ब्राह्मणलोग पराये अन्नके लिये ललचायकर चण्डालोंके यहां पुरोहिताई और पाधाई करनेलगे । स्त्री जातिका विधवापन नहीं रहा, वह प्रियसमझकर स्वेच्छा चार करने लगीं ॥ ३४ ॥

चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दशस्या च मेदिनी ।
प्रजाभक्षा नृपा लोकाः करपीडाप्रपीडिताः ॥ ३५ ॥

बादलोंने विचित्र भावसे वर्षाका करना आरम्भकिया, (इसकारण) पृथ्वीपर नाजकी उपज मन्दी होगई । कलियुगके राजा; प्रजाको भक्षण करने लगे; करके बोझसे प्रजा पीडित हुई ॥ ३५ ॥

स्कन्धे भारं करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धाः प्रजाजनाः ।
गिरिदुर्गं वनं घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्भगाः ॥ ३६ ॥

अभागीप्रजा अत्यन्तकातरहो कन्धे पर बोझा और हाथसे पुत्रको पकड दुर्गमपर्वत और गहन वनमें आश्रय ग्रहण करनेलगी ॥ ३६ ॥

मधुमांसैर्मूलफलैराहारैः प्राणधारिणः ॥
एवं तु प्रथमे पादे कलेः कृष्णाविनिन्दकाः ॥ ३७ ॥

मधु, मांस, और फलमूल आहार करके उनकी जीविकाका निर्वाह होनेलगा। कलियुगके प्रथम चरणमें मनुष्योंकी यह दशा हुई, तिसकालमें जन साधारण श्रीकृष्णजीकी निन्दा करने लगे ॥ ३७ ॥

द्वितीये तन्नामहीनास्तृतीये वर्णसङ्कराः ।
एकवर्णाश्चतुर्थे च विस्मृताच्युतसत्क्रियाः ॥ ३८ ॥

परन्तु कलिके दूसरे चरणमें लोग श्रीकृष्णजीके नामकाभी उच्चारण नहीं करते। कलिके तीसरे चरणमें वर्णसङ्करकी उत्पत्ति हुई । कलियुगके चौथे चरणमें मनुष्य जातिका एक वर्ण होगया । और विष्णुजीकी आराधना भुलादी गई ॥ ३८ ॥

निःस्वाध्याय-स्वधा-स्वाहा-वौषड़ोंकार-वर्ज्जिताः ।
देवाः सर्व्वे निराहाराः ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३९ ॥

स्वाध्याय और स्वधा, स्वाहा, वषट् व ओंकारादि अन्तर्हित हुए

इसकारण समस्त देवता आहार रहित होगये (१) वह (उपाय—हीनहो। ब्रह्माकी शरण ग्रहण करते हुए ॥ ३९ ॥

धरित्रीमग्रतः कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम्।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ४० ॥

देवता लोग दुर्बल दीन और श्रेष्ठ चिन्ताकरने वाली पृथ्वीको आगे करके ब्रह्मलोकमें गए। तहांपर देखा कि ब्रह्मलोक वेदके गानसे शब्दायमान हो रहाहै ॥ ४० ॥

यज्ञधूमैः समाकीर्णं मुनिवर्य्यनिषेवितम्।
सुवर्णवेदिकामध्ये दक्षिणावर्त्तमुज्ज्वलम् ॥ ४१ ॥
वह्नि यूपाङ्कितोद्यान-वन-पुष्प-फलान्वितम्।
सरोभिः सारसैर्हंसैराह्वयन्तमिवातिथिम् ॥ ४२ ॥
वायुलोललताजालकुसुमालिकुलाकुलैः।
प्रणामाह्वान-सत्कार-मधुरालापवीक्षणैः ॥ ४३ ॥

चारों ओर यज्ञका धुआं उठ रहाहै, महर्षि लोग बैठे हुएहैं। सुवर्णकी वेदीके बीचमें प्रकाशित, दशिणावर्त्त नामक (२) अग्निजल रहाहै; बगीचोंमें फूल, फल और जल विराजमान हो रहाहै, तहां पर यज्ञके खंभ खडेहुए हैं। उस स्थानमें, भँवरे; फूली हुई लतामेंसे शहतको पीरहेथे, पवनके झोकेसे वे उडने लगे; सरोवरमें सारस और और हंस

---

(१) याग यज्ञका अनुष्ठान करनेसे अग्निमें होम किया जाता है। उस समय इन्द्रादि देवताओंके लिये नाम लेकर आहुति देनेसे देवता लोग उस द्रव्यको भोजन करते हैं। कलिकालमें मनुष्योंके धर्म भ्रष्टहोनेसे याग यज्ञ रहित हुए। कोई द्रव्यदान नहीं करता। इसकारण देवता तृप्त नहीं होते।

(२) दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, और आवहनीय, यह तीन अग्नि हैं। आर्य लोग अग्निके उपासकथे। गृहस्थ सदाही बरावर जिस अग्निको घरमें रखते हैं, उसका नाम गार्हपत्य है। उस गार्हपत्य अग्निसे अथवा किसी यज्ञकी अग्निसे उद्धृत करके जिसको दक्षिणभागमें स्थापित किया जाता है तिसको दाक्षिणाग्नि कहते हैं। अग्निसे उद्धृत करके होमके लिये जो अग्नि संस्कार किया जाता है तिसको आहवनीय कहते हैं। वैदिक समयमें इन तीनों अग्नियोंकी पूजा होतीथी। अबभी यज्ञादिमें अग्निकी स्थापना की जाती है।

तिस्से आकुल हो चिल्ला रहे हैं; तिस्से ऐसा जान पड़ता है मानो सरोवर हंस और सारसके शब्दके छलसे पथिक लोगोंको पुकारता हुआ प्रणाम, आह्वान, सत्कार, मीठीबात चीत करके देखताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

तद्ब्रह्मसदनं देवाः सेश्वराः क्लिन्नमानसाः।
विविशुस्तदनुज्ञाता निजकार्य्यं निवेदितुम् ॥ ४४ ॥

उन देवता लोगोंने जिनके हृदय शोकाकुलहो रहेथे, और देवताओंके स्वामी इन्द्रने ब्रह्माजीकी अनुमतिके अनुसार अपनादुःख निवेदन करनेके लिये उस ब्रह्मभवनमें प्रवेशकिया ॥ ४४ ॥

सनक, सनन्दन, सनातनादि सिद्ध महर्षिलोग जिनके चरणकमलकी आराधना करते हैं ॥

त्रिभुवनजकं सदासनस्थं सनक-सनन्दन-सनातनैश्च सिद्धैः।
परिसेवितपादकमलं ब्रह्माणं देवता नेमुः ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कलिविवरणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दोहा—योगासन आसीन प्रभु, त्रिभुवन कारणकाम ॥
ता विधिको सब विबुधगण, लागे करन प्रणाम ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते बलदेवप्रसाद मिश्रकृत भाषाटीकायां भविष्ये कलिविवरणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

सूत उवाच।

उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात्पुरः।
कलेर्दोषाद्धर्म्महानिं कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय।

सूतजीबोले;—देवता, ब्रह्मभवनमें प्रवेश करके ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार उनके सन्मुख बैठे; और आदर सहित उनसे यह वृत्तान्त निवेदन करते हुए कि कलिके दोषसे धर्मका नाश होरहाहै ॥ १ ॥

देवानां तद्वचः श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दुःखितान् ।
प्रसादयित्वा तं विष्णुं साधयिष्याम्यभीप्सितम् ॥ २ ॥

ब्रह्माजीने उनके यह वचन सुन व्याकुल हृदयहो देवताओंसे कहा कि " हम विष्णुजीकी आराधना करके तुह्मारी मनोकामनाको पूर्ण करेंगे " ॥ २ ॥

इति देवैः परिवृतो गत्वा गोलोकवासिनम् ।
स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवानां हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥

वह यह कहकर देवताओंको साथले, बैकुण्ठमें निवासकरिवे वारे श्रीनारायणजीके निकट जातेभये; और विष्णुजीकी आराधना करके देवताओंने उन नारायणजीसों अपने मनकी बात निवेदन करी ॥ ३ ॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् ।
सुमत्यां मातरि विभो ! कन्यायां त्वन्निदेशतः ॥ ४ ॥

पद्मपलाशलोचन (कमल दलकी समान नेत्रवाले) मधुसूदन देवतावोंकी प्रार्थनाको श्रवणकरि कहते भये । " हे विभो ! मैं तुम्हारे कहे अनुसार, शम्भल नगरके मध्य विष्णुयशके गृहमें सुमति नामक कन्याके गर्भसे जन्म ग्रहणकरूंगा ॥ ४ ॥

चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव ! करिष्यामि कलिक्षयम् ।
भवन्तो बान्धवा देवाः स्वांशेनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥

हे देव ! हम चारों भ्राता मिलकर कलिका संहारकरेंगे । तुम सब जन हमारे बान्धवबन अपने २ अंशसे पृथ्वीपर अवतार लेंगे ॥ ५ ॥

इयं मम प्रिया लक्ष्मीः सिंहले संभविष्यति ।
बृहद्रथस्य भूपस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा ।
भार्य्यायां मम भार्य्यैषा पद्मानाम्नी जनिष्यति ॥ ६ ॥

यह हमारी परमप्यारी भार्या लक्ष्मीजी, सिंहलदेशीय बृहद्रथ राजाकी कौमुदी नामक रानीके गर्भसे पद्मा नाम धारण करके जन्मलेगी ॥ ६ ॥

यात यूयं भुवं देवाः स्वांशावतरणे रताः ।
राजानौ मरुदेवापी स्थापयिष्याम्यहं भुवि ॥ ७ ॥

हे देवताओ ! तुम अपने २ अंशसे अवतारले पृथ्वीपर जाओ । मैं मरु और देवापि नामक दोराजाओंको पृथ्वीपर स्थापित करता हूं ॥ ७ ॥

पुनः कृतयुगं कृत्वा धर्म्मान्संस्थाप्य पूर्व्ववत् ।
कलिव्यालं संनिरस्य प्रयास्ये स्वालयं विभो ॥ ८ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैं फिर सतयुगको उतारकर धर्मको स्थापनकरूंगा; फिर कलिरूपी सर्पका नाशकरके अपने धामको लौट आऊंगा" ॥ ८ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मा देवगणैर्वृतः ।
जगाम ब्रह्मसदनं देवाश्च त्रिदिवं ययुः ॥ ९ ॥

भगवान् कमलानाथके यह वचन सुनकर देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको जातेभये और देवता लोग स्वर्गको लौट आये ॥ ९ ॥

महिमां स्वस्य भगवान्निजजन्मकृतोद्यमः ।
विप्रर्ष ! शम्भलग्राममाविवेश परात्मकः ॥ १० ॥

हे विप्रर्षे ! परमात्मा स्वरूप भगवान्विष्णुजी, महिमाके बलसे जन्मलेनेके लिये उद्यतहो शम्भल ग्राममें प्रवेश करते हुए ॥ १० ॥

सुमत्यां विष्णुयशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम् ।
ग्रह-नक्षत्र-राश्यादि-सेवित-श्रीपदाम्बुजम् ॥ ११ ॥

उन्होंने विष्णुयशाके औरससे, सुमतिके गर्भमें वैष्णवगर्भका आधान किया। ग्रह, नक्षत्र और राशि आदि उन (गर्भस्थभ्रूणरूप विष्णु) के चरणकमलकी सेवाकरने लगे ॥ ११ ॥

सरित्समुद्रा गिरयो लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ।
सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णौ जगत्पतौ ॥ १२ ॥

जगत्के स्वामी श्रीपतिने जब (मानव गर्भमें) जन्मलिया तब नद, नदी, सागर, भूधर (पर्वत) आदि स्थावर जंगम सबलोक और महर्षिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

बभूवुः सर्व्वसत्त्वानामानन्दा विविधाश्रयाः ।
नृत्यन्ति पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगुर्यशः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण जीवही अनेक प्रकारसे आनन्दको प्रगट करनेलगे। पितृ लोग मारे आनन्दके नृत्य करने लगे, सन्तुष्ट होकर देवतालोग विष्णुजीका यश गाने लगे ॥ १३ ॥

चक्रुर्वाद्यानि गन्धर्व्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १४ ॥

गन्धर्व लोग बाजाबजाने लगे, अप्सराओंने नाचना आरम्भकिया ॥ १४॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधवम् ।
जातं ददृशतुः पुत्रं पितरौ हृष्टमानसौ ॥ १५ ॥

वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिकेदिन माधवने (मनुष्यरूपसे) पृथ्वीपर अवतारलिया । उनके पिता विष्णुयशाने और माता सुमतिने पुलकित हृदयसे पुत्रको देखा ॥ १५ ॥

धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका ।
गङ्गोदकक्लेदमोक्षा सावित्री मार्ज्जनोद्यता ॥ १६ ॥

महाषष्ठी (१) विष्णुजीकी धात्री हुई और भगवती अम्बिका (२) ने उनके नालको काटा । भगवती भागीरथी (३) ने अपने जलसे

---

(१) दुर्गादेवीकी एक मूर्त्तिका नाम है। महाषष्ठी बालकोंकी रक्षा करती है । योगिनी तंत्रमें- "महाषष्ठीरूपेण बालकं रक्ष रक्ष-" इत्यादि महाषष्ठीके कवच मंत्रसे इसका प्रमाण मिलता है ।

(२) दुर्गाका एक नाम है ।

(३) विष्णुजीके चरण कमलसे उत्पन्न होकर गंगाजी पृथ्वीपर प्रगट हुईथीं । सूर्य वंशमें सगर नामक एक राजा हुआ, वह सदा बहुतसे अश्वमेध यज्ञकिया करताथा । इन्द्रने देखा कि, यह राजा यज्ञोंके फलसे इन्द्रासनका अधिकारी हो जायगा इसकारण पिछला यज्ञ बिगाड़नेको इन्द्रने यज्ञीय तुरंगको चुरालिया । सगरके ६०००० पुत्रोंने बहुतेरा खोजा परन्तु अश्वका पता न लगा । फिर इन सब पुत्रोंने पृथ्वी खोदकर पातालमें जायकर देखा कि, एक तेजस्वी ऋषिके निकट यज्ञका घोड़ा बँधाहै इन्द्रजीने वह घोडा चुराकर पातालमें महर्षि कपिलके निकट बाँध दियाथा। सगरके पुत्र कपिल देवजी-के प्रभावको नहीं जानतेथे इस कारण उनको साधारण चोर समझकर बुरा भला कहने लगे। तब महर्षिजीका ध्यान छूट गया, उन्होंने क्रोधितहो अपने नेत्रोंकी अग्निसे सगरके साठ हजार पुत्रोंको भस्म करदिया । फिर कालक्रमसे सगरवंशमें भगीरथ नाम एक कुमार उत्पन्न हुआ । कपिलजीके शापसे भस्म हुए अपने पूर्वजोंका उद्धार करनेको भगीरथने महातप करके गंगाजीको पृथ्वीपर उतारा। भगीरथ गंगाजीको लाएथे, इसी क़ारण इनका नाम भागीरथी हुआ ।

(मनुष्यरूपी हरिके) गर्भ क्लेदको दूरकिया; सावित्री (१) देवी उनके गात्रको मार्जन करनेका उद्योग करने लगीं ॥ १६ ॥

तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधात्पयःसुधाम् ।
मातृका माङ्गल्यवचः कृष्णजन्मदिने तथा॥ १७ ॥

जिसदिन भगवान् विष्णुजीने कृष्णरूपसे अवतार लियाथा, उसही दिनके समान, जब अनन्तरूप विष्णुजीने कल्कि अवतार धारणकिया, तब भगवती वसुमती (पृथ्वी) ने दुग्धरूप सुराधारा धारणकी, मातृका नामक देवीसे (२) उनको मंगलकारी आशीर्वाद देने लगीं ॥ १७ ॥

ब्रह्मा तदुपधार्य्याशु स्वाशुगं प्राह सेवकम् ।
याहीति सूतिकागारं गत्वा विष्णुं प्रबोधय ॥ १८ ॥

इस विषयको जानकर (कि विष्णुजीने चतुर्भुज रूपसे शम्भलग्राममें अवतार लियाहै) ब्रह्माजीने, शीघ्रचलनेवाले अपने सेवक पवनको आज्ञादी कि " हेपवन ! तुम विष्णुजीके सौरी ग्रहमें जाओ और विष्णुजीसे कहआओ कि ॥ १८ ॥

चतुर्भुजमिदं रूपं देवानामपि दुर्लभम् ।
त्यक्त्वा मानुषवद्रूपं कुरु नाथ ! विचारितम् ॥ १९ ॥

---

(१) सावित्री सन्ध्याकी मूर्त्तिका नामहै ॥ व्यासजी कहतेहैं–

गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने । सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिधा स्मृता ॥

पूर्वाह्णमें सन्ध्याकी मूर्त्ति गायत्रीहै, मध्याह्नमें सावित्री और सायाह्नमें सरस्वतीहै । तीन समयमें सन्ध्याके यह तीन रूप कहे गए । संध्याकी मध्याह्न मूर्ति, सविताकी (सूर्यकी) द्योतकहै, इसीलिये मध्याह्नमूर्तिका नाम सावित्री हुआहै । यथा;–

सवितृ द्योतनात्सैवं सावित्री परिकीर्तिता ॥ (व्यासः)

द्विजातियोंके लिये जो सन्ध्याहै, तिसके मंत्रमें सावित्रीकी मूर्तिका वर्णन है ॥

मध्याह्ने विष्णुरूपाञ्च तार्क्ष्यस्थां पीतवाससीम् । युवतीञ्च यजुर्वेदां सूर्यमंडलसंस्थिताम् ॥

(२) मार्कण्डेय पुराणमें लिखाहै कि, जब चण्डीमूर्त्ति भगवतीने युद्ध किया, तब ब्रह्मा, महादेव, कार्त्तिकेय, विष्णु और इन्द्रकी शक्तियें इन देवताओंके शरीरसे निकलकर चंडिकाजीके पीछे हुईं । ब्रह्माकी शक्ति ब्रह्माणी, शिवकी माहेश्वरी, विष्णुजीके वाराह अवतारकी शक्ति वाराही, नृसिंह मूर्त्तिकी शक्ति नारसिंही और इन्द्रकी शक्ति ऐन्द्री, यह सब चलीं । यह मातृका नामसे प्रसिद्ध हैं और देवताओंमें गिनी जाती हैं । वाराहपुराणमें मातृकाओंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारसे लिखाहै ।

हे नाथ ! आपकी चतुर्भुज मूर्तिका दर्शन पाना देवताओंके लिये भी सुलभ (सरल) नहीं है; इसकारण चतुर्भुज मूर्तिको छोडकर, साधारण मनुष्यकी समान मूर्तिधारण करलेने से विचार ठीक होगा" ॥ १९ ॥

इति ब्रह्मवचः श्रुता पवनः सुरभिः सुखम् ।
सशीतः प्राह तरसा ब्रह्मणो वचनादृतः ॥ २० ॥

शीतल सुरभि पवनने, यत्नके सहित, ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर, शीघ्र (विष्णुजीसे) तिनको निवेदन किया ॥ २० ॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्क्षणाद्विभुजोऽभवत् ।
तदा तात्पितरौ दृष्ट्वा विस्मयापन्नमानसौ ॥ २१ ॥

ब्रह्माजीके कहनेके अनुसार विष्णुजीने तत्काल दो भुजावाली मूर्तिको धारण किया ।उस समयमें (चार भुजावाले पुत्रको दो भुजावाला होता देखकर) तिनके पिता माताका हृदय विस्मयरससे भरगया ॥ २१ ॥

भ्रमसंस्कारवत्तत्र मेनाते तस्य मायया ।
ततस्तु शम्भलग्रामे सोत्सवा जीवजातयः ।
मङ्गलाचारबहुलाः पापतापविवर्जिताः ॥ २२ ॥

परन्तु उन्होंने विष्णुजीकी मायासे मोहित होकर अपने मनमें समझा कि हमने भ्रमके वशसे दो भुजावाले पुत्रको चारभुजावाला देखाथा । इसके उपरान्त सब जीवोंने शम्भलग्राममें उत्सव करना आरंभकिया; तिनके पाप ताप लोप होगए । सबही अनेक प्रकारके मंगलकरनेलगे ॥ २२ ॥

सुमतिस्तं सुतं लब्ध्वा विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम् ।
पूर्णकामा विप्रमुख्यानाहूयादाद्गवां शतम् ॥ २३ ॥

उन, जगत्पति जिष्णु विष्णुजीको पुत्र पायकर सुमति चारितार्थ हुई । सुमतिने ब्राह्मणोंको नेवता देकर सौ गायें दानदीं ॥ २३ ॥

हरेः कल्याणकृद्विष्णुयशाः शुद्धेन चेतसा ।
सामर्ग्यजुर्विद्भिरग्र्यैस्तन्नामकरणे रतः ॥ २४ ॥

नारायणजी का कल्याण चाहनेकी कामनासे शुद्ध हृदयसे ऋक्, यजु, और सामवेदके जाननेवाले प्रधान २ ब्राह्मणोंसे उनके नामकरणका उद्योग कराया ॥ २४ ॥

तदा रामः कृपो व्यासो द्रौणिर्भिक्षुशरीरिणः।
समायाता हरिं द्रष्टुं बालकत्वमुपागतम् ॥ २५ ॥

उस काल परशुराम, (१) कृपाचार्य, (२)

---

(१) परशुराम भगवान्‌का १६ वां अवतार है। भागवतके दूसरे स्कन्धके दूसरे अध्यायमें कहाहै–

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्म द्रुहो नृपान्। त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥

कालिकापुराणके ८५ अध्यायमें वर्णन है कि, महातपस्वी जमदग्निजीने स्वयं जीतकर विदर्भराजकी पुत्री रेणुकासे विवाह किया। उनके रुमण्वान्, सुषेण, विश्व और विश्वावसु नामक चार पुत्र हुए। एक समय समस्त देवताओंने कार्त्तवीर्यका वध करनेको विष्णुजीकी प्रार्थनाकी। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान्‌ने जमदग्निके औरससे रेणुकाके गर्भमें जन्मलियां। उनहींके साथ एक सहज कुठार (परशा) उत्पन्न हुआ। इस परशुको परशु-रामजीने कभी नहीं छोड़ा। माता क्षत्राणी और पिताके तपस्वी ब्राह्मण होनेसे परशुरामजीमें दोनों धर्म वर्त्तमानथे। ब्राह्मणके समान तपस्वी, वेदवित् और क्षत्रिकी समान शस्त्र पारदर्शी और वीरधर्मवाले हुएथे। इन्होंने पिताजीकी आज्ञासे परम पूजनीय अपनी माताका भी शिर काट डालाथा। यह अमरहैं।

(२) महर्षि गौतमजीके शरद्वान् नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके साथही धनुषबाणभी प्रसूत हुआथा। शरद्वान्, वेदको तो ऐसा बहुत नहीं जानताथा, परन्तु धनुर्वेदमें भली भाँति उसकी चतुरता देखी जातीथी। उसने तप करके अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र पाये उसकी धनुर्विद्या और तपकी शक्तिको देखकर इन्द्र अत्यन्त भीत हुआ, और समाधि डिगानेको जानपदी नामक देवताओंकी कन्या पठाई। शरद्वान्‌के आश्रममें आयकर जानपदी उनको लुभाने लगी; उस एकवसना सुन्दरीको देखकर शरद्वान् मोहित हुए। उनके हाथसे बाणसहित धनुष छूटकर पृथ्वीपर गिरपडा। धीरताके छूट जानेकी शंकासे वह उस आश्रमको, अप्सराको हाथसे छूटे हुए धनुषबाणको और मृगचर्म को छोडकर वहांसे चले आये। जानपदीको देखकर उनका वीर्य गिरगयाथा, परन्तु उन्होंने जाना नहीं। उस अमोघवीर्यसे एक जोड़ा उत्पन्न हुआ। राजा शान्तनु शिकार खेलनेके लिये वनमें आएथे। उनके एक सेवकने वनमें धनुषबाण और मृगचर्मको निहार निकट आनकर देखा कि वहां बालकोंका एक जोड़ा है। राजा शान्तनु यह समाचार पाय इन बालकोंको अपनी राजधानीमें लेगए और पुत्रकी समान लालन पालन करने लगे। कृपाकरके ले आयेथे इस लिये कृपनाम रक्खा। तहांपर धनुर्वेद और अनेक शास्त्रोंमें पारदर्शीहो कृपने आचार्यकी पदवीको पाया। कुरुक्षेत्रके युद्धमें कृपाचार्य कौरवोंकी ओरथे। महाभारतके आदिपर्वमें १३० अध्यायके मध्यमें इनका वृत्तान्त विस्तारसे लिखाहै। भागवतके ९ वें स्कन्ध २१ अध्यायमें भी कृपाचार्य का वृत्तान्त लिखा है॥

अश्वत्थामा, (१) और व्यासजी भिखारीका रूप धारणकरके बालकरूपी विष्णुजीके देखनेको (विष्णुयशाके घरपर) आये ॥ २५ ॥

तानागतान्समालोक्य चतुरः सूर्य्यसन्निभान् ।
हृष्टरोमा द्विजवरः पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् ॥ २६ ॥

ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ विष्णुयशाने, सूर्यके समान तेजस्वी प्रधान चारपाहुनोंको देखकर उनकी पूजाकी। विष्णुयशाके रोमाञ्च हो आया ॥ २६ ॥

पूजितास्ते स्वासनेषु संविष्टाः स्वसुखाश्रयाः ।
हरिं क्रोडगतं तस्य ददृशुः सर्व्वमूर्त्तयः ॥ २७ ॥

सर्व मूर्त्तियोंके धारणकरनेकी सामर्थ्य रखनेवाले महर्षियोंने पूजितहो सुखसहित अपने २ आसनपर बैठकर देखा कि, भगवान् हरि पिताजीकी गोदीमें हैं ॥ २७ ॥

तं बालकं नराकारं विष्णुं नत्वा मुनीश्वराः ।
कल्किं कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधाः ॥ २८ ॥

शास्त्रके जानने वाले महर्षियोंने नरमूर्त्ति बालक विष्णुजीको देखकर प्रणामकिया और समझगए कि, इन्होंने (पृथ्वीके) कलंकका नाश करनेके लिये कल्किरूपसे अवतार लिया है ॥ २८ ॥

नामाकुर्व्वंस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।
कृत्वा संस्कारकर्म्माणि ययुस्ते हृष्टमानसाः ॥ २९ ॥

उन्होंने इसी कारणसे और नाम न रखकर तिनका विख्यात कल्किनाम रक्खा और विधिपूर्वक जातकर्मसंस्कार करके प्रसन्नहो वहां से चले गये२९

---

(१) द्रोणाचार्यका पुत्र, भारत प्रसिद्ध वीर विशेष। महाभारतके आदि पर्वमें कहा है-
शारद्वतीं ततो भार्यां कृपीं द्रोणोऽन्यविन्दत। अग्निहोत्रे च धर्मे च दमे च सततं रताम् ॥
अलभद्गौतमीपुत्रमश्वत्थामानमेव च। सजातमात्रो व्यनदद्यथैवोच्चैश्श्रवा हयः ॥
तच्छ्रुत्वान्तर्हितं भूतमन्तरिक्षस्थमब्रवीत्। अश्वस्येवास्य यम नदतः प्रदिशो गतम् ॥
अश्वमेव बालोयं तस्मान्नाम्ना भविष्यति ॥ (१३० अध्याय।) इसका भावार्थ यह है,- द्रोणके औरससे कृपीके गर्भमें अश्वत्थामाका जन्म हुआ। जन्मके समय यह उच्चैःश्रवाकी समान हिनहिनाया। तब आकाशवाणी हुई कि इस अश्वके समान विक्रमवाले बालकका नाम अश्वत्थामा होवै। तबसे द्रोणाचर्यकें पुत्रका नाम अश्वत्थामा हुआ। यह चिरजीवीहैं।

ततः स ववृधे तत्र सुमत्या परिपालितः ।
कालेनाल्पेन कंसारिः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ३० ॥

संस्कार होनेके पीछे कंसारि हरि सुमतिके लालन पालन करनेसे कालके क्रमसे ऐसे बढ़ने लगे जैसे शुक्लपक्षका; चंद्रमा ॥ ३० ॥

कल्केर्ज्येष्ठास्त्रयः शूराः कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिताः ॥ ३१ ॥
कल्केरंशाः पुरो जाताः साधवो धर्म्मतत्पराः ।
गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या ज्ञातयस्तदनुव्रताः ॥ ३२ ॥

इन कल्किजीके जन्मसे पहले इनके तीनभ्राता और उत्पन्नहोचुकेथे जिनके नाम कवि, प्राज्ञ और सुमंत्रकथे । यहभी मातापिताके प्रियकारी, ब्राह्मण और गुरुकी प्रतिष्ठाके भाजनथे धर्ममें तत्पर गर्ग, भर्ग्य और विशालादिने जो कि कल्किजीके अनुगत और साधु थे इन्होंने हरिके अंशसेकल्किजीके वंशमें तिनकी (हरिकी) जातिके मध्य जन्म लिया था ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

विशाखयूपभूपालपालितास्तापवर्ज्जिताः ।
ब्राह्मणाः कल्किमालोक्य परां प्रीतिमुपागताः ॥ ३३ ॥

इस विशाखयूप राजाने उनका प्रतिपालन कियाथा वह ब्राह्मणलोग कल्किजीको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । तिनका शोक ताप लोप होगया ॥ ३३ ॥

ततो विष्णुयशाः पुत्रं धीरं सर्व्वगुणाकरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोवाच पठनादृतम् ॥ ३४ ॥

कुछ कालके पीछे, धीरचरित, सर्वगुणशाली, कमलदलके समान नेत्र वाले पुत्रको विद्या पढनेके योग्य देखकर विष्णुयशाने कहा ॥ ३४ ॥

तात ते ब्रह्मसंस्कारं यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ।
सावित्रीं वाचयिष्यामि ततो वेदान्पठिष्यसि ॥ ३५ ॥

" हे तात ! मैं तुम्हारा यज्ञसूत्ररूप, प्रधान, ब्रह्मसंस्कार करूंगा फिर तुम चारोंवेद पढियो " ॥ ३५ ॥

कल्किरुवाच ।

को वेदः का च सावित्री केन सूत्रेण संस्कृताः ।
ब्रह्मणा विदिता लोके तत्तत्त्वं वद तात माम् ॥ ३६ ॥

कल्किजीबोले,—हे पिता ! वेद क्या है ? सावित्री क्या है किस प्रकारके सूत्रसे संस्कारित होनेपर मनुष्य, संसारमें ब्राह्मण नामसे विदित होता है, सो हमसे कहो ॥ ३६ ॥

पितोवाच ।

वेदो हरेर्वाक् सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।
त्रिगुणश्च त्रिवृत्सूत्रं तेन विप्राः प्रतिष्ठिताः ॥ ३७ ॥

कल्किजीके पिता बोले;—हरिका वाक्यही वेद है; उस वेदकी प्रतिष्ठा करनेवाली जननी सावित्री है । तिगुने सूत्रको तिगुनाकरके पहरनेसे विप्र नामसे विदित होता है ॥ ३७ ॥

दशयज्ञैः संस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
तत्र वेदाश्च लोकानां त्रयाणामिह पोषकाः ॥ ३८ ॥

जिन ब्राह्मणोंके दशविध संस्कार होगए हैं; उन वेद वादी ब्राह्मणोंके (निकट) त्रिलोकी के रक्षा करनेवाले वेद रक्षित होते हैं ॥ ३८ ॥

यज्ञाध्ययनदानादितपःस्वाध्यायसंयमैः ।
प्रीणयन्ति हरिं भक्त्या वेदतन्त्रविधानतः ॥ ३९ ॥

वह, वेद और तंत्र शास्त्रकी विधिके अनुसार यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, स्वाध्याय और संयमादिसे भक्तिपूर्वक विष्णुजीको प्रसन्न करते हैं ॥ ३९ ॥

तस्माद्यथोपनयनकर्म्मणोऽहं द्विजैः सह ।
संस्कर्त्तुं बान्धवजनैस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ॥ ४० ॥

मैंने इसीकारणसे ब्राह्मण और कुटुम्बवालोंके साथ मिलकर शुभदिनमें तुम्हारे उपयुक्त उपनयन संस्कारके करनेका अभिलाष किया है ॥ ४० ॥

पुत्र उवाच।

के च ते दश संस्कारा ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिताः।
ब्राह्मणाः केन वा विष्णुमर्च्चयन्ति विधानतः॥ ४१॥

कल्किजीबोले–ब्राह्मणके लिये जो दशसंस्कार (१) कहे हैं, वह दश विध संस्कार क्या है ?॥ और ब्राह्मण लोग कैसे विधानसे विष्णुजीकी आराधना करते हैं ?॥ ४१॥

पितोवाच।

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो गर्भाधानादिसंस्कृतः
सन्ध्यात्रयेण सावित्री-पूजा-जप-परायणः॥ ४२॥

जिसने ब्राह्मणके औरससे ब्राह्मणीके गर्भमें जन्मलियाहै, फिर जिसके गर्भाधानादि संस्कार हुए हैं, जो त्रिसन्ध्यामें सावित्रीका जप और पूजाका अनुष्ठान करताहै॥ ४२॥

---

(१) प्रथमविवाह; ब्रह्मचर्य पालन और विद्या पढ़नेके उपरान्त विवाह संस्कार होताथा। दूसरा गर्भाधान;–विवाहके पीछे शास्त्रकी विधिके अनुसार मंत्रसम्मत अनुष्ठानके साथ, विवाहिता स्त्रीसे सहवास करके गर्भसंचार किया जाताहै। गर्भसंचारके पहले ऐसा जो अनुष्ठान विहित है तिसको गर्भाधान कहते हैं॥ तीसरा पुंवसन;–जब गर्भ तीनमासका होजाताहै तब गर्भस्पन्दनके पहले यह मंगलकार्य किया जाताहै चौथा;–सीमन्तोन्नयन;–गर्भके चौथे, छठे अथवा आठवें मासके मध्यमें यह संस्कार करना चाहिये। पांचवां; जातकर्म;–सन्तानके उत्पन्न होनेपर पिता शास्त्रकी विधिके अनुसार विधिपूर्वक जो कार्य करताहै तिसका नाम जातकर्म है छठा; नाम करण;–पुत्रका नाम रखना। शास्त्रमें किस जातिका कैसा अर्थ सूचक नाम रखना चाहिये, सोभी लिखाहै। सातवां; अन्नप्राशन;–पुत्रको अन्नका भोजन कराया जाताहै। अबतक यह संस्कार सनातनधर्मावलम्बियोंमें दृढहै। आठवां; चूड़ाकरण;–अन्नप्राशनके पीछे बालकके मस्तकपर वर्ण के अनुसार केश रक्खे जातेहैं और इस अवसरपर यज्ञभी होताथा। इस उत्सवका उद्देश चूड़ा अर्थात् शिखाकी रचना; इस कारण यह चूड़ाकरणके नामसे प्रसिद्ध हुआ। नवां; उपनयन;–विधिपूर्वक यज्ञादि करके यज्ञोपवीत देनेका नाम उपनयन है। बिना इस संस्कारके हुए ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, जातिमें नहीं गिने जाते। उपनयनके पीछे इनकी द्विजसंज्ञा होतीहै। अर्थात् एकबार मनुष्यरूप जन्म हुआथा, फिर वर्ण रूप जन्म हुआ। दशम; समावर्त्तन;–उपनयनके पीछे ब्रह्मचर्य अवलम्बन करके गुरुके यहां विद्या पढ़नी होतीथी, फिर गुरुके यहांसे आकर गृहस्थाश्रमका पालन करना पड़ताथा; गुरु गृहसे लौट आनेके अवसरपर जो संस्कार होताथा, तिसको सामवर्त्तन कहते हैं॥

तपस्वी सत्यवाग्धीरो धर्मात्मा त्राति संसृतिम् ।
विष्णवर्च्चनमिदं ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विजः ॥ ४३ ॥

जो तपकरता है, जो सत्यवादी और धीरहै; वह धर्मात्मा ब्राह्मण विष्णुजीकी इस पूजा पद्धतिको जानकर सदा विमल आनन्द अनुभव करता है और संसारकी रक्षा करताहै ॥ ४३ ॥

पुत्र उवाच ।

कुत्रास्ते स द्विजो येन तारयत्यखिलं जगत् ।
सन्मार्गेण हरिं प्रीणन्कामदोग्धा जगत्त्रये ॥ ४४ ॥

कल्किजी बोले—जो ब्राह्मण साधुमार्गमें चलकर हरिकी प्रसन्नता प्राप्तकरता और त्रिलोकीका मनोरथ पूण करता और समस्त भुवनका उद्धार करता है, ऐसा ब्राह्मण कहां रहता है ॥ ४४ ॥

पितोवाच ।

कलिना बलिना धर्म्मघातिना द्विजपातिना ।
निराकृता धर्म्मरता गता वर्षान्तरान्तरम् ॥ ४५ ॥

कल्किजीके पिता बोले;—बलवान् कलि सदा सनातनधर्मका नाश, और ब्राह्मणोंकी हत्या करताहै; धर्ममें रतहुए ब्राह्मण लोग कलिके अत्याचारसे पीडित होकर दूसरे वर्षोंमें (१) चले गए हैं ॥ ४५ ॥

---

(१) पुराणोंमें भूगोलका वृत्तान्तहै । पौराणिक भूगोलमें लिखाहै कि, पृथ्वीमें सात द्वीपहैं एक २ द्वीपका विभाग एक २ वर्ष कहाताहै । जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर यह सातद्वीपहैं यथा;—

जम्बू प्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विज। कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥
(विष्णुपुराण, २ अंश, २ अध्या० ५ श्लो०)

भारत वर्षमें जम्बूद्वीपहै । यहांके वर्णनसे ऐसा ज्ञात होताहै कि, शम्भलग्राम सम्भवतः और अनुमानतः भारत वर्षका एक अंगहै । बस इस उपलक्षमें " वर्षान्तरमें " ऐसा कहनेसे भारतवर्षके आतिरिक्त और कोई वर्ष समझना चाहिये । तिसके अनुसार जम्बूद्वीपका वर्ष विभाग होताहै—

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् । हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥
रम्यकञ्चोत्तरे वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम् । उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ।
(विष्णुपुराण, २ अंश, २ अ० १२, १३, श्लो०)

भारत, किम्पुरुष, हरि, रम्यक, हिरण्मय और कुरु, यह छैः वर्ष जम्बूद्वीपके ६ अंश वा विभागहैं ।

ये स्वल्पतपसो विप्राः स्थिताः कलियुगान्तरे।
शिश्नोदरभृतोऽधर्म्मनिरता विरतक्रियाः॥ ४६॥

कलियुगमें जो कुछ थोडे तपवाले ब्राह्मण शेष रहेहैं, वहभी अधर्ममें निरत, उदरसेवा व इन्द्रिय सुखमें व्याप्त होकर (जो ब्राह्मणोंको चाहिये) क्रियाका अनुष्ठान नहीं करते॥ ४६॥

पापसारा दुराचारास्तेजोहीनाः कलाविह।
आत्मानं रक्षितुं नैव शक्ताः शूद्रस्य सेवकाः॥ ४७॥

इस कलिकालमें ब्राह्मणोंमें तेज नहीं है, सदाचार नहीं और अपनी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं है, पापही उन लोगोंका सार होगयाहै, वह शूद्रोंकी सेवा करते हैं॥ ४७॥

इति जनकवचो निशम्य कल्किः कलिकुलनाशमनोऽ
भिलाषजन्मा। द्विजनिजवचनैस्तदोपनीतो गुरुकुलवास-
मुवास साधुनाथः॥ ४८॥

इति श्रीकल्किपुरणेऽनुभागवते भविष्ये बल० भाषाटी० कल्कि-
जन्मोप नयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

पिताजीके ऐंसे वचन सुनकर साधुओंमें श्रेष्ठ कल्किजीके मनमें कलिके कुलका नाश करनेकी अभिलाषा हुई। तब ब्राह्मणोंने अपने २ वचनके अनुसार उनका उपनयनसंस्कार किया। फिर कल्किजी, गुरुकुलमें वास करनेको चले गये (१)॥ ४८॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये बल० भाषाटी० कल्किजन्मो
पनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

---

(१) उपनयनसंस्कारके पीछे गुरुकुलमें वास करके ब्रह्मचर्य करनेका नियमथा;—यथा; अथ ब्रह्मचारिणां गुरुकुलेवासः॥ (विष्णुस्मृति, २ अ०।) ब्रह्मचारी गुरुकुलमें वासकरे। लघुहारीत संहितामें कहाहै—

उपनीतो माणवको वसेद् गुरुकुलेषु वा। गुरोः कुले प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा (२ अ०)

अर्थात् जिस मनुष्यका उपनयन संस्कार होगया है, वह गुरुकुलमें वासकरे और मन बचन कायसे गुरुकुलको प्रसन्नकरे।

गुरुकुलमें वास करना ब्रह्मचारीका अवश्यकर्त्तव्य कर्म है, अथवा यह धर्ममें गिना जाताथा उमयके हेर फेरसे सबमें फेर पड़गया।

तृतीयोऽध्यायः ।

सूत उवाच ।

ततो वस्तुं गुरुकुले यान्तं कल्किं निरीक्ष्य सः ।
महेन्द्राद्रिस्थितो रामः समानीयाश्रमं प्रभुः ॥ १ ॥

❀ महेन्द्रपर्वत पर रहनेवाले भगवान् परशुरामजीने देखाकि, कल्किजी गुरुकुलमें वासकरने के लिये जातेहैं। परशुरामजीने कल्किको अपने आश्रममें लायकर ॥ १ ॥

प्राह त्वां पाठयिष्यामि गुरुं मां विद्धि धर्म्मतः ।
भृगुवंशसमुत्पन्नं जामदग्न्यं महाप्रभुम् ॥ २ ॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं धनुर्वेदविशारदम् ।
कृत्वा निःक्षत्रियां पृथ्वीं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥ ३ ॥
महेंद्राद्रौ तपस्तप्तुमागतोऽहं द्विजात्मज ।
त्वं पठात्र निजं वेदं यच्चान्यच्छास्त्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥

कहा कि, मैं तुम्हारा अध्यापक बनूंगा, मैंने भृगुवंशमें जमदग्निके औरससे जन्म ग्रहण किया है, वेदवेदाङ्गका तत्त्व जानताहूं, धनुर्वेदमें विशारद हुआहूं। हमको तुम धर्मके प्रमाण से प्रभावशाली गुरु समझो।

---

* महेन्द्रपर्वत । यहपर्वत भारतवर्षके सात कुलाचलोंमेंसे एक है । यथा;—
" महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः " ॥ (वि०पु० २ अं० ३ अ०)
" महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वत्ताः " (महा०भीष्म० ९ अ०)
महेन्द्रपर्वतसे त्रिमासा, ऋषिकुल्यादि नदियें उत्पन्न हुई हैं, यथा;—
" त्रिमासा ऋषि कुल्याद्या महेन्द्रप्रभवा ! स्मृताः ।" (वि०पु० २ अं० ३ अ ८)
पुरुषोत्तमक्षेत्रमें ऋषिकुल्या नामक एक नदी है । यह नदी गोन्दवन देशकी पर्वत मालासे उत्पन्न हुई है । इसस्थानमें महेन्द्रमाली नामक जो पर्वतश्रेणी विख्यात है, वही पौराणिक महेन्द्र पर्बत है । यह पर्वतमाला उडिष्याके उत्तर सरकारके गंजामसे गोन्दवन तक फली हुई है ।

हे ब्राह्मण कुमार ! मैंने सारी पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणामें देदी, तदुपरान्त तप करनेको महेन्द्रपर्वत पर आयाहूं । हे वत्स ! तुम यहां वेद पढो कि, जो ब्राह्मणको पढना उचित है या और जिस उत्तम शास्त्रको पढना चाहो उसे पढो ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

इति तद्वच आश्रुत्य संप्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्किः पुरो नमस्कृत्य वेदाधीती ततोऽभवत् ॥ ५ ॥

परशुरामजीके यह वचन सुनकर कल्किजी आनन्दसे पुलिकत हुए और तिनको नमस्कार करके प्रथम वेद पढने लगे ॥ ५ ॥

साङ्गंचतुः षष्टिकलं धनुर्वेदादिकञ्च यत् ।
समधीत्य जामदग्न्यात्कल्किः प्राह कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥

वे परशुरामजीसे चौंसठकला (१),

---

(१) पूर्वकालमें शिल्पविद्याको 'कला' कहतेथे । ६४ कला हैं । १ गीत । २ वाद्य (बाजा) ।३ नाचना । ४ नाट्य । ५ लेख्य । ६ विशेषकच्छेद्य;–चन्दन और कुंकुम आदिसे शरीरके चीतनेका रोजगार । ७ तण्डुल–कुसुम–बलिविकार;–पूजा और यज्ञादिके समय नैवेद्यादिकी रचना; फूल आदिके संस्थान करनेका व्यवसाय । ८ पुष्पास्तरण;–फूलोंकीसेज और फूलोंके गहने आदिका बनाना । ९ दशनवसनाङ्गराग;–दांत, वस्त्र और अंग रँगनेकी विद्या या व्यवसाय । १० मणिभूमिकर्म;–पत्थरसे मूर्ति आदिका बनाना, भास्कर विद्या । ११ शयनरचना;–खाट आदि शयनकी सामग्रीके बनानेका व्यवसाय । १२ उदकवाद्य;–जलमें बाजा बजानेकी कौशल । कदाचित् कोई ऐसा बाजा होगा, जैसे आजकल जलतरंग बजताहै । १३ उदकघात;–कहते हैं कि, दुर्योधन जलस्तम्भमें छिपा हुआथा;–यह वही जलस्तम्भ बनानेकी कौशल है । १४ चित्रयोग;–बाजीगरी १५ माला ग्रन्थन विकल्प;–माला गुंथनेकी विचित्रता और कौशल । १६ शेखरापीडयोजना;–शेखर (शिरस्त्राण, टोपी) और तिसके भूषण बनानेकी रीति । १७ नेपथ्ययोग;–अभिनयका उद्योग करना, आभिनयके भूषणादि इस शिल्पके अंग हैं । १८ कर्णपत्र भंग;–पूर्वकालमें कामिनीगण तिलक रचना करतीथीं, उन्हींको यह विद्या सीखनी पडतीथी । १९ गन्धयुक्ति;–सुगन्धित वस्तुओंके बनानेकी रीति । २० भूषणयुक्ति;–गहने बनानेकी पद्धति । २१ इन्द्रजाल;–जादूका तमाशा । २२ कौचुमारयोग;–जाल करनेका उपाय सीखना जालसाजी । २३ हस्तलाघव;–हाथकी सफाईसे किसी कामको दिखाकर कुछ पैदाकरनेका मार्ग, कदाचित् यहभी एक प्रकारकी बाजीगरीही है । २४ चित्रभक्ष्य क्रिया;–चमत्कार और अनेक प्रकारके खाद्यद्रव्य बनानेकीरीति । २५ पानकारस योग;–आम आदि फलोंका आचार और सुराआदि रसोंके बनाने की रीति । २६ सूचीवयनकर्म;–दरजी और जुलाहेकापेशा । २७ सूत्रक्रीडा;–चालाकी करके डोरीसे पतलीको नचाकर जीविका

निर्वाह करना। २८ प्रहेलिका;—कहानी । २९ प्रतिमाला;—एक वस्तुके समान दूसरी वस्तुको बनानेकी चतुरता ३० दुर्वचनयोग;—जिन वाक्योंके अर्थको सर्व साधारण नहीं समझसकते, उन वाक्योंके अर्थ करने की विद्या । ३१ पुस्तक वाचन;—अति शीघ्र विलुप्त वर्णोंको मिलाकर पुस्तकका पढ़ना, और अनेक प्रकारके अक्षरोंका पढ़सकना । ३२ नाटिकाख्यायिकाप्रदर्शन;—ज्ञात होता है कि रासधारियोंकी समान कोई पेशा होगा । ३३ काव्य समस्यापूर्ण;—काव्यके अथवा श्लोकके एक अंशको कहकर दूसरे सब अंशोंके पूरण करनेको कहना, तत्काल तिसके पूरण करनेकी सामर्थ्य वा विद्या । जैसे आज कल अम्बिकादत्तजी व्यास साहित्याचार्य और भारत मार्तण्ड आशुकवि श्रीगट्टूलालजी हैं । ३४ पट्टिकावरत्राबाणविकल्प;—पशुओंके साज बनाना और युद्धके अस्त्र बनानेकी विद्या । ३५ तर्कु कर्म;—भ्रमियंत्र (चरखा कातनेकांतकुआ) और तिसकी सूक्ष्म शलाकाका नाम तर्कु (तकुआ) है; तिससे बहुतसे सूत बनते हैं । ३६ तक्षण क्रिया;—सूतकारका काम । ३७ वास्तु विद्या;—थवई, राजगीरी, घर तैयार करनेका काम, बृहत्संहितामें इसका भलीभाति वर्णन है । ३८ रूपरत्न परीक्षा;—हीरा आदि जवाहरातोंका और चांदी सोनेकी परीक्षाका काम । ३९ धातुबाद;—सुवर्णादि धातुओंसे स्वाद अलग करने और बनानेकी रीति ४० मणिराग रंजन;—मणिके रंगकी परीक्षा और निर्मल करना । ४१ आकरविज्ञान;— आकर (खान) विषयक ज्ञानका होना । ४२ वृक्षायुर्वेद;—इसको उद्भिद विद्याकी पराकाष्ठा कहा जाता है; किस प्रकारसे वृक्षोंकी उन्नति होगी, वृक्षायुर्वेदका यही उद्देश है । बृहत्संहिता देखो । ४३ मेष कुक्कुट लावक युद्ध विधि;—मेंढे, मुरगे और बटेर आदि जन्तुओंको परस्पर लड़ाकर जीविकाका उपाय करना । ४४ शुकसारिका पालन;—पक्षियोंको बोली सिखानेकी कौशल । ४५ उत्सादन कर्म;—चालाकीसे शत्रुके वासस्थानका नाश करना । ४६ केशमार्जन कौशल;—केशोंकी कारीगरी, यह कला आज कल नाई लोगोंपर है । ४७ अक्षर मुष्टि संख्या कथन;—सांकेतिक लिपि पढ़नेकी विद्या । ४८ म्लेच्छ तर्क विकल्प;—म्लेच्छ भाषा और म्लेच्छ शास्त्रके ज्ञानका होना । ४९ देश भाषा विज्ञान;—नाना देशीय भाषाओंका जानना । ५० पुष्पशाकटिका निर्मित ज्ञान;—इस समय इस विद्याका अर्थ याविषय नहीं जाना सकता । ५१ यंत्र मातृका;—कल केवजके बनानेकी विद्या । ५२ धारणमातृका;—कवच, पूजाकी सामग्री, कवचकी समान यंत्र और तंत्रमें कहे हुए यंत्रोंका बनाना । ५३ सम्पाद्य कर्म;—नकली मणिरत्नका बनाना और तिनके नकलीपनका निर्णय । ५४ मानसीकाव्यक्रिया;—मनकाभाव आकार इशारेसे प्रकाश करनेकी विद्या । ५५, कोष छन्दो विज्ञान;—शब्द शास्त्र विद्या । ५६ क्रिया विकल्प;—अनेक उपायोंसे काम करना सीखना । ५७ । छलितक योग;—दूसरेसे छल करनेकी चालाकी । यहभी एकप्रकारकी बाजीगरी है । ५८ वस्त्र गोपनक;—इसका अर्थ नहीं जाना जाता । ५९ द्यूतप्रभे;— अनेक प्रकारका जुआ खेलना । ६० आकर्षण क्रीडा;—इसके विषयको जाननेका उपाय नहीं है । ६१ बालक्रीड़नक;—बच्चोंके लिये खिलौना बनानेकी रीति। ६२ वैयासकी विद्या । ६३ वैजयिकी विद्या । ६४ वैनायकीविद्या । इन तीन शिल्पोंका वृत्तान्त नहीं जाना जा सकता ।

पंडित कालीवर वेदान्त वागीशने जो ६४ कलाका वर्णन लिखाहै और शुक्रनीति पुस्तकमें जो वृत्तान्त लिखाहै, तिसके अनुसार यह विवरण लिखा गयाहै । शुक्रनीतिके ४ चतुर्थ अध्यायके तीसरे प्रकरणमें, मधुसूदनसरस्वती कृत महिम्नस्तोत्रकी हरिहरटीकामें और वात्स्यायनके कामसूत्रकी टीकामें ६४ कलाका वृत्तान्त लिखाहै ॥

साङ्ग (१) वेद और धनुर्वेद (२) पढ़कर उनको हाथ जोड़कर बोले ॥ ६ ॥

---

(१) ऋक, यजुः साम और अथर्व यह चार वेदहैं, इन चारोंके ६ अंगहैं । यथा;– शिक्षा व्याकरणं कल्पो निरुक्तं ज्योतिषं तथा । छन्दः षडङ्गानीमानि वेदानां कीर्तितानि हि ॥

(शुक्रनीति ४ अध्याय, तीसरा प्रकरण' २८ श्लोक)

शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणः । छन्दो विचितिरित्येतैः षडङ्गो वेद उच्यते ।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द यह ६ विषय वेदके अंगहैं ॥ जिस्से अकारादि वर्णमालाका उच्चारण स्थान और प्रयत्नका बोध होवै तिसको शिक्षा कहतेहैं । कल्प, यागक्रियाका उपदेश करनेवाला शास्त्रहै । जिस्से साधु शब्दकी व्युत्पत्ति होतीहै. सो व्याकरणहै । निरुक्त पांच प्रकारकेहैं यथा,–

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौचापरौ वर्णविकारनाशौ ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥

जिस शास्त्रमें ग्रहनक्षत्रोंकी गणना और संचार फलादिका विचार होताहै तिसका नाम ज्योतिषहै श्रुतिविहित छन्दः छन्दोविचिति वा छन्द नामसे प्रसिद्धहै । नियमबद्ध, मात्रा वा ह्रस्व लघु स्वर विशिष्ट रचना, छन्द या पद्य नामसे कहीहै ।

(२) धनुर्वेद । चार वेदोंके समान चार उपवेदहैं यथा;–आयुर्वेद (चिकित्सा शास्त्र) धनुर्वेद (युद्धशास्त्र) । गान्धर्ववेद (संगीतशास्त्र । अर्थशास्त्र (व्यवहारशास्त्र) । भगवान् विश्वामित्रजी धनुर्वेद नामक उपवेदके बनानेवालेहैं । इस उपवेदके चार भागहैं । तिसमें प्रथमपादका नाम दीक्षापाद, दूसरेका नाम संग्रहपाद, तीसरेका नाम सिद्धपाद और चौथेका नाम प्रयोगपादहै । दीक्षापादमें आयुधके लक्षण और अधिकार निरूपण । यह आयुधभी चारभागोंमें विभक्तहै । यथा मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और यंत्रमुक्त । चक्रादिका नाम मुक्तहै, खड्गादि अमुक्त, शल्यादि मुक्तामुक्त और बाणादिका नाम यंत्र-मुक्तहै । जो मुक्तश्रेणीमेंहै, तिनका नाम अस्त्रहै; जो अमुक्तहैं तिनका नाम शस्त्रहै । दूसरे पादमें सर्व प्रकारके शस्त्र तिस विद्यामें पारदर्शी गुरुके लक्षण और शस्त्रग्रहण करनेकी रीतिको दिखायाहै । तीसरे पादमें शस्त्र ग्रहण करनेके पीछे तिन सबका वारंवार अभ्यासादि कई कार्य नियतहैं । चौथे पादमें देवप्रसाद लब्ध सिद्धास्त्रका प्रयोग वृत्तान्तहै ।

" आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रञ्चेति चत्वार उपवेदाः । धनुर्वेदः पादचतुष्टयात्मको विश्वामित्रप्रणीतः । तत्र प्रथमो दीक्षापादः, द्वितीयः संग्रहपादः, तृतीयः सिद्धिपादः, चतुर्थः प्रयोगपादः । प्रथमे पादे धनुर्लक्षणमधिकारिनिरूपणञ्च कृतम् । अत्रधनुःशब्दश्चापे रूढोऽपि धनुर्विद्यायुधे प्रवर्तते । तच्चतुर्विधं मुक्तममुक्तं, मुक्तामुक्तं, यंत्रमुक्तञ्च । मुक्तं चक्रादि अमुक्तं खड्गादि, मुक्तामुक्तं शल्यावान्तर भेदादि, यंत्रमुक्तं शरादि । तत्र मुक्तमस्त्र मुच्यते, अमुक्तं शस्त्रमित्युच्यते । तदपि ब्राह्म-वैष्णव-पाशुपत-प्राजापत्याग्नेयादिभेदादनेकविधम् । एवं साधिदैवत्येषु समंत्रकेषु चतुर्विधायुधेष्ट येषामधिकारं क्षत्रिय कुमाराणां तदनुयायिनाञ्च ते सर्वे चतुर्विधाः पदातिरथगजतुरगारूढा । दीक्षाभिषेकशकुनमंगलकरणादि कञ्च सर्वमपि प्रथमे पादे निरूपितम् । सर्वेषां शस्त्रविशेषाणामाचार्यस्य च लक्षणपूर्वकं संग्रहणप्रकारो दर्शितः द्वितीयपादे । गुरुसम्प्रदायसिद्धानां शस्त्रविशेषाणां पुनःपुनरभ्यासो मंत्रदेवता सिद्धि करणमपि निरूपितं तृतीयपादे । एवं देवतार्चनाभ्यासादिभिः सिद्धानामस्त्रसिद्धानामस्त्रविशेषाणां प्रयोगश्चतुर्थपादे निरूपितः ।

(मधुसूदनपंडित विरचित प्रस्थानभेद ।)

दक्षिणां प्रार्थय विभो ! या देया तव सान्निधौ ।
यया मे सर्व्वसिद्धिः स्याद्या स्यात्त्वत्तोषकारिणी ॥ ७ ॥

हे गुरुदेव ! आपको जो दक्षिणा देनी होगी और जो दक्षिणा आपको प्रसन्न करसके, सो बताइये । तब हमारा समस्त प्रयोजन सिद्ध होगा ॥ ७ ॥

राम उवाच ।

ब्रह्मणा प्रार्थितो भूमन् ? कलिनिग्रहकारणात् ।
विष्णुःसर्व्वाश्रयः पूर्णः स जातः शम्भले भवान् ॥ ८ ॥

परशुरामजी बोले हे भूमन् ! भगवान् ब्रह्माजीने जो कलिका निग्रह करनेके लिये सनातन पूर्णभगवानके समीप प्रार्थना कीथी, सो आप वही विष्णुजी शम्भलग्राममें जन्मेहैं ॥ ८ ॥

मत्तो विद्यां शिवादस्त्रं लब्ध्वा वेदमयं शुकम् ।
सिंहले च प्रियां पद्मां धर्म्मान्संस्थापयिष्यसि ॥ ९ ॥

आप हमसे विद्या, शिवजीसे अस्त्र और वेदमय शुक और सिंहल देशसे अपनी प्यारी भार्याको पायकर (संसारमें धर्मका स्थापन करोंगे ॥ ९ ॥

ततो दिग्विजये भूपान् धर्म्महीनान् कलिप्रियान् ।
निगृह्य बौद्धान् देवापिं मरुञ्च स्थापयिष्यसि ॥ १० ॥
वयमेतैस्तु संतुष्टाः साधुकृत्यैः सदक्षिणाः ।
यज्ञं दानं तपः कर्म्म करिष्यामो यथोचितम् ॥ ११ ॥

तदुपरान्त आप दिग्विजय करके धर्मरहित कलिके प्यारे राजा व बौद्धोंका नाश करके मरु और देवापिको (धर्मराज्यमें) स्थापित करोगे। तुम्हारे इस साधुकार्यके अनुष्ठानसेही हम सतुष्ट होंगे, सोई हमारी दक्षिणा होगी । क्योंकि इस प्रकार हो जानेसे हम विघ्न रहितहो यज्ञ, दान और तपादि कर्मोंका अनुष्ठान करसकेंगे ॥ १० ॥ ११ ॥

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिं गुरुम् ।
बिल्वोदकेश्वरं देवं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ॥ १२ ॥

कल्किजीने यह सुनकर अपने गुरु परशुरामजीको प्रणाम किया और बिल्वोदकेश्वर नामक महादेवजीके समीप जायकर ॥ १२ ॥

पूजयित्वा यथान्यायं शिवं शान्तं महेश्वरम् ।
प्रणिपत्याशुतोषं तं ध्यात्वा प्राह हृदिस्थितम् ॥ १३ ॥

उनकी स्तुति करने लगे । उन्होंने विधिपूर्वक शान्त और मंगलकारी महादेवजीकी पूजा करके उनको प्रणाम किया और उन हृदय विहारी शीघ्र प्रसन्न होनेवाले (शिव) का ध्यान करके बोले ॥ १३ ॥

कल्किरुवाच ।

गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् ।
त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं वन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥ १४ ॥

हे देव ! गौरीनाथ ! तुम विश्व संसारके स्वामी हो, तुम सर्व प्राणियोंमें विराजमानहो; वासुकी नाग तुम्हारे कंठका भूषणहै; हे पंचवदन ! त्रिलोचन ! तुमहीं वह प्रथम आदि देवताहो; तुमहीं सांद्रानन्द-समवायके विधाताहो तुमको बन्दन करताहूं ॥ १४ ॥

योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गासङ्गाक्लिन्नमूर्द्धानमीशम् ।
जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभावं महाकालं चन्द्रभालं नमामि ॥ १५ ॥

हे महादेव ! तुम योगके अधिपतिहो, तुम काम्यकर्मके नाश करने वाले-हो; हे करालदर्शन ! परमेश ! तुम्हारा शिर गंगाजीकी तरंग (रूपी) मालासे विधौत होताहै; जटाजूटमें ऐसा भाव दिखाई देता है कि, कुछ कहा नहीं जाता । तुम्हारे माथेपर चंद्रमाकी कला विराजमान है; हे महाकाल ! मैं तुमको नमस्कार करताहूं ॥ १५ ॥

श्मशानस्थं भूतवेतालसंगं नानाशस्त्रैः खड्गशूलादिभिश्च ।
व्यग्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे यस्य क्रोधोद्भूतलोकोऽस्त-मेति ॥ १६ ॥

तुम भूत और बेतालोंके साथ श्मशानमें वास करते हो, अनेक प्रकारके शस्त्र और खड्ग (१) शूल(२) आदि शस्त्र तुम्हारी शोभाको बढाते हैं; प्रलयके समय तुम्हारे कोप(रूप)अग्निसे संसार भस्म होकर नष्ट हो जाताहै ॥ १६ ॥

यो भूतादिः पञ्चभूतैः सिसृक्षुस्तन्मात्रात्मा काल कर्म्मस्वभावैः।
प्रहृत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते तं नमामि ॥१७॥

तुम भूतादि(३)और तन्मात्र स्वरूप (४), पंचभूत करके कालकर्म और

---

१ एक प्रकारका अस्त्र। ब्रह्माकी यज्ञाग्निसे खड्गका जन्म हुआ। ब्रह्माजीने यह खड्ग महादेवजीको दिया, महादेवजीने विष्णुजीको, विष्णुजीने मरीचिको, मरीचिने महर्षियोंको और महर्षियोंने यह खड्ग इन्द्रको दिया। इस प्रकार क्रम २ से हथबदल होकर यह कृपाचार्यके पास आया। कृपाचार्यने पाण्डवोंको दिया। क्रमानुसार तहांसे खड्गका बहुत प्रचार हुआ, ऐसा प्रवाद संस्कृत शास्त्रमें देखा जाता है।

शब्दकल्पद्रुम नामक कोषमें खड्ग सम्बन्धीय एकवचन उद्धृत हुआ है वृहन्नन्दिकेश्वर पुराणकी दुर्गोत्सव पद्धतिके प्रकरणमें यह वाराही तंत्रका वचन खड्ग वंदनाके प्रसंगमें उद्धृत हुआहै। इसमें खड्गके आठ आदि नाम हैं।

यथाः—असिर्विसनसः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपालो नमोऽस्तु ते।
इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा ॥

असि, विसनस, खड्ग, तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्मपाल, यह आठ नाम तलवारकेहैं। यह नाम ब्रह्माजीने रक्खेहैं। इन आठ नामोंके सिवाय असिके औरभी बहुतसे पर्याय दिखाई देतेहैं। परन्तु उपाख्यानके साथ इन्ही नामोंका सम्बन्ध है, इस कारण यह यहां लिखे गए।

(२) प्राचीन युद्धके लायक एक अस्त्र। शूल अबतक दिखाई देता है और प्राचीन २ अस्त्रोंकी समान अबतकभी इसका नाम लोप नहीं हुआहै।

(३) पृथ्वी, जल, तेज, पवन और आकाश, यही पंचभूतहैं। इन पंचभूतका आदि कारण अहंकार स्वरूप है। सात्त्विक, राजस और तामस यह त्रिविध अहंकार है। तिनमें तामस अहंकारसे इन पंचभूतकी सृष्टि हुईहै। यह सांख्यका मत है। इसके अनुसारही यहां पर पंचभूतका आदिकारण अर्थात् सांख्यमतके अनुसार तामस अहंकार है। बस इस कल्किपुराणके मतसे वह तामस अहंकारावच्छिन्न चैतन्यही महादेवहैं। वेदान्तके मतसे "तस्माद्वा एतस्मात् आकाशः संभूतः"—इत्यादि श्रुतिके अनुसार पंचभूतकी आदि अर्थात् सृष्टि का कारण ब्रह्मस्वरूपहै।

(४) शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध, को पंच तन्मात्रा कहते हैं। तेषां पंचभूतानां मात्राः (सूक्ष्मावयवाः) इस अर्थसे तन्मात्र; अर्थात् उस पंचभूतका सूक्ष्म अवयव। आकाशका सूक्ष्म अवयव शब्द तेजका सूक्ष्म अवयव रूप है, जलका सूक्ष्म अवयव रस और पृथ्वीका सूक्ष्म अवयव गन्धहै। महादेवजी उसही तन्मात्र स्वरूपमें वर्णित हुए हैं। इसका भाव यह है तुमहीं शब्दस्वरूप, स्पर्शरूप; रूपस्वरूप रसस्वरूप और गन्धस्वरूप हो, अतएव तुम तन्मात्रात्मा हो।

स्वभावके अनुसार (प्रपंचकी) सृष्टि करते हो, फिर इस सबको हरण करके जीवत्वको प्राप्त हो ब्रह्मानंदको भोग करतेहो, तुमको नमस्कार करताहूं ॥ १७ ॥

स्थितौ विष्णुः सर्व्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान्
साधून् धर्म्मसेतून् बिभर्ति । ब्रह्माद्यांशे योऽभिमानी ।
गुणात्मा शब्दाद्यङ्गैस्तं परेशं नमामि ॥ १८ ॥

तुम जगत्‌को पालनेके लिये सर्व जिष्णु विष्णुरूप धारण करके, धर्मके सेतु स्वरूप साधुओंकी रक्षा करतेहो, तुम सगुण होकर आकाशादि (१) अवयवसे ब्रह्मादिके अंशाभिमानी (२) होतेहो, तुम परम देवताहो । तुमको नमस्कार करताहूं ॥ १८ ॥

यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके ज्वलत्यग्निः सविता
याति तप्यन् । शीतांशुः खे तारकैः सग्रहैश्च प्रवर्त्तते ॥
तं परेशं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

तुम्हारी आज्ञासे संसारमें वायुका प्रवाह प्रवाहित होरहा है, अग्निप्रज्वलितहोरही है, सूर्यनारायण तापदेतेहुए (अपनीकक्षाके मार्गमें) भ्रमण करतेहैं, तुम्हारीही आज्ञासे आकाशमें ग्रह नक्षत्र और चंद्रमाका उदयहोताहै; तुमपरमदेवताहो, तुम्हाराआश्रय ग्रहण करताहूं ॥ १९ ॥

यस्याश्वासात् सर्व्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बु कालः प्रमाता ।

---

(१) आकाशका गुण शब्द है । शब्द ब्रह्ममूर्ति है । विष्णुपुराणके—
काव्यालापाश्च ये केचिद्गीतकान्यखिलानि च । शब्दमूर्तिधरस्यैतद्वपुर्विष्णोर्महात्मनः १।२२।८३

यहांपर विष्णु शब्द गुण आकाश मूर्ति हुयेथे, यही कहा जाताहै । जाल पडता है कि, हरि हर और ब्रह्मा यह तीन देवता अंशसे भिन्नहैं, परन्तु एकही भगवानकी त्रिधा·विभिन्न त्रिमूर्त्ति मात्रहैं । इसी कारणसे महादेवजी शब्द गुणसे कीर्त्तित हुएहैं । जब तीनों मूर्त्तिही एक हैं तब एक अंशके गुण दूसरे अंशमें आरोपित होनेसे दूषण नहीं होसकता ।

(२) रजोगुणाश्रय विष्ण, सत्त्वगुणाश्रय ब्रह्मा और तमोगुणाश्रय महादेव यह तीनों मूर्तिही सगुण हैं । यहांपर कहाजाता है । तुमनेही ब्रह्मरूपसे शब्दमूर्ति धारण की थी, इस कारण तुम्हारा भेद नहीं है; तुमहीं परात्पर हो ।

मेरुर्मध्ये भुवनानाञ्च भर्त्ता तमीशानं विश्वरूपं नमामि ॥ २० ॥

तुम्हारीआज्ञासे पृथ्वीदेवी सर्वधात्रीहोकर सबको वहन करतीहैं; जिससमय आवश्यकता होती है, उसी समय देव जल वर्षाताहै; समस्त भुवनके मध्यमें स्थितहोकर सुमेरुपर्वत पृथ्वीको धारणकरता है, तुम विश्वरूपहो, हे इशान ! तुमको नमस्कारहै ॥ २० ॥

इति कल्किस्तवं श्रुत्वा शिवः सर्व्वात्मदर्शनः ।
साक्षात् प्राह हसन्नीशः पार्वतीसहितोग्रतः ॥ २१ ॥
कल्केः संस्पृश्य हस्तेन समस्तावयवं मुदा ।
तमाह वरय प्रेष्ठ ! वरं यत्तेऽभिकांक्षितम् ॥ २२ ॥

इसप्रकारसे कल्किजीका स्तोत्र सुनकर, सर्वज्ञमहादेवजी, पार्वतीके साथ उनके आगे प्रगटहुए । महादेवजी हर्षितहो कल्किजीके शरीर पर हाथफेर मुस्कुराते हुए कहने लगे। हे श्रेष्ठ ! जो अभिलाषाहो सो वरमांगो ॥ २१ ॥ २२ ॥

त्वया कृतमिदं स्तोत्रं ये पठन्ति जना भुवि ।
तेषां सर्वार्थसिद्धिः स्यादिह लोके परत्र च ॥ २३ ॥

तुमने जो स्तोत्र रचा, पृथ्वीपर जो मनुष्य इसको पढैंगे, उनके इस लोक और परलोकमें सब अर्थ सिद्धहोंगें ॥ २३ ॥

विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां धर्म्मार्थी धर्म्ममाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात् कामी पठनाच्छ्रवणादपि ॥ २४ ॥

इस स्तोत्रके पढने या श्रवण करनेसे विद्यार्थीको विद्याकी प्राप्ति और कामनावालेकी कामना पूर्ण होतीहै, धर्मको चाहनेवाला धर्म पाता है ॥ २४ ॥

त्वं गारुडमिदं चाश्वं कामगं बहुरूपिणम् ।
शुकमेनञ्च सर्व्वज्ञं मया दत्तं गृहाण भोः ॥ २५ ॥

हे कल्कि ! यह शीघ्र गमनकारी, अनेक रूप धारण करनेवाला गारुड अश्व और यह सर्वज्ञ तोता (शुक) तुमको देताहूं, ग्रहण करो ॥ २५ ॥

सर्व्वशास्त्रास्त्रविद्वांसं सर्ववेदार्थपारगम् ।
जयिनं सर्व्वभूतानां त्वां वदिष्यन्ति मानवाः ॥ २६ ॥

मनुष्य तुमको सब प्रकारके शास्त्र और शस्त्रमें निपुण चारों वेदोंमें पारदर्शी और सर्व प्राणियोंका जीतनेवाला बतावेंगे ॥ २६ ॥

रत्नत्सरुं करालञ्च करवालं महाप्रभम् ।
गृहाण गुरुभारायाः पृथिव्या भारसाधनम् ॥ २७ ॥

यह रत्नत्सरु (१) महा प्रभावाली करालकरवाल (खड्ग) बड़े भारवाली पृथ्वीके भारको हरेगी अहो ! तुम इसकोभी ग्रहण करो ॥ २७ ॥

इति तद्वच आश्रुत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
शम्भलग्राममगमत् तुरगेण त्वरान्वितः ॥ २८ ॥

महादेवजीके यह वचन सुन कल्किजीने उनको नमस्कार किया और घोडे पर सवार हो शीघ्रतासे शम्भल ग्राममें चले गए ॥ २८ ॥

पितरं मातरं भ्रातॄन् नमस्कृत्य यथाविधि ।
सर्व्वं तद्वर्णयामास जामदग्न्यस्य भाषितम् ॥ २९ ॥

वहां पर सदाकी विधिके अनुसार माता, पिता और भ्राताओंको नमस्कार करके जमदग्निके पुत्र परशुरामके उन सब वाक्योंका वर्णन किया ॥ २९ ॥

शिवस्य वरदानञ्च कथयित्वा शुभाः कथाः ।
कल्किः परमतेजस्वी ज्ञातिभ्योऽप्यवदन्मुदा ॥ ३० ॥

और महादेवजीके वरदानका शुभ वृत्तान्तभी कहा । फिर अपनी जातिके लोगोंसे परम तेजस्वी कल्किजी, आनन्दित हृदयसे कहने लगे ॥ ३० ॥

---

(१) खड्गकी मुष्टीका दूसरा नाम त्सरुहै; जहांपर हाथसे तलवार पकडी जातीहै, वही त्सरु है। जिस खड्गकी रत्नकी बनी होतीहै, तिसको "रत्नत्सरु" कहते हैं।

गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्यास्तच्छ्रुत्वा नन्दिताः स्थिताः।
कथोपकथनं जातं शम्भलग्रामवासिनाम् ॥ ३१ ॥

गार्ग्य, भर्ग्य और विशालादि कल्किजीके जातिवाले इस वृत्तान्तको सुनकर अत्यन्त आनंद प्राप्त करते हुए। शम्भलग्रामके रहनेवाले इस वृत्तान्तको कहने सुनने लगे ॥ ३१ ॥

विशाखयूपभूपालः श्रुत्वा तेषाञ्च भाषितम्।
प्रादुर्भावं हरेर्मेने कलिनिग्रहकारकम् ॥ ३२ ॥

उन (शम्भल वासियों) के वचन सुनकर राजा विशाखयूपने समझा कि, श्रीहरिजीने कलिका निग्रह करनेके लिये (पृथ्वीपर) अवतार लिया है ॥ ३२ ॥

माहिष्मत्यां निजपुरे यागदानतपोव्रतान्।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रानपि हरेः प्रियान् ॥ ३३ ॥

अपनी पुरी * माहिष्मती नगरीमें याग, दान, तप और व्रतादि कराने लगा; ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रगण हरिके प्यारे हुए ॥ ३३ ॥

स्वधर्म्मनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽभून्नृपः स्वयम्।
प्रजापालः शुद्धमनाः प्रादुर्भावाच्छ्रियः पतेः ॥ ३४ ॥

(तिन सबको) अपने २ धर्ममें निरत देखकर राजा विशाखयूपने आपभी धर्मके मार्गका अवलम्बन किया और लक्ष्मीनाथके उत्पन्न होने से शुद्ध हृदयवालाहो प्रजाको पालन करने लगा ॥ ३४ ॥

अधर्म्मवंश्यांस्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्म्मक्रियापरान्।
लोभानृतादयो जग्मुस्तद्देशाद्दुःखिता भयम् ॥ ३५ ॥

लोभ और अनृत आदि अधर्म के वंशवाले माहिष्मती नगरीके रहवासियोंको धर्मपरायण देख, हृदयमें अत्यन्त दुःखीहो तहांसे चलेगए ॥ ३५ ॥

---

* माहिष्मतीनगरी नर्मदाके तीरपर बसी है। आजकल इसका नाम चुलीमहेश्वर है। महाराज कार्तवीर्य्यार्जुनकी यही राजधानीथी। (हरिवंश)

जैत्रं तुरगमारुह्य खड्गञ्च विमलप्रभम् ।
दंशितः सशरं चापं गृहीत्वागात् पुराद्बहिः ॥ ३६ ॥

खड्ग और धनुषबाणको ले जयके अनुकूल शिवजीके दिएहुए घोड़े पर सवारहो कल्किजी, माहिष्मती पुरीके बाहिरी भागमें गमन करतेहुए ॥ ३६ ॥

विशाखयूपभूपालः प्रयात् साधुजनप्रियः ।
कल्किं द्रष्टुं हरेरंशमाविर्भूतञ्च शम्भले ॥ ३७ ॥

साधुजन वत्सल, राजाविशाखयूप; विष्णुजीके अंशसे शम्भलग्राममें कल्किजीका अवतार देखनेके लिये प्रस्थान करता हुआ ॥ ३७ ॥

कविं प्राज्ञं सुमन्तुञ्च पुरस्कृत्य महाप्रभम् ।
गार्ग्य-भर्ग्य-विशालैश्च ज्ञातिभिः परिवारितम् ॥ ३८ ॥

महाप्रभावाले कवि, प्राज्ञ और सुमंतु कल्किजीके पीछे स्थितहैं; गार्ग्य, भर्ग्य और विशालादि जातिवाले तिनको घेरे हुए हैं ॥ ३८ ॥

विशाखयूपो ददृशे चन्द्रं तारागणैरिव ।
पुराद्बहिः सुरैर्यद्वदिन्द्रमुच्चैःश्रवःस्थितम् ॥ ३९ ॥

विशाखयूपराजाने उनको ऐसे देखा मानो तारोंसे युक्त चन्द्रमा अथवा उच्चैःश्रवा अश्वपर सवार हुआ इन्द्र देवताओंसे युक्त है ॥ ३९ ॥

विशाखयूपोऽवनतः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्केरालोकनात् सद्यः पूर्णात्मा वैष्णवोऽभवत् ॥ ४० ॥

विशाखयूप नव गया, प्रीतिके उदय होनेसे उसके रोमाञ्च हो आये । कल्किजीने उसपर दृष्टि डाली, वह (उस दृष्टिसे पवित्रहो) तत्काल पूर्णात्मा वैष्णव होगया ॥ ४० ॥

सह राज्ञा वसन्कल्किः धर्म्मानाह पुरोदितान् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमाणां समासतः ॥ ४१ ॥

कल्किजी राजाके साथ रहने लगे । ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और आश्रम धर्मको संक्षेपसे जो कल्किजीने कहा सो आगे कहा जाता है ॥ ४१ ॥

ममांशान्कलिविभ्रष्टानिति मज्जन्मसंगतान् ।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां मां यजस्व समाहितः ॥ ४२ ॥

कल्किजीने कहा;—हमारे अंश कलिके पापसे भ्रष्ट हुए थे, हमारे जन्म लेने पर (हमारे सहित धर्ममार्गमें) मिले हैं। तुम राजसूय और अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करके उनकी और हमारी उपासना करो ॥ ४२ ॥

अहमेव परो लोको धर्म्मश्चाहं सनातनः ।
कालस्वभावसंस्काराः कर्म्मानुगतयो मम ॥ ४३ ॥

मैं ही परलोकहूं मैं ही सनातन धर्महूं; काल, स्वभाव और संस्कार हमारे ही कर्मके अनुगत हैं ॥ ४३ ॥

सोमसूर्य्यकुले जातौ देवापिमरुसंज्ञकौ ।
स्थापयित्वा कृतयुगं कृत्वा यास्यामि सद्गतिम् ॥ ४४ ॥

चंद्रवंशमें उत्पन्न हुआ देवापि, और सूर्यवंशीय मरु इन दोनों राजाओंको धर्म राज्यपर स्थापित करके और सतयुगको प्रवर्त्तित करके श्रेष्ठगति ग्रहण करूं गा ॥ ४४ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा कल्किं हरिं प्रभुम् ।
प्रणम्य प्राह सद्धर्म्मान् वैष्णवान् मनसेप्सितान् ॥ ४५ ॥

भगवान् कल्किजीकी यह उक्ति सुनकर राजा विशाखयूपने उनको प्रणाम किया और जैसी अभिलाषा हुई वैसे साधु वैष्णव धर्म विषयक (प्रश्नका) प्रसंग करने लगा ॥ ४५ ॥

इति नृपवचनं निशम्य कल्किः कलिकुलनाश-
नवासनावतारः । निजजनपरिषद्विनोदकारी
मधुरवचोभिराह साधुधर्म्मान् ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभावगते भविष्ये कल्किवरलाभनाम-
कस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कलिके कुलका नाश करनेकी अभिलाषासे कल्किजीने पृथ्वीपर अवतार लियाथा । वह विशाखयूपका वैष्णव धर्म सम्बन्धीय प्रश्न विष-

यक वचन सुनकर अपने पारिजन और परिषद लोगोंका चित्त प्रमुदित करनेको मधुर वचनसे साधु धर्मकी व्याख्या करने लगे ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे भाषानुवादेऽनुभावगते भविष्ये कल्कि-
वरलाभनामकस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

सूत उवाच ।

ततः कल्किः सभामध्ये राजमानो रविर्यथा ।
बभाषे तं नृपं धर्म्म-मयो धर्म्मान् द्विजप्रियान् * ॥ १ ॥

सूतजी बोले;—इसके उपरान्त धर्ममय कल्किजी, विशाखयूप की सभामें सूर्यके समान विराजमान होकर तिससे, ब्राह्मणजातिकी प्यारी धर्म कथा कहने लगे ॥ १ ॥

कल्किरुवाच ।

कालेन ब्रह्मणो नाशे प्रलये मयि सङ्गताः ।
अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्कार्यमिदं मम ॥ २ ॥

कल्किजी बोले;—काल करके प्रलय होगी, तब ब्रह्माण्डका नाश होजायगा, तिससमय समस्त पदार्थ मुझमेंही लीन होरहेंगे (१) सृष्टिके

---

* द्विजोत्तमान् इति पाठान्तरम् ।

(१) सृष्टिसे पहले और प्रलयके पीछे प्रकृति सूती होकर अन्धकारसे ढकी हुईथी । ऋग्वेद, ८ अष्टक, १० मंडल, ११ अध्याय, १२९ सूक्तके ३ ऋक्में इस अवस्थाका प्रकाशित चित्र दिखलाई देता है यथा;—

तम आसीत्तमसा गूळहमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छे नाम्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥

अर्थात् सृष्टिसे पहले प्रकृति अंधकारसे ढकी, जाननेके अयोग्य और सर्वतः जलमयथी । जो कार्य सूक्ष्मरूपसे मायामें अनुप्रविष्टथा, ज्ञानमयपरब्रह्मकी इच्छा शक्तिके प्रभावसे वह कार्य, कारणसे अलग प्रकट हुआ ।

महर्षि मनुजीने इस श्रुतिका अवलम्ब ग्रहण करके कहा है;—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ (मनु० १ अ० ५ श्लो०)

अर्थात् यह जगत् तमोगुणमें लीनथा; प्रत्यक्ष परिदृश्यमान नहींथा; अनुमानसेभी अगोचरथा । (इससे) समस्त संसार निद्रितकी नांई जानपडता सृष्टिके आरम्भमें संसारकी ऐसी अवस्था थी ।

पहले केवल (१) मैंहीं वर्त्तमानथा और कुछभी नहींथा । यह समस्त मेरीही सृष्टिहै ॥ २ ॥

प्रसुप्तलोकतन्त्रस्य द्वैतहीनस्य चात्मनः ।
महानिशान्ते रन्तुं मे समुद्भूतो विराट् प्रभुः ॥ ३ ॥

जब समस्त लोकतंत्र (संसार) सो रहाथा, जब केवल परब्रह्मके सिवाय इस जगत्में दूसरे पदार्थका अस्तित्व नहीं था उस महानिशाके बीतनेके समय सृष्टिरूप क्रीडाके लिये, हमारी सर्वशक्तिमान् विराट् मूर्त्तिकी अवाई हुइथी ॥ ३ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
तदङ्गजोऽभवद्ब्रह्मा वेदवक्त्रो महाप्रभुः ॥ ४ ॥

तिन विराट् पुरुषके सहस्र मस्तक, सहस्रनेत्र और सहस्र चरणथे; (२)

---

(१) सृष्टिसे पहले इस प्रत्यक्ष–परिदृश्यमान जगतमें ब्रह्मके सिवाय और किसी पदार्थका अस्तित्व नहींथा । सामविधान ब्राह्मणमें कहा है;–

ब्रह्म हवा इदमग्र आसीत् ॥–(प्रथमः प्रपाठकः) ॥

अर्थात्; सृष्टिसे पहले केवल एक ब्रह्मही विद्यमानथा ॥ ऋग्वेदके ऐतरेय उपनिषदमें लिखाहै;–

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत् किञ्चनमिषत् ॥–(प्रथमः खण्डः) ॥

अर्थात् जगत्की सृष्टिसे पहले केवल एक सर्व शक्तिमान् आत्माही विद्यमानथा । इस परि दृश्यमान जगतका अस्तित्व नहींथा ।

यह आत्माही परब्रह्महै । जब जगतका बीज कारण जलमें ढका हुआ और निहित था, तब केवल एक परब्रह्मही इस सीमारहित जगतमें विराजमान था ।

(२) जब प्रकृति तमोगुणसे ढकी हुईथी, पृथ्वीका अंकुरभी नहीं उगा, तब सृष्टिके कारण स्वरूप अचिन्त्य–शक्ति विराट् पुरुषकी अवाई हुई । (ऋग्वेद १० मंगल ८ अष्टक ३ अध्याय) दशम सूक्तके प्रथम ऋक्में विराट्मूर्तिका विषय वर्णित हुआहै । यथा;–

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

अर्थात् उस विराट् पुरुषके अनन्त मस्तक अनन्तलोचन और अनन्त चरण हैं । वह पृथ्वीको व्याप्त करके और इस परिमित पृथ्वीको अतिक्रम करके सर्व भावसे अनेकत्व स्वरूपसे विराजित होरहेहैं ।

विराट् पुरुषकी सत्त्वाख्य शक्तिही तिसका यथार्थ स्वरूपहै । वही एक सृष्टि, अनन्त सृष्टिमें प्रवेशितहो अनन्त मस्तक, अनन्त लोचन और अनन्त पद, इस प्रकार अनन्त भागमें विभक्त हुई है । यह विराट् पुरुष, सृष्टिकारण अनन्तशक्ति परब्रह्मकी अनन्त शक्तिमय अनन्त मूर्त्तिकी वैदिकी कल्पनाहै । प्राज्ञ लोग ज्ञाननेत्रकी परिपाकावस्थामें पूर्ण परब्रह्मको इस विराट् मूर्त्तिरूपसेभी छोटा करना नहीं चाहता; इसी कारणसे वेद-पुरुष कहते हैं " परब्रह्म, इस विराट् मूर्त्तिकी अपेक्षाभी अनन्त है । " यह बात, " अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् "–इस पदसे भली भांति व्यक्त होती है ।

यहांपर विष्णुजीही उस परब्रह्म स्वरूपसे वर्णित हुए हैं । तिनका पूर्ण अंशही विराट् पुरुष है, इस विषयको व्यक्त करनाही इस स्थलका उद्देश है ।

तिनके विराट् अवयव (अंग) से वेद मुख भगवान् ब्रह्माजीकी उत्पत्तिहुई॥ ४॥

जीवोपाधेर्ममांशाच्च प्रकृत्या मायया स्वया।
ब्रह्मोपाधिः स सर्व्वज्ञो मम वाग्वेदशासितः॥ ५॥
ससर्ज्ज जीवजातानि कालमायांशयोगतः।
देवा मन्वादयो लोकाः सप्रजापतयः प्रभुः॥ ६॥

उन ब्रह्माकी उपाधिवाले सर्वज्ञ पुरुषने हमारे अंशसे प्रकृति वा अपनी माया करके काल मायाके अंशको मिलाकर जीव जातिको उत्पन्न कियाहै (१) इस प्रकारसे मनु आदि मनुष्य और प्रजापतियोंकी सृष्टि हुईथी (२)॥ ५॥ ६॥

गुणिन्या माययांशा मे नानोपाधौ ससर्ज्जिरे।
सोपाधय इमे लोका देवाः सस्थाणुजङ्गमाः॥ ७॥

हमारेही अंशसे सत्त्व, रज और तमो गुणमयी माया करके अनेक प्रकारकी उपाधिसे विभक्तहो इन सोपाधि देव, मानव स्थावर और जंगमकी सृष्टि हुईहै॥ ७॥

ममांशा मायया सृष्टा यतो मय्याविशन्त्विये।
एवंविधा ब्राह्मणा ये मच्छरीरा मदात्मिकाः॥ ८॥

---

(१) सत्, रज और तमोगुणकी साम्यावस्थाही प्रकृति है। जब काल इस त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको विक्षोभित करताहै, तब तिसके गुणमें विषमता उत्पन्न होती है। विषमता होनेसे सृष्टिका आरम्भ होता है। इसप्रकारसे प्रथम महत्तत्वकी सृष्टि हुई है। मायांशका अर्थ कर्म है। स्थावर, जंगम, भूतादिकी सृष्टि उसमायांश वा कर्मके सापेक्ष है। अर्थात् जो जैसे कर्मकी (योनि जनक वासना) करता है, तिसको वैसीही योनि मिलती है। जैसे, व्याघ्र व्याघ्रत्व–योनि जनक वासना–निबन्धन व्याघ्र योनिको पाता है–इत्यादि।

(२) स्वायम्भुव; स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष,वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, इन्द्रसावर्णि, यह चौदह मनु हैं। मनुस्मृतिमें प्रजापतियोंका नाम लिखा है। यथा;–

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वशिष्ठञ्च भृगुं नारदमेव च॥ (मनु० १ अ० ३५ श्लो०)

मरीचि, अत्रि, अंगिरा; पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता वशिष्ठ, भृगु, और नारद यह १० प्रजापति हैं। इन प्रजापतियोंसे सृष्टिकी बहुतायत हुई है।

हमारा जो अंश, मायाके बलसे सृष्टिके आरम्भसमयमें ही उत्पन्न हुआथा, सो फिर प्रलय समयमें हममेंही प्रविष्ट होगा । तैसेही ब्राह्मण मेरे शरीर स्वरूप व आत्मास्वरूप हैं ॥ ८ ॥

मामुद्धरन्ति भुवने यज्ञाध्ययनसत्क्रियाः ।
मां प्रसेवन्ति शंसन्ति तपोदानक्रियास्त्विह ॥ ९ ॥

जो यज्ञ, अध्ययन आदि श्रेष्ठकार्य करते और मेरा उद्धार करतेहैं । जो तप और दानादि कर्मसे हमारी सेवा करते और हमारा नाम ग्रहण करते और मुझको स्मरण करतेहैं ॥ ९ ॥

स्मरन्त्यामोदयन्त्येव नान्ये देवादयस्तथा ।
ब्राह्मणा वेदवक्तारो वेदा मे मूर्त्तयः परा[१]ः ॥ १० ॥

वेद हमारी पूर्ण मूर्तिहै, तिसी निमित्तसे वेद वादी ब्राह्मण लोग हमको जैसे स्मरण करतेहैं, और जिस प्रकार प्रमुदित करतेहैं, देवता लोग, अथवा और कोई वैसा नही करसकता ॥ १० ॥

तस्मादिमे ब्राम्हणजास्तैः पुष्टास्त्रिजगज्जनाः ।
जगन्ति मे शरीराणि तत्पोष ब्रह्मणो वरः ॥ ११ ॥

इसी कारणसे चार वेद ब्राह्मणद्वारा प्रकाशित हुए; उन्हीं (ब्राह्मण- प्रचारित) वेदोंसे यह त्रिजगत, परिपुष्ट होरहाहै । जगत् मेराही शरीरहै, बस ब्राह्मण लोगही मेरे शरीरको पुष्ट करनेके प्रधान साधनहैं ॥ ११ ॥

तेनाहं तान्नमस्यामि शुद्धसत्त्वगुणाश्रयः ।
ततो जगन्मयं पूर्व्वं[२] मां सेवन्तेऽखिलाश्रयाः ॥ १२ ॥

इसी कारणसे मैं शुद्ध सत्त्वगुण का अवलम्बन करके ब्राह्मणोंको नमस्कार करताहूं । मेरे नमस्कार करनेके उपरान्त अखिलाश्रय ब्राह्मण लोगभी पूर्ण जगन्मय समझकर हमारी सेवा करतेहैं ॥ १२ ॥

---

१ वेदात्ममूर्त्तयः परा इति वा पठनीयम् ।
२ ततो जगन्मयं पूर्णम् इति वा पाठः ।

विशाखयूप उवाच ।

विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि त्वद्भक्तिः का च तत्कृता ।
यतस्तवानुग्रहेण वाग्बाणा ब्राह्मणाः कृताः ॥ १३ ॥

विशाखयूपने कहा, हे देव ! ब्राह्मणके लक्षण क्याहैं ? आपके अनुग्रहसे ब्राह्मणोंका वाक्यही बाण स्वरूप हुआ है । (अतएव) वे आपकी कैसी भक्ति करते हैं, सो कहिये ॥ १३ ॥

कल्किरुवाच ।

वेदा मामीश्वरं प्राहुरव्यक्तं व्यक्तिमत्परम् ।
ते वेदा ब्राह्मणमुखे नानाधर्म्मे प्रकाशिताः ॥ १४ ॥

कल्किजी बोले, मुझको चारों वेद अव्यक्त, व्यक्तिमत् और परात्पर ईश्वर कहतेहैं; वह वेद ब्राह्मण मुखसे अनेक धर्ममें प्रचारित होता है ॥ १४ ॥

यो धर्म्मो ब्रह्मणानां हि सा भक्तिर्मम पुष्कला ।
तयाहं तोषितः श्रीशः संभवामि युगे युगे ॥ १५ ॥

ब्राह्मणोंके लिये जैसा धर्म कहा है, वह धर्माचरणही मेरे प्रति गाढ़ी भक्तिका होना विदितकरता है; मैं उस भक्तिसे प्रसन्नहो लक्ष्मी पति रूपसे युग२ में अवतार लेताहूं ॥ १५ ॥

ऊर्द्धन्तु त्रिवृतं सूत्रं सधवानिर्मितं शनैः ।
तन्तुत्रयमधोवृत्तं यज्ञसूत्रं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥

पंडित लोग कहतेहैं कि, ब्राह्मणोंकी सुहागन कन्यायें पहले धीर भावसे सूतको तिगुना करें, तदुपरान्त उस सूतको फिर तिगुना करनेसे यज्ञसूत्र बनजाताहै ॥ १६ ॥

त्रिगुणं तद्ग्रन्थियुक्तं वेदप्रवरसंमितम् ।
शिरोधरान्नाभिमध्यात्पृष्ठार्द्धपरिमाणकम् ॥ १७ ॥

वेद और प्रवरका वर्णन करके उस तिगुने यज्ञसूत्रमें गांठ लगावे । सो पहरनेसे तिस्से गर्दनसे नाभितक पृष्ठके अर्द्ध भागतक होगा ॥ १७ ॥

यजुर्वेदां नाभिमितं सामगानामयं विधिः ।
वामस्कन्धेन विधृतं यज्ञसूत्रं बलप्रदम् ॥ १८ ॥

यजुर्वेदी ब्राह्मणोंके लिये ऐसा यज्ञोपवीत कहाहै, सामवेदी ब्राह्मणका यज्ञोपवीत नाभितक होताहै । बांयेंकन्धेमेंयज्ञोपवीत धारण करनेसे बलको दान करताहै ॥ १८ ॥

मृद्भस्मचन्दनाद्यैस्तु धारयेत्तिलकं द्विजः ।
भाले त्रिपुण्ड्रं कर्म्माङ्गं केशपर्य्यन्तमुज्ज्वलम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मणको उचितहै कि, मिट्टी, भस्म, चन्दनादिसे तिलक और पुण्ड्र धारण करे।उज्ज्वल पुण्ड्र, धर्म कर्मका अंग स्वरूपहै, सो केश तक खिंचताहै ॥१९॥

पुण्ड्रमङ्गुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्रं तत्त्रिधा कृतम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवावासं दर्शनात् पापनाशनम् ॥ २० ॥

एक अंगुल चौडा पुण्ड्रहो, ऐसे तीन पुण्ड्र एक साथहों तो तिसको त्रिपुण्ड्र कहतेहैं त्रिपुण्ड्रमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीका वास रहता है, तिसके दर्शन करनेसे पापका नाश होताहै ॥ २० ॥

ब्राह्मणानां करे स्वर्गा वाचो वेदाः करे हरिः ।
गात्रे तीर्थानि रागाश्च नाडीषु प्रकृतिस्त्रिवृत् ॥ २१ ॥

ब्राह्मणोंके वाक्यमें वेद, हाथमें हरि और स्वर्ग, शरीरमें तीर्थ और प्रीति, नाडियोंमें त्रिवृत् प्रकृति (१) ॥ २१ ॥

सावित्री कण्ठकुहरा हृदयं ब्रह्मसंज्ञितम् ।
तेषां स्तनान्तरे धर्म्मः पृष्ठोऽधर्म्मः प्रकीर्त्तितः ॥ २२ ॥

और कंठमें सावित्री विराजमानहै, तिनका हृदय ब्रह्म स्वरूपहै; कहते हैं कि, तिनके दोनों स्तनोंके बीच हृदयमें धर्म और पीठपर अधर्म वर्त्तमान हैं॥ २२॥

भूदेवा ब्राह्मणा राजन् ! पूज्या वन्द्याः सदुक्तिभिः ।
चतुराश्रम्यकुशला मम धर्म्मप्रवर्त्तकाः ॥ २३ ॥

(१) मिले हुए तेज, जल और अन्नकोही त्रिवृत् प्रकृति कहते हैं । यथा;– तासां त्रिवृतमेकैकां करवाणि । (छान्दोग्य उपनिषत्)

हे राजन् ! पृथिवीके देवता ब्राह्मणलोग चारों आश्रमोंके (१) धर्ममें निपुणहैं, और हमारे (सनातन) धर्मके प्रवर्त्तक हैं, (अतएव) श्रेष्ठ उक्तिसे तिनकी पूजा और वन्दना करना कर्त्तव्यहै ॥ २३ ॥

बालाश्चापि ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा मम प्रियाः ।
तेषां वचः पालयितुमवताराः कृता मया ॥ २४ ॥

ज्ञानमें बडे और तपस्यामें बडे ब्राह्मणके बालक हमको अत्यन्त प्यारेहैं; तिनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं अवतार लेताहूँ ॥ २४ ॥

महाभाग्यं ब्राह्मणानां सर्व्वपापप्रणाशनम् ।
कलिदोषहरं श्रुत्वा मुच्यते सर्व्वतो भयात् ॥ २५ ॥

ब्राह्मणोंके महावाक्यका वर्णन करनेसे सर्व प्रकारके पापोंका नाश होजाताहै, कलि दोष दूर होताहै, और सर्व प्रकारके भय चले जातेहैं ॥ २५ ॥

इति कल्किवचः श्रुत्वा कलिदोषविशातनम् ।
प्रणम्य तं शुद्धमनाः प्रययौ वैष्णवाग्रणीः ॥ २६ ॥

कलिके दोषका नाश करनेवाले कल्किजीके वचन सुनकर, शुद्ध हृदयवाला वैष्णव शिरमौर विशाखयूप उनको प्रणाम करके चलागया ॥ २६ ॥

गते राजनि सन्ध्यायां शिवदत्तशुको बुधः ।
चरित्वा कल्किपुरतः स्तुत्वा तं पुरतः स्थितः ॥ २७ ॥
तं शुकं प्राह कल्किस्तु सस्मितं स्तुतिपाठकम् ।
स्वागतं भवता कस्माद्देशात् किं खादितं ततः ॥ २८ ॥

विशाखयूप राजाके चले जानेपर परम विद्वान् शिवदत्त शुक इधर उधर धूम धामकर सन्ध्याके समय कल्किजीके सामने आया और उनकी स्तुति करने लगा शुकके स्तोत्र पढनेको सुन, कल्किजीने मुस्कायकर कहा, 'हे शुक' ! तुम्हारा मंगलहै । तुम किस देशसे क्या आहार करके आयेहो, सो कहो ॥ २७ ॥ २८ ॥

(१) ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, भिक्षुक, यह चार आश्रमहैं ।

शुक उवाच ।

श्रृणु नाथ ! वचो मह्यं कौतूहलसमन्वितम् ।
अहं गतश्च जलधेर्मध्ये सिंहलसंज्ञके ॥ २९ ॥

शुकबोला,—हे देव ! मुझसे एक कौतुक युक्तवाक्य श्रवण कीजिये। समुद्रके जलमे सिंहल नामक ❀ एक द्वीपहै, जहाँ मैं गयाथा ॥ २९ ॥

❀ सिंहलद्वीप—विलायतके पंडितलोग वर्त्तमान सिंहलद्वीपको लंका कहतेहैं; परन्तु यह उचित नहीं कहाजासकता। क्योंकि वाल्मीकि रामायणमें देखा जाताहै कि, महावीर हनुमानजी समुद्रके किनारे परस्थित महेन्द्र पर्वतपर चढ़, छलांग मार, शत योजनके समुद्रको उतर, लंकाद्वीपके सुवेल पर्वतपर पहुंचे थे। परन्तु महेन्द्र पर्वत मद्राजके बहुत उत्तरमें हैं, और सिंहलद्वीप भारतवर्षकी सर्व दक्षिण—पूर्व दिशामें समुद्रके बीच स्थितहै इसे जाना जाताहै कि, वर्त्तमान सिंहलद्वीप, रामायणका प्राचीन लंकाद्वीप नहीं है।

ज्योतिषतत्त्व ग्रंथमें लिखा है—

" दक्षिणेऽवन्तिमाहेन्द्रमलयाऋष्यमूककाः ।
चित्रकूटमहारण्यकाञ्चीसिंहलकोङ्कणाः ॥ "

दक्षिणमें अवन्ति, माहेन्द्र, मलय, ऋष्यमूक, चित्रकूट, महारण्य (दण्डकारण्य वा जनस्थान) कांची, सिंहल और कोंकण देशहैं।

म्याक्क्रिन्डल साहब कहतेहैं, कि, प्रथममें सिंहलद्वीपका नाम लंका था, फिर ताप्रोवेणी (संस्कृत) ताम्रपर्णी हुआ। साहब कहतेहैं कि ग्रीक भौगोलिक फिनिनेंष्ट्रस द्वीपको अन्तिच् थोनोस् (Antichthonos) कहाहै। ग्रीक आन्तिचूथोनोस् संस्कृत अन्तस्थान होसकताहै। क्यों कि प्लिनिने इस द्वीपके स्थित होनेमें कहाहै कि, यह पृथ्वीके विपरीत अंशमें अर्थात् शेष अंशमें स्थितहैं। ग्रीकवीर अलेकज़ेण्डरके समय इस द्वीपकी स्थितिका विषय भली भांति ज्ञात हुआथा। तब इस द्वीपको ताप्रोवेणी कहतेथे। मेगास्थिनिसके मतसेभी इसका नाम ताप्रोवेणी और एक नदीसे दो भागमें विभक्तहै। इसने इस द्वीपको पलयिगोनि (Palaegoni) कहाहै। इनके मतानुसार इस द्वीपमें भारतवर्षकी अपेक्षा अधिक सुवर्ण और बडे २ मोती उत्पन्न होतेहैं। मिशरदेशके भौगोलिक टलेमीके मतसे इस द्वीपका प्राचीन नाम सिमौन्दन (Simsundon), और पीछेका नाम ताप्रोवेणी है।और पेरीप्लस नामक ग्रंथकारके मतसे इसका पुराना नाम ताप्रोवेणीहै। तिसके समयमें इसका नाम पलाइ सिमौन्दन (Palai Simoundon) था। परन्तु प्लिनिकेमतसे इस द्वीपकी राजधानीका नामहै, और जिस नदीके तटपर यह राजधानीथी, तिसका नाम पलाइसमुन्दस (Palaesimundus) था, इस कारण पेरीप्लस रचयिताका सिद्धांत भ्रम पूर्णहै। क्रम २ से यह द्वीप सालिकी, सिरेन्दीवस सिरलेदीव, सिरेन्दीव, जीलन, सइलन, फिर सइलनसे वर्त्तमान सिलोन (Ceylon हुआहै—(Ptotemy's Ancient India, P P. 251-252)

यथावृत्तं द्वीपगतं तच्चित्रं श्रवणप्रियम् ×।
बृहद्रथस्य नृपतेः कन्यायाश्चरितामृतम् ॥ ३० ॥

सिंहलकी समस्त घटना बड़ीही अचरजवालीहै । सिंहलद्वीपके स्वामी राजा बृहद्रथकी बेटीका चरित्रामृत अत्यन्त श्रुतिमधुरहै ॥ ३० ॥

कौमुद्यामिह जाताया जगतां पापनाशनम्।
चरितं सिंहले द्वीपे चातुर्वर्ण्यजनावृते ॥ ३१ ॥

तिसके सुननेसे संसारके पाप—ढेर नाश होजातेहैं । इस कन्याने कौमुदी नामक बृहद्रथकी रानीके गर्भसे जन्म ग्रहण कियाहै । सिंहलमें ब्राह्मण क्षत्री आदि चारों आश्रमकी (१) बस्तीहै ॥ ३१ ॥

प्रासाद-हर्म्य-सदन-पुर-राजि-विराजिते ।
रत्न-स्फाटिक-कुड्यादि-स्वर्लताभिर्विभूषिते × ॥ ३२ ॥

उस नगरमें प्रासाद, अटारी, गृह पुरादि विराजमानहैं । गृहभूमि स्फटिक

× चरित्रं श्रवणप्रियम् इति पुस्तकान्तरस्य पाठः ।

(१) ऋग्वेद संहिताके १० मंडल, (८ अष्टक) ७ अ० ९० सूक्तके १२ ऋक् में ब्राह्मणादि जातिकी उत्पत्तिका वृत्तान्तहै । यथा;–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत ॥

अर्थात् इन प्रजापतिके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए, दोनों बाहुओंसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई, दोनों ऊरूसे वैश्य और दोनों पांवसे शूद्र उत्पन्न हुए।

चार वर्णोंकी उत्पत्तिका यह वृत्तान्त अत्यन्त पुराना है । आपस्तम्बीय धर्म–सूत्र अतिप्राचीन ग्रंथ है । उस आपस्तम्बने कहा है;–

चत्वारो वर्णा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्राः ।

(आपस्तम्ब, तृतीय सूत्र)

मनुजी कहते हैं;–

लोकानाञ्च विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्त्तयत् ॥ (मनु० १ अ० ३१ श्लोक)

अर्थात् प्रजापतिने लोकवृद्धिके लिये मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, ऊरूसे वैश्य, और पादसे शूद्रकी सृष्टिकी ।

ब्राह्मण शास्त्रजीवी क्षत्री शस्त्रजीवी, वैश्य कृषिजीवी और शूद्रजाति इन तीनों वर्णोंकी सेवा करती थी ।

×स्वर्लताभिर्विराजिते इत्यपरे पठन्ति ।

और रत्नसे युक्तहै; स्थान २ में स्वर्णमयी छायाने तिसको विभषित कर रक्खाहै ॥ ३२ ॥

स्त्रीभिरुत्तमवेशाभिः पद्मिनीभिः समावृते ।
सरोभिः सारसैर्हंसैरुपकूलजलाकुले ॥ ३३ ॥

श्रेष्ठ वेशवाली पद्मिनी (१) कामनियें तहाँपर रहतीहैं । सरोवरके किनारोंपर हंस सारस आदि जलचर पक्षी किलोलें कर रहेहैं ॥ ३३ ॥

भृङ्गरंगप्रसंगाढ्ये पद्मैः कह्लारकुन्दकैः × ।
नानाम्बुजलताजाल-वनोपवन-मण्डिते ॥ ३४ ॥

सिंहल देशमें अनेक प्रकारके पद्म, लताजाल, वन और उपवनसे मंडित होरहेहैं; तहाँपर कमल, कांई कुन्दादि कुसुमसे भृंगगणोंके रंगमय प्रसंगसे परमरमणीय भाव उत्पन्न होरहाहै ॥ ३४ ॥

देशे बृहद्रथो राजा महाबलपराक्रमः ।
तस्य पद्मावती कन्या धन्या रेजे यशस्विनी ॥ ३५ ॥

महाबलवान् बृहद्रथ सिंहल देशका स्वमी है; पद्मावती नामक प्रशंसाके योग्य यशवाली कन्या तिसकी बेटीहै ॥ ३५ ॥

भुवने दुर्लभा लोकेऽप्रतिमा वरवर्णिनी ।
काम-मोह-करी चारु-चरित्रा चित्र-निर्मिता ॥ ३६ ॥

त्रिलोकीमें उस त्रिभुवन दुर्लभ श्रेष्ठमुखवालीकी उपमा नहींहै, तिसका चरित्र अत्यन्त रमणीय है, विधाताने अतिश्रेष्ठ चतुराईसे उसको बनायाहै जान पड़ताहै कि, तिसको देखनेसे कामदेवका मनभी मोहित होजाताहै॥ ३६॥

× कह्लारहल्लकैः इति वा पाठ्यम् ।

(१) कामशास्त्रमें पद्मिनीके लक्षण कहे हैं। कविकुलतिलक जयदेवजीने रतिमंजरी नामक पुस्तकमें कहा है,–

भवति कमलनेत्रा नासिका क्षुद्ररन्ध्रा अविरलकुचयुग्मा चारुकेशी कृशाङ्गी ।
मृदुवचनसुशीला गीतवाद्यानुरक्ता भवति कमल नेत्रा पद्मिनी पद्मगन्धा ॥

(रतिमंजरी, ९ श्लोक)

शिवसेवापरा गौरी यथा पूज्या सुसम्मता।
सखीभिः कन्यकाभिश्च जपध्यानपरायणा ॥ ३७ ॥

भगवती गौरी जिस प्रकार शिवजीकी सेवा करतीहैं, वैसेही पूजनीया सुसम्मता पद्मावती सखी और कन्याओंके साथ जप और ध्यान किया करती ॥ ३७ ॥

ज्ञात्वा ताञ्च हरेर्लक्ष्मीं समुद्भूतां वरांगनाम् ×॥
हरः प्रादुरभूत्साक्षात्पार्व्वत्या सह हर्षितः ॥ ३८ ॥

महादेव और पार्वतीजीने जाना कि, विष्णुजीकी प्यारी लक्ष्मीजी, श्रेष्ठ मुखवाली पद्मावतीके रूपसे पृथ्वीपर अवतरीहैं। वे हर्षित चित्तसे पद्माव-तीके सामने प्रगट हुए ॥ ३८ ॥

सा तमालोक्य वरदं शिवं गौरीसमन्वितम्।
लज्जिताधोमुखी किञ्चिन्नोवाच पुरतः स्थिता ॥ ३९ ॥

महादेव और पार्वतीजीको निहारकर पद्मावतीने लाजसे शिर नीचे कर लिया और उनके सोंही मौन होकर खड़ीरही ॥ ३९ ॥

हरस्तामाह सुभगे ! तव नारायणः पतिः।
पाणिं ग्रहीष्यति मुदा नान्यो योग्यो नृपात्मजः ॥ ४० ॥

महादेवजीने तिस्से कहा, हे सुभगे! तुम्हारे पति नारायणजी हर्षसहित तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे और कोईभी राजकुमार तुम्हारे (विवाहके) योग्य नहींहै ॥ ४० ॥

कामभावेन भुवने ये त्वां पश्यन्ति मानवाः।
तेनैव वयसा नार्य्यो भविष्यन्त्यपि तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥

जगत्में जो मनुष्य तुमको कामभावसे देखेगा, वह तत्काल अपने पुरुष जन्मकी वयसके अनुसार तैसेही नारीरूपको प्राप्तहोगा ॥ ४१ ॥

देवासुरास्तथा नागा गन्धर्व्वाश्चारणादयः।

× वराननाम् इत्यपरे पठन्ति।

त्वया रन्तुं यथाकाले भविष्यन्ति किल स्त्रियः ॥ ४२ ॥

देव, असुर, नाग, गन्धर्व, चारणादि जो कोई तुम्हारे साथ रमण करनेकी अभिलाषा करेगा वह तत्काल निश्चय स्त्री होजायगा ॥ ४२ ॥

विना नारायणं देवं त्वत्पाणिग्रहणार्थिनम् ॥
गृहं याहि तपस्त्यक्त्वा भोगायतनमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

सिवाय एक नारायणजीके तुम्हारे करपल्लवकी प्रार्थना करनेवाले सबही इस अवस्थाको प्राप्तहोंगे । तपको जलांजलि देकर घरको जाओ । भोगके योग्य उत्तम शरीरको ॥ ४३ ॥

मा क्षोभय हरेः पत्नि कमले विमलं कुरु ।
इति दत्त्वा वरं सोमस्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ४४ ॥

हे विष्णुविलासिनि कमले ! क्षुब्ध न करो; विमलकरो । भगवान् शशाङ्क शेखर महादेवजी, पद्मावतीको यह वर देकर तिस स्थानमेंही अन्तर्द्धान हुए ॥ ४४ ॥

हर वरमिति सा निशम्य पद्मा समुचितमात्ममनोरथप्रकाशम् ।
विकसितवदना प्रणम्य सोमं निजजनकालयमाविवेश रामा ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरवरप्रदानं ।
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अपने मनोरथके अनुसार अभिलषित वरदानका वचन सुनकर पद्माने उनको प्रणाम किया । हर्षसे उनका वदनमण्डल प्रफुल्ल होगया । फिर वह रामा अपने पिताके गृहमें चलीगई ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये हर-वर-
प्रदानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः।

शुक उवाच।

गते बहुतिथे काले पद्मां वीक्ष्य बृहद्रथः।
निरूढयौवनां पुत्रीं विस्मितः पापशङ्कया ॥ १ ॥

शुकने कहा कि, बहुत दिन बीतनेपर पद्मावतीने यौवनकी सीमापर पांव रक्खा, राजा बृहद्रथ कन्याको युवती निहार पापकी शंकासे चिन्ता करने लगा (१) ॥ १ ॥

कौमुदीं प्राह महिषीं पद्मोद्वाहेऽत्र कं नृपम्।
वरयिष्यामि सुभगे ! कुलशीलसमन्वितम् ॥ २ ॥

उसने अपनी रानी कौमुदीसे कहा, हे सुभगे ! पद्माके विवाहके लिये श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए किस शीलवान् राजाको वरण करूं ॥ २ ॥

सा तमाह पतिं देवी शिवेन प्रति भाषितम्।
विष्णुरस्याः पतिरिति भविष्यति न संशयः ॥ ३ ॥

पहले महादेवजीने जैसा कहाथा, देवी कौमुदीने तिसके अनुसार बृहद्रथसे कहा; इसमें सन्देह नहीं कि, भगवान् लक्ष्मीपति पद्माका पाणिग्रहण करेंगे ॥ ३ ॥

इति तस्यावचः श्रुत्वा राजा प्राह कदेति ताम्।
विष्णुः सर्व्वगुहावासः पाणिमस्या ग्रहीष्यति ॥ ४ ॥

रानीके यह वचन सुनकर राजाने पूछा, सबके हृदयमें विहार करनेवाले हरि कितने दिनके पीछे पद्माका पाणिग्रहण करेंगे ? ॥ ४ ॥

---

(१) जो पिताके घरमें कन्या रजस्वलाहो तो पिता माताको पाप लगता है। जो सत्पात्र न मिले और कन्याको विवाहकी अभिलाषाहो तो दूसरी बात है। जो कन्याके मनमें विवाहकी अभिलाषा हो, व सत्पात्रभी मिले और तिस समय जो पिता माता कन्याका विवाह न करें; तो जितनीवार कन्या रजस्वलाहो, उतनीहीं वार पिता माता जीव हत्याके भागी होते हैं। प्रमाण—

यावन्तु कन्यामृतवः स्पृशन्ति तुल्यैः सकामामपि याच्यमानाम्।
तावन्ति भूतानि हतानि ताभ्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवादः ॥

राजा बृहद्रथने पद्मावतीको यौवनशालिनी देखकर इस जीव हत्या पापकी शंका की थी ॥

न मे भाग्योदयः कश्चिद्येन जामातरं हरिम् ।
वरयिष्यामि कन्यार्थे वेदवत्या मुनेर्यथा ॥ ५ ॥

हे कौमुदि ! हमारा ऐसा कोईभी सौभाग्य उदय नहीं हुआहै कि, कन्याके निमित्त परात्पर हरिको जामातृरूपसे वरण करसकूंगा । तपस्वीकी पुत्री वेदवती जैसे स्वयम्वर–सभामें (१) आईथी ॥ ५ ॥

इमां स्वयंवरां पद्मां पद्मामिव महोदधेः ।
मथनेऽसुरदेवानां तथा विष्णुर्ग्रहीष्यति ॥ ६ ॥

वैसेही मैं पद्माको स्वयम्वरकी सभामें लाऊंगा, जब देवता और असुर, लोगोंने समुद्रको मथा, तब महासागरसे कमलासना पद्माकी उत्पत्तिहुई, वहांपर श्रीहरिने जैसे उसको ग्रहण कियाथा, (स्वयम्वर क्षेत्रसे) हमारी बेटी पद्माकोभी आप वैसेही ग्रहण करेंगे ॥ ६ ॥

इति भूपगणान्भूपः समाहूय पुरस्कृतान् ।
गुणशीलवयोरूपविद्याद्रविणसंवृतान् ॥ ७ ॥

यह विचारकर राजा बृहद्रथने, गुणशाली, शील सम्पन्न रूपवान्, तरुण

---

(१) प्राचीन कालके आर्य राजाओंमें स्वयम्वरकी रीतिथी । कन्याके सम्बन्धी, समस्त राजाओंको स्वयम्वरके लिये नेवता देतेथे । जब राजा लोग स्वयम्वरमें आते, तो कन्या उनमेंसे प्रत्येक राजाके निकट जाय उसके रूपको देखतीथी । कन्याकी सहेलियें राजाओंके गुणोंका बखान करतीथीं । रूप गुणको देख सुनकर कन्या जिस पात्रको चाहती उसहीके गलेमें माला डालकर अपनी कामनाको निवेदन करती । तदुपरान्त विधि विधानसे विवाह होजाताथा । दूसरे प्रकारके विवाहमें कन्याके सम्बन्धी लोग वरको नियत करते हैं; परन्तु इस विवाहमें कन्या स्वयं मनमाना पात्र ग्रहण करलेती हैं, यही कारण है कि, इस विवाहका नाम स्वयम्वर है । प्राचीनग्रंथोंमें इसका बहुतसा बृत्तान्त पाया जाता है। द्रौपदी, इन्दुमंती आदिकाभी स्वयम्वरं हुआथा । दमयन्तीके स्वयम्वरकाभी उद्योग हुआथा और २ सम्प्रदायोंमेंभी कभी २ स्वयंवर होता रहा इस कल्किपुराणमेंही उदाहरणकी भाँति वेदवतीके स्वयम्वरका नाम है । सबसे पिछला स्वयम्वर महाराजाधिराज कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्रने किया, जिसमें महाराज पृथ्वीराजकी सुवर्णकीमूर्त्ति बनाईथी और इस अपमानसे क्रोधित हो पृथ्वीराज संयोगताको हरण करके लेगयेथे । वस यहींपरसे हिन्दोस्थानमें यवन लोगोंके आनेका बीज बोया गयाथा । कभी २ स्वयम्वरमें डाहके मारे युद्धभी होजाताथा । इसका प्रमाण महाभारतादि पुराण और रघुवंशादि काव्यमें पाया जाता है । मालूम होता है, कि, झगड़ोंके कारणसेही स्वयम्वरकी रीति लोप होगई ।

अवस्थावाले, विद्वान् और धनवान् राजाओंको सन्मानके साथ नेवतादियां.

स्वयंवरार्थं पद्मायाः सिंहले बहुमङ्गले ।
विचार्य्य कारयामास स्थानं भूपनिवेशनम् ॥ ८ ॥

पद्माके स्वयम्वरार्थ सिंहलदेशमें अनेक प्रकारके मंगलाचार होनेलगे । राजा बृहद्रथने, राजाओंके ठहरनेको यथायोग्य स्थान नियत किये ॥ ८ ॥

तत्रायाता नृपाः सर्वे विवाहकृतनिश्चयाः ।
निजसैन्यैः परिवृताः स्वर्णरत्नविभूषिताः ॥ ९ ॥

विवाहकी चाहना करनेवाले राजालोग सुवर्ण और रत्न विभूषणों (१) से विभूषितहो और सेनाको ले सिंहलदेशमें आगमन करने लगे ॥ ९ ॥

रथान्गजानश्ववरान्समारूढा महाबलाः ।
श्वेतच्छत्रकृतच्छायाः श्वेतचामरवीजिताः ॥ १० ॥

---

(१) पूर्वकालके समय हिन्दोस्थानमें शिल्पकी बड़ी उन्नतिथी, जिसका विचार करनेसे आभूषणोंके बनानेकी विचित्रताके प्रमाण मिलते हैं । रत्नरहस्य नामक ग्रंथमें आभूषणोंका वृत्तान्त लिखा है । रत्नरहस्यकारने इस वृत्तान्तको हेमकोश और तिसकी टीका, अमरविवेक मानसोल्लास आदि प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंसे संगृहीत किया है । उसही रत्नरहस्यसे उद्धृत करके हम कुछ विषय यहांपर लिखते हैं । यथा;–

प्रथम शिरके आभूषण;–गर्भक, ललामक, बाल्यपाश, पारितथ्य, हंसतिलक, दुण्डक, चूडामण्डन चूडिका और लम्बन, यह आठ आभूषण शिरके हैं । १ कर्णाभरण;–मुक्ता कण्टक, द्विराजिक, त्रिराजिक, स्वर्णमध्य, वज्रगर्भ, भूरिमण्डल, कुन्तल कर्णपूर (कनफूल) कर्णिका, शृंखल, कर्णेन्दु यह ग्यारह कानोंके भूषण हैं । २ ललाटिका,–पत्रश्यामा, और ललाटिका । ३ कंठके भूषण;–ललन्तिका, प्रालम्बिका, उरःसूत्रिका, मुक्तावली, देवच्छन्द, गुच्छ, गुच्छार्द्ध, गोस्तन, अर्द्धहार, मानवक, एकावली, नक्षत्रमाला, सारिका, और वज्रकंकलिका; यह चौदह गलेमें पहरनेके भूषण हैं । ४ उरोभूषण,–पदक और बन्धुक यह दो उरके भूषण हैं । ५ बाहुभूषण;–केयूर, अंगद, पंचका कटक, वलय, (खण्डुए) और कंकण, यह छैः बाहुभूषण हैं । ६ उगलीके गहने;–द्विहीरक, वज्र, रवि, मण्डल, नन्द्यावर्त, नवरत्न, वज्रवेष्टित, त्रिहीरक, शक्तिमुद्रिका, अंगुलिमुद्रिका, मुद्रामुद्रिका यह दश उंगलियोंके भूषण हैं। ७ कटिभूषण;–कांची मेखला, रसना, कलाप, कांची जल और शृंखल यह छः हैं । ८ पादभूषण;–पादचूड, पादकटक, पादपद्म किंकिणि, पादकण्टक, मुद्रिका, यह छै हैं । औरभी दो चार गहने हैं; पुस्तकके बढजानेसे उनका विस्तारित वृत्तान्त नहीं लिखा । जहांपर जैसे भूषणका नाम प्रसंगमें आजायगा, तहांपर तिसके बनानेकी रीति और आकृतिका वृत्तान्त लिखेंगे ।

वह महाबलवान् राजालोग रथ, हाथी और घोडोंपर सवार होकर तहां उपस्थित हुए। श्वेतच्छत्र उनको छायादान करने लगा, (परिजन गण) श्वेतचामरसे बयार करने लगे ॥ १० ॥

शस्त्रास्त्रतेजसा दीप्ता देवाः सेन्द्रा इवाभवन्।
रुचिराश्वः सुकर्म्मा च मदिराक्षो दृढाशुगः ॥ ११ ॥

अस्त्र और शस्त्र राजिकी दीप्तिसे वे राजालोग देवताओंके साथ हुए इन्द्रके समानजान पडने लगे। रुचिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, दृढाशुग॥ ११॥

कृष्णसारः पारदश्च जीमूतः क्रूरमर्दनः।
काशः कुशाम्बुर्वसुमान् कङ्कः कथनसञ्जयौ ॥ १२ ॥

कृष्णसार, पारद, जीमूत, क्रूरमर्दन, काश, कुशाम्बु, बहुमान, कंक, कथन, संजय ॥ १२ ॥

गुरुमित्रः प्रमाथी च विजृम्भः सृञ्जयोऽक्षमः। ×
एते चान्ये च बहवः समायाता महाबलाः ॥ १३ ॥

गुरुमित्र, प्रमाथी, विजृम्भ, सृञ्जय, अक्षम आदि व और और पराक्रमी राजालोग सिंहलदेशमें इकट्ठे हुए थे ॥ १३ ॥

विविशुस्ते रङ्गगताः स्वस्वस्थानेषु पूजिताः।
वाद्यताण्डवसंहृष्टाश्चित्रमाल्याम्बराधराः ॥ १४ ॥ ×

वे राजालोग विचित्रमाला और वस्त्रधारण करके रंगभूमिमें आये और (आदरसहित) पूजितहो अपने २ आसनपर बैठगए ॥ (तिनके चित्तको प्रसन्न करनेके लिये) नाच होनेलगा, बाजे बजने लगे॥ १४ ॥

नानाभोगसुखोद्रिक्ताः कामरामा रतिप्रदाः।
तानालोक्य सिंहलेशः स्वां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥ १५ ॥

रमणीय चरित्रवाले राजालोग भोग और सुखके भोगनेमें आसक्त और सबके प्रसन्न करनेवालेथे, सिंहलके महाराजने उनको देखकर श्रेष्ठ वर्ण-वाली अपनी कन्याको बुलाया ॥ १५॥

× सञ्जयोऽक्षमः इति वा पाठः। × चित्रमाल्याम्बराम्बरा इति क्वचित् पाठः।

गौरीं चन्द्राननां श्यामां तारहारविभूषिताम् ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च सर्व्वाङ्गालंकृतां शुभाम् ॥ १६ ॥

जो कि गौरी, चन्द्रमुखी, श्यामाथी, पद्मावतीका सब शरीर मणि, मोती और मूंगोंसे सजाथा । वह परमरमणीय हारसे विभूषितथी ॥ १६ ॥

किं मायां मोहजननीं किं वा कामप्रियां भुवि ।
रूपलावण्यसम्पत्त्या न चान्यामिह दृष्टवान् ॥ १७ ॥

मुझको जान पड़ने लगा कि, पद्मावती क्या मोहमयी मायाहै ? अथवा कामदेवके मनको मोहनेवाली रति पृथ्वीपर आगई है ? ऐसी रूपलावण्य वाली मैंने दूसरी नहीं देखी ॥ १७ ॥

स्वर्गे क्षितौ वा पातालेऽप्यहं सर्व्वत्रगो यदि ।
पश्चाद्दासीगणाकीर्णां सखीभिः परिवारिताम् ॥ १८ ॥

हे देव ! यद्यपि मैं, स्वर्ग, मृत्यु व पाताल सबमेंहीं घूमाहूं । पीछे उसके दासियांथीं; सखी उसको घेरे हुएथीं ॥ १८ ॥

दौवारिकैर्वेत्रहस्तैः शासितान्तःपुराद्बहिः ।
पुरोबन्दिगणाकीर्णां प्रापयामास तां शनैः ॥ १९ ॥

बेंतलिये हुए पौरिये राजा बृहद्रथके अन्तःपुरको शासन करतेथे । सभा-स्थानके अगले भागमें बन्दिगण (१) खड़े हुएथे; तहांपर राजकुमारीने धीरे २ प्रवेश किया ॥ १९ ॥

---

(१) वैश्य पुरुषके औरससे और क्षत्रियानीके गर्भसे जिनका जन्म होताहै, तिनको मागधजाति कहते हैं । यथा;-

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।
वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्रांगनासुतौ ॥ (मनु० १० अ० ११ श्लोक)

अर्थात् क्षत्रीके औरससे ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तान सूतजातिहै; वैश्यपुरुषसे क्षत्राणीके गर्भमें उत्पन्न हुई सन्तान मागधजाति है और वैश्यसे ब्राह्मणीके गर्भमें उत्पन्न हुई सन्तान वैदेहजाति कहतीहै । बन्दीगण यह मागध जाति है । यह युद्धके समय, या किसी उत्सवके समय और राजसभामें राजाओंका यश गाया करते थे । राजपूतानेके चारण अनेक अंशमें (जातिमें नहीं) तिनके समान कहे जा सकते हैं । राजा या अमीर उमरावोंकी स्तुति करके कुछ धन पैदा कर वह अपना निर्वाह करते हैं । आजकल श्राद्धशान्तिके समय जो पात्रान्न भोजन करते हैं और नियत हुए दानको ग्रहण करतेहैं वंशका गुण गातेहैं, वही यह मागध होसकते हैं, आजकल चलित भाषामें इनको " भाट " कहतेहैं ।

नूपुरैःकिङ्किणीभिश्च क्वणन्तीं जनमोहिनीम् ।
स्वागतानां नृपाणाञ्च कुलशीलगुणान्बहून् ॥ २० ॥

उस संसार मोहिनीके नूपुरकी ध्वनि और किंकिणीकी ध्वनि सुनाई आनेलगी । आयेहुए राजाओंका बहुतप्रकारसे कुलशील ॥ २० ॥

शृण्वन्ती हंसगमना रत्नमालाकरग्रहा ।
रुचिरापाङ्गभङ्गेन प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला ॥ २१ ॥

सुनतीहुई, हंसके समान चलनेवाली पद्मावती हाथमें रत्नकी माला ग्रहण करके मनोहर अपाङ्गोंको चलायमान करके राजाओंको निहारने लगी उसके कानोंमें पडे हुए कुण्डल हिलने लगे ॥ २१ ॥

नृत्यत्कुन्तलसोपानगण्डमण्डलमण्डिता ।
किञ्चित्स्मेरोल्लसद्वक्त्रदशनद्योतदीपिता ॥ २२ ॥

केशकन्तलके हिलनेसे गर्दन (अपूर्व शोभासे) शोभायमान हुई मन्द मुस्कानकी प्रभासे पद्मामकी प्रभासे पद्माका वदन विकसित और दशन कान्ति प्रभासित होनेलगी ॥ २२ ॥

वेदीमध्यारुणक्षौमवसना कोकिलस्वना ।
रूपलावण्यपण्येन क्रेतुकामा जगत्त्रयम् ॥ २३ ॥

उसकी कमर वेदीकी समान पतलीहै । वह कोकिलकी समान बोलनेवाली लालरंगके रेशमीन कपडे पहिर रहीथी; तब ऐसा ज्ञात हुआ कि, वह रूप लावण्यरूपी सौदे (पण्य) से त्रिलोकीको मोललेनेकी अभिलाषा कियेहै ॥ २३ ॥

समागतां तां प्रसमीक्ष्य भूपाः संमोहिनीं कामविमूढचित्ताः ।
पेतुः क्षितौ विस्मृतवस्त्रशस्त्राः रथाश्वमत्तद्विपवाहनास्ते ॥ २४ ॥

जो राजालोग रथ, घोडे और मतवाले हाथियोंकी पीठपर चढकर भ्रमण करतेथे, वे उस मन मोहिनी कामिनीको देखकर कामदेवके वश हुए, उनका चित्त विह्वल होगया उनके वस्त्र और अस्त्र शस्त्र खुलकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २४ ॥

तस्याः स्मरक्षोभनिरीक्षणेन स्त्रियो बभूवुः कमनीयरूपाः ।
बृहन्नितम्बस्तनभारनम्राः सुमध्यमास्तत्स्मृतिजातरूपाः॥२५॥

वे (राजालोग) काम मोहितहोकर काममय नेत्रोंसे पद्माको देखने लगे थे, इस कारण (उन्होंने) बड़े नितम्बवाली, दो स्तनोंवाली, श्रेष्ठ कमरकी स्त्रीका कमनीय शरीर धारण किया ॥ २५ ॥

विलासहासव्यसनातिचित्राः कान्ताननाः शोणसरोजनेत्राः ।
स्त्रीरूपमात्मानमवेक्ष्य भूपास्तामन्वगच्छन्विशदानुवृत्त्या ॥२६॥

उनके स्मृतिरूपी वस्त्रपर जैसी रमणीय मूर्तिकी छाया पड़ीथी, उनकी मूर्ति वैसेही होगई । उन्होंने विलास, हास्य और व्यसन चतुरताको प्राप्त किया; उनके नेत्र कमलकी पंखड़ीके समान शोभायमान हुए, वदन मंडलपर कमनीयकान्ति प्रफुल्ल होगई । अपने स्त्री रूपको देखकर राजालोग-प्रसन्नहो सहेलीके वेशसे तिसके पीछे २ चलने लगे ॥ २६ ॥

अहं वटस्थः परिधर्षितात्मा पद्माविवाहोत्सवदर्शनाकुलः ।
तस्या वचोऽन्तर्हृदि दुःखितायाःश्रोतुं स्थितः स्त्रीत्वमितेषु तेषु२७

हे देव ! पद्माके विवाहका उत्सव देखनेकी अभिलाषासे मैं निकटके एक वट वृक्षपर बैठाथा, इस बातके देखनेसे मुझको अत्यन्त दुःख होने लगा । जब राजाओंने रमणीय मूर्ति धारणकी ॥ २७ ॥

जहीहि कल्के कमलाविलापं श्रुतं विचित्रं जगतामधीश ।
गते विवाहोत्सवमङ्गले सा शिवं शरण्यं हृदये निधाय ॥ २८ ॥

तब अत्यन्त दुःखित होकर पद्मा विलाप करने लगी । हे कल्के ! मैं उसके सुननेके लिये बैठा रहाथा । हे जगत्के स्वामिन् ! मंगलमय बिवाहोत्सवके स्वामिन् ! मंगलमय विवाहोत्सवके अंतहोजानेपर पद्मावती मनसे शरण देनेवाले महादेवजीका ध्यान करके जैसी संतापित हुईथी, सो मैंने उस कमलाके विलापको सुनाहै, तिसको आप सुनैं ॥ २८ ॥

तान्दृष्ट्वा नृपतीन्गजाश्वरथिभिस्त्यक्तान्सखित्वं गतान् ॥ ×

× गजाश्वरथिभिस्त्यक्त्वा सखित्वं गतान् इति पाठान्तरम् ।

स्त्रीभावेन समन्वितानतुगतान्पद्मां विलोक्यान्तिके।
दीना त्यक्तविभूषणा विलिखती पादाङ्गुलैः कामिनी।
ईशं कर्त्तुं निजनाथमीश्वरवचस्तथ्यं हरिं साऽस्मरत् ॥ २९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये पद्मास्वयंवरे
भूपतीनां स्त्रीत्वकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पद्माने देखा कि, राजालोग मुझको देखकर हाथी घोड़े रथोंको छोड स्त्री रूपको धारण करते हुए और संहेली वन निकटही चलने लगे। तब वह दीन भावसे गहनोंको उतार पांवकी उंगलीसे पृथिवीको कुरेदने लगी (१) फिर महादेवजीके वरको सफल करनेकी वासनासे संसारके ईश्वर हरिका पतिभावसे ध्यान करना आरम्भ करती हुई ॥ २९ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये पद्मास्वयम्वरे भूपतीनां
स्त्रीत्वकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः।

शुक उवाच ।

ततः सा विस्मितमुखी पद्मा निजजनैर्वृता।
हरिं पतिं चिन्तयन्ती प्रोवाच विमलां स्थिताम् ॥ १ ॥

शुकबोला;—इसके उपरान्त पद्मावती (अपने) पति श्रीहरिकी चिन्ता करने लगी; उसके मुखपर विस्मय भावके चिह्न दिखाई देने लगे पद्माकी सहेली (उसका इस प्रकार भावान्तर देख) निकट आई, तब वह विमला नामक सहेलीसे (पुकारकर) कहने लगी ॥ १ ॥

---

(१) अंगूठेसे पृथ्वीका कुरेदना आदि अनुरागिणी नायिकाके अनुरागका लक्षणहै, यथा;—
अंगुष्ठाग्रेण लिखति सकटाक्षं निरीक्षते। दशति स्वाधरं. चापि ब्रूते प्रियमधोमुखी ॥
(साहित्यदर्पणम्, ३ परीच्छेद)

अर्थात् (नायिका) अँगूठेसे पृथ्वीको कुरेदै, कटाक्षके साथ देखे, अपने अधर काटे, और मुख नीचेको नवाय प्रीतमके साथ बात करतीहै।

यहांपर पद्मावतीके अनुरागका लक्षण प्रगट हुआ है, ऐसा निर्देश कियाहै।

पद्मोवाच ।

विमले ! किं कृतं धात्रा ललाटे लिखनं मम ।
दर्शनादपि लोकानां पुंसां स्त्रीभावकारकम् ॥ २ ॥

पद्माबोली;—हे विमले ! क्या विधाताने हमारे भाग्यमें यही लिखाहै कि, पुरुष हमको देखतेही स्त्री होजाय ? ॥ २ ॥

ममापि मन्दभाग्यायाः पापिन्याः शिवसेवनम् ।
विफलत्वमनुप्रातं बीजमुप्तं यथोषरे ॥ ३ ॥

हे सखि ! मैं अत्यन्त हतभागिनी और दुराचारिणीहूं, इस्सेही, जैसे मरु भूमिमें बीज बोनेसे कोईभी फल नहीं होता, वैसेही हमारी कीहुई शिवकी उपासना विफल होगई ॥ ३ ॥

हरिर्लक्ष्मीपतिः सर्व्वजगतामधिपः प्रभुः ।
मत्कृतेऽप्यभिलाषं किं करिष्यति जगत्पतिः ॥ ४ ॥

परात्पर हरि त्रिभुवनके परिपालकहैं; वह त्रिभुवनके स्वामी, भगवान् कमलापति क्या हमारे प्रति अभिलाष करेंगे ? ॥ ४ ॥

यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् ।
तदाहमनले देहं त्यक्ष्याामि हरिभाविता ॥ ५ ॥

जो महादेवजीका वाक्य मिथ्या होजाय जो विष्णुजी हमको स्मरण न करैं तो मैं श्रीहरिका ध्यान करते २ अग्निकुण्डमें जीवनको समर्पण करदूंगी ॥ ५ ॥

क्व चाहं मानुषी दीना क्वास्ते देवो जनार्दनः ।
निगृहीता विधात्राहं शिवेन परिवञ्चिता ॥ ६ ॥

मैं अत्यन्तदीन मानवीहूं, नारायणजी देवदेवहैं; (दोनोंके विवाहकी सम्भावना कहां ?) विधाता हमसे विमुख है; नहीं तो महादेव किसकारण से हमको ठगते ? ॥ ६ ॥

विष्णुना च परित्यक्ता मदन्या कात्र जीवति ॥ ७ ॥

विष्णुजीसे त्यागी जाकर मैं जीवन धारण करतीहूं ? ऐसी अवस्थामें मेरे सिवाय और कोईभी प्राणधारण नहीं कर सकती ॥ ७ ॥

इति नाना विलापिन्या वचनं शोचनाश्रयम् ।
पद्मायाश्चारुचेष्टायाः श्रुत्वायातस्तवान्तिके ॥ ८ ॥

श्रेष्ठ चरित्रवाली पद्माका ऐसा नानाप्रकारका शोक युक्त विलाप सुन कर मैं आपके निकट आयाहूं ॥ ८ ॥

शुकस्य वचनं श्रुत्वा कल्किः परमविस्मितः ।
तं जगाद पुनर्याहि पद्मां बोधयितुं प्रियाम् ॥ ९ ॥

शुकके यह वचन सुनकर कल्किजी अत्यन्त विस्मित हुए और तिससे कहा कि, तुम फिर (सिंहलदेशमें) जाओ और हमारी प्यारी पद्माको समझाओ बुझाओ ॥ ९ ॥

मत्सन्देशहरो भूत्वा मद्रूपगुणकीर्त्तनम् ।
श्रावयित्वा पुनः कीर ! समायास्यसि बान्धव ॥ १० ॥

हे शुक ! तुम हमारा सन्देशा लेजानेवाले होकर प्यारीके समीप हमारे रूपगुणका वृत्तान्त कहना; हे बान्धव विहङ्गम ! तुम (इसकार्यको करके) फिर आइयो ॥ १० ॥

सा मे प्रिया पतिरहं तस्या दैवविनिर्मितः ।
मध्यस्थेन त्वया योगमावयोश्च भविष्यति ॥ ११ ॥

पद्मा हमारी प्यारी स्त्री और मैं पद्माका पतिहूं, यह विधाताने स्थिर कर ही रक्खा है, तुम मध्यस्थ होकर परस्पर हमारा मेल करादीजो ११ ॥

सर्व्वज्ञोऽसि विधिज्ञोऽसि कालज्ञोऽसि कथामृतैः ।
तामाश्वास्य ममाश्वासकथास्तस्याः समाहर ॥ १२ ॥

तुम सर्वज्ञ और नियमज्ञहो; समयपर कार्यको करसकतेहो; (इसकारण) वचन रूप सुधाधारासे तिसको समझा बुझाकर हमारे (संतोषके) लिये तिसका आश्वास वाक्यकर आइयो ॥ १२ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा शुकः परमहर्षितः ।
प्रणम्य तं प्रीतमनाः प्रययौ सिंहलं त्वरन् ॥ १३ ॥

कल्किजीके यह वचन शुनकर शुक अत्यन्त आनन्दित हुआ और प्रसन्नहो तिनको प्रणाम करके शीघ्रताके साथ सिंहलकीओर को गया॥ १३ ॥

खगः समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वामृतं पयः ।
बीजपूरफलाहारो ययौ राजनिवेशनम् ॥ १४ ॥

इसके उपरान्त वह पक्षी समुद्रके पारजाय स्नान और अमृतमय जल पीकर विजौरा नामक फलका आहार करताहुआ । फिर राजभनवमें पहुँचकर ॥ १४ ॥

तत्र कन्यापुरं गत्वा वृक्षे नागेश्वरे वसन् ।
पद्मामालोक्य तां प्राह शुको मानुषभाषया ॥ १५ ॥

कन्याके अन्तःपुरमें जाय नागकेशरके वृक्षपर बैठा श्रेष्ठ बुद्धिवाला शुक पद्माको देखकर मनुष्यकी बोलीसे कहताहुआ ॥ १५ ॥

कुशलं ते वरारोहे ! रूपयौवनशालिनि ! ।
त्वां लोलनयनां मन्ये लक्ष्मीरूपामिवापराम् ॥ १६ ॥

हे वरारोहे ! तुम कुसलसे तो हो ! मैं देखताहूँ कि, तुम अनुपम रूपवती और पूर्ण यौवनवालीहो तुम्हारे दोनों नेत्र चंचल (और अत्यन्त मनोहरहैं) मैं जानताहूं कि, तुम दूसरी लक्ष्मीहो ॥ १६ ॥

पद्माननां पद्मगन्धां पद्मनेत्रां कराम्बुजे ।
कमलं कालयन्तीं त्वां लक्षयामि परां श्रियम् ॥ १७ ॥

तुम्हारा मुखमण्डल पद्म (कमल) की नांई है, तुम्हारे शरीरमें पद्मकी समान गन्ध है, तुम्हारे दोनों नेत्र पद्मकी नांई शोभायमान हो रहे हैं । तुम्हारे हाथभी (लाल) पद्मकी समानहैं, तुम्हारे हाथमेंभी पद्म है । इन्हीं लक्षणोंसे हमको जान पडता है कि; तुम दूसरी लक्ष्मीहो ॥ १७ ॥

किं धात्रा सर्व्वजगतां रूपालावण्यसम्पदाम् ।
निर्मितासि वरारोहे ! जीवानां मोहकारिणि ! ॥ १८ ॥

हे वरारोहे ! तुम समस्तजीवोंकी मोहनेवालीहो, हमें जानपडता है कि, विधाताने सारे संसारकी रूप लावण्यराशि इकट्ठी करके तुमको बनाया होगा ॥ १८ ॥

इति भाषितमाकर्ण्य कीरस्यामितमद्भुतम् × ॥
हसन्ती प्राह सा देवी तं पद्मा पद्ममालिनी ॥ १९ ॥

तोतेके ऐसे अनसुने अद्भुत वचन सुनकर, पद्मकी माला पहिरे हुए पद्मा हँसकर बोली ॥ १९ ॥

कस्त्वं कस्मादागतो सि कथं मां शुकरूपधृक् ।
देवो वा दानवो वा त्वमागतोऽसि दयापरः ॥ २० ॥

तुम कौन हो ? कहांसे आयेहो, तुम शुकरूपधारी देवता हो या दैत्य हो ? तुम दयावान् होकर किस निमित्त हमारे पास आये हो ? ॥ २० ॥

शुक उवाच ।

सर्व्वज्ञोऽहं कामगामी सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
देवगन्धर्व्वभूपानां सभासु परिपूजितः ॥ २१ ॥

शुक बोला; मैं सर्वज्ञ और सब शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवालाहूं मैं कामगामी अर्थात् जब जहां इच्छा होतीहै तबहीं तहां जा सकता हूं । देवसभा, गन्धर्व सभा और राजसभामें हमारा भलीभाँति सन्मान और आदर है ॥ २१ ॥

चरामि स्वेच्छया खे त्वामीक्षणार्थमिहागतः ।
त्वामहं हृदि संतप्तां त्यक्तभोगां मनस्विनीम् ॥ २२ ॥

मैं इच्छानुसार आकाश मार्गमें घूमा करताहूं । अब तुमको देखनेके लिये यहां आयाहूं । तुम श्रेष्ठ हृदयवाली होकरभी इस समय हृदयमें अत्यन्त सन्ताप युक्त हो और भोग सुखसे विमुख हुई हो ॥ २२ ॥

× कीरस्यामृतमद्भुतम् इति वा पाठः ।

हास्यालाप-सखीसङ्ग-देहाभरण-वर्ज्जिताम् ।
विलोक्याहं दीनचेताः पृच्छामि श्रोतुमीरितम् ।
कोकिलालाप-सन्तापजनकं मधुरं मृदु ॥ २३ ॥

हास्य, परिहास, किसीके साथ बोलना, चालना, सखियोंका संग, और शरीरके गहने यह सब तुमने छोड़ दिए हैं। मैं तुम्हारी ऐसी अवस्था देख दीनचित्तवालाहो, कोयलके बोलसेभी मधुर और मृदु तुम्हारे वचन श्रवण करनेके लिये (तुम्हारे संतापका कारण) पूछताहूं ॥ २३ ॥

तव दन्तौष्ठजिह्वाग्रलुलिताक्षरपङ्क्तयः ।
यत्कर्णकुहरे मग्नास्तेषां किं वर्ण्यते तपः ॥ २४ ॥

तुम्हारे दांत, अधर और जिह्वाग्रसे निकली हुई अक्षरोंकी पांति जिसके कानोंमें पडे तिसकी तपस्याका कहांतक वर्णन करूं ॥ २४ ॥

सौकुमार्य्यं शिरीषस्य क्व कान्तिर्वा निशाकरे ।
पीयूषं क्व वदन्त्येवानन्दं ब्रह्मणि ते बुधाः ॥ २५ ॥ *

तुम्हारे सामने शिरषके फूलकी सुकमारता और चन्द्रमाकी कान्ति फीकी है। पंडितलोग अमृत और ब्रह्मानंदकी प्रशंसा किया करतेहैं; परन्तु सो भी तुम्हारे आगे अतिसाधारणहैं ॥ २५ ॥

तव बाहुलताबद्धा ये पास्यन्ति सुधाननम् ।
तेषां तपोदानजपैर्व्यर्थैः किं जनयिष्यति ॥ २६ ॥

जो पुण्यवान् पुरुष तुम्हारे कोमल बाहुरूपी पाशमें बँधकर तुम्हारे चंद्रसमान वदनकी अमृतधाराको पियेगा, तिसके लिये तप, दान, जपादि धर्म कर्म अत्यन्त तुच्छहैं, क्योंकि धर्म कर्म करनेसे कुछ इससे अधिक सुखकारी पदार्थका होना सम्भव नहीं ॥ २६ ॥

तिलकालकसंमिश्रं लोलकुण्डलमण्डितम् ।
लोलेक्षणोल्लसद्वक्त्रं पश्यतां न पुनर्भवः ॥ २७ ॥

हे सुन्दरि ! तुम्हारे वदनमण्डलपर तिलक और अलकें शोभायमानहैं दो चंचल कुन्तलोंसे मुखकी शोभा बढतीहै, विलोल लोचनसे सुन्दरताई

* ब्रह्मणि तेऽधुना इति वा पाठः ।

खिल रहीहै । अनन्त शोभाके भवनरूप तुम्हारे मुखकमलको जो देखेगा तो उसका दूसरा जन्म होना संभवनहीं ॥ २७ ॥

बृहद्रथसुते ! स्वाधिं वद भामिनि यत्कृते । ×
तपःक्षीणामिव तनुं लक्षयामि रुजं विना ।
कनकप्रतिमा यद्वत् + पांसुभिर्मलिनीकृता ॥ २८ ॥

हे बृहद्रथकी पुत्रि ! इस समय तुम्हारे मानसिक दुःखका क्या कारण है ? कहो । हे भामिनि ! इस समय मानसिक दुःख करके तुम्हारा यह शरीर, पीडाके विनाभी तपसे क्षीण हुएकी समान दिखाई देताहै । विशेष करके सुवर्णकी प्रतिमा धूरिसे मलीन होनेपर जैसी दीखतीहै तैसेही (तुम्हारा यह शरीरभी मलीन होगयाहै) ॥ २८ ॥

पद्मोवाच ।

किं रूपेण कुलेनापि धनेनाभिजनेन वा ।
सर्व्वं निष्फलतामेति यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ २९ ॥

पद्मा बोली, जिसपर भगवान् विष्णुजी अनुकूल नहीं हैं; तिसका रूप, कुल, धन, ऊंचे वंशमें जन्मादि सबही विलफहै ॥ २९ ॥

शृणु कीर । समाख्यानं ×यदि वा विदितं तव ।
बाल्य-पौगण्ड-कैशोरे हरसेवां करोम्यहम् ॥ ३० ॥

हे कीर ! हमारा वृत्तान्त जो तुम न जानतेहो तो सुनो । मैंने पौगण्ड ❋ बाल्य और किशोर अवस्थामें शिवजीकी पूजाकीथी ॥ ३० ॥

तेन पूजाविधानेन तुष्टो भूत्वा महेश्वरः ।
वरं वरय पद्मे ! त्वमित्याह प्रियया सह ॥ ३१ ॥

× वद भाविनि ! यत् कृतम् इति पाठान्तरम् ।

+ कनकप्रतिमं तद्वत् इत्यपरे पठन्ति । × शृणु कीर ! ममाख्यानम् ।

❋ कोई २ कहतेहैं कि, पांच वर्षसे लेकर १६ वर्षतककी उमरका नाम पौगण्ड हैं । ११ वर्षसे लेकर पंद्रह वर्षतक किशोर अवस्थाहै । जन्म होनेसे पांच वर्षतक शैशवावस्थाहै । ६ वर्षसे लेकर १० ॥ वर्षतक बाल्यावस्थाहै । यौवन १७ वर्षसे लेकर ३५ वर्षतकहै । ३६ से लेकर पचास वर्षतक प्रौढ दशा है । ५१ से लेकर ७० तक वृद्धदशा है । ७१ से लेकर शेषायु तक अतिवृद्ध दशा है ।

उस पूजासे महादेवजीने संतुष्टहो पार्वतीके साथ आयकर कहा, हे पद्मे ! तुम बर मांगो ॥ ३१ ॥

लज्जयाऽधोमुखीमग्रे स्थितां मां वीक्ष्य शङ्करः ।
प्राह ते भविता स्वामी हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ ३२ ॥

फिर उन्होंने हमें सामने खड़ी और लाजसे नीचेको मुख किये हुए देखकर कहा कि, प्रभु नारायण हरि तुम्हारे स्वामी होंगे ॥ ३२ ॥

देवो वा दानवो वान्यो गन्धर्व्वो वा तवेक्षणात् ।
कामेन मनसा नारी भविष्यति न संशयः ॥ ३३ ॥

देव, दानव, गन्धर्व या और जो कोई सकाम हृदयसे तुमको देखेगा, वह तत्काल नारीरूपको प्राप्त होजायगा ॥ ३३ ॥

इति दत्त्वा वरं सोमः प्राह विष्णवर्च्चनं यथा ।
तथाहं ते प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ ३४ ॥

यह वर देकर भगवान् महेश्वरने विष्णुपूजाका जैसा प्रकरण बतादियाहै, सोभी तुमसे कहतीहूँ सावधान चित्तसे सुनो ॥ ३४ ॥

एताः सख्यो नृपाः पूर्व्वमाहृता ये स्वयंवरे ।
पित्रा धर्म्मार्थिना दृष्ट्वा रम्यां मां यौवनान्विताम् ॥ ३५ ॥

यह जो हमारी सखियोंको देखतेहो, यह सब पहले राजाथे, हमारे पिताने हमको यौवनकी सीमासे उत्तीर्ण और रमणीय आकारसे युक्त देख धर्मकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे इन सब राजाओंको हमारे स्वयम्बर स्थानमें इकट्ठा कियाथा ॥ ३५ ॥

स्वागतास्ते सुखासीना विवाहकृतनिश्चयाः ।
युवानो गुणवन्तश्च रूपद्रविणसम्मताः ॥ ३६ ॥

यह लोग युवा, गुणवान्, रूपवान् और अतुल ऐश्वर्य से युक्तथे । यह लोग मेरे साथ विवाह करनेकी वासना करके सुखसे आये और स्वयम्वर की सभामें सुखसे बैठे ॥ ३६ ॥

स्वयंवरगतां मां ते विलोक्य रुचिरप्रभाम्।
रत्नमालाश्रितकरां निपेतुः काममोहिताः ॥ ३७ ॥

तब मैं हाथमें रत्नमाल ग्रहण करके मनोहर प्रभाको विस्तार करती हुई स्वयंवरके स्थानमें आई। राजालोग मुझको देखतेही कामदेवके बाणसे जर्जर शरीर हो पृथ्वीपर गिरे ॥ ३७ ॥

तत उत्थाय सम्भ्रान्ताः संप्रेक्ष्य स्त्रीत्वमात्मनः।
स्तनभारानितम्बेन गुरुणा परिणामिताः ॥ ३८ ॥

फिर वे हडबडायकर उठे तो देखा कि, सब शरीरमें स्त्रियोंके चिह्न होगये हुएहैं। भारी नितम्ब और बडे दो पयोधर शोभायमान होरहेहैं ॥ ३८ ॥

ह्रिया भिया च शत्रूणां मित्राणामतिदुःखदम्।
स्त्रीभावं मनसा ध्यात्वा मामेवानुगताः शुक ॥ ३९ ॥

हे शुक! इसके उपरान्त वे अपना स्त्रीभाव प्रत्यक्ष देखकर शत्रु या मित्र सबकेही निकट लाज और भयके मारे (फिर मुँह दिखाने की इच्छा न करते हुए) तदुपरान्त वह अंतः करणमें दुःखित हो कुछ काल तक मनहींमन सोच विचार मेरेही साथ होलिये ॥ ३९ ॥

परिचर्य्यो हररताः सख्यः सर्व्वगुणान्विताः।
मया सह तपो ध्यानं पूजां कुर्व्वन्ति सम्मताः ॥ ४० ॥

इस समय यह हमारी सखी हुएहैं, सर्व गुणोंसे विभूषित यह लोग हमारे स्नेहके पात्रहैं। यह हमारे साथ विष्णुजीकी पूजा, विष्णुजीका ध्यान और तप करतेहैं ॥ ४० ॥

तदुदितमिति संनिशम्य कीरःश्रवणसुखं निजमानसप्रकाशम्।
समुचितवचनैः प्रतीक्ष्य पद्मासुरहरयजनं पुनः प्रचष्टे ॥ ४१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये शुकपद्मा-
संवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अपनी मानसिक इच्छाके अनुरूप, श्रवण सुखदाई पद्माके यह वचन सुनकर तोतेने कथाके उचित प्रसंगसे उसको संतुष्ट किया, इसके उपरान्त

(फिर) विष्णु पूजा (१) विषयक कथाको उठाता हुआ ॥ ४१ ॥ इति सानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्यशुकपद्मासम्वादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः।

शुक उवाच ॥ विष्णवर्च्चनं शिवेनोक्तं श्रोतुमिच्छाम्यहं शुभे ।
धन्यासि कृतपुण्यासि शिवशिष्यत्वमागता ॥ १ ॥

---

१ जो देवता विश्वमें व्याप्त होरहेहैं, वही विष्णुहैं; जो देवता विश्वको प्रसन्न करतेहैं, वही विष्णु है; संस्कृत भाषामें धातु और व्याकरणकी सहायतासे अनेक अर्थ होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, यह अचिन्त्य शक्ति परात्पर भगवानकाही नाम है । विष्णुपुराणका मतहै कि, प्रलयके समय समस्त संसारकी श्रीनारायणजीके शरीरमें लय होजाता है, इसी कारणसे इनका विष्णुनाम हुआ है। यथाः—

यस्माद्विश्वमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः । तस्मादेवोच्यते विष्णुः विशधातोः प्रवेशनात् ॥

अर्थात्—उस महात्मा देवताकी शक्तिसे यह विश्व (तिसमें) " प्रविष्ट होताहै " विशधातुका प्रवेशनरूप अर्थग्रहण करनेसे, ऐसा अर्थ होता है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें कहा हैः—

न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि ।
तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुर्व्वेति प्रकीर्त्यसे ॥ (प्रकृतिखण्ड २४ अध्याय)

यह भगवान् विष्णुजी रजोगुणप्रधान होकर सृष्टि करते, सत्वगुणप्रधान होकर पालन करते और तमोगुणप्रधान होकर ध्वंस करते हैं; यथाः—

रजोगुणमयं चान्यं रूपं तस्यैव धीमतः । चतुर्मुखः स भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्त्तते ॥
सृष्टञ्च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतो मुखः । सत्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरःस्वयम् ॥
अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः । तमोगुणं समाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत् ॥
एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः । सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः ॥
(कूर्मपुराण ४ अध्याय)

अर्थात् उन शक्तिमान् भगवानका रजोगुणमें चतुर्मुख रूप है । वह चतुर्मुख (ब्रह्मकी मूर्ति) जगत्की सृष्टि करने लगा । विश्वेश्वर श्रीहरि आपही सत्वगुणका अवलम्बन कर विश्वमुख विश्वात्मा विष्णुरूपसे उत्पन्न हुए समस्त लोकोंका पालन करते हैं । तदनन्तर प्रलयकालमें वही सर्वान्तर्यामी परमेश्वर तमोगुणका आश्रय करके रुद्ररूपसे सारी सृष्टिका संहार करते हैं। वह निरंजन महादेवजी एकरूप होनेपरभी, त्रिविधरूपसे विराजमानहो सृष्टि, स्थितिऔर प्रलय इन तीन गुणसे त्रिरूप हुए हैं ॥ अग्निपुराणमें कहा हैः—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद्ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः । सन् संज्ञा याति भगवान् एक एव जनार्दनः ॥
ब्रह्मत्वे सृजते चैव विष्णुत्वे पाति नित्यशः । रुद्रत्वे चैव संहर्त्ता एको देवस्त्रिधा स्मृतः ॥
(अग्नि पु० सर्गानुशासन अध्याय)

अर्थात् केवल एक भगवान् जनार्दनही सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं; इसी कारणसे ब्रह्म विष्णु, महेश यह रूपत्रयात्मकहो उसनेही तीन संज्ञा पाई है । केवल एक वही देवता तीन रूपसे रहकर ब्रह्मरूपसे सृष्टि, विष्णुरूपसे पालन और रुद्ररूपसे संहार करते हैं ॥

अब यह प्रमाणित होगया कि,भगवानकी सत्वगुणमयी पालन करनेवाली मूर्तिही विष्णुहैं ।

शुकने कहा, हे कल्याणि ! महादेवजीने तुमसे जो विष्णुपूजाकी पद्धति कहीहै, मेरी इच्छाहै कि, तिसको सुनूं। हे पद्मावति! तुम प्रशंसाके योग्य-हो, तुमने) पूर्वजन्ममें) बहुत पुण्य संचय कियाथा, इसी कारण शिवकी शिष्या हुईहो ॥ १ ॥

अहं भाग्यवशादत्र समागम्य तवान्तिकम् ॥
शृणोमि परमाश्चर्य्यं कीराकारनिवारणम् ॥ २ ॥

मैं भाग्यसेही आज तुम्हारे समीप आ पहुँचाहूं। अब मैं तुमसे परम आश्चर्य (विष्णुजीकी पूजाकी रीति) श्रवण करूंगा। तिसके श्रवण करनेसे मुझको पक्षीकी फिर देह नहीं धारण करनी पडैगी ॥ २ ॥

भगवद्भक्तियोगश्च जपध्यानविधिं मुदा।
परमानन्द-सन्दोह-दान-दक्षं श्रुतिप्रियम् ॥ ३ ॥

जिससे भगवानके प्रति भक्तिहो; जिस प्रकारसे विष्णुजीका ध्यान और जप करना चाहिये, इस विष्णुपूजाप्रकरणमें तिसकीही विधिहै। यह विष्णुपूजा प्रकरण सुननेमें मधुर और परमानन्दके समूहका देनेवालाहै ॥ ३ ॥

पद्मोवाच ॥ श्रीविष्णोरर्च्चनं पुण्यं शिवेन परिभाषितम्।
यच्छ्रद्धयानुष्ठितस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥ ४ ॥

पद्मा बोली, शिवजीकी कही हुई विष्णुपूजा–पद्धति अत्यन्त पवित्रहै। इसको श्रद्धापूर्वक श्रवण करने, अनुष्ठान करने या कहनेसे ॥ ४ ॥

सद्यः पापहरं पुंसां गुरुगोब्रह्मघातिनाम्।
समाहितेन मनसा शृणु कीर यथोदितम् ॥ ५ ॥

मनुष्यका गोहत्या गुरुहत्या और ब्रह्महत्यासे उत्पन्न हुआ पाप शीघ्र दूरहो-जाताहै। हे विहंगम ! महादेवजीने विष्णुजीकी जिस पूजाका वर्णन किया है, इस समय मैं तिसको तुमसे कहतीहूं, सावधानचित्तसे श्रवण करो ॥ ५ ॥

कृत्वा यथोक्तकर्माणि पूर्व्वाह्णे स्नानकृच्छुचिः।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च स्पृष्ट्वापः स्वासने वसेत् ॥ ६ ॥

प्रातःकाल स्नानकर नित्य कर्म समाप्त करनेके पीछे पवित्रहो, हाथ पांव धो

जल×स्पर्श करनेसे पश्चात् मनुष्यको चाहिये कि अपने÷आसनपर बैठे ॥६॥

× जल स्पर्श करके ऐसा कहनेसे समझा जाता है कि, जलसे स्नान करके या मस्तकादि अंगपर जलके छींटे देकर पवित्रहो आसनपर बैठे । पांव धोने पर दिङ्निरूपण;-यथा;-" प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेच्छनैः । उदङ्मुखो वा दैवत्ये पैतृके दक्षिणामुखः"

(आह्निकतत्त्व)

÷ आसन-पूजाकेलिये बैठनेका स्थान । आसननिरूपण यथा;-

"धरण्यां दुःखसम्भुतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने । आम्रनिम्बकदम्बानामासने सर्वनाशनम् ॥
उपविश्यासने रम्ये कृष्णाजिनकुशोत्तरे । राङ्कवे कम्बले वापि काशादौ व्याघ्रचर्मणि ॥
नकुर्य्यादर्चनं विष्णोः शिवे काष्ठासनादिषु । काष्ठासने वृथा पूजा पाषाणे व्रणसम्भवः ॥
भूम्यासने गतिर्नास्ति वस्त्रासने दरिद्रता । कुशासने ज्ञानवृद्धिः कम्बले सिद्धिरुत्तमा ॥
कृष्णाजिने धनी पुत्री मोक्षः स्याद्व्याघ्रचर्मणि । मंत्रयोगं प्रकुर्वीत भोगार्थं सुखमासने ॥"

(महानिर्वाणतंत्र)

(यदि विशेष विवरण देखनेकी इच्छा होतो मेरा किया हुआ महानिर्वाणतंत्रका अनुवाद देखो; जो कि, इसी "श्रीवेङ्कटेश्वर"यंत्रमें मूलसहित छपाहै) आसनपरिमाणं यथा;-

"नैताद्विहस्तदो दीर्घं सार्द्धहस्तान्न विस्तृतम् । न त्र्यंगुलात्समुच्छ्रायं पूजाकर्मणि संग्रहे ॥
आसनञ्च ततः कुर्य्यान्नाति नीचं नचोच्छ्रितम् ॥" (महानिर्वाणतंत्र)

आसनपर पांव रखनेकी प्रथा । यथा;-

"किञ्चित्स्पृशन्वामशाखां वामपादपुरःसरम् ।
स्मरन्देव्याः पदाम्भोजं मण्डपं प्रविशेत्सुधीः"॥ (महानिर्वाणतंत्र)

आसनपर बैठनेकी विधि; यथाः-

"आसनेभ्यः समस्तेभ्यः साम्प्रतं द्वयमुच्यते ।
एकं सिद्धासमं नाम द्वितीयं कमलासनम् ॥ " (महानिर्वाणतंत्र)

बहुधा वैदिकक्रियाकर्ममें स्वस्तिकासनका व्यवहार है । स्वस्तिकासन,-

"जानूर्व्वोरन्तरे सम्यक् धृत्वा पादतले उभे ।
समकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥" (शिवसंहिता)

आसनपर बैठनेमें दिङ्निरूपण;-

" अन्तर्जानु शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः । प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥
स्नातः शुक्लाम्बरधरः स्वाचान्तः पूर्वदिङ्मुखः । प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥"

(शिवसंहिता)

आसनशुद्धिका मंत्र;-

"ॐ पृथिवित्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्"

आसनकी पूजाका मंत्रः- "ॐ आधारशक्तये कमलासनाय नमः ।"

अंगन्यास-पूजा जपादिके प्रथम विघ्ननाशके लिये विविध कर्त्तव्य विशेष । इसको न्यासभी कहते हैं । यह मातृकान्यास, षडङ्गन्यासादि अनेक प्रकारकेहैं ।(तंत्रसार) संगीत शास्त्रमें जहां न्यासशब्द आवै तहां राग रागिनीके स्वरको समझना चाहिये । यथा;-

" न्यासः स्वरस्तु विज्ञेयो यस्तु गीतसमापकः । " (संगीतसारसंग्रह)

प्राचीमुखः संयतात्मा साङ्गन्यासं प्रकल्पयेत ।
भूतशुद्धिं ततोऽर्घ्यस्य स्थापनं विधिवच्चरेत् ॥ ७ ॥

फिर आत्माको वशमें कर पूर्वकी ओर मुखकर अंगन्यास भूतशुद्धि और विधिपूर्वक अर्घ्यस्थापन करे ॥ ७ ॥

ततः केशवकृत्यादिन्यासेन तन्मयो भवेत् ।
आत्मानं तन्मयं ध्यात्वा हृदिस्थं स्वासने न्यसेत् ॥ ८ ॥

तदुपरान्त केशवकृत्यादि न्याससे तन्मयहो अपनेको विष्णुमय विचार, हृदयमें स्थित हुए विष्णुजीको मनसे कल्पित किये आसनपर स्थापित करे ॥ ८ ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ।
यथोपचारैः संपूज्य मूलमन्त्रेण देशिकः ॥ ९ ॥

देशिक (१) यथायोग्य उपचारसे पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय और स्नानीयजल, पहरनेके वस्त्र और भषणादि देकर मूलमंत्रसे पूजा करे ॥९॥

ध्यायेत्पादादिकेशान्तं हृदयाम्बुजमध्यगम् ।
प्रसन्नवदनं देवं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ॥ १० ॥

अनन्तर जो देवता भक्तके हृदयपद्ममें विहार करेहैं, जो भक्तोंकी मनोकामनाओंको सफल करेहैं, उन प्रसन्न वदन भगवान्का श्रीचरणसे लेकर केशकलापतक ध्यान करें ॥ १० ॥

ओं नमो नारायणाय स्वाहा ।

योगेन सिद्धविबुधैः परिभाव्यमानं लक्ष्म्यालयं
तुलसिकाञ्चितभक्तभृङ्गम् । प्रोत्तुङ्गरक्तनखरांगु-
लिपत्रचित्रं गङ्गारसं हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ॥ ११ ॥

(ध्यानके समाप्त होजानेपर " ओंनमो नारायणायस्वाहा । " यह पढकर नीचे लिखा स्तोत्र पढना चाहिये) योगसे सिद्धहुए पंडित लोग

(१) देशिक शब्दका अर्थ उपदेशक है। यहांपर जो मंत्रसे उपदेश (उच्चारण या शिक्षा) करे वहीं देशिक है। भावार्थ पूजक।

सदा जिनका ध्यान करतेहैं, जो लक्ष्मीके आश्रयहैं, जिनके भक्तरूप मोरे तुलसीसे व्याप्त रहतेहैं; जिनके अत्यन्त लालवर्ण—नखयुक्त अंगुलिरूप पत्रोंसे गंगाजल चित्रित होरहाहै, नारायणजीके ऐसे चरण कमलका आश्रय ग्रहण किया ॥ ११ ॥

गुम्फन्मणिप्रचयघट्टितराजहंससिञ्चत्सुनूपुरयुतं
पदपद्मवृन्तम् । पीताम्बराञ्चलविलोलवलत्पता-
कं स्वर्णत्रिवक्रवलयञ्च हरेः स्मरामि ॥ १२ ॥

जिन श्रीचरणोंमें गुंथेहुए मणिमालासे बने व हंसकी बोलीके समान शब्द करनेवाले सुन्दर नुपूर विराजमानहैं, जिन चरणोंमें पीताम्बरका अंचल भाग चंचल पताकाकी समान जान पडताहै, जिन चरणोंमें सुवर्णमय त्रिवक्र नामक वलय विभूषण बँधेहैं, उन चरणरूप कमल वृन्तका स्मरण करताहूं ॥ १२ ॥

जंघे सुपर्णगलनीलमणिप्रवृद्धे शोभास्पदारुण-
मणिद्युतिचंचुमध्ये । आरक्तपादतललम्बनशो-
भमाने लोकेक्षणोत्सवकरे च हरेः स्मरामि ॥ १३ ॥

गरुड़जीके कंठभूषण नीलकान्त मणिके प्रभासे जिन जंघाओंकी (कान्ति) बढीहै, लालतलुए जिन जंघाओंके (नीचे) विलम्बित होकर विराजमान होरहेहैं । जिन दोनों जंघाओंके मध्यदेशमें परम रमणीय अरुणमणिके समान लाल और कान्तियुक्त गरुडजीकी चोंच शोभायमान होरहीहै, नारायणजीके लोचन रंजन उन दोनों जंघाओंका स्मरण करताहूं ॥ १३ ॥

ते जानुनी मखपतेर्भुजमूलसङ्गरङ्गोत्सवावृतत-
डिद्वसने विचित्रे । चञ्चत्पतत्रमुखनिर्गतसामगीत-
विस्तारितात्मयशसी च हरेः स्मरामि ॥ १४ ॥

चंचल गरुडजी साम गाकर जिनका यश गातेहैं, उत्सवके समयमें पहिरे हुए, कंधेपें समर्पित बिजलीकी समान सुन्दर वस्त्रके विचित्र रंगकी प्रभासे

जो दोनों जांघे रंग रहीहैं; श्रीनारायणजीके उन दोनों विचित्र जानुओंका स्मरण करताहूं ॥ १४ ॥

विष्णोः कटिं विधिकृतान्तमनोजभूमिं जीवाण्ड-
कोचगणसंगदुकूलमध्याम् । नानागुणप्रकृतिपी-
तविचित्रवस्त्रां ध्यायेन्निबद्धवसनां खगपृष्ठसंस्थाम् ॥ १५ ॥

जो विधाता, यम और कामदेवका आधारहै (१) अर्थात् जो सृष्टि स्थिति और लयकी कारणहै; त्रिगुणयुक्त प्रकृति पीत और विचित्र वस्त्र रूपसे जहांपर विराजमान रहतीहै, जीवोंके बीजका आधार—युक्त दुपट्टा जहांपर शोभा पाताहै, गरुडजीकी पीठपर स्थित विष्णुजीकी उस कमरका ध्यान करताहूं ॥ १५ ॥

शातोदरं भगवतस्त्रिवलिप्रकाशमावर्त्तनाभि-
विकसद्विधिजन्मपद्मम् । नाडीनदीगणरसोत्थ-
सितान्त्रसिन्धुंध्यायेऽण्डकोशनिलयं तनुलोमरेखम् ॥ १६ ॥

जिसमें त्रिवलिशोभा पाय रहीहै, जहांपर भँवरकेसमान नाभिसरोवरमें ब्रह्माका जन्मस्थान रूप कमल (२) खिल रहाहै । जिस स्थानमें

---

(१) विष्णुजीकी कमरमें कन्दर्प (काम) यम (मृत्युपति) धाता (ब्रह्मा) इन तीन देवताओंका आधार (वासस्थान) है । इसका वैज्ञानिक भाव यह है कि, कमरही वीर्यका आधारहै । पहले इसी अधारमें कामोद्भव होताहै । फिर ब्रह्माजीके द्वारा उस वीर्यमें जीव सृष्टिका वीर्य उत्पन्न होताहै, जब वह नारीगर्भमें पडता है तब जीवकी उत्पत्ति होती है, पीछे यम अर्थात् मृत्युपति वा मृत्युके द्वारा जीवका नाश होजाताहै; जीवका आगार—वीर्य पूर्ण कटिदेश जीवका आदि वासस्थान है ।

(२) प्रलयके पीछे पृथ्वी जलमय होगईथी । भगवान् नारायणजी उस जलमें शयन किये हुएथे। तिस समय उनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ, तिस्से ब्रह्माने जन्म लिया; इसी कारण ब्रह्माको पद्मयोनि कहते हैं । ब्रह्माने जन्मलेकर चारों ओर देखनेकी इच्छा की, वह जिस ओर देखनेकी इच्छा करते उसी ओर उनके एक मुख निकल आता; इस प्रकार उनके चार मुख हुए । संस्कृत शास्त्रमें ऐसाही उपाख्यान लिखाहै । श्रीमद्भागवतमें कहाहै ।

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।
नाभिह्रदम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ (१ स्कन्ध, ३ अ० २ श्लो०)

यहांपर जो नाभिपद्मका वर्णनहै कल्किपुराणके इस स्थलमें निःसन्देह तिसकीही सूचनाहै ।

नाडीरूप नदियोंके रससे अम्बरूप समुद्र उल्लासित होताहै जो ब्रह्माण्डका आधारहै जिसमें छोटे २ रुओंकी राशि शोभाममान होरहीहै, मैं भगवानके ऐसे क्षीण उदरका स्मरण करताहूं ॥ १६ ॥

वक्षः पयोधितनयाकुचकुङ्कुमेन हारेण कौस्तुभमणिप्रभया विभातम् । श्रीवत्सलक्ष्म हरिचन्दनजप्रसूनमालाचितं भगवतः×सुभगं स्मरामि ॥ १७ ॥

जिस हृदयमें सागर-कुमारी लक्ष्मीजीका कुचकुंकुम लगरहाहै, कंठहार और कौस्तुभमणिकी (१) दीप्तकान्तिसे जो कान्तिमान् होरहाहै, जिस हृदयमें श्रीवत्स चिह्न शोभयमान होरहाहै (२) जिस वक्षस्थलमें

× हरसंवरणप्रसूनमालाचितम् इति पाठान्तरम् ।

(१) देवताओंने अमृत प्राप्तिकी अभिलाषासे समुद्रको मँथा था । समुद्रके मथनेसे पहले चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई । क्रम २ से लक्ष्मी और सुरादेवीकी उत्पत्ति हुई थी । फिर;–

कौस्तुभस्तु मणिर्दिव्य उत्पन्नो घृतसम्भवः ।
मरीचिकिकचः श्रीमान्नारायण उरोगतः ॥ (महाभारत, आदि० १५ अ० ३७ श्लो०)

अर्थात् घृतसम्भव श्रीमान् दिव्यकौस्तुभमणिकी उत्पत्ति हुई । उसमें किरणें निकल रहीथीं । नारायणजीके हृदयमें कौस्तुभ पहरी गई ।

कौस्तुभके पीछे अनेक पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई । तिनका लिखना यहां व्यर्थ है । इस प्रकार कौस्तुभका जन्म हुआ । यह अति विख्यात रत्न है । शब्दकल्पद्रुममें लिखाहै । यथा;–

कौस्तुभस्तु महातेजाः कोटिसूर्यसमप्रभः ।
इदं किमुत वक्तव्यं प्रदीपाद्दीप्तिमानिति ॥ (भागवतामृतम्)

अर्थात् कौस्तुभ अतिशय तेजस्वी, कोटिसूर्यके समान प्रभावाला; प्रदीपसे अधिक दीप्तिमान् है । इससे अब अधिक क्या कहाजाय ?

इसीसे कौस्तुभ विख्यात है, परन्तु केवल इसी कारणसे कौस्तुभका गौरव नहीं बढा है । नारायणजीने यत्नसे हृदयमें धारण कर रक्खा है । यही कारण है जो संस्कृत शास्त्रमें कौस्तुभकी अनन्त प्रशंसा है ।

(२) श्रीवत्स माङ्गल्यचिह्नविशेष । कोशकार हेमचन्द्र कहता है कि, श्रीवत्स विष्णुजीका चिह्नविशेषहै, सो वक्षःस्थ शुक्लवर्ण, दक्षिणावर्त्त, रोमावली है । पंडित कृष्णदास कहताहै कि कौस्तुभकी समान और किसी मणि विशेषका नाम श्रीवत्स है ।

हरिचन्दन वृक्षके (१) फूलोंकी माला डोलरहीहैं, परम मनोहर भगवानके उस वक्षस्थलका स्मरण करताहूं ॥ १७ ॥

बाहू सुवेशसदनौ वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुरित-
दैत्यविनाशदक्षौ । तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासु-
नाभतेजोर्जितौ सुललितौ मनसा स्मरामि ॥ १८ ॥

श्रेष्ठवेशकी भगवद्रूप जिन दोनों बाहोंमें वलय, अंगद (२) आदि सुन्दर भूषण शोभायमान होरहेहैं; जिनबाहोंके विक्रमसे बहुतसे दानव मरेहैं; जिन दोनों बाहोंकी प्रभासे गदा (३) और चक्र (४) का तेज मलीन हुआहै; मनहीमनमें भगवानकी उन सुललित दाहिनी दो बाहोंका ध्यान करताहूं ॥ १८ ॥

वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतपद्मशंखौ श्यामौ करीन्द्रकर-

---

(१) देववृक्षविशेष । स्वर्गके नंदन काननमें पांच मनोहर देववृक्ष हैं; उनमेंसेही एकका नाम हरिचन्दन है । यथा;-

पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः ।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥ (अमरकोष, स्वर्गवर्ग)

यह कई वृक्ष देववृक्ष नामसे प्रसिद्ध हैं । इनको वृक्षोंका राजाभी कहा जा सकताहै । संस्कृत साहित्यमें देववृक्षका आदर अत्यन्त दिखाई देता है । जहां किसी देवानुग्रहीत पुरुषने किसी प्रकारका श्रेष्ठ कार्य किया कि, वैसेही स्वर्गसे देव-वृक्षके फूलोंकी वर्षाके होनेका वर्णन जहां तहां लिखा है ।

(२) " रत्न विचित्रित सिंहमुखाकार लम्बनयुक्त बाहुभूषणका नाम केयूर हैं । कोहनीके उपरि भागमें जो " तावीज " और " बाजू " पहरते हैं सोई पूर्व समयका केयूर है । आजकल इसको " वाहुचट " या " बाजूबन्द " कहते हैं । डोरा न होनेसे अंगदभी कहा सकताहै । यह अंगद वा आजकालका बघमुखा, अनन्त, प्रायः समानहैं । पहले इसमें मोती जड़े जातेथे । यथा;-

"सुवर्णमणिविन्यस्तमुक्ताजालकमङ्गदम् । "

(डॉक्टर रामदासजीका रत्नरहस्य)

(३) विष्णुजीकी गदाका नाम कौमोदकी है ।

(४) विष्णुजीके चक्रका नाम सुदर्शन है । यथा;-

शंखो लक्ष्मीपतेः पाञ्चजन्यश्चक्रं सुदर्शनम् ।
कौमोदकी गदा खड्गो नन्दकः कौस्तुभो मणिः ॥ (अमरकोष, स्वर्गवर्ग)

लक्ष्मीपति विष्णुजीके शंखका नाम पांचजन्य है, चक्रसुदर्शन, गदाकौमोदकी, खड्ग नन्दक और मणिका नाम कौस्तुभ है ।

वन्मणिभूषणाढ्यौ । रक्ताङ्गुलिप्रचयचुम्बितजानुमध्यौ पद्मालयाप्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ॥१९॥

जिन दो बांई भुजाओंमें शंख और पद्म धारितहैं; हाथीकी शुण्डके समान, साँवरे रंगकी जिन दोनों बाहोंमें मणिमय विभूषण पहिरेहैं, लाल २ उंगलियें (जो बांहके अग्रभागसे लम्बित होकर) जानुके चुम्बन करतीहैं; कमलपर बैठी हुई पद्माके मनको प्रसन्न करनेवाली, रुचिर दर्शन भगवानकी इन दोनों बाहोंका स्मरण करताहूं ॥ १९ ॥

कण्ठं मृणालममलं मुखपङ्कजस्य लेखात्रयेण वनमालिकया निवीतम् । किंवा विमुक्तिवशमन्त्रकसत्फलस्य वृन्तं चिरं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥ २० ॥

जो कंठ भगवानका निर्मल मृणालस्वरूपहै; जिसकंठमें तीनरेखा और वनमाला विराजमानहै; जो कंठ मोक्षदशामें स्थितके मंत्ररूप रमणीय फलका वृन्त (झब्बा) रूपहै; भगवानके उस सुन्दर कण्ठका निरन्तर स्मरण करताहूं ॥ २० ॥

वक्त्राम्बुजं दशनहासविकाशरम्यं रक्ताधरौष्ठवरकोमलवाक्सुधाढ्यम् । सन्मानसोद्भवचलेक्षणपत्रचित्रं लोकाभिराममममलञ्च हरेः स्मरामि ॥ २१ ॥

लाल कमलके समान, सुन्दर लाल अधरोंसे कमनीय, हँसनेके समय दांतोंके विकाशसे परम सुन्दर, वचनरूप सुधासे युक्त, मनको प्रसन्न करनेवाले, चंचल नयन पत्र करके चित्रित, लोगोंके मनका रंजन करनेवाले नारायणजीके बदन कमलका स्मरण करताहूं ॥ २१ ॥

सूरात्मजावसथगन्धविदं सुनासं भ्रूपल्लवं स्थितिलयोदयकर्म्मदक्षम् । कामोत्सवं च कमलाहृदयप्रकाशं संचिन्तयामि हरिवक्त्रविलासदक्षम् ॥ २२ ॥

जिनसे यमराजके गृहकी गन्धभी नहीं सूंघनी पडती, जिनके निकट नासिका शोभापातीहै, जिनसे जगतकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय होतीहै, जिनसे

मदनमहोत्सव प्रगट होताहै, जिनके देखनेसे लक्ष्मीजीका हृदय प्रफुल्लहोजाता है, नारायणजीके मुखकमलपर जो शोभायमान होरहे हैं, उन भौंहके पत्रोंका स्मरण करताहूं ॥ २२ ॥

कर्णौ लसन्मकरकुण्डलगण्डलोलौ नानादिशाञ्च
नभसश्च विकासगेहौ । लोलालकप्रचयचुम्बनकु-
ञ्चिताग्रौ लग्नौ हरेर्मणिकिरीटतटे स्मरामि ॥ २३ ॥

गण्डस्थलमें चंचल मकराकार कुंडल जो शोभितहैं, जिनसे अनेक दिशा और आकाशमंडल प्रकाशित होताहै, जिनका अग्रभाग चलायमान अलक समूहके स्पर्शसे कुछेक सिकुडाहुआ जानपडताहै, जो मणिमय किरीटके किनारोंमें लगेहुएहैं, नारायणजीके ऐसे दो श्रवणका स्मरण करताहूं ॥ २३ ॥

भालं विचित्रतिलकं प्रियचारुगन्धगोरोचनारचन
या ललनाक्षिसख्यम् । ब्रह्मैकधाममणिकान्तकिरी-
टजुष्टं ध्यायेन्मनोनयनहारकमीश्वरस्य ॥ २४ ॥

श्रीनारायणजीके जिस ललाट (माथा) के किनारे मनोहर और सुगन्धित गोरोचनसे विचित्र तिलक खिंचाहै और अलकावली (१) विभूषित हुईहै; जिस माथेमें व ललनाके लोचनमें बन्धुता स्थापित होगई है; जहांपर मणिमय मुकुटकी मणिप्रभा प्रभासित होरहीहै; जो परब्रह्मका केवल भवनरूपहै; मनोहर लोचनरंजन भगवानके उसललाटका ध्यान करताहूं ॥ २४ ॥

श्रीवासुदेवचिकुरं कुटिलं निबद्धं नानासुगन्धिकुसु-
मैः स्वजनादरेण । दीर्घं रमाहृदयगाशमनं धुनन्तं
ध्यायेऽम्बुवाहरुचिरं हृदयाब्जमध्ये ॥ २५ ॥

(१) प्राचीन कालके समय माथे, गालपर चंदन व कुंकुमादि सुगन्धित पदार्थोंसे चित्रकार्य किया जाताथा । मुखपर और गालपर अनेक प्रकारके लतापत्ते बनाये जातेथे, कारीगरीसे मुखको चमत्कार किया जाताथा । आज कल जो विवाहके समय कहीं २ वर कन्याके मुखको चंदनादि सजाते हैं सो इसी रीतिका नमूना रहगया है ॥

आत्मीय भक्तोंने आदर सहित अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंके भार से जिन कुटिल केशोंको वेणी बनाय बांध दियाहै; जो (पवनके प्रवाहसे) कुछेक हिल रहेहैं; जिन केशोंकी सुन्दरताईसे कमलामना कमलाका मदनविकार शान्त होजाता है; मैं अपने हृदयकमलमें भगवानके उन लम्बित व नीले बादलकी समान रुचिर केशपाशका ध्यान करता हूं ॥२५॥

मेघाकारं सोमसूर्य्यप्रकाशं सुभ्रून्नसं चक्रचापैक
मानम्। लोकातीतं पुण्डरीकायताक्षं विद्युच्चैल-
श्चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् ॥ २६ ॥

जिनका शरीर मेघकी समानहै, जिनके, (दोनोंनेत्र) चंद्रमा और सूर्यके समान हैं, जिनकी दोनों भौंहें इन्द्रधनुषकी समान शोभितहैं। जिनका (पीत) अंबर (वस्त्र) बिजलीकी समानहै, ऐसे अपूर्वमूर्तिवाले विष्णुजीका आश्रय ग्रहण करता हूं ॥ २६ ॥

दीनं हीनं सेवया वेदवत्या पापैस्तापैःपूरितं मे
शरीरम्। लोभाक्रान्तं शोकमोहाधिविद्धं कृपादृ-
ष्ट्या पाहि मां वासुदेव ॥ २७ ॥

मैं अतिदीन और वेदमें कही हुई सेवादिसे हीन हूं। मेरा शरीर पाप तापसे भरा हुआ है, लोभसे घिरा और शोक मोह तथा मानसिक व्यथासे युक्त है। इस कारण हे वासुदेव ! कृपादृष्टिसे मेरी रक्षाकरो ॥ २७ ॥

ये भक्त्याद्यां ध्यायमानां मनोज्ञां व्यक्तिं विष्णोः
षोडशश्लोकपुष्पैः।स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः
शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ॥ २८ ॥

जो पुरुष भक्तिपूर्वक विष्णुजीकी इस आद्य मनोहर मूर्तिका ध्यान करके षोडश-श्लोक-रूप-फूलोंसे स्तुति करके नमस्कार और पूजा करेंगे; विधिके जाननेवाले वह पुरुष शुद्ध और मुक्त होकर ब्रह्मानंदको भोग करेंगे॥ २८ ॥

पद्मेरितामिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम्।

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ॥ २९ ॥

पद्मा करके कहा शिवप्रोक्त यह (स्तोत्र) अत्यन्त पवित्र है, धन व यशकारी, आयु, स्वर्ग फलका देनेवाला और परम मंगलदाई है ॥ २९ ॥

पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेंऽहसोऽखिलात् ।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ॥ ३० ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरिभक्ति-
विवरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

यह स्तोत्र परलोकमें और इस लोकमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूप (१) फल देनेवाला है इस स्तोत्रको जो महात्मा लोग पढेंगे वे समस्त पापोंसे छूट जांयगे ॥ ३० ॥

इति सानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरि-
भक्तिविवरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

समाप्तश्चायं प्रथमांशः ।

द्वितीयांशः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सूत उवाच–इति पद्मावचः श्रुत्वा कीरो धीरः सतां मतः ।
कल्किदूतः सखीमध्ये स्थितां पद्मामथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सूतजी बोले, साधुओंसे आदर किया हुआ विज्ञानी कल्किजीका दूत शुक सखियोंसे युक्त पद्मासे यह वचन सुनकर तिस्से कहता भया ॥ १ ॥

---

(१) धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको चतुर्वर्ग कहते हैं। यही परमपुरुषार्थ है। धर्म शास्त्रानुयायी आचार। शास्त्रमें कहे हुए कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे जो होनहार (शुभ) फल इकट्ठा होता है तिसकोही स्थूलभावसे धर्म कहा जाता है। अर्थ–धनसम्पत्ति प्रत्येक मनुष्यको धनका उपार्जन करना आवश्यक है। काम अभीष्ट सिद्धि। मोक्ष निर्वाण वा मुक्ति। धर्म अर्थादि परस्पर सापेक्षहै। शास्त्र कहता है कि, प्रत्येक मनुष्यको इस चतुर्वर्ग पर ध्यान रखना चाहिये।

वद पद्मे साङ्गपूजां हरेरद्भुतकर्म्मणः ।
यामास्थाय विधानेन चरामि भुवनत्रयम् ॥ २ ॥

हे पद्मे ! अद्भुत कर्म करनेवाले नारायणजीकी पूजासब अंगोंके साथ वर्णन करो । मैं विधिविधानसे तिसका अनुष्ठान करके त्रिभुवनमें भ्रमण करूंगा ॥ २ ॥

पद्मोवाच–एवं पादादि केशान्तं ध्यात्वा तं जगदीश्वरम् ।
पूर्णात्मा देशिको मूलं मन्त्रं जपति मन्त्रवित् ॥ ३ ॥

पद्मा बोली-मंत्रका जाननेवाला साधक, जगदीश्वर विष्णुजीको पूर्णात्मा समझकर इसप्रकार चरणसे लेकर केशतक ध्यान करके मूलमंत्र जपकरै ॥ ३ ॥

जपादनन्तरं दण्ड-प्रणतिं मतिमांश्चरेत् ।
विष्वक्सेनादिकानान्तु दत्त्वा विष्णुनिवेदितम् ॥ ४ ॥

मतिमान् पुरुष जप करके दंडवत् प्रणाम करे । फिर विष्वक्सेनादिको पाद्य अर्घ्य, नैवेद्य इत्यादि दान करके विष्णुजीको निवेदन कियाहुआ वस्तु ॥ ४ ॥

तत उद्वास्य हृदये स्थापयेन्मनसा सह ।
नृत्यन्गायन्हरेर्नाम तं पश्यन्सर्वतः स्थितम् ॥ ५ ॥

हृदयमें स्थापनकरके मनसे उन सर्वव्यापीविष्णुजीको स्मरणकर मन २ में नृत्य, गान और हरिसंकीर्त्तन करै ॥ ५ ॥

ततः शेषं मस्तकेन कृत्वा नैवेद्यभुग्भवेत् ।
इत्येतत्कथितं कीर ! कमलानाथसेवनम् ॥ ६ ॥

फिर निर्माल्य-शेष (१) मस्तकपर धारण कर नैवेद्य भोजनकरे । हे कीर! यह तुमसे कमलापतिकी पूजाकी विधि कही ॥ ६ ॥

सकामानां कामपूरमकामामृतदायकम् ।

---

(१) विष्णुजीको निवदेन कीहुई वस्तुका नाम निर्माल्य है । गरुडपुराणमें कहाहै;–

अर्वाक् विसर्जनाद्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते ।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥ (गरुडपुराण)

विसर्जनके (उत्सर्गके) पहले नैवेद्य कहते हैं; विसर्जन (निवेदन) हो जानेपर तत्काल नैवेद्य निर्माल्य हो जाती है ।

श्रोत्रानन्दकरं देव-गन्धर्व्व-नर-हृत्प्रियम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार पूजा करनेसे सकाम पुरुषकी कामना पूर्ण होतीहै और निष्कामको मुक्ति प्राप्त होजातीहै । यह देव, गन्धर्व (१) मनुष्योंको हृदयानंददायक और सबको श्रवण सुखकारीहै ॥ ७ ॥

शुक उवाच-समीरितं श्रुतं साध्वि भगवद्भक्तिलक्षणम् ।
त्वत्प्रसादात्पापिनो मे कीरस्य भुवि मुक्तिदम् ॥ ८ ॥

शुकने कहाः-हे पतिव्रते ! तुमने भगवान् विष्णुजीके प्रति भक्ति विषयमें जो कुछ कहा तिसको सुना । इस समयमें पापात्मा पक्षी होकर भी तुम्हारे प्रसाद करके इस्से मुक्ति पाऊंगा ॥ ८ ॥

किन्तु त्वां काञ्चनमयीं प्रतिमां रत्नभूषिताम् ।
सजीवामिव पश्यामि दुर्लभां रूपिणीं श्रियम् ॥ ९ ॥

परन्तु मैं तुमको रत्नालंकारसे अलंकृत हुई सचेतन काञ्चनमयी प्रतिमाकी समान देखताहूं । तुम्हारा रूप त्रिभुवनमें दुर्लभहै । (मैं जानताहूँ तुम) लक्ष्मी होगी ॥ ९ ॥

नान्यां पश्यामि सदृशीं रूपशीलगुणैस्तव ।
नान्यो योग्यो गुणी भर्त्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ॥ १० ॥

रूप, गुण और स्वभावमें तुम्हारे समान और कोई स्त्री नहीं हमने देखा और तुम्हारे योग्य गुणवान् स्वामीभी त्रिलोकमें (एक पुरुषके अतिरिक्त) और किसीको नहीं देखता ॥ १० ॥

किन्तु पारे समुद्रस्य परमाश्चर्य्यरूपवान् ।
गुणवानीश्वरः साक्षात्कश्चिद्दृष्टोऽतिमानुषः ॥ ११ ॥

---

१ स्वर्गवासी सम्प्रदाय विशेष । हाहा, हूहू, चित्ररथादि गन्धर्वा यथा;-

हाहा हूहूश्चित्ररथो हंसो विश्वावसुस्तथा ।
गोमायुस्तुम्बुरुर्नन्दिरेवमाद्याश्च ते स्मृताः ॥ (इति जटाधरः)

हाहा, हूहू, चित्ररथ, हंस, विश्वासु, गोमायु, तुम्बुरु और नन्दि आदि गन्धर्व ॥ गन्धर्वोंकी ११ सम्प्रदाय हैं । यथा अग्निपुराणे-

अभ्रजोऽङ्घारिवम्भारी सूर्यवर्चास्तथा कृधूः । हस्तः सुहस्तः स्वाञ्चैव मूर्द्धन्वांश्च महामनाः ।
विश्वावसुः कृशानुश्च गन्धर्वैकादशा गणाः ॥ (अग्निपुराण, गणभेद अध्याय)

परन्तु समुद्रके पार परमाश्चर्य रूपवाले, अलौकिक साक्षात् ईश्वर किसी गुणवान् पात्रको मैंने देखाहै ॥ ११ ॥

न हि धातृकृतं मन्ये शरीरं सर्व्वसौभगम् ।
यस्य श्रीवासुदेवस्य नान्तरं ध्यानयोगतः ॥ १२ ॥

तिसका सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर विधाताका बनाया हुआ नहीं जान पडता। मैंने बहुत शोचविचार कर देखाहै कि, भगवान् वासुदेवके साथ उसका कोई भेद नहींहै ॥ १२ ॥

त्वया ध्यातं तु यद्रूपं विष्णोरमिततेजसः ।
तत्साक्षात्कृतमित्येव न तत्र कियदन्तरम् ॥ १३ ॥

असीमतेजसे युक्त विष्णुजीकी जिस मूर्त्तिका ध्यान तुम करती रहती हो, मैं जानताहूं कि, उसही मूर्त्तिका साक्षात् दर्शन कियाहै, तिसमें कुछभी भेद दिखाई नहीं देता ॥ १३ ॥

पद्मोवाच--ब्रूहि तन्मम किं कुत्र जातः कीर परावरम् ।
जानासि तत्कृतं कर्म्म विस्तरेणात्र वर्णय ॥ १४ ॥

पद्मावोली, हे कीर ! क्या कहा ? फिर कहो, उन्होंने कहांपर जन्म लियाहै जो तुम विशेष वृत्तान्त जानते हो तो कहो कि, उन्होंने क्या २ कर्म कियाहै ॥ १४ ॥

वृक्षादागच्छ पूजां ते करोमि विधिबोधिताम् ।
बीजपूरफलाहारं कुरु साधु पयः पिव ॥ १५ ॥

तुम वृक्षसे उतर आओ, मैं विधिविधानसे तुम्हारा अतिथिसत्कार करूं। इस स्थानमें बीजपूर फलहैं; भक्षण करके कुछ निर्मल जल पानकरो ॥ १५ ॥

तव चंचुयुगं पद्मरागादरुणमुज्ज्वलम् ।
रत्नसंघट्टितमहं करोमि मनसः प्रियम् ॥ १६ ॥

पद्मरागमणि (१) से अरुणवर्ण उज्ज्वल तुम्हारी चोंच मन माने रत्नोंसे बँधवाऊंगी ॥ १६ ॥

१) मणिविशेष । रत्नशास्त्रमें पद्मरागकी उत्पत्तिका उपाख्यान लिखा है यथाः–

त्रैलोक्यहितकामार्थं पुरेन्द्रेण हतोऽसुरः । बिन्दुमात्रमसृक्तस्य यावन्न पतते भुवि ॥
गृहीत्वा तत्क्षणाद्भानुस्तावद्दृष्टो दशाननः । तद्भयात्तेन विक्षिप्तमसृक्तस्य महीतले ॥
नद्यां रावणगङ्गायां देशे सिंहलकोद्भवे । तटद्वये च तन्मध्ये विक्षिप्तं रुधिरं तथा ॥
रात्रौ तदम्भसां मध्ये तीरद्वयसमाश्रितम् । खद्योतवह्निवद्दीप्तं मूर्ध्नि वह्निप्रकाशितम् ॥
पद्मरागं समुद्भूतं त्रिधा भेदैकजातयः । सुगन्धिः कुरुबिन्दश्च पद्मरागमनुत्तमम् ॥

(अगस्तिमतम् । पद्मरागपरीक्षा प्रकरण१ से ५ श्लोक तक)

महादेवजीने त्रिलोकीका हित करनेकी कामनासे असुरवध कियाथा । असुरका एक बूंद रुधिरभी पृथ्वीपर नहीं गिरताथा तिसे सूर्य भगवान् ग्रहण करते भये ॥ इसी समयमें तहांपर रावण आया। उसको देखकर शंकाके मारे सूर्यनारायणने यह रुधिर पृथ्वीपर डाल दिया । सो रुधिर सिंहल देशकी रावण गंगा नामक नदीके जल और उसके दोनों किनारोंपर गिरा रात्रिके समय नदीके जलमें और दोनों किनारोंपर पटबीजनेकी अग्निके समान कान्तिमान् प्रभाजालसे प्रदीप्त पद्मरागकी उत्पत्ति हुई। अकेला पद्मराग सुगन्धि, कुरुबिन्द और पद्मराग इन तीन जातियोंका कहा जाता है पद्मराग तितना अच्छा नहीं है ।

इस प्रकारसे पद्मरागकी उत्पत्ति हुई । सौगन्धिक, कुरुबिन्द और पद्मराग यह तीन श्रेणी हैं। सौगन्धिकका परिचय यह हैः—

ईषन्नीलं सुरक्तञ्च ज्ञेयं सौगन्धिकं बुधैः ।
लाक्षारसनिभञ्चैव हिंगूलकुंकुमप्रभम् ॥ (अगस्तिमत ॥ ४० ॥)

कुरुविन्दका रंगः—

शशासृक्लोध्रसिन्दूरगुञ्जाबन्धूकाकिंशुकैः ।
अतिरिक्तं सुपीतञ्च कुरुबिन्दमुदाहृतम् ॥ (अगस्तिमत ॥ ३९ ॥)

पद्मरागः—पद्मिनीपुष्पसंकाशः खद्योताग्निसमप्रभः । कोकिलाक्षनिभो यश्च सारसाक्षिसमप्रभः ॥
चकोरनेत्रसम्भाषः सप्तवर्णसमन्वितः । पद्मरागः स विज्ञेयश्छायाभेदेन लक्ष्यते ॥

पद्मरागका रंग कमलफूलके समान, प्रभापटबीजनेकी दीप्तिके समान' कोकिलके नेत्रोंकी समान, सारसके नेत्रकी समान, दीप्तिमान, चकोरके नेत्रकी समान रंगवाला पद्मराग होता है । छायाके भेदसे पद्मरागमें ७ रंग दिखाई देते हैं ।

शुक्रनीति पुस्तकमें पद्मरागके पर्याय शब्द देखे आते हैं । पुष्पराग (पुखराज) भी पद्मरागका नाम है । यथाः—

स्वर्णच्छविः पुष्परागः पीतवर्णो गुरुप्रियः ।
अत्यन्तविशदं वज्रं तारकाभं कवेः प्रियम् ॥ (४ अ० २ प्रक० श्लोक ४४)

पद्मरागके यह लक्षण और अगस्तिका मत इन दोनोंमें भेद दिखाई देता है । अगस्तिमत रत्न-शास्त्र है यही कारण है कि, इस ग्रंथमें पद्मरागका वृत्तान्त विस्तारसे लिखा है । शुक्रनीतिमें संक्षेपसे केवल लक्षण कहे हैं । बृहत्संहितामें पद्मरागका वर्णन इस प्रकारसे हैः—

सौगन्धिककुरुबिन्दस्फटिकेभ्यः पद्मरागसम्भूतिः ।
सौगन्धिकजा भ्रमराञ्जनाब्जसद्युतयः ॥ (बृहत्संहिता ८२ अ० १ श्लो•)

वाराहमिहिराचार्यका बनाया हुआ बृहत्संहिता ज्योतिष ग्रंथ है । उक्त ग्रंथका मत है कि, स्फटिकसे पद्मरागकी उत्पत्ति हुई है । अगस्तिके मतसे स्फटिक भिन्न पदार्थ है ।

कन्धरं सूर्य्यकान्तेन मणिना स्वर्णघाट्टिना ।
करोम्याच्छादनं चारु–मुक्ताभिः पक्षतिं तव ॥ १७ ॥

सुवर्णयुक्त सूर्यकान्त मणिसे (१) तुम्हारा गला विभूषित करूंगी तुम्हारे दोनो पंख मोतियोंसे (२) शोभित करूंगी ॥ १७ ॥

पतत्रं कुंकुमेनांगं सौरभेणातिचित्रितम् ।
करोमि नयनानन्ददायकं रूपमीदृशम् ॥ १८ ॥

तुम्हारे पंखोंको और शरीरको सुगन्धित कुंकुमसे चित्रित करके तुम्हारा रूप ऐसा बनाऊंगी कि, देखतेही सबके नेत्रोंको आनंद उत्पन्नहो ॥ १८ ॥

पुच्छमच्छमणिव्रात--घर्घरेणातिशब्दितम् ।
पादयोर्नूपुरालाप--लापिनं त्वां करोम्यहम् ॥ १९ ॥

तुम्हारी पूंछमें निर्मल मणि गूंथ दूंगी, तिनकरके उडनेके समय

---

(१) सूर्यकान्त मणिको अतिशपत्थर कहतें हैं । अगास्तिमतके प्रकीर्णक प्रकरणमें कहा है;–

चन्द्रकान्तोऽमृतस्रावी सूर्यकान्तोऽग्निकारकः ।
जलकान्तो जलस्फोटी हंसगर्भो विषापहः ॥　　(अगस्तिमत ॥ १७ ॥)

जिस स्फटिकमेंसे अमृत निकलता है तिसको चन्द्रकान्त और जिसमेंसे अग्नि निकलती है तिसको सूर्यकान्त कहते हैं ।

(२) संस्कृतशास्त्रमें मोतियोंका बहुतेरा वर्णन है। अगस्तिमतमें मुक्ताकी उत्पत्ति स्थान कहाहै यथा;–

जीमूतकरिमत्स्याहि वंशशंखवराहजाः । शुक्त्युद्भवाश्च विज्ञेया अष्टौ मौक्तिकसंज्ञकाः ॥
इति विख्यातमुनयो लोके मौक्तिकहेतवः । तेषामेके महार्घ्यास्तु शुक्तिजा लोकविश्रुताः ॥
(मुक्तापरीक्षाप्रकरण ४ । ५ ॥

मेघ, हस्ती, मत्स्य सर्प , बांस, शंख, वराह और शुक्ति (सीपी) से मोतीकी उत्पत्ति होती है । इससे मोती आठ प्रकारके हैं । शौक्तिक (सीपी) से उत्पन्न हुआ मोती सबसे महँगा और प्रसिद्धहै । बृहत्संहितामें कहा है;–

द्विपभुजगशुक्तिशंखाभ्रवेणुतिमिशूकरप्रसूतानि ।
मुक्ताफलानी तेषां बहु साधु च शुक्तिजं भवति ॥ (बृहत्संहिता, ८१ अ० १ श्लो०)

हाथी, सांप, सीपी, शंख, मेघ, बांश, तिमि, शूकर इन आठ आकरसे मुक्ताफलकी उत्पत्ति होती है । सीपीसे उत्पन्न हुआ मोती सबसे उत्तम है ।

अगास्तिमतसे साधारणभावमें मत्स्यमुक्ताका आकर कहा है । बृहत्संहितामें तिमिमत्स्य-मुक्ताका आकर नियत कियागया है ।

झर २ शब्द होगा । तुम्हारे चरण ऐसे सजाऊंगी कि, गमनके समय नूपुरध्वनि होगी ॥ १९ ॥

तवामृतकथाव्रातत्यक्ताधिं शाधि मामिह ।
सखीभिः संगिताभिस्ते किं करिष्यामि तद्वद ॥ २० ॥

तुम्हारे वचनामृत सुनकर हमारे मनकी समस्त व्यथा दूर होगई । अब आज्ञादो कि, तुम्हारा क्या कार्य करूं ? मैं सखियोंके साथ तैयारहूँ ॥ २० ॥

इति पद्मा वचः श्रुत्वा तदान्तिकमुपागतः ।
कीरो धीरः प्रसन्नात्मा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥

पद्माके यह वचन सुनकर शुकने प्रसन्न हृदयसे धीरे २ उसके निकट जायकर कहना आरंभ किया ॥ २१ ॥

कीर उवाच--ब्रह्मणा प्रार्थितः श्रीशो महाकारुणिको बभौ ।
शंभले विष्णुयशसो गृहे धर्म--रिरक्षिषुः ॥ २२ ॥

शुक कहता हुआ, ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार, धर्मके स्थापन करनेकी अभिलाषासे महाकारुणिक श्रीपति शम्भलग्रामके मध्य विष्णु यशानामक ब्राह्मणके गृहमें (जन्मलेकर) स्थितहो रहे हैं ॥ २२ ॥

चतुर्भिर्भ्रातृभिर्ज्ञाति--गोत्रजैः परिवारितः ।
कृतोपनयनो वेदमधीत्य रामसन्निधौ ॥ २३ ॥

उनके चार भ्राता और गोत्र भाई तिनके साथ हैं । जब पहले उनका उपनयन होगया तो उन्होंने परशुरामजीसे वेदपढ़ा ॥ २३ ॥

धनुर्वेदञ्च गान्धर्वं शिवादश्वमसिं शुकम् ।
कवचञ्च वरं लब्धा शम्भलं पुनरागतः ॥ २४ ॥

और वे धनुर्वेद, गान्धर्ववेद (१) सीखकर महादेवजीसे अश्व, खड्ग, शुक, कवच और वर पायकर शम्भल ग्राममें लौटे ॥ २४ ॥

---

(१) गान्धर्ववेद संगीतशास्त्र गन्धर्वोंके अधिकारमें है, इसी कारण विद्याशब्दसे नियतहुआहै । नृत्य, गीत, वाद्य और अभिनयादि संगीतशास्त्रके अन्तर्गतहै । संस्कृतशास्त्रमें संगीतकी पुस्तकोंका अभाव नहीं है । नाट्यशास्त्र संस्कृतशास्त्रका बहुत पुराना अंग है धर्म ग्रन्थ सामवेद स्वरके संयोगसे गाया जाताथा । अब भी संस्कृत संगीतशास्त्रके लोप होनेसे बचे बचाए ग्रंथ दिखाई देते हैं ।

विशाखयूपभूपालं प्राप्य शिक्षाविशेषतः ।
धर्मानाख्याय मतिमान् अधर्म्मांश्च निराकरोत् ॥ २५ ॥

फिर उन मतिमान् कल्किजीने विशाखयूप नामक राजाको प्राप्तहो विशेष शिक्षा करके धर्म प्रगटकर अधर्मको दूर किया है ॥ २५ ॥

इति पद्मा तदाख्यानं निशम्य मुदितानना ।
प्रस्थापयामास शुकं कल्केरानयनादृता ॥ २६ ॥

शुकसे यह आख्यान सुनकर पद्मा हर्षित और विकसित मुखवाली हुई। फिर कल्किजीको लानेके अभिप्रायसे यत्नसहित शुकको पठाया ॥ २६ ॥

भूषयित्वा स्वर्णरत्नैस्तमुवाच कृताञ्जलिः॥ २७ ॥

उसने सुवर्ण और रत्नसे शुकको सजाकर हाथ जोड कहना आरम्भ किया ॥ २७ ॥

पद्मोवाच–निवेदितं तु जानासि किमन्यत्कथयाम्यहम् ।
स्त्रीभावभयभीतात्मा यदि नायाति स प्रभुः ॥ २८ ॥

पद्मा बोलीः–हमें जो कुछ निवेदन करना है सो तुम्हारा अजाना नहीं है। तुमसे और अधिक क्या कहूं हम स्त्री जाति सदासेही भीरुस्वभाववाली होती हैं। यद्यपि प्रभु न आवें ॥ २८ ॥

तथापि मे कर्मदोषात् प्रणतिं कथयिष्यसि ।
शिवेन यो वरो दत्तः स मे शापोऽभवत्किल ॥ २९ ॥

तथापि मेरी ओरसे प्रणाम कहकर मेरे कर्मदोषसे जो कुछ हुआ है सो कहियो और सूचित करियो कि, महादेवजीने जो वर हमें दिया है वह शापरूप होगया ॥ २९ ॥

पुंसां मद्दर्शनेनापि स्त्रीभावं कामतः शुक ।
श्रुत्वेति पद्मामामन्त्र्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ३० ॥

कि, जो पुरुष हमको सकाम हृदयसे देखे वह तत्काल स्त्रीशरीरको प्राप्त

होजाय। शुकने यह कथा सुन पद्माको समझाया बुझाया और बारम्बार प्रणामकर ॥ ३० ॥

उड्डीय प्रययौ कीरः शम्भलं कल्किपालितम्।
तमागतं समाकर्ण्य कल्किः परपुरञ्जयः ॥ ३१ ॥

उडता हुआ कल्किजी करके पालित शम्भलग्राममें गमन करता हुआ। शत्रुपुरके जीतनेवाले कल्किजी शुककी आगमनवार्ता श्रवणकर ॥ ३१ ॥

क्रोडे कृत्वा तं ददर्श स्वर्णरत्नविभूषितम्।
सानन्दं परमानन्ददायकं प्राह तं तदा ॥ ३२ ॥

परमानन्द उस शुकको गोदमें लेकर देखा कि, वह सुवर्ण और रत्नोंसे विभूषित हुआ है। तब वह आनन्दपूर्वक तिस्से इसका कारण बूझनेके अभिलाषी हुए॥ ३२ ॥

कल्किः परमतेजस्वी परस्मिन्नमलं शुकम्।
पूजयित्वा करे स्पृष्ट्वा पयः पानेन तर्पयन् ॥ ३३ ॥

परम तेजस्वी कल्किजीने दोषरहित शुकको पहले इतर अर्थात् बांए हाथसे छूकर जलपिलाय तृप्तकर ॥ ३३ ॥

तन्मुखे स्वमुखं दत्त्वा पप्रच्छ विविधाः कथाः ॥
कस्माद्देशाच्चरित्वा त्वं दृष्ट्वापूर्व्वं किमागतः ॥ ३४ ॥

उसके मुखसे मुख लगाय बहुतसी बातें पूछीं। तुम अब कौनसे देशमें विचरण करके कौनसी अपूर्व वस्तु देख आये ? ॥ ३४ ॥

कुत्रोषितः कुतो लब्धं मणिकाञ्चनभूषणम्।
अहर्निशं त्वन्मिलनं वाञ्छितं मम सर्व्वतः ॥ ३५ ॥

तुम अबतक कहांथे ? मणिकाञ्चनरूप भूषण कहांसे पाये हैं ? मैं दिन रात सब प्रकारसे तुम्हारे साथ मिलनेकी कामना करताहूं ॥ ३५ ॥

तवानालोकनेनापि क्षणं मे युगवद्भवेत् ॥ ३६ ॥

तुम्हारे बिना देखे एक क्षणभी हमको युगके समान होजाता है ॥ ३६॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्रणिपत्य शुको भृशम् ।
कथयामास पद्मायाः कथाः पूर्वोदिता यथा ॥ ३७ ॥

कल्किजीके मुखसे यह वचन सुनकर शुकने उन्हें बारम्बार नमस्कार किया और वह सब कथा कही कि, पद्माने जो कुछ कह दियाथा ॥ ३७ ॥

संवादमात्मनस्तस्या निजालङ्कारधारणम् ।
सर्व्वं तद्वर्णयामास तस्याः प्रणतिपूर्वकम् ॥ ३८ ॥

और पद्माने जैसा व्यवहार किया है, पद्माके साथ जैसी बात चीत हुई है, जिस प्रकार आभूषण दिये गए हैं, सो प्रणाम करके समस्त वर्णन करता हुआ ॥ ३८ ॥

श्रुत्वेति वचनं कल्किः शुकेन सहितो मुदा ।
जगाम त्वरितोऽश्वेन शिवदत्तेन तन्मनाः ॥ ३९ ॥

यह सुनकर तिसमें चित्तलगाय कल्किजी तोतेके साथ महादेवजीके दिये घोडेपर चढकर शीघ्रतासे हृदयमें हर्षितहो (सिंहलको) यात्रा करते हुए ॥ ३९ ॥

समुद्रपारममलं सिंहलं जलसंकुलम् ।
नानाविमानबहुलं भास्वरं मणिकाञ्चनैः ॥ ४० ॥

यह सिंहलद्वीप समुद्रके पार स्थित है, निर्मल जलके बीच बसा हुआ है, असंख्य जनोंसे युक्त है, अनेक प्रकारके आकाशयान इसमें हैं, मणिकांचन देदीप्यमान होरहेहैं ॥ ४० ॥

प्रासादसदनाग्रेषु पताकातोरणाकुलम् ।
श्रेणीसभापणाट्टाल–पुरगोपुरमण्डितम् ॥ ४१ ॥

यह द्वीप; अटारी और गृहोंके सामने पताका और तोरणके रहनेसे अत्यन्त शोभा दे रहाहै । सभा (बैठकें) दुकानें, सौधसमूह, पुरसमूह, गोपुरस-

मूह (पुरद्वार) यह सब श्रेणीके अनुसार स्थापित हैं । इन सबसे यह नगर शोभायमान् होरहाहै ॥ ४१ ॥

पुरस्त्री--पद्मिनी--पद्मगन्धामोद--द्विरेफिणीम् ।
पुरीं कारुमतीं तत्र ददर्श पुरतः स्थिताम् ॥ ४२ ॥

(कल्किजीने सिंहलद्वीपमें पुहुँच) सामने कारुमती नामक पुरी देखी। इस पुरीमें पुरस्त्रीरूप पद्मिनियोंकी पद्मगन्धसे भँवरे हर्षितहो रहेहैं ॥ ४२ ॥

मराल--जाल--सञ्चाल--विलोल--कमलान्तराम् ।
उन्मीलिताब्जमालालिकलिताकुलितं सरः × ॥ ४३ ॥

इस पुरीमें जो जलाशय हैं तिनका जल हंसकुलके चलनेसे चलायमानहै उन्होंने जो समस्त सरोवर देखे, सो खिलेहुए कमलोंमें स्थित भ्रमर गणोंसे आकुल देखे ॥ ४३ ॥

लजकुक्कुटदात्यूह--नादितं हंससारसैः ।
ददर्श स्वच्छपथसां लहरीलोलवीजितम् ॥ ४४ ॥

उनके चारों ओर हंस, सारस, जलमुर्ग, दात्यूह (कुंजपक्षी) समूह शब्द करतेहैं ! स्वच्छ जलका चंचल तरंगके संग (शीतलवायु करके निकटका वन) बयारित होरहाहै ॥ ४४ ॥

वनं कदम्बकुद्दाल--शालतालाम्रकेसरैः ।
कपित्थाश्वत्थखर्जूर-बीजपूरकरंजकैः ॥ ४५ ॥

यह समस्त वन कदंब, कुद्दाल (कोविदार, आबनूस) शाल (स्वनाम-प्रसिद्ध, भारतवर्षके पहाडी देशोंमें बहुतायतसे पायाजाताहै) ताल (ताड) आम, मौलश्री, कैथा पीपल, खजूर विजौरा नीबू करंजक (करमचा) ॥ ४५ ॥

पुन्नागपनसैर्नागरङ्गैरर्जुनशिंशपैः ।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च नानावृक्षैश्च शोभितम् ।
वनं ददर्श रुचिरं फलपुष्पदलावृतम् ॥ ४६ ॥

× उन्मीलितानि मालानि कलिताकुलितं सरः इति वा पाठः ।

पुन्नाग (बडा पेड होताहै इसीनामसे प्रसिद्धहै) पनस, (कटहर) नागरंग (नरंगी) अर्जुन (इस वृक्षका आधुनिक नाम नहीं ज्ञात होता) शिंशपा (शिरसै) क्रमुक (ब्रह्मदारू वृक्ष, गुवाक या सुपारीका वृक्ष) नारियल आदि अनेक वृक्षोंसे शोभायमानहै। फल, पुष्प और पत्रोंसे विभूषित यह वन कल्किजीने देखा ॥ ४६ ॥

दृष्ट्वा हृष्टतनुः शुकं सकरुणः कल्किः पुरान्ते वने
प्राह प्रीतिकरं वचोऽत्र सरसि स्नातव्यमित्यादृतः।
तच्छ्रुत्वा विनयान्वितः प्रभुमतं यामीति पद्माश्रमं
तत्सन्देशमिह प्रयाणमधुना गत्वा स कीरोऽवदत् ॥ ४७ ॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे
कल्केरागमनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वह पुरीके निकटवर्त्ती वनमें खडे हो उक्त सब बातोंको देख चित्तमें हर्षित हो हृदयमें करुणालय आदर सहित शुकसे प्रीतिकारी वचन कहते हुए कि, हम इसी स्थानमें स्नान करेंगे। स्वामीके ऐसे अभिप्रायको जानकर शुकने विनयसहित कहा, अब मैं पद्माके घरको जाताहूं। फिर शुकने पद्माके निकट जाय कल्किजीके कहेहुए वचन और उनके आनेकी समस्त वार्ता कही ॥ ४७ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे कल्केरागमनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयांशः।

द्वितीयोऽध्यायः।

सूत उवाच–कल्किः सरोवराभ्यासे जलाहरणवर्त्मनि।
स्वच्छस्फटिकसोपाने प्रवालाचितवेदिके ॥ १ ॥
सरोजसौरभव्यग्रभ्रमद्भ्रमरनादिते।

कदम्बपोतपत्रालि-वारितादित्यदर्शने ॥ २ ॥
समुवासासने चित्रे सदश्वेनावतारितः ।
कल्किः प्रस्थापयामास शुकं पद्माश्रमं मुदा ॥ ३ ॥

सूतजी बोलेः—भगवान् कल्किजीने महादेवजीके दिएहुए घोडेसे उतर कर, सरोवरके निकट जल लानेके मार्गमें (वह घाट कि जिस्से पनिहारियां जलभरकर लेजातीहैं) मूंगोंसे भूषित मनोहर मणिमय चबूतरेपर बैठकर प्रीति-प्रफुल्लहृदयसे शुकको पद्मावतीके वासस्थानमें पठाया । वह सरोवरकी शोभा-को देखने लगे । उससरोवरमें स्वच्छ स्फटिक मय (१)सीढियाँ बनी हुईहैं, भँवरगण सरोजिनी (कमलिनी) के मधुर सौरभसे मोहित हो गुन २ कर-ते हुये गान कर रहेहैं । निकटके कदम्ब वृक्षोंके घने नये पत्तोंकी छायासे सूर्यकी किरणें रुक रहीहैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

---

(१) रत्नविशेष । संस्कृतशास्त्रमें इस रत्नका बहुत वर्णन पायाजाताहै । डाक्टर रामदासने रत्नरहस्य नामक पुस्तकमें लिखाहैः—" बलदेवजीने उस दानवका भेद लेकर कावेरी तीरके निकट, विन्ध्याचलके निकट, यवनदेश और नैपाल देशमें फेंकाथा । उस आकाशकी तुल्य तैलाख्य भेदसे स्फ-टिकका जन्म हुआहै । " अगस्तिमत नामक रत्नशास्त्रके मतसे स्फटिक ११ वां रत्नहै । यथाः—

रत्नमेकादशं प्रोक्तं सर्वैः स्फटिकसंज्ञकम् । (प्रकीर्णक—प्रक० ५ श्लोक)

स्फटिक चार प्रकारका था । अगस्तिके मतमें कहाहैः—

जलकान्तो जलस्फोटी हंसगर्भो विषापहः ॥ इति स्फटिकम् ॥

(अगास्तिमतम्, प्रकीर्णकः ॥ १७ ॥

चन्द्रकान्त स्फटिक अमृतस्रावीहै, सूर्यकान्त, अग्निकारकहै । जलकान्त जलस्रावी और हंसगर्भ स्फटिक विषनाशकहै ।

महाराज अकबरके जीवनचरित्र ग्रंथमें लिखाहै कि, वह सूर्यकी किरणके द्वारा सूर्यकान्त स्फटिक मणिसे अग्नि निकलवाकर उससे अपने व्यवहार करनेको भोजन बनवाया करते और रातके समय वासगृहमें दीपक जलातेथे । चन्द्रकान्त स्फटिक मणिसे पूर्णिमाकी रात्रिको चंद्रमाका अमृत (सुधा) ग्रहण करतेथे । चन्द्रकान्त मणिमें यह सुधा निर्मल ओसकी बूंदोंके समान फूट उठताथा । जो लोग " चंद्र—सुधा और चकोरका चंद्रमासे अमृत पीना " कवि कल्पना कहकर उड़ाया चाहतेहैं वह अब क्या कहतेहैं ?

कोई २ रत्नवित् महर्षि कहतेहैं कि, पद्मराग मणि स्फटिकसे उत्पन्न होताहै । यद्यपि रूपगुणसे अलगसा जान पड़ताहै तथापि स्फटिक व पद्मरागमें विशेष कोई पदार्थगत विभिन्नता नहींहै । परन्तु रत्नशास्त्रमें पद्मरागकी उत्पत्तिका स्वतंत्र वर्णन, लक्षण, गुण और मूल्यादिका वर्णनहै । स्फटिक और पद्मरागके विषयको लेकर महर्षियोंमें मत भेद हुआहै ।

स नागेश्वरमध्यस्थः शुको गत्वा ददर्श ताम्।
हर्म्यस्थां बिसिनीपत्रशायिनीं सखीभिर्वृताम् ॥ ४ ॥

पद्माके स्थानमें पहुँचकर नागकेशरके वृक्षपर बैठकर शुकने देखा कि, पद्मा अटारीके ऊपर पुरैनके पत्रोंकी सेजपर शयन किए हुएहै, सखियां उसको चारोंओरसे घेरी हुईहैं ॥ ४ ॥

निश्वासवाततापेन म्लायतीं वदनाम्बुजम्।
उत्क्षिपन्तीं सखीदत्तकमलं चन्दनोक्षितम् ॥ ५ ॥

उसका वदनकमल, (विरहके संतापसे) संतापित सांसकी पवनसे मलीन होरहाहै। वह सखीका दियाहुआ चन्दनचर्चित प्रफुल्ल कमल हाथसे हिलारहीहै ॥ ५ ॥

रेवावारिपरिस्नातं परागास्यं × समागतम्।
धृतनीरं रसगतं निन्दन्तीं पवनं प्रियम् ॥ ६ ॥

रेवाके जलमें भीगा (पद्मरागयुक्त) जलगर्भ दक्षिणदिशासे आया हुआ सरस पवन, सबका प्यारा होनेपरभी, पद्मासे निन्दा किया जारहाहै ॥ ६ ॥

शुकः सकरुणः साधु–वचनैस्तामतोषयत्।
सा, त्वमेह्येहि, ते स्वस्ति स्वागतं ? स्वस्ति मे शुभे ! ॥ ७ ॥

इसके उपरान्त शुकने करुणाहृदयसे प्रिय वचन कहकर पद्माको समझाया। पद्माने कहा–शुक तुम्हारा मंगलहो, निकट आओ, कुशलतो हो ? (शुकबोला) –शोभने ! हमारी समस्त कुशलहै ॥ ७ ॥

गते त्वय्यतिव्यग्राहं शान्तिस्तेऽस्तु रसायनात्।
रसायनं दुर्लभं मे, सुलभं ते शिवाश्रमे ॥ ८ ॥

(पद्माबोली हे शुक !) तुम जबसे गएहो मैं तबसेही हृदयमें अत्यन्त

× परागाढ्यामिति पाठान्तरम्।

व्याकुल होरहीहूं। (शुकबोला) अब रसायन (१) करके तुम्हारे सब संताप शांति हों (पद्माने कहा शुक) मेरे लिये रसायन अत्यन्त दुर्लभहै ॥ (शुक-बोला) हे शिवशिष्ये ! तुम्हारे अर्थ रसायन दुर्लभ नहीं, अत्यन्त सुलभहै॥८॥

क मे भाग्यविहीनाया इहैव वरवर्णिनि।
देवि ! तं सरसस्तीरे प्रतिष्ठाप्यागता वयम् ॥ ९ ॥

पद्मा बोली, हे शुक ! हमारा भाग्य मन्दहै, किस प्रकारसे कहा हमारा अभीष्ट सुलभ होसकेगा ? (तोता बोला) हे वरवर्णिनि ! इस स्थानमेंही तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। हे देवि ! मैं उनको इस स्थानमेंही सरोवरके किनारे ठहराकर चला आताहूँ ॥ ९ ॥

एवमन्योन्यसंवाद--मुदितात्ममनोरथे।
मुखं मुखेन नयनं नयने साद्दता ददौ ॥ १० ॥

पद्मा और शुककी परस्पर इस प्रकार बात चीत होनेपर पद्मा अपने मनोरथकी सिद्धिमें (आशापाय) हर्षित हुई। फिर उसने आदर सहित तोतेका मुख अपने मुखमें और तोतेका नेत्र अपने नेत्रमें समर्पण किया॥१०॥

विमलामालिनी लोला कमला कामकन्दला।
विलासिनी चारुमती कुमुदेत्यष्ट नायिकाः ॥ ११ ॥

विमला, मालिनी लोला, कमला, कामकन्दला, विलासिनी, चारुमती और कुमुदा, ये अष्टनायिका ॥ ११ ॥

---

(१) वैदकशास्त्रमें कहाहै कि, द्रव्यगुणसे जरा और व्याधिका नाश होसक्ताहै। जरा और व्याधिका नाश करनेवाले द्रव्य शास्त्रके मतसे 'रसायन' कहे जातेहैं। भावप्रकाशमें लिखाहैः–

रसायनन्तु तज्ज्ञेयं यजराव्याधिनाशनम्। यथामृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी ॥

अर्थात् जिस द्रव्यसे (मनुष्यकी) जरा और व्याधिका नाश हो तिसको रसायन कहतेहैं जैसे अमृता (गिलोय) रुदन्ती गूगुल और हरड।

इन द्रव्योंमें जरा और व्याधिका नाश करनेकी शक्तिथी। जिस प्रकार 'रसायन' से मनुष्यकी जरा, व्याधिका दुःख दूर हो सकताहै. वैसेही 'रसायन' से नायक नायिकाका दुःख दूर करेगी; इस भावसे यहांपर 'रसायन' शब्दका प्रयोग हुआ है। रसायन. औषधि विशेष है। इसही औषधिको उप-लक्ष करके शुक कहता है। "हे पद्मावती ! तुम कातर हुई तो हो, परन्तु तुम्हारी रसायन निकट है।"

सख्य एता मतास्ताभिर्जलक्रीडार्थमुद्यता ।
पद्मा प्राह, सरस्तीरमायान्त्वेता मया स्त्रियः ॥ १२ ॥

उसकी प्यारी सखियें थीं । वह इन आठ नायिकाओंके साथ जल-क्रीडा (विहार) करनेको तैयार हुई । पद्मा बोली-यह आठ सखियें हमारे साथ सरोवरके किनारेपर आवें ॥ १२ ॥

इत्याख्यायाशु शिबिकामारुह्य परिवारिता ।
सखीभिश्चारुवेशाभिर्भूत्वा स्वान्तःपुराद्बहिः ।
प्रययौ त्वरितं द्रष्टुं भैष्मी यदुपतिं यथा ॥ १३ ॥

यह कहकर पद्मा तत्काल पालकीमें चढी । वह उजले वेशवाली सखियोंके साथ अन्तःपुरसे बाहिर आई । रुक्मिणी (१) जी जिस प्रकार कृष्णजीके दर्शन करनेको बाहर हुईथीं, तैसेही पद्माने कल्किजीका दर्शन करनेके निमित्त शीघ्रतासे गमन किया ॥ १३ ॥

जनाः पुमांसः पथि ये पुरस्थाः प्रदुद्रुवुः स्त्रीत्व-
भयाद्दिगन्तरम् । शृङ्गाटके वा विपणिस्थिता
ये निजाङ्गनास्थापितपुण्यकार्य्याः ॥ १४ ॥

मार्गमें चौराहे या दुकानोंपर जो पुरवासी पुरुष थे सो स्त्री होनेके भयसे चारों ओर भाग गये । उनकी स्त्रियां (अपने २ स्वामियोंको निरापद आते देखकर देवपूजादि)पुण्यकर्मका अनुष्ठान करने लगीं ॥ १४ ॥

निवारितां तां शिबिकां वहन्त्यो नार्य्योऽतिमत्ता
बलवत्तराश्च । पद्मा शुकोक्त्या तदुपर्य्युपस्था
जगाम ताभिः परिवारिताभिः ॥ १५ ॥

---

(१) रुक्मिणी–यह विदर्भ (वर्त्तमान बेरार) देशके महाराज भीष्मककी कन्याथी । रुक्मिणीका बड़ा भ्राता रुक्म चाहता था कि, चेदि (वर्त्तमान बुन्देलखण्ड और जबलपुर) देशके राजा दमघोषके पुत्र शिशुपालके साथ अपनी बहिनका विवाह करो । परन्तु रुक्मिणीने इस व्याहसे अप्रसन्न हो द्वारकानाथ श्रीकृष्णभगवान् जीकी भार्या होनेकी इच्छासे एक ब्राह्मणको उनके निकट भेजा । श्रीकृष्णजी शीघ्र विदर्भमें आय रुक्मिणीजीको बलसे ग्रहणकर द्वारकामें लेगये और तहां विधिविधानसे उनके साथ विवाह किया ।

(रुक्मिणीका विस्तारित विवरण महाभारतमें पाया जाता है ।)

मार्ग इसप्रकार पुरुष सम्पर्कसे रहित हुआ (यौवन-) मतवाली और अत्यन्त बलवान् स्त्रियें पालकीको ले चलनेको लगीं शुकके कहनेके अनुसार पद्मा उस पालकीमें चढ़कर सखियोंके साथ गमन करने लगी॥ १५॥

सरोजलं सारसहंसनादितं प्रफुल्लपद्मोद्भवरेणुवा-
सितम् । चेरुर्विगाह्याशु सुधाकरालसाः कुमु-
द्वतीनामुदयाय शोभनाः ॥ १६ ॥
तासां मुखामोदमदान्धभृङ्गा विहाय पद्मानि
मुखारविन्दे । लग्नाः सुगन्धाधिकमाकलय्य
निवारिताश्चापि न तत्यजुस्ते ॥ १७ ॥

इसके उपरान्त वह (चंद्रवदनी) शोभायमान ललनायें सारस और हँसोंकी मधुर ध्वनिसे युक्त, खिले हुए कमल फूलोंसे उत्पन्न रेणुसे सुगन्धित. सरोवरके नीरमें न्हाय कुमुद्वतीको विकसित करनेके अभिप्रायसे कुमुद्बान्धव (चंद्रमा) की आशामें घूमने लगीं । भ्रमर गणोंने उनके बदन कमलके सौरभसे अन्धेहो प्रफुल्ल कमलको छोड़ उस मुखकमलपरही बैठना आरंभ किया । स्त्रियें वारंवार उनको उडातीथीं, परंतु वह मुखपद्ममें अत्यन्त सौरभ देखकर तिसको नहीं छोडतेथे ॥ १६ ॥ १७ ॥

हासोपहासैः सरसप्रकाशैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च जले
विहारैः । करग्रहैस्ता जलयोधनार्त्ताश्चकर्ष
ताभिर्वनिताभिरुच्चैः ॥ १८ ॥

रसयुक्त हास परिहाससे, वाद्यसे, नृत्यसे, हाथ पकडके व और अनेक नानाप्रकारके जलविहारसे जलसन्तरणमें मत्त सखियोंके मनको पद्मा हरण करती हुई । सखियों करके तिसका मनभी हरागया ॥ १८ ॥

सा कामतप्ता मनसा शुकोक्तिं विविच्य पद्मा
सखिभिः समेता । जलात्समुत्थाय महार्हभूषा
जगाम निर्दिष्टकदम्बषण्डम् ॥ १९ ॥

इसके उपरान्त कामदेवसे संतापित हुआहै हृदय जिसका ऐसी पद्मा मनही मनमें शुकके वाक्योंको विचारती सखियोंके साथ जलसे निकली । फिर वह बडे मोलके गहने पहर तोतेसे कहे हुए कदंबके तले गई ॥ १९ ॥

सुखे शयानं मणिवेदिकागतं कल्किं पुरस्तादातिसूर्य्यवर्चसम् । महामणिव्रातविभूषणाचितं शुकेन सार्द्धं तमुदैक्षतेशम् ॥ २० ॥

उसने तोतेके साथ कदम्बके तले जायकर देखा कि सम्मुखही मणिके चबूतरेपर कल्किजी लेटे हुए सुखसे सो रहेहैं । उनके तेजसे सूर्य भगवानूका तेजभी हारगयाहै । उनके सब अंगोंमें महामणियोंका समूह शोभायमान हो रहाहै ॥ २० ॥

तमालनीलं कमलापतिं प्रभुं पीताम्बरं चारुसरोजलोचनम् ।
आजानुबाहुं पृथुपीनवक्षसं श्रीवत्ससत्कौस्तुभकान्तिराजितम् २१
तदद्भुतं रूपमवेक्ष्य पद्मा सस्तम्भिताविस्मृतसत्क्रियार्था ।
सुप्तं तु संबोधयितुं प्रवृत्तं निवारयामास विशङ्कितात्मा ॥ २२

तमालकी समान नीलवर्णवाले, पीताम्बर पहिरे, रमणीय कमलदलकी समान नेत्रवाले, जिनकी बाहैं जानुतक लम्बीहैं, चौडी और पुष्ट जिनकी छातीहै, श्रीवत्स चिह्नसे चिह्नित और कौस्तुभ मणिकी कान्तिसे लक्ष्मीके पति श्रीनारायणजी विराजमानहैं । इसरूपको निहार पद्मा मोहित होगई और विस्मितहो उचित सत्कार करना भूलगई । जब शुक कल्किजीको जगाने लगा, तब पद्माने शंकित हृदयसे उसको निवारण किया ॥ २१ ॥ २२ ॥

कदाचिदेषोऽतिबलोऽतिरूपी मद्दर्शनात्स्त्रीत्वमुपैति साक्षात् ।
तदात्र किं मे भविता भवस्य वरेण शापप्रतिमेन लोके ॥ २३ ॥

(और बोली) यह महावीर कमनीयाकार पुरुष जो हमें देखकर स्त्रीके शरीरको प्राप्त होजाय, तो महादेवजीके वरसे हमें क्या लाभ हुआ ? तिनका वर हमारे अर्थ शापरूप हो रहाहै ॥ २३ ॥

चराचरात्मा जगतामधीशः प्रबोधितस्तद्धृदयं विविच्य ।
ददर्श पद्मां प्रियरूपशोभां यथा रमा श्रीमधुसूदनाग्रे ॥ २४ ॥

इसके उपरान्त चराचर जगत्के अंतरात्मा, जगदीश्वर कल्किजी, पद्माके आन्तरिक अभिप्रायको समझकर जागे और देखते हुए कि मधुसूदन मूर्ति (१) के सन्मुख लक्ष्मीजी स्थित होरहीहों तैसेही परमरूपवती श्रेष्टनेत्रोंवाली पद्मा तिनके सामने खडीहै ॥ २४ ॥

संवीक्ष्य मायामिव मोहिनीं तां जगाद कामाकुलितः स कल्किः।
सखीभिरीशां समुपागतां तां कटाक्षविक्षेपविनामितास्याम् २५॥

सखियोंके साथ आईहुई और कटाक्ष चलातेही जिसका मुख नीचे पडगयाहै साक्षात् मायाकी समान मोहकी माता राजकुमारी पद्माको देखकर कल्किजीने सकामहृदयसे कहा ॥ २५ ॥

इहैहि सुस्वागतमस्तु भाग्यात्समागमस्ते कुशलाय मे स्यात् ।
तवाननेन्दुः किल कामपूरतापापनोदाय सुखाय कान्ते ! ॥२६॥

हे कान्ते ! निकट आओ ! तुम्हारा आगमन मंगलका कारणहो । तुम्हारे साथ मेरा समागम हुआ । तुम्हारे वदनरूपी चंद्रमासे हमारे काम देवका ताप दूरहोकर सुख बढै ॥ २६ ॥

लोलाक्षि ! लावण्य-रसामृतं ते कामाहिदष्टस्य विधातुरस्य ।
तनोतु शान्ति सुकृतेन कृत्या सुदुर्लभां जीवनमाश्रितस्य॥२७॥

हे चंचल नेत्रवाली ! यद्यपि मैं जगत्का विधाताहूं तथापि कामदेव-रूप कालसर्पने मुझको डसाहै ! इससमय तुम्हारे लावण्यरूप अमृतके विना तिसकी शान्ति होनेका दूसरा उपाय नहींहै । यह शान्ति बहुतसे पुण्य-

---

(१) मधुनामक दैत्यका नाश किया, इत्यादि अर्थसे मधुसूदन नामकी उत्पत्ति हुईहै । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें कहा है:-

सूदनं मधुदैत्यस्य यस्मात् स मधुसूदनः । इति सन्तो वदन्तीशं वेदैर्भिन्नार्थमीप्सितम् ॥
मधु क्लीवञ्च माध्वीके कृतकर्म शुभाशुभे । भक्तानांकर्मणाञ्चैव सूदनं मधुसूदनः ॥
परिणामाशुभं कर्म भ्रान्तानां मधुरं मधु । करोति सूदनं यो हि स एव मधुसूदनः ॥
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड, ११० अ०)

करके वा पुरुषार्थसे भी दुर्लभहै और यह आश्रित हुएकी जीवनरूप है २७

बाहू तवैतौ कुरुतां मनोज्ञौ हृदि स्थितं काममुदन्तवासम् ।
चार्वायतौ चारुनखाङ्कुशेन द्विपं यथा सादिविदीर्णकुम्भम् ॥२८॥

महावत जिसप्रकार अंकुशसे मतवाले हाथीकी कुम्भ भेद डालताहै, तैसेही तुम्हारी यह रमणीय और बडी दोनों बाँहें श्रेष्ठ नखरूप अंकुश करके मेरे हृदयमें स्थित मदनरूप मतवाले हाथीको क्षत विक्षत और निर्वासित करें ॥ २८ ॥

स्तनाविमावुत्थितमस्तकौ ते कामप्रतोदाविव वाससाक्तौ ।
ममोरसा भिन्ननिजाभिमानौ सुवर्त्तुलौ व्यादिशतां प्रियं मे ॥२९॥

वसनसे ढके तुम्हारे यह दोनों गोलस्तन कामदेवके चारककी समान शिर उठारहेहैं । यह मेरी छातीसे खर्वीकृतहो हमारी मनोवाञ्छाको पूर्णकरें ॥ २९ ॥

कान्तस्य सोपानमिदं वलित्रयं सूत्रेण लोमावलिलेखलक्षितम् ।
विभाजितं वेदिविलग्नमध्यमे ! कामस्य दुर्गाश्रयमस्तु मे प्रियम् ३०

हे प्यारी!तुम्हारा मध्यदेश (कमर) यज्ञवेदीके मध्यदेशकी नांई क्षीणहै । उसमें त्रिवलीका उदय हुआहै, (उस त्रिवलीके ऊपर) रमणीय रोमरेखा उत्पन्नहैं मैं जानताहूं कि वह सुन्दर त्रिवलीरेखा तुम्हारे प्रीतमकी (मदन मार्गमें उतरनेको) सोपान (सीढ़ी) और कामदेवके आश्रयको मानो दुर्गहै । हेप्रिये! तुम्हारी त्रिवली हमें प्रसन्नकरें ॥ ३० ॥

रम्भोरु ! सम्भोगसुखाय मे स्यान्नितम्बबिम्बं पुलिनोपमं ते ।
तन्वङ्गि ! तन्वंशुकसंगशोभं प्रमत्तकामाविमदोद्यमालम् ॥३१॥

हे रम्भोरु ! पुलिनकी समान तुम्हारे नितम्बबिम्ब हमारे सम्भोग सुखका विधान करें. हेकृशाङ्गि ! सूक्ष्म वस्त्रसे ढके तुम्हारे नितम्बमण्डलपर मदनमत्त पुरुषका कामाभिलाष चरितार्थ होजाताहै । इस समय यह हमारे सम्भोगसुखके कारण होवें ॥ ३१ ॥

पादाम्बुजं तेऽङ्गुलिपत्रचित्रितं वरं मरालक्कणनूपुरावृतम् ।
कामाहिदष्टस्य ममास्तु शान्तये हृदि स्थितं पद्मघने सुशोभने ३२

हमारे हृदय निर्मल जलमें स्थित, अंगुलिरूप पत्रद्वारा चित्रित, हंसकी समान शब्द करनेवाले नूपुरोंसे शोभायमान, परमरमणीय तुम्हारे दो पदपंकजसे, हमारे मदनरूप विषधर दंशन जनित विषका उपशम (शान्ति) होवै ॥ ३२ ॥

श्रुत्वैतद्वचनामृतं कलिकुलध्वंसस्य कल्केरलं
दृष्ट्वा सत्पुरुषत्वमस्य मुदिता पद्मा सखीभिर्वृता ।
कान्तं क्रान्तमना कृताञ्जलिपुटा प्रोवाच तत्सादरं
धीरं धीरपुरस्कृतं निजपतिं नत्वा नमत्कन्धरा ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांसे पद्मा-
कल्कि-साक्षात्-संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कलिकुलका ध्वंस करनेवाले कल्किजीके यह अमृततुल्य वचन सुनकर व तिनका पुरुषत्व अक्षत देखकर पद्मा अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुई । फिर जब पद्माका मन कल्किजी करके घिरगया, तब वह सखियोंके साथ शिर झुकाय, नमस्कार कर, हाथजोड, धीर जनोंसे आदरको प्राप्तहुए अपने पति कल्किजीसे आदरपूर्वक धीरे धीरे कहतीहुई ॥ ३३ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये पद्माकल्कि-
साक्षात्-संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

द्वितीयांशः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

सूत उवाच । सा पद्मा तं हरिं मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी ।
तुष्टाव व्रीडिता देवी करुणावरुणालयम् ॥ १ ॥

सूत बोले—पद्मावती श्रीकल्किजीको साक्षात भगवान् श्रीहरि जानकर लाजसे शिरको झुकाय प्रेमगद्गदवाणीसे उन करुणासागर भगवान्‌की स्तुति करने लगी ॥ १ ॥

प्रसीद जगतां नाथ ! धर्म्मवर्म्मन् ! रमापते ! ।
विदितोऽसि विशुद्धात्मन् ! वशगां त्राहि मां प्रभो ! ॥ २ ॥

हे रमापते ! आप जगत्‌के नाथ और धर्मके वर्म (बख्तर) रूपहैं । हे विशुद्धात्मन् ! आपको पहचानगईहूं । हे प्रभो ! इस समय मैं आपकी शरण आई, आप मेरी रक्षाकरें ॥ २ ॥

धन्याहं कृतपुण्याहं तपोदानजपव्रतैः ।
त्वां प्रतोष्य दुराराध्यं लब्धं तव पदाम्बुजम् ॥ ३ ॥

मैं धन्य और पुण्यवतीहूं, आप कठिनतासे आराध्यहैं, तथापि मैंने तप, दान, जप और व्रतसे आपको संतुष्ट करके आपके चरणोंको प्राप्तकिया ॥ ३ ॥

आज्ञां कुरु पदाम्भोजं तव संस्पृश्य शोभनम् ।
भवनं यामि राजानमाख्यातुं स्वागतं तव ॥ ४ ॥

आप इससमय आज्ञाकरें मैं आपके सुकोमल चरणकमल स्पर्श कर गृहमें जाय, राजासे आपके शुभागमनकी वार्ता निवेदन करूं ॥ ४ ॥

इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितरं नृपम् ।
प्रोवाचागमनं कल्केर्विष्णोरंशस्य दौत्यकैः ॥ ५ ॥

यह कहकर अनुपम रूपवती पद्मा पिताके निकट गई; (और) दूत द्वारा विष्णुजीके अंश कल्किजीके आनेका वृत्तान्त कहा ॥ ५ ॥

सखीमुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया ।
हरेरागमनं श्रुत्वा सहर्षोऽभूद्बृहद्रथः ॥ ६ ॥

जब बृहद्रथ राजाने पद्माकी सखीसे सुना कि, विष्णुजी विवाहार्थी होकर आयेहैं, तब उसके आनन्दकी सीमा न रही ॥ ६ ॥

पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रैर्मित्रैः सुमङ्गलैः ।
वाद्यताण्डवगीतैश्च पूजायोजनपाणिभिः ॥ ७ ॥

फिर वह पुरोहित, ब्राह्मण, पारिजन और मित्रोंके साथ पूजाकी सामग्री साथ ले मांगलिक नृत्य, गीत और वाद्य श्रवण व दर्शन करते २ ॥ ७ ॥

जगामानयितुं कल्किं सार्द्धं निजजनैः प्रभुः ।
मण्डयित्वा कारुमतीं पताकास्वर्णतोरणैः ॥ ८ ॥

कल्किजीको लानेके निमित्त यात्रा करता हुआ, तिसके आत्मीय बन्धु बान्धव सबही उसके साथ चले पताका और सुवर्णमय तोरण समूहोंसे कारुमती पुरी विभूषित हुई ॥ ८ ॥

ततो जलाशयाभ्यासं गत्वा विष्णुयशःसुतम् ।
मणिवेदिकयासीनं भुवनैकगतिं पतिम् ॥ ९ ॥

इसके उपरान्त बृहद्रथ राजाने जलाशयके निकट जायकर देखा कि, विष्णुयशाके पुत्र अगतिके गति जगत्पति, विष्णुजी मणिवेदीपर विराजमानहैं ॥ ९ ॥

घना घनोपरि यथा शोभन्ते रुचिराण्यहो ।
विद्युदिन्द्रायुधादीनि तथैव भूषणान्युत ॥ १० ॥

जल वर्षानेवाले कारे बादरके ऊपर जैसे मनोहर दामिनी व इन्द्रायुधादि शोभा पातेहैं, तैसेही (कृष्णवर्णवाले कल्किजीके अंगमें) अनेक भूषणोंका समूह शोभा पारहाहै ॥ १० ॥

शरीरे पीतवासाग्रघोरभासा विभूषितम् ।
रूपलावण्यसदने मदनोद्यमनाशने ॥ ११ ॥

रूप लावण्यका भवन, मदनको पराजय करनेवाला तिनका शरीर पीताम्बरके अग्रभागमें स्थित अत्यन्त कान्तिसे भूषित हो रहाहै ॥ ११ ॥

ददर्श पुरतो राजा रूपशीलगुणाकरम् ।
साश्रुः सपुलकः श्रीशं दृष्ट्वा साधु तमर्चयत् ॥ १२ ॥

फिर रूपवान गुणयुक्त सुशील श्रीपति कल्किजीको सन्मुख देख राजा

पुलकित हो आनन्दके आंसू बहाने लगा फिर विधिविधानसे तिनकी पूजा करके (कहा) ॥ १२ ॥

ज्ञानागोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ! ।
यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ॥ १३ ॥

हे जगदीश्वर ! यदुनाथ ! जिस प्रकारकाननमें मान्धाताके पुत्रसे मिले थे तैसेही यहांपर आपका आगमन मेरे लिये स्वप्नमेंभी अगोचरहै ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।
हर्म्यप्रासादसंबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ॥ १४ ॥

राजा यह कह पूजाकर कल्किजीको, अटारी और धवरहरोंसे शोभित अपने गृहमें ले आया और यत्न सहित ठहराकर कन्यादान किया ॥१४॥

पद्मां पद्मपलाशाक्षीं पद्मनेत्राय पद्मिनीम् ।
पद्मजादेशतः पद्मनाभायादाद्यथाक्रमम् ॥ १५ ॥

उसने ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार कमलदललोचन पद्मनाभ कल्किजीके निकट, कमलनयनी पद्मिनी पद्माको नियमाननुसार समर्पण किया ॥ १५ ॥

कल्किर्लब्ध्वा प्रियां भार्य्यां सिंहले साधुसत्कृतः ।
समुवास विशेषज्ञः समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ॥ १६ ॥

मतिमान कल्किजी, प्यारी भार्याको प्राप्त करके साधु लोगों करके उत्तम सत्कार पाय, सिंहलद्वीपको उत्तम स्थान देख कुछ दिनतक उस स्थानमें वास करते हुए ॥ १६ ॥

राजानः स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखितां गताः ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः कल्किं विष्णुं जगत्पतिम् ॥ १७ ॥

जो राजालोग, स्त्रीके शरीरको पाय पद्माकी सखी हुए थे, वेह सब अति शीघ्रतासे जगत्के स्वामी कल्किजीके देखनेको आये ॥ १७ ॥

ताः स्त्रियोऽपि तमालोक्य संस्पृश्य चरणाम्बुजम् ।
पुनः पुंस्त्वं समापन्ना रेवास्नानात्तदाज्ञया ॥ १८ ॥

उन्होंने कल्किजीको देखकर तिनके चरण कमलको स्पर्श किया और तिन (हरि) की आज्ञासे वह रेवा नदीमें नहाये । स्नान करतेही नारीभाव छोड फिर पुरुषभावको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥

पद्माकल्की गौरकृष्णौ विपरीतान्तराबुभौ ।
बहिः स्फुटौ नीलपीत-वासोव्याजेन पश्यतु ॥ १९ ॥

पद्माका गौरवर्ण और कल्किजीका कृष्णवर्णहै यह दोनों वर्ण परस्पर विपरीतहैं, इसी कारणसे मानो पद्माका नीलाम्बर और कल्किजीका पीताम्बर रूप बाह्यवर्ण प्रकाशित होकर सबको परस्पर रूपका समन्वय दिखातेहैं ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा प्रभावं कल्केस्तु राजानः परमाद्भुतम् ।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुः शरणार्थिनः ॥ २० ॥

कल्किजीका परम अद्भुत प्रभाव निहार शरणागतहो अत्यन्त भक्तिके साथ नमस्कार करके राजालोगोंने कल्किजीकी स्तुति करनी आरंभकी २०

जय जय निजमायया कल्पिताशेषविशेषकल्पनापरिणाम ! जलाप्लुतलोकत्रयोपकरणमाकलय्य मनुमनिशम्य पूरितमविजनाविजनाविर्भूतमहामीनशरीर ! त्वं निजकृतधर्म्मसेतुसंरक्षणकृतावतारः ॥ २१ ॥

राजा बोले, " हे देव ! तुह्मारी जयहो ! तुह्मारी कल्पनाके बलसे जगत्में अनेक प्रकारकी विचित्र कल्पना कल्पित होरहीहैं, तुह्मारेही प्रभावसे तिनकी परिणति होतीहै । जब त्रिलोकी प्रलयके जलमें डूबगई थी, तब तुमने वेदध्वनि न सुनपाकर प्राणियोंसे रहित जनशून्य स्थानमें महामीनमूर्ति धारण करके, (त्रिलोकीके) समस्त जीवोंका उपकरण संग्रह कियाथा । हे देव ! तुमहीं अपने धर्मरूप सेतुकी रक्षाके लिये मीन अवतार (१) हुएथे ॥ २१ ॥

(१) जब प्रलयके जलमें पृथ्वी डूबगईथी, तब भगवान् विष्णुजीने मत्स्यावतार लियाथा मत्स्यपुराणमें इसप्रकार लिखाहै । यथाः—

पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलं तपः । पुत्रे राज्यं समारोप्य क्षमावान् रविनन्दनः ॥ १३ ॥
तत्र वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते । वरं वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः ॥ १४ ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय ॥)

पूर्वकालमें मनुनामक सूर्यवंशीयराजा, पुत्रके कंधेपर राज्यभार डाल बहुत तप इकट्ठा करताथा । शतयुग बीतजानेपर भगवान्जीने तिसको वरदेनेके अभिलाषसे पूछा, वर मांगो; तुम्हारी क्या अभिलाषाहै कहो । तब मनु बोलेः–

भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च । भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते ॥ १६ ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

अर्थात्–हे देव ! जो प्रसन्नहो तो यह वरदो कि प्रलय होनेपर मैं स्थावर जंगम समस्त भूतग्रामकी रक्षा करसकूं । 'भगवान्' तथास्तु कहकर अंतर्हितहुए, इसओर–

कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम् । पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः । रक्षणायाकरोद्यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ॥ १९ ॥
अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः । सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ॥ २० ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

एकदिन मनुजी आश्रममें पितृतर्पण करतेथे । इसी समय उनकी हथेली पर एक मछली आनपडी । मछलीको देख मनुजीको दया आई । मछलीका प्राण बचानेकी अभिलाषासे राजा मनुने उसको अपने कमण्डलुमें रखदिया । दिनरात्रिमें उस छोटी मछलीका देह १६ अंगुल बढगया । कमंडलुके ओछे स्थानमें वह प्राणजानेकी शंकासे रक्षाकरो रक्षाकरो कहने लगी तबः–

स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम् । तत्रापि चैकसत्रेण हस्तत्रयमवर्द्धत ॥ २१ ॥
पुनः प्राहार्त्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम् । स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणं गतः ॥ २२ ॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद्रविनंदनः । यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ॥ २३ ॥
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात् पुनर्योजनसम्मिताम् । तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहि पाहि नृपोत्तम ॥ २४ ॥
ततः स मनुना क्षिप्तो गंगायामप्यवर्द्धत । यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥ २५ ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

मनुजीने तिसको लेकर मणिकमें (मिट्टीकी कलसीमें) डालदिया । तहांपर वह मत्स्य एक रात्रके बीचमें ३ हाथ बढगया और फिर आर्त्तनाद करने लगा । तब राजर्षिने तिसको कुएमें डालदिया । जब कुएमेंभी उसकी देह न समाई, तब सरोवरमें रखदिया । सरोवरमें डालनेके पीछे यह मत्स्य योजन भर बढगया । तहांपर कातर वचनसे कहने लगा । हे राजर्षे ! मेरी रक्षाकरो, मेरी रक्षाकरो । तब मनुजीने तिसको गंगाजीमें डालदिया । जब गंगाजीमें भी उसकी देह न आ सकी तब समुद्रमें डाला । समुद्रमें डालनेके पीछेः–

पुनरिहदितिज-बल-परिलङ्घित-वासव-सूदनाहत-जितत्रिभुवन-पराक्रम-हिरण्याक्ष-निधन-पृथिव्युद्धरणसंकल्पाभिनिवेशेन धृत-कोलावतारः पाहि नः ॥ २२ ॥

जब दानवोंकी सेना इन्द्रको पराजित करनेलगी और त्रिभुवनको जीतनेवाला पराक्रमी हिरण्याक्ष इन देवराजके संहार करनेको तैयार हुआ तब तिसका नाश और पृथिवीका उद्धार करनेके संकल्पसे आप महा-

---

यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः । तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपि त्वमसुरेतरः ॥ २६ ॥
अथ वा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक् कथं भवेत् । योजनायुतविंशत्या कस्य तुल्यं भवेद्वपुः ॥ २७ ॥
ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव । हृषीकेश जगन्नाथ जगद्धाम नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥
एवमुक्तः स भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः । साधुसाध्विति चोवाच सम्यक् ज्ञातस्त्वयानघ ॥ २९ ॥

(मत्स्यपु०)

उस मत्स्यने समस्त समुद्रको व्याप्त किया, तिसका ऐसा भाव निहार मनुजीने अत्यंत भीतहो पूछाः—हे मीन ! तुम कौन देवताहो कहो । अथवा तुम निश्चय वासुदेवहो । बिना श्रीहरिके और कौन ऐसा होगा ? किसका शरीर २ लक्ष योजनके परिमाणका होगा ? हे केशव ! मत्स्यरूपसे और हमको कष्ट नदो; हम तुम्हारे स्वरूपको जानगएहैं । तब मत्स्यरूपी भगवान् बोले, अच्छा ! अच्छा ! तुम यथार्थ विषय जान गएहो । हे राजर्षे ! शीघ्रही प्रलय होगी, तब पर्वत वनसे युक्त पृथ्वी जलमें डूब जायगी । उस समय जिस्से सृष्टिकी रक्षा होजाय इस अभिलाषसे समस्त देवताओंने यह नाव बनाईहै । तुमः—

स्वेदाण्डजोद्भिजो ये वै ये च जीवा जरायुजाः ।
अस्यां निधाय सर्व्वांस्ताननाथान् पाहि सुव्रत ॥ ३२ ॥

(मत्स्यपुराण १ अध्याय)

स्वेदज (मक्खी भुनगे आदि) अण्डज (मत्स्य, सरीसृप, पक्षी आदि) उद्भिज (वृक्ष लता आदि) और जरायुज (मनुष्य, वानर, घोड़ा आदि) समस्त जीव इस नावमें रखकर तिनकी रक्षा करो· कारण कि तिनकी रक्षा करनेवाले तुम्हारेबिना और कोई नहींहै । जब प्रलय—पवनके कोपसे नाव टकरावैगी, तब हमारे मत्स्य देहके सींगमें उसको बांधदीजो । मनुजीने इसी भांति सृष्टिके बीजोंका संग्रहकर संसारके जीवप्रवाहके बीजोंकी रक्षाकी श्रीमद्भागवतमें कहाहैः—

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे । नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥

(श्रीमद्भागवत, १ स्कन्ध, ३ अ० १५ श्लोक)

इस प्रकार और इसकारण भगवान्ने मत्स्यावतार धारण कियाथा ॥

वराह अवतार (१) हुएथे । अब आप हमारा निस्तारकरें ॥ २२ ॥

पुनरिह जलधि–मथनाहत–देवदानवगण-मन्दराचलानयन-व्याकुलितानां साहाय्येनाहतचित्तः पर्व्वतोद्धरणामृतप्राशनरचनावतारः कूर्म्माकारः प्रसीद परेश ! त्वं दीननृपाणाम् २३

पहले जब देवता और दानव लोग मिलकर समुद्रके मथनेको मन्दराचलके स्थापन करनेका स्थान न पानेसे व्याकुलचित्त हुएथे, तब आपने तिनको सहायता देनेका संकल्पकरके कूर्मावतार होकर पीठपर पर्वतको धारणकिया । देवताओंको अमृतपान करानेके अभिप्रायसेही आपका

---

(१) जब पृथ्वी प्रलयके जलमें डूब गई तब भगवान्ने वराहमूर्त्ति धारण कर पृथ्वीपर अवतारले महीका उद्धार कियाथा । हरिवंशमें लिखाहै;–

पुरा एकार्णवे घोरे श्रूयते मेदिनी त्वियम् । पातालस्य तले मग्ना विष्णुना प्रभविष्णुना ॥
वराहं रूपमास्थाय उद्धृता जगदादिना । हिरण्याक्षस्तु दैत्येन्द्रो वराहेण निपातितः ॥

(महाभारत हरिवंशपर्व १०६ अध्याय)

अर्थात्–ऐसा सुनाजाता है कि पूर्वकालमें घोर एकार्णवमें (प्रलयके समय सब जगत् जलमय होजाताहै, उससमय प्रत्येक जलमयविभागकी दधि, क्षीरादि समुद्र संज्ञा नहीं रहती; समस्तही जलमय होकर एकसा जान पडताहै, इसीसे एकार्णव कहतेहैं) पातालके तले पृथ्वी डूब गईथी । जगत्के आदि कारण भगवान् विष्णुजीने वराहमूर्त्ति धारणकर पृथ्वीका उद्धार कियाथा । वराहमूर्त्तिधारी भगवान्ने दैत्यराज हिरण्याक्षका प्राणसंहार किया ।

श्रीमद्भागवतमें भी कहाहै कि भगवान् वराहमूर्ति धारणकर पृथ्वीपर अवतरेथे; परन्तु इस संक्षिप्त विवरणमें हिरण्याक्षके वधका प्रसंग नहीं दीखता । यथाः–

द्वितीये तु भवायास्य रसातलगतां महीम् । उद्धरिष्यन्नुपादत यज्ञेशः शौकरं वपुः ॥
(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध ३ अध्याय)

अर्थात्, इस विश्वसंसारकी उत्पत्तिके लिये यज्ञेश्वर हरिने रसातल गईहुई पृथ्वीके उद्धार करने की कामनासे शूकरदेह धारण कियाथा ॥

जिस स्थानमें भगवान्ने वराहमूर्त्ति धारण करके हिरण्याक्षदैत्यका संहारकिया, उस स्थानका नाम वराहतीर्थ वा शूकरतीर्थहै । बरेलीके ४७ मील दक्षिणमें गंगाजीके प्राचीन प्रवाहके किनारे यह तीर्थहै । इसका दूसरा नाम शरण वा शूकर खेतहै । गोसांई तुलसीदासजीने भी रामायणमें उसका नाम लिखाहै कि “ पुनिमैं निज गुरुसनमुनी कथा सुशूकरखेत ” ॥

कूर्मावतार हुआथा (१) हे परमेश्वर ! अब आप इन दीन हीन राजाओंके प्रति प्रसन्न होवें ॥ २३ ॥

पुनरिह त्रिभुनजयिनो महाबलपराक्रमस्य हिरण्यकशिपोरर्दितानां देववराणां भयभीतानां कल्याणाय दितिसुतवधप्रेप्सुर्ब्रह्मणो वरदानादवध्यस्य न शस्त्रास्त्ररात्रिदिवास्वर्गमर्त्यपातालतले देवगन्धर्वकिन्नरनरनागैरिति विचिन्त्य नरहरिरूपेण नखाग्रभिन्नोरुं दष्टदन्तच्छदं त्यक्तासुं कृतवानसि ॥ २४ ॥

जब महाबली पराक्रमी त्रिभुवनविजयी हिरण्यकशिपु, प्रधान २ देवताओंको पीडित करने लगा देवतालोगभी जब इस दैत्यके भयसे अत्यन्त भीत हुए तब आप तिन देवताओंके मंगलार्थ इस दैत्यराजके वध का संकल्प करतेहुए; परन्तु उक्त दैत्यराज ब्रह्माके वरसे अवध्य अर्थात् ब्रह्माजीने उसको ऐसा वर दियाथा कि देवता, गन्धर्व, किन्नर, नर वा नाग,

---

(१) देवताओंने अमृतकी प्राप्तिके लिये समुद्रको मन्थन कियाथा । उन्होंने मन्दरपर्वत (भागलपुर जिलेमें कहलगांव–" कहोल–वा कहोड मुनिका प्राचीन आश्रमहै " नामक स्थानसे दूर मन्दर नामक एक पर्वतहै) को मथानी बनानेकी इच्छाकी । परन्तु कोई इस महापर्वतको इसके स्थानसे नहीं उठासका फिर सबने निरुपाय होकर नारायणजीकी शरण ग्रहणकी, तहांपर ब्रह्माजीभीथे । तिनके कहनेसे महाबलवान शेषजीने मन्दरपर्वतको उठाया; परन्तु क्षीरसागरके जलमें मन्दरके स्थापन करनेका आधार नहींथा । नारायणजीने उस शक्तिशाली आधारका प्रभाव देखकर आपही महाकूर्ममूर्त्ति धारण करके पीठलगादी । तब उन कूर्मरूपी भगवान्‌की पीठपर मन्दररूप मंथनदण्ड स्थापन करके समुद्रमंथन होने लगा । यथाः–

कूर्मेण तु तथेत्युक्त्वा पृष्ठमस्य समर्पितम् । तं शैलं तस्य पृष्ठस्थं यंत्रेणेंद्रोऽभ्यपातयत् ॥

(महाभारत आदिपर्व १५ अ० १२ श्लो०)

इसप्रकारसे समुद्रमंथन हुआ । श्रीमद्भागवतमें भी कूर्मावतारका वर्णनहै, विस्तारित वृत्तान्त नहींहै; संक्षेपसे भगवान्‌के कूर्मावतार धारण करनेका कारण और वृत्तान्त लिखाहै यथा;–

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् । दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ।

(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध ३ अध्याय १६ श्लोक)

एकादशवारमें जब देवता और दानवगण (मन्दर पर्वतसे) समुद्रमंथन करतेथे, तब भगवान्‌ने कच्छपमूर्त्ति धारणकरके पीठपर मन्दर पर्वतको धारण कियाथा । श्रीमद्भागवतके मतानुसार कच्छपमूर्ति भगवान्‌का ११ वां अवतारहै ।

शस्त्रसे, वा अस्त्रसे रात्रिमें वा दिनमें, स्वर्गमें वा मर्त्यलोक वा पातालमें (तिसका नाश करनेको समर्थ नहीं होंगे) आपने इन समस्त बातोंका विचार करके नृसिंहमूर्ति धारण की। (दैत्यराज आपको देखतेही क्रोधसे) दांतसे ओठोंको काटता हुआ (कमर बांधताहुआ अर्थात् युद्ध करनेको तैयार हुआ।) (१) आपने अपने नखोंसे तिसके मर्मको फाडकर उसको यमराजके यहांका पाहुना किया ॥ २४ ॥

---

(१) पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुनामक एक दैत्यथा । वह भगवान् विष्णुजीसे अति डाह करताथा । तिसका प्रह्लादनामक पुत्र अत्यन्त हरिभक्त और साधुचरितथा । प्रह्लादकी समान स्थिर विश्वासी भक्तका वृत्तान्त पढ़नेसे ज्ञात होता है कि वह अत्यन्त धार्मिक और प्रेमिकथा । हिरण्यकशिपु पुत्रमें इस प्रकारकी हरिभक्ति का होना सुनकर अप्रसन्न हुआ, और नारायणनाम छोड़नेको पुत्रको बहुत समझाया बुझाया; किन्तु बालक प्रह्लादकी हरिभक्ति किसी प्रकारसे चलायमान न हुई । तब हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके संहार करनेकी आज्ञादी; परन्तु विषदेने, अस्त्रमारने, हाथीके पांवसे दबाने पर भी प्रह्लादजीका प्राण न गया फिर राजसभामें बुलाकर हिरण्यकशिपु प्रह्लादसे कहने लगा, ' तेरा नारायण कहाँ है ! मैं तेरे प्राणोंका नाश करताहूँ, सामर्थ्य हो तो नारायण तेरी रक्षा करे' । नेत्रोंमे नीरभरकर गद गद वाणीसे प्रह्लाद नारायणजीको पुकारने लगे । ब्रह्माजी करके वरपानेसे हिरण्यकशिपु सुरासुर, नर व गन्धर्वोंसे अजीत था । पृथ्वी, आकाश, पातालमें शस्त्र या अस्त्रके आघातसे तिसके प्राणनाशकी संभावना नहींथी । इसी कारण राजसभामें खम्भको फाड़कर नृसिंहरूप नारायणजी प्रगट हुए । तिनकी मूर्त्तिका आधा भाग नर और आधा भाग सिंहकी समान हुआथा, बस एक नये जीवकी सृष्टि हुई ब्रह्माका वचनभी व्यर्थ न हुआ । नृसिंहमूर्त्ति नारायणजीने तीक्ष्ण नखोंसे हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ डाला । और प्राणनाश किया ।

महाभारतके हरिवंशपर्वमें लिखा है । यथाः-

हिरण्यकशिपुश्चैव महाबलपराक्रमः । अवध्योऽमरदैत्यानाम्रृषिगन्धर्वकिन्नरैः ॥
यक्षराक्षसनागानां नाकाशे नावनिस्थले । न चाभ्यन्तरराव्यह्नोर्नशुष्केणार्द्रकेण च ।
अवध्यस्त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्रो ह्यपराजितः । नारसिंहेन रूपेण निहतो विष्णुना पुरा ॥
(महाभा० हरि० १०६ अध्याय)

श्रीमद्भागवतमें कहाहैः-
चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् । ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥
(१ स्कन्ध ३ अ० १८ श्लो० ॥)

इस कारणसे नारायणजीका नृसिंह अवतार हुआथा । विष्णुपुराणमें भी इस अवतारका वृत्तान्तहै अग्निपुराणमें कहाहैः-

सिंहस्य कृत्वा वदनं मुरारिः सदा करालञ्च सुरक्तनेत्रम् ।
अर्द्धं वपुर्वै मनुजस्य कृत्वा ययौ सभां दैत्यपतेः पुरस्तात् ॥
(अग्निपुराण)

पुनरिह त्रिजगज्जयिनो बलेः सत्रे शक्रानुजो बटुवामनो दैत्यसंमोहनाय त्रिपदभूमियाच्ञाच्छलेन विश्वकायस्तदुत्सृष्ट-जल-संस्पर्श-विवृद्धमनोऽभिलाषस्त्वं भूतले बलेर्दौवारिकत्वमङ्गीकृतमुचितं दानफलम् ॥ २५ ॥

फिर आपने त्रिभुवनविजयी बलिराजाके यज्ञमें जाय देवराज इन्द्रके छोटे भ्राता हो वामनमूर्ति धारणकर उक्त दैत्यराजको मोहित करनेके लिये तीन पैग भूमि मांगीथी । फिर उत्सर्गके अर्थ जल छोडतेही जब आपके मनकी अभिलाषा पूर्ण होगई तब आपने विराटमूर्त्ति धारण करके (एक २ पाँवके परिमाणसे भूर्लोक और स्वर्लोक ग्रहण करके इन्द्रको देदिया ।) तदुपरान्त आपने राजा बलिको पातालमें पठाया और त्रिलोकदानके फलरूप आप तिसके द्वारवान होकर रहे (१) ॥ २५ ॥

---

(१) नारायणजीने देवताओंके मंगलार्थ वामनावतार लियाथा पद्मपुराणके पातालखण्डमें वामनावतारका उपाख्यान लिखाहै कि:—प्रह्लादनामक असुरका विरोचननामक एक पुत्रथा, विरोचनका पुत्र बलि हुआ, जोकि अत्यन्त धार्मिक, विशुद्धचरित्र, जितेन्द्रिय और हरिभक्त था वह देवताओंको पराजित कर त्रिलोकीका राज्य करने लगा । इन्द्र और देवतालोग राजा बलिके दास होगये ।

कश्यप और आदितिसे देवताओंका जन्म हुवाथा । उपरोक्त दोनों जनोंने अपनी सन्तानकी यह दशा निहार, तिसका दुःख छुटानेको तप करना आरम्भ किया । इस प्रकार दोनोंको तप करते २ सहस्र वर्ष बीतगये । तपसे प्रसन्नहो नारायण इनके सौहीं प्रगट होकर बोले:— हे कश्यप ! मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हुआहूं जो इच्छा हो सो वर मगो । कश्यप व आदितिने निवेदन किया कि यदि आप प्रसन्नहैं, तो हमारे औरससे जन्म लेकर इन्द्रके कनिष्ठरूपसे उपेन्द्रनाम धारणकर पृथ्वीमें अवतारलो और मायाके बलसे बलिको जीत इन्द्रको त्रिलोलीका राज्य देदो । भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हुए । फिर कालक्रमसे अदिति गर्भवती हुई । सहस्रवर्षमें गर्भ पूर्ण हुआ । एक सहस्र वर्ष गर्भवास करनेके पीछे भगवान् सनातन वामनावतार धारण करते हुए । यहांपर पद्मपुराणमें वामनरूपका वर्णनहैः—

... ... सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ अदितिर्जनयामास वामनं विष्णुमच्युतम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं पूर्णेन्दुसदृशद्युतिम् । सुन्दरं पुण्डरीकाक्षमतिखर्वतरं हरिम् ॥
बटुवेशधरं देवं सर्ववेदान्तगोचरम् । मेखलाजिनदण्डादिचिह्नेनाङ्कितमीश्वरम् ॥

इस समयमें देवताओंने वामनजीके समीप जायकर सूचित किया कि राजा बलि यज्ञ करताहै, यह अवसर उचितहै । इस समय आप भिक्षाके छलसे त्रिलोकीको ग्रहण करके हमारी रक्षाकरें । वामनजी 'तथास्तु' कहकर राजा बलिके यज्ञ गृहमें गये । दैत्यराज बलिने आगमनका कारण पूछा, तब वामनजीने कहाः—

पुनरिह हैहयादिनृपाणाममितबलपराक्रमाणां नानामदोल्लङ्घितमर्य्यादावर्त्मनां निधनाय भृगुवंशजो जामदग्न्यः पितृहोमधेनुहरणप्रवृद्धमन्युवशात्त्रिसप्तकृत्वो निःक्षत्रियां पृथिवीं कृतवानसि परशुरामावतारः ॥ २६ ॥

अनन्तर जब अतुलबल पराक्रमी हैहयराजाओंने अहंकारसे मत्त होकर धर्मको दबाय, मर्यादाका लंघन किया; तब तिनका बध करनेके लिये फिर आप भृगुवंशावतंस परशुरामरूपसे अवतरेथे। फिर आपने इस परशुराम अवतारसे पिताकी होम-धेनु हरणहो जानेसे अत्यन्त

मम त्रिविक्रमं पादं महीं संदातुमर्हसि । एतदल्पमहीं दातुं माविशङ्क महीपते ॥
जगत्त्रयप्रदानं तु मम भूप भविष्यति (पद्मपुराण)

अर्थात्-हे राजन्! हमको ३ परग भूमि दानदो । इस थोड़िसी भूमिके दानमें शंका न कीजो। हमारे लिये यही त्रिजगत्के दानकी समान होगी।

बलि भूमिदान करनेको तैयार हुआ। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने बहुत रोका और कहा कि, सब कुछ जाता रहैगा, ऐसा काम न करो; परन्तु बलिने एक न सुनी। वामनरूपी नारायणजीकी ३ परग भूमिका दान दिया तब;-

पादेनैकेन पुरुषो विक्रम्य मधुसूदनः । उवाच तं दैत्यराजं किं करोमीति शाश्वतम् ॥
अथ सर्वेश्वरो विष्णुर्द्वितीयं पदमव्ययम् । ऊर्द्ध्वं प्रसारयामास ब्रह्मलोकान्तमच्युतः-(पद्मपुराण)

इस प्रकारसे वामनावतार हुआ। वामनपुराणके उपाख्यानके सहित इस वृत्तान्तका साधारण-भेद दिखाई देताहै । श्रीमद्भागवतमें कहाहै;-

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः । खं च कायेन महता तार्त्तीयस्य कुतो गतिः ॥ ३४ ॥
(८ स्कन्ध, १९ अध्याय ।)

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा । अवनिज्यावहन् मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ २० ॥
(श्रीमद्भागवत ८ स्कन्ध, २० अध्याय ।)

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः । पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ ११ ॥
(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध, ३ अध्याय ।)

पंचदश वामनमूर्त्ति धारणकर त्रिविष्टप ग्रहण करनेकी अभिलाषासे तीन पग भूमि मांगनेको राजा-बलिके यज्ञमें गए थे। हरिवंशमें लिखा है;-

वामनेन तु रूपेण कश्यपस्यात्मजो बली । अदित्या गर्भसम्भूतो बलिर्बद्धोऽसुरोत्तमः ॥
सत्यरज्जुमयैः पाशैः कृतः पातालसंश्रयः ॥ (१०६ अध्याय)

अर्थात् भगवान्ने अदितिके गर्भसे और कश्यपजीके औरससे वामनावतार धारणकर प्रतिज्ञारूप रज्जुमय पाश (फंदा) से असुरोंमें श्रेष्ठ बली राजाबलिको बाँध पातालवासी कियाथा ॥

क्रोधितहो पृथ्वीको इक्कीसवार क्षत्रियहीन करदिया (१) ॥ २६ ॥

पुनरिह पुलस्त्यवंशावतंसस्य विश्रवसः पुत्रस्य निशाचरस्य रावणस्य लोकत्रयतापनस्य निधनमुररीकृत्य रविकुलजातदशरथात्मजो विश्वामित्रादस्त्राण्युपलभ्य वने सीताहरणवशात्प्रवृद्धमन्युना अम्बुधिं वानरैर्निबध्य सगणं दशकन्धरं हतवानसि रामावतारः ॥ २७ ॥

जब पुलस्त्यवंशके आभूषण रूप विश्रवा मुनिके पुत्र निशाचर रावणके प्रतापसे त्रिलोकी तापित हुई तब उसका वध करनेके लिये आपने सूर्यकुलमें उत्पन्न राजा दशरथजीके यहां जन्म लियाथा । फिर विश्वामित्रजीके निकट अस्त्र सीखकर जब (पिताजीकी आज्ञासे) बनको गए उक्त रावणने सीताजीको हरण कियाथा । इस्से आपने क्रोधितहो

---

(१) भगवान्ने पापी राजाओंका लोप करनेके लिये जमदग्निके औरस और रेणुकाके गर्भसे जन्म लेकर परशुराम नामसे संसारमें प्रतिष्ठा पाईथी। १ अंशके दूसरे अध्याका (६) चिह्नित नोटदेखो हरिवंशमेंकहाहै-

कार्त्तवीर्यो महावीर्यः सहस्रभुजाविग्रहः । दत्तात्रियप्रसादेन मत्तो वरमदेन च ॥
जामदग्न्यो महातेजा रेणुकागर्भसम्भवः । त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृताम्वरः ॥
पर्शुना वज्रकल्पेन सप्तदीपेश्वरो नृपः । निहतो विष्णुना भूयश्छद्मरूपेण हैहयः ॥

(महाभारत हरिवंशपर्व, १०६ अध्याय)

महावीर्यवान् कार्त्तवीर्यके सहस्र हाथथे । वह दत्तात्रयके प्रसाद करके और वरके मदसे मत्त हुआ था । भगवान् परशुराम रेणुकाके गर्भ और जमदग्निके औरससे जन्म ग्रहण करके महातेजली हो त्रेता और द्वापर युगकी सन्धिके समयमें अवतरेथे । उसकाल तिनकी समान कोईभी शास्त्रदर्शी नहींथा। उन्होंने गुप्त वेशसे वज्रकी समान अपने परशुकरके सातद्वीपके स्वामी हैहय राजाका प्राणसंहार कियाथा॥ श्रीमद्भागवतमें कहा है:-

अवतारे षोडषमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् । त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम्॥

(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध, ३ अध्याय)

सोहलवें अवतारमें राजाओंको ब्रह्मद्रोही देख क्रोधित हो इक्कीसबार पृथ्वीको क्षत्रियहीन किया था॥

वानरोंकी सेनाको बटोर वंशसहित रावणका ध्वंस कियाथा (१) ॥ २७ ॥

पुनरिह यदुकुल-जलधिकलानिधिः सकलसुरगणसेवितपदारविन्दद्वन्द्वः विविधदानवदैत्यदलनलोकत्रयदुरिततापनो वसुदेवात्मजो रामावतारो बलभद्रस्त्वमसि ॥२८॥

तदनन्तर फिर आपने यदुकुलरूप समुद्रके चंद्रमारूप वसुदेवके पुत्र कृष्णरूपसे अवतार ले विविध दैत्यदानवोंका संहारकर त्रिलोकीसे पापको दूर कियाथा। इससे समस्त देवतालोग उस कृष्णावतारके पदारवि-

---

(१) दुराचारी रावण त्रिलोकीको पीडित करने लगा, तब देवताओंने ब्रह्माजीको साथ ले नारायणजीके पास जाय रावणके अत्याचारको निवेदन किया। भगवानने तिनको समझाय बुझाय सूर्यवंशमें राजा दशरथजीके औरससे कौशल्याके गर्भमें जन्मलिया। युवा अवस्थामें राज्याभिषेकके बदले पिताकी आज्ञासे १४ वर्षतक वनवासकर संसारमें पितृभक्ति और निःस्वार्थताका प्रकाशित उदाहरण प्रगट कियाथा। दंडकवनमें रावणकी बहिन शूर्पणखाने रामलक्ष्मणके रूपसे मोहित हो तिनसे अपनी कामना कही, श्रेष्ठचारित्रवाले रामचन्द्रजीने उसको निवारण किया, लक्ष्मणजीने उस पापिनी कुलटाके नाक कान काटडाले। शूर्पणखासे यह अपमान और जानकीजी की सुन्दरताईका वृत्तान्त सुनकर रावण कामक्रोधके मारे अंधा होगया। उसने मारीचसे कहा कि, मायाका मृग होकर जानकीको छल। मारीच मायाका मृग होकर सीताजीके सम्मुख घूमने लगा। सीताजीने रामचन्द्रजीसे उस मृगके पकडनेको कहा। लक्ष्मणजीको आश्रमकी चौकसीपर छोड़ रामचन्द्रजी स्वयं उस मृगके पीछे २ चले। राचन्द्रजीके बाणसे प्राणत्याग करनेके समय मायामृग रामजीकेसा कंठस्वर बनाय कातरध्वनि करने लगा। सीताजीने उस स्वरको सुनकर लक्ष्मणजीसे कहा कि, रामको देखो। लक्ष्मणजीके चले जानेपर रावण संन्यासीका वेष बनाय रामजीके आश्रममें आया और सीताजीको हरणकरके लेगया।

इसी कारण रामचंद्रजीका रावणसे घोर संग्राम हुआ। युद्धमें रावण मारागया। त्रिलोकीका कंटक दूर हुआ। यही रामावतारका प्रयोजन है। हरिवंशमें कहा हैः—

इक्ष्वाकुकुलसम्भूतो रामो दाशरथिः पुरा। त्रिलोकजयिनं वीरं रावणं वै न्यपातयत् ॥

(महाभारत, हरिवंश १०६ अ०)

पूर्वकालके सयय इक्ष्वाकु वंशमें जन्मलेकर दशरथकुमारने रामरूपसे त्रिलोकविजयी वीर रावणको मारडालाथा। बाल्मीकि रामायण और तुलसीकृत रामायणमें इस अवतारका विस्तारित विवरण है. पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्रने इन दोनों ग्रंथोंपर भाषाटीका किया है। जो इसी यंत्रालयमें छपा है।

न्दकी सेवा करने लगे, उसी समय आपने बलदेवरूपसेभी अवतार लिया (१)॥ २८॥

पुनरिह विधिकृत-वेदधर्म्मानुष्ठान-विहित-नानादर्शनसंघृणः संसारकर्म्मत्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरी प्रकृतिविमाननामसम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि॥ २९॥

फिर आपनेही विधाताके कहेहुए वैदिक धर्मानुष्ठानमें अर्थात् यागादिकरणमें अनेक प्रकारकी घृणा देख संसारके त्यागनेसे मिथ्या माया प्रपंचको दूर करनेका उपदेश देनेको बुद्ध अवतार हुए और प्राकृतिक विषयकी अवमानना नहीं की (२)॥ २९॥

---

(१) युधिष्ठिरादिके समयमें भगवानने कृष्ण और बलरामरूपसे अवतार लियाथा। महाभारत, विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत व और दूसरे पुराणोंमेंभी श्रीकृष्णजीका वृत्तान्त लिखा है श्रीमद्भागवतमें कहा है:—

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी। रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम्॥

(श्रीमद्भागवत १ स्कन्ध ३ अध्याय)

उन्नीसवीं और बीसवीं बार वृष्णिवंशमें राम (बलराम) और कृष्ण इन दो रूपसे जन्मलेकर पृथ्वीके भारको हरण कियाथा॥ भाषारसरसिक पाठक गण! कृष्णावतारका विवरण शालिग्राम वैश्य द्वारा अनुवादित "शुकसागर" में देखें, जो इसी यंत्रालयमें छपा है।

(२) वैदिक धर्मकी उदीयमान दशामें यज्ञादिकी अत्यन्त श्रीवृद्धि हुईथी। नरमेध, गोमेध, अश्वमेधादि वैदिक यज्ञोंमें हजारों प्राणियोंके गरम रुधिरसे पृथ्वी कलंकित होने लगी। क्रम २ से वैदिक धर्ममें घोर विप्लव उपस्थित हुआ। धर्मकी ओटमें सैंकड़ों अत्याचार होकर जातियां ध्वंस होने लगीं। उसकाल यज्ञीयपशु और मनुष्योंके करुणारोदनसे व्यथितहो भगवान् बुद्ध मूर्त्ति धारणकर पृथ्वीमें अवतरेथे। उन्होंने "मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" इस वैदिक धर्मको जीवित कियाथा। "अहिंसा परमो धर्मः" यह महामंत्र बुद्धजीके चलाये बौद्ध धर्मका मूल है। श्रीमद्भागवतः—

ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम्। बुद्धो नाम्ना जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति॥

(भागवत १ स्कन्ध, ३ अध्याय)

श्रीधरस्वामी कहते हैं कि, कीकट (प्राचीन मगधराज्य, वर्त्तमान विहारका दक्षिणांश) गया देशमें स्थितथा। यहां बुद्धजीका जन्महुआ। भारतवर्षमें बौद्धधर्मका ऐसा प्रभाव जमगयाथा कि अबतक यहां बौद्धोंकी संख्या बहुत है। पालि और संस्कृतभाषामें बौद्ध धर्मके और बुद्धजीके सम्बन्धके अगणित श्रेष्ठ ग्रंथ हैं। कोई कहते हैं कि, बुद्ध अजनके पुत्र है, कोई जिनका पुत्र बतलाते हैं। इस बातमें मतभेद है। अब कालके बदलनेसे बौद्धोंका धर्म बहुत बदलगया। बौद्धधर्ममें वेदका प्रमाण नहीं, सन्मान नहीं प्राचीन दर्शन पुस्तकोंमें पग २ पर बौद्धधर्मका भ्रम दिखाया है और नास्तिक बतलाया है। कल्किपुराणमेंही कहा है कि, म्लेच्छादि पाखण्डियोंकी नांई बौद्धोंका संहार करनेके लिये भी कल्कि अवतारका प्रयोजन है, फिर किस प्रकारसे बुद्धजी नारयणजीका अवतार हुए इस विषयका निर्णय करना अत्यन्त कठिन बातहै।

अधुना कलिकुलनाशावतारो बौद्धपाखण्डम्लेच्छादीनाञ्च वेदधर्म्मसेतुपरिपालनाय कृतावतारः कल्किरूपेणास्मान् स्त्रीत्वनिरयादुद्धृतवानसि तवानुकम्पां किमिह कथयामः॥ ३० ॥

इस समय आप कलिकुलके ध्वंस करनेके लिये और बौद्ध, पाखण्डी व म्लेच्छादिके शासनके लिये कल्किरूपसे अवतार ले वैदिकधर्मरूप सेतुकी रक्षा करतेहैं। अब आपने हमको स्त्रीपन रूप नरकसे उद्धार किया। अत एव हमलोग आपके अनुग्रहका वर्णन कहांतक करैं (१) ॥ ३० ॥

क्व ते ब्रह्मादीनामविदितविलासावतरणं
क्व नः कामा वामाकुलितमृगतृष्णार्त्तमनसाम् ।
सुदुष्प्राप्यं युष्मच्चरण-जलजालोकनमिदं
कृपापारावारः प्रमुदितदृशाश्वासय निजान् ॥ ३१ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांसे नृपाणां स्तवो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ब्रह्मादि देवता लोगभी जिसकी लीलाके जाननेको समर्थ नहींहैं, इस प्रकारके जो आपहैं तिनको अवतारका विषय कहां ? और जो लोग स्त्रीके देखनेपर मदनबाणसे जर्जर होतेहैं और जिनका मन मृगतृष्णासे पीडितहै, तैसे (नराधम) हम हैंहीं क्या ? हमारे लिये आपके चरणकमलका दर्शन अत्यन्त दुर्लभहै। आप कृपासिन्धुहैं, हम आपके अनुगामीहैं। आप एकवार स्निग्ध नेत्रोंसे देखकर हमें ढाढस बँधावें ॥ ३१ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे नृपाणां स्तवो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

(१) कल्कि अवतार अबतक नहीं हुआ। आगेको जो होगा, इस पुस्तकमें वर्त्तमानकी रीतिसे तिसकाही वर्णन है। कल्किजीका विशेष वृत्तान्त इस अनुवादमेंही लिखाजाताहै। तथापि श्रीमद्भागवतसे इसका प्रमाणदिया जाताहै;—

अथासौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु । जनिता विष्णुयशसो नाम्ना-कल्किर्जगत्पतिः ॥
(प्रथमस्कन्ध ३ अध्याय)

इसके उपरान्त कलियुगकी सन्ध्याके समय जब राजालोग दस्यु (चोर) के समान होंगे, तब यही भगवान् विष्णुयशाके गृहमें कल्किनामसे अवतार लेंगे। इससे कल्कि अवतारकी सूचना हुई।

द्वितीयांशः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

सूत उवाच–श्रुत्वा नृपाणां भक्तानां वचनं पुरुषोत्तमः ।
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्र-वर्णानां धर्म्ममाह यत् ॥ १ ॥

सूतजीबोले–भक्त राजाओंके वचन सुनकर पुरुषोत्तम कल्किजी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णोंका धर्म कहतेहुए ॥ १ ॥

प्रवृत्तानां निवृत्तानां कर्म्म यत्परिकीर्तितम् ।
सर्वं संश्रावयामास वेदानामनुशासनम् ॥ २ ॥

संसारमें आसक्त और रागरहित मनुष्योंके लिये वेदोक्त जो जो कर्म कहे हैं, वह सब उनको सुनाये ॥ २ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा राजानो विशदाशयाः ।
प्रणिपत्य पुनः प्राहुः पूर्व्वान्तु गतिमात्मनः ॥ ३ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर राजाओंके हृदय पवित्र हुए । उन्होंने कल्किजीको फिर नमस्कार करके अपनी अतीत अवस्थाके विषयमें प्रश्न किया (और कहा) ॥ ३ ॥

स्त्रीत्वं वाप्यथवा पुंस्त्वं कस्य वा केन वा कृतम् ।
जरा-यौवन-बाल्यादि सुखदुःखादिकं च यत् ॥ ४ ॥

किस्से और किसकारणसे मनुष्यगण स्त्रीपुरुषके भेदसे अलग होतेहैं बाल्यावस्था, युवावस्था, बुढापा और सुख दुःखादि ॥ ४ ॥

कस्मात्कुतो वा कस्मिन् वा किमेतदिति वा विभो ।
अनिर्णीतान्यविदितान्यपि कर्म्माणि वर्णय ॥ ५ ॥

किसकारणसे कहांसे होतेहैं ? इसका क्या कारणहै ? आपकहैं व और विषय जिनको हम नहीं जानतेहैं सोभी आप वर्णन करें ॥ ५ ॥

(तदा तदाकर्ण्य कल्किरनन्तं मुनिमस्मरत्) ।
सोऽप्यनन्तो मुनिवरस्तीर्थपादो बृहद्व्रतः ॥ ६ ॥

(कल्किजीने यह सुनकर अनन्त नामक मुनिका स्मरण किया ।) बहुतकालसे तीर्थमें वास करनेवाले व्रतधारी मुनिश्रेष्ठ अनन्तभी याद किये जातेही ॥ ६ ॥

कल्केर्दर्शनतो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरन् ।
समागत्य पुनः प्राह किं करिष्यामि कुत्र वा ।
यास्यामीति वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह हसन्मुनिम् ॥ ७ ॥

कल्किजीके दर्शनसे मुक्ति होना विचार शीघ्रतासे तहां आये, क्योंकि उनको मुक्ति प्राप्त करनेका दूसरा उपाय नहींथा । उन्होंने कल्किजीके निकट आयकर कहा कि, हमको क्या करना होगा ? कहांपर जाना होगा ? आज्ञा कीजिये । कल्किजीने यह सुन हँसकर मुनिसे कहा ॥ ७ ॥

कृतं दृष्टं त्वया सर्व्वं ज्ञातं याह्यनिवर्त्तकम् ।
अदृष्टमकृतञ्चेति श्रुत्वा हृष्टमना मुनिः ॥ ८ ॥

मैंने जो कियाहै, सो सब तुमने देखाहै और सब जानतेहो । भाग्यको कोई खण्डन नहीं करसकता,बिना कर्मकियेभी कोई तिसके फलको प्राप्त नहीं होता। यह वचन सुनकर महर्षिजी आनन्दित हुए ॥ ८ ॥

गमनायोद्यतं तं तु दृष्ट्वा नृपगणास्ततः ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोचुर्विस्मितचेतसः ॥ ९ ॥

फिर वह जानेको तैयार हुए । तब राजाओंने तिनको देख विस्मित चित्तसे कमलदललोचन कल्किजीसे कहा ॥ ९ ॥

राजान ऊचुः–किमनेनापि कथितं त्वया वा किमु तान्प्रति ।
सर्व्वं तच्छ्रोतुमिच्छामः कथोपकथनं द्वयोः ॥ १० ॥

राजा बोले:–इन महर्षिजीने क्या कहा ? और आपने तिसका क्या उत्तरदिया ? आपका परस्पर किस विषयमें कथोपकथनहुआ ? सो हम श्रवण करनेकी इच्छा करतेहैं ॥ १० ॥

नृपाणां तद्वचः श्रुत्वा तानाह मधुसूदनः ।

पृच्छतामुं मुनिं शान्तं कथोपकथनादृताः ॥ ११ ॥

राजाओंके यह वचन सुनकर मधुसूदन कल्किजीने कहा, जिस विषयमें हमारा कथोपकथन हुआ उसको यदि जाननेकी इच्छा हो तो इन शान्त हृदयवाले मुनिसे पूछो ॥ ११ ॥

इति कल्केर्वचो भूयः श्रुत्वा ते नृपसत्तमाः ।
अनन्तमाहुः प्रणताः प्रश्नपारतितीर्षवः ॥ १२ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर, प्रश्नका मर्म जाननेके अभिप्रायसे अनन्तको प्रणाम करके पूछा ॥ १२ ॥

राजान ऊचुः—मुने ! किमत्र कथनं कल्किना धर्मवर्मणा ।
दुर्बोधं केन वा जातंतत्त्वं वर्णय नः प्रभो ! ॥ १३ ॥

राजा बोले—हे महर्षे ! धर्मके वर्मरूप,कल्किजीके साथ आपका जो कथोपकथन हुआ, सो अत्यन्त दुर्बोध है, इसका क्या कारण ? आप हम लोगोंसे तिसका गूढ वृत्तान्त वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥

मुनिरुवाच—पुरिकायां पुरि पुरा पिता मे वेदपारगः
विद्रुमो नाम धर्म्मज्ञः ख्यातः परहिते रतः ॥ १४ ॥

मुनिजी बोले—पूर्वकालमें पुरिका × नामक पुरीमें वेदवेदाङ्गके जननेवाले परम धर्मके जाननेवाले कोई महर्षिजी वास करतेथे । विद्रुमनामवाले वही हमारे पिताथे ॥ १४ ॥

सोमा मम विभो ! माता पतिधर्म्मपरायणा ।
तयोर्वयःपारिणतौ काले षण्ढाकृतिस्त्वहम् ॥ १५ ॥

हमारी सोमा नामक माता पतिधर्मपरायणाथी । हमारे पितामाता जब वृद्ध हुए तब हमारा जन्म हुआ । परन्तु मैं क्लीब हुआ ॥ १५ ॥

संजातः शोकदः पित्रोर्लोकानां निन्दिताकृतिः ।
मामालोक्य पिता क्लीबं दुःखशोकभयाकुलः ॥ १६ ॥

× पुरीका—पुरी, उड़ीसाका एक नगर । इसका प्रधान नगरपुरी या पुरुषोत्तम वा जगन्नाथ क्षेत्र है (Smith's Geography of India).

इस्से पिता माताके शोक व दुःखकी सीमा न रही । मेरा आकार देख-कर सबही निन्दा करनेलगे । हमारे पिता हमको षण्ढाकार और क्लीब देख-कर शोक, दुःख और भयसे व्याकुल हो ॥ १६ ॥

त्यक्त्वा गृहं शिववनं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ।
संपूज्येशं विधानेन धूपदीपानुलेपनैः ॥ १७ ॥

गृहको छोड शिववन (१) में जाय धूप दीप और चन्दनादिसे विधि-पूर्वक महादेवजीकी पूजा करके स्तुति करनेलगे ॥ १७ ॥

विद्रुम उवाच–शिवं शान्तं सर्व्वलोकैकनाथं भूता-
वासं वासुकीकण्ठभूषम् । जटाजूटाबद्धगङ्गातरङ्गं
वन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥ १८ ॥

विद्रुमने कहाः-जो सर्व लोकके अद्वितीय नाथहैं, जो मंगलदायक हैं जो समस्तप्राणियोंके आश्रयहैं , वासुकी जिनका कंठभूषणरूपहै, गंगातरंग जिनके जटाजूटमें बँधरही है, आनन्दके सन्दोहका भोग करानेवाले उन महादेवजीको नमस्कार करताहूं ॥ १८ ॥

इत्यादि बहुभिः स्तोत्रैः स्तुतः स शिवदः शिवः ।
वृषारूढः प्रसन्नात्मा पितरं प्राह मे वृणु ॥ १९ ॥

मंगलदायक महादेवजी इसप्रकार बहुविधस्तोत्रसे संतुष्ट हुए, उन्होंने बैलपर सवारहो प्रसन्न मुखसे हमारे पिताको कहा कि, वर मांगो ॥ १९ ॥

विद्रुमो मे पिता प्राह मत्पुंस्त्वं तापतापितः ।
हसञ्छिवो ददौ पुंस्त्वं पार्वत्या प्रतिमोदितः ॥ २० ॥

हमारे पिता विद्रुमजीने कहा, हमारा पुत्र क्लीबहै इस्से मैं अत्यन्त सन्तापित हूं । महादेवजीने हँसकर हमें पुरुष होनेका वर दिया । तिसकाल पार्वतीजीनेभी इस वरदानका अनुमोदन किया ॥ २० ॥

(१) शिववन । हरिद्वार या हरिद्वारतीर्थका कोई वन होगा (?)

मम पुंस्त्वं वरं लब्ध्वा पितायातः पुनर्गृहम् ।
पुरुषं मां समालोक्य सहर्षः प्रियया सह ॥ २१ ॥

फिर हामेरे पिता हमारे पुरुषत्वरूप वरको पाय फिर गृहमें आये । हमें पुरुषाकार देखकर हमारे पिता माता दोनोंको इतना हर्षहुआ कि, जिसकी सीमा नहीं ॥ २१ ॥

ततः प्रवयसौ तौ तु पितरौ द्वादशाब्दके ।
विवाहं मे कारयित्वा बन्धुभिर्मुदमापतुः ॥ २२ ॥

फिर मेरी उमर १२ वर्षकी हुई तब हमारे वृद्ध पितामाताने मेरा विवाह करदिया और बन्धुबान्धवोंके साथ परम हर्षित हुए ॥ २२ ॥

यज्ञरातसुतां पत्नीं मानिनीं रूपशालिनीम् ।
प्राप्याहं परितुष्टात्मा गृहस्थः स्त्रीवशोऽभवम् ॥ २३ ॥

मानिनी रूपयौवनवाली, यज्ञरातकी पुत्रीको मैंने भार्यापाया और परम सन्तुष्ट हृदयसे गृहस्थाश्रममें वास करने लगा । क्रमानुसार मैं स्त्रीके वश होगया ॥ २३ ॥

ततः कतिपये काले पितरौ मे मृतौ नृपाः ।
पारलौकिककार्य्याणि सुहृद्भिर्ब्राह्मणैर्वृतः ॥ २४ ॥

इसके उपरान्त कुछ काल बीतनेपर हमारे माता पिता परलोकवासी हुए। मैंने सुहृद और ब्राह्मणोंके साथ तिनकी पारलौकिक क्रिया की ॥ २४ ॥

तयोः कृत्वा विधानेन भोजयित्वा द्विजान्बहून् ।
पित्रोर्वियोगतप्तोऽहं विष्णुसेवापरोऽभवम् ॥ २५ ॥

फिर मैंने पितामाताकी और्द्धदैहिक क्रिया करके बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया । फिर मातापिताके वियोगसे हृदयमें सन्तापितहो मैंने विष्णुजीकी आराधना करनी आरम्भकी ॥ २५ ॥

तुष्टो हरिर्मे भगवाञ्जपपूजादिकर्मभिः ।
स्वप्ने मामाह मायेयं स्नेहमोहाविनिर्मिता ॥ २६ ॥

मेरे जप पूजा आदि कर्मसे भगवान् हरि संतुष्ट हुए और तिन्होंने

स्वप्नमें मुझसे कहा कि, इस संसारमें स्नेह ममता आदि समस्त हमारीही मायाहै ॥ २६ ॥

अयं पितेयं मातेति ममताकुलचेतसाम् ।
शोकदुःखभयोद्वेगजरामृत्युविधायिका ॥ २७ ॥

'यह हमारा पिताहै' 'यह हमारी माताहै' ऐसी ममतासे जिनका मन आकुलित होताहै, सोई मेरी मायाके द्वारा शोक, दुःख, भय, उद्वेग, जरा, मृत्यु आदिका क्लेश अनुभव करतेहैं ॥ २७ ॥

श्रुत्वेति वचनं विष्णोः प्रतिवादार्थमुद्यतम् ।
मामालक्ष्यान्तर्हितः स विनिद्रोऽहं ततोऽभवम् ॥ २८ ॥

मैंने विष्णुजीका यह वाक्य सुना और जैसेही इसका प्रतिवाद करनेको उद्यत हुआ कि, वह अन्तर्हित होगए और मेरी नींदभी टूटगई ॥ २८ ॥

सविस्मयः सभार्य्योऽहं त्यक्त्वा तां पुरिकां पुरीम् ।
पुरुषोत्तमाख्यं श्रीविष्णोरालयञ्चागमं नृपाः ! ॥ २९ ॥

हे राजाओ ! फिर मैं विस्मितहो पुरिकापुरी छोड़ भार्याके साथ (१) पुरुषोत्तम नामक स्थानमें आया, जो कि, नारायणजीका स्थानहै ॥ २९ ॥

तत्रैव दक्षिणे पार्श्वे निर्मायाश्रममुत्तमम् ।
सभार्य्यः सानुगामात्यः करोमि हरिसेवनम् ॥ ३० ॥

मैं उस पुरुषोत्तमकी दाहिनी ओर उत्तम आश्रम बनाय भार्याके साथ और अनुचरोंके साथ नारायणजीकी सेवा करने लगा ॥ ३० ॥

मायासंदर्शनाकाङ्क्षी हरिसद्मनि संस्थितः ।
गायन्नृत्यञ्जपन्नाम चिन्तयच्छमनापहम् ॥ ३१ ॥

मैं उन विष्णुजीके वासस्थानमें स्थित होकर तिनकी मायाको देखनेकी इच्छा करके नृत्य, गान और जप करके यमराजका भयनाश करनेवाले श्रीहरिजीका ध्यान करने लगा ॥ ३१ ॥

---

१ पुरुषोत्तम–नीलाचलका दूसरा नामहै। दक्षिण समुद्रके तीर ओंड़ (उड़िष्या) देश स्थितहै। यह ऋषिकुल्या और वैतरणीनामक दो नदियोंके बीचका प्रसिद्ध तीर्थस्थानहै । स्वयं पुरुषोत्तम नारायणजीके यहां रहनेसे इस तीर्थका यह नाम हुआहै ।

एवं वृत्ते द्वादशाब्दे द्वादश्यां पारणादिने ।
स्नातुकामः समुद्रेऽहं बन्धुभिः सहितो गतः ॥ ३२ ॥

इसप्रकारसे १२ वर्ष बीत गये । एक समय द्वादशीके पारण दिन मैं बंधुजनोंके साथ स्नान करनेकी अभिलाषासे समुद्रके किनारेपर गया ॥ ३२ ॥

तत्र मग्नं जलनिधौ लहरीलोलसंकुले ।
समुत्थातुमशक्तं मां प्रतुदन्ति जलेचराः ॥ ३३ ॥

फिर मैंने जैसेही समुद्रमें गोता माराहै कि, वैसेही भयंकर तरंगमालासे आकुल होनेपर फिर मैं उठनेको समर्थ न हुआ । मत्स्य आदि जलचर जन्तुगण मुझको व्यथित करने लगे ॥ ३३ ॥

निमज्जनोन्मज्जनेन व्याकुलीकृतचेतसम् ।
जलहिल्लोलमिलनदलिताङ्गमचेतनम् ॥ ३४ ॥

मैं कभी उछलने लगा, कभी डूबने लगा इस प्रकारसे मेरा अन्तःकरण व्याकुल हुआ । मैं जलकी हिलोरसे अचेतन होगया । मेरे समस्त अंग विवश होगये (मैं मृतकसा होगया) ॥ ३४ ॥

जलधेर्दक्षिणे कूले पतितं पवनेरितम् ।
मां तत्र पतितं दृष्ट्वा वृद्धशर्मा द्विजोत्तमः ॥ ३५ ॥

फिर मैं पवन वेगसे चलायमान होकर समुद्रके दक्षिण किनारेपर आया मैं उस स्थानमें पड़ा रहा कि, इतनेमें वृद्धशर्मा नामक एक ब्राह्मण मुझको तिस अवस्थामें देखकर ॥ ३५ ॥

सन्ध्यामुपास्य सघृणः स्वपुरं मां समानयत् ।
स वृद्धशर्मा धर्मात्मा पुत्रदारधनान्वितः ।
कृत्वारुग्णन्तु मां तत्र पुत्रवत्पर्य्यपालयत् ॥ ३६ ॥

करुणासहित हृदयसे उपासना करनेके पीछे मुझे अपने घरपर लेगये धर्मात्मा और स्त्रीपुत्रवाले, धनयुक्त वृद्धशर्मा मुझको रोगरहित करके पुत्रके समान लालन पालन करने लगे ॥ ३६ ॥

अहन्तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न ।
दम्पती तौ स्वपितरौ मत्वा तत्रावसं नृपाः ॥ ३७ ॥

हे राजाओ ! मैं उस स्थानमें दिग्देश कुछभी न जानसका, इस कारण मनमें अत्यन्त दुःखितहो ब्राह्मण दम्पतिकोही पिता माता समझ वहांपरही रहने लगा ॥ ३७ ॥

स मां विज्ञाय बहुधा वेदधर्म्मैष्वनुष्ठितम् ।
प्रददौ स्वां दुहितरं विवाहे विनयान्वितः ॥ ३८ ॥

उस ब्राह्मणने अनेक प्रकारसे मुझको देखा कि, मैं वेदोक्त धर्मसे दीक्षितहूं । तब उसने विनययुक्तहो अपनी कन्याके साथ मेरा विवाह करदिया ३८

लब्ध्वा चामीकराकारां रूपशीलगुणान्विताम् ।
नाम्ना चारुमतीं तत्र मानिनीं विस्मितोऽभवम् ॥ ३९ ॥

इस ब्राह्मणकी कन्याका नाम चारुमती था । इसका रंग तपाए हुए सुवर्णके समानथा । यह रूप, गुण, शील किसीमें कम नहीं हुई । इस सन्मान करनेके योग्य स्त्रीको पायकर मैं अत्यन्त विस्मित हुआ ॥ ३९ ॥

तयाहं परितुष्टात्मा नानाभोगसुखान्वितः ।
जनयित्वा पञ्च पुत्रान्संमदेनावृतोऽभवम् ॥ ४० ॥

यह चारुमती सदा मुझको सन्तुष्ट करने लगी । मैं उस स्थानमें अनेक प्रकारके सुखोंको भोग करने लगा । समयानुसार मेरे पांच पुत्र उत्पन्न हुए । मैं निरन्तर आनन्दके समुद्रमें मग्न रहने लगा ॥ ४० ॥

जयश्च विजयश्चैव कमलो विमलस्तथा ।
बुध इत्यादयः पञ्च विदितास्तनया मम ॥ ४१ ॥

मेरे पांच पुत्रोंका नाम-जय, विजय, कमल विमल और बुध हुआ ॥ ४१ ॥

स्वजनैर्बन्धुभिः पुत्रैर्धनैर्नानाविधैरहम् ।
विदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ॥ ४२ ॥

मेरे पुत्र, आत्मीय, बन्धु जो अनेक हुए और मैं अनेक प्रकारके

धनका स्वामी जो हुआ। इस कारण जिस प्रकार देवराज इन्द्र जैसे स्वर्गमें देवताओंके पूज्य हुए तैसेही मैं सबका पूज्य और सर्वत्र विख्यात हुआ ॥ ४२ ॥

बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विवाहार्थं समुद्यतम् ।
दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो धर्मसारो निजां सुताम् ॥ ४३ ॥

मेरे बडे पुत्रका नाम बुधथा। मैं बुधका विवाह करनेकी इच्छा करता हुआ। धर्मसार नामक किसी ब्राह्मणने मुझको पुत्रका विवाह करनेके लिये तैयार देख संतुष्ट हृदयसे अपनी कन्याके ॥ ४३ ॥

दित्सुः कर्माणि वेदज्ञश्चकाराभ्युदयान्यपि ।
वाद्यैर्गीतैश्च नृत्यैश्च स्त्रीगणैःस्वर्णभूषितैः ॥ ४४ ॥

दान करनेका अभिलाष किया। तिसने कन्याके विवाहार्थ वेदपारग ब्राह्मणके द्वारा आभ्युदयिक (१) कर्म पूरा किया। स्वर्णके अनेक गहने पहने हुए कामिनियें नाचना गाना आरंभ करती हुई। बाजोंकी मधुर ध्वनिसे (सबका मन खींचने लगीं) ॥ ४४ ॥

अहञ्च पुत्राभ्युदये पितृदेवर्षितर्पणम् ।
कर्त्तुं समुद्रवेलायां प्रविष्टः परमादरात् ॥ ४५ ॥

मैं भी पुत्रकी अभ्युदयकामनासे पितृतर्पण, देवतर्पण और ऋषितर्पण करनेके अभिप्रायसे परम यत्नपूर्वक समुद्रके किनारेपर आया ॥ ४५ ॥

वेलालोलायिततनुर्जलादुत्थाय सत्त्वरः ।
तीरे सर्वान्स्नानसन्ध्या-परान्वीक्ष्याहमुन्मनाः ॥ ४६ ॥

(अनन्तर समुद्रके जलमें स्नान और तर्पण करके) शीघ्रही जलसे निकलकर किनारेकी ओर गमन करनेको हुआ। किनारेकी ओर निहार

---

(१) अभ्युदय शब्दका अर्थ विवाहादि इष्टलाभहै। उस अभ्युदयके लिये जो श्राद्ध करना होताहै, तिसको आभ्युदयिकश्राद्ध कहतेहैं। गोभिल गृह्यसूत्रमें और श्राद्धतत्त्वमें आभ्युदयिकश्राद्धका विशेष वर्णन लिखाहै। विवाह, यज्ञोपवीत व अन्नप्राशन आदि शुभकर्मोंके आरम्भमें अभ्युदयकी कांक्षासे आभ्युदायिकश्राद्ध करना पड़ताहै।

कर देखताहूं कि (पुरुषोत्तमक्षेत्रमें रहनेवाले) मेरे पहले भाई बन्धु स्नान और सन्ध्या आह्निक करतेहैं। मैं यह देखकर बहुतही उद्विग्न हुआ ॥ ४६ ॥

सद्यः समभवं भूपाः ! द्वादश्यां पारणादृतान् ।
पुरुषोत्तमसंवासान्विष्णुसेवार्थमुद्यतान् ॥ ४७ ॥

हे भूपालगण ! पुरुषोत्तमवासी ब्राह्मणलोग विष्णुजीकी सेवा और द्वादशी के पारणकी तैयारी करतेहैं सो देखकर तत्काल (मेरे मनमें जैसा विस्मय और उद्वेग प्रगट हुआ सो मैं नहीं कहसकता) ॥ ४७ ॥

तेऽपि मामग्रतः कृत्वा तद्रूपवयसां निधिम् ।
विस्मयाविष्टमनसं दृष्ट्वा मामब्रुवञ्जनाः ॥ ४८ ॥

पहले (द्वादशीके पारणादिमें स्नानके समय) मेरा जैसा रूपथा, जैसी उमरथी, सो कुछभी नहीं बदला। पुरुषोत्तमवासी लोग सामने मुझको इस प्रकार विस्मय (और व्याकुल) देखकर पूछतेहुए ॥ ४८ ॥

अनन्त ! विष्णुभक्तोऽसि जले किं दृष्टवानिह ।
स्थले वा व्यग्रमनसं लक्षयामः कथं तव ॥ ४९ ॥

हे अनन्त ! किसकारण तुमको व्याकुल देखतेहैं ? तुम परम वैष्णवहो, तुमने क्या जलमें या स्थलमें कुछ देखाहै ? ॥ ४९ ॥

पारणं कुरु तद्ब्रूहि त्यक्त्वा विस्मयमात्मनः ।
तानब्रुवमहं नैव किञ्चिद्दृष्टं श्रुतं जनाः ॥ ५० ॥

जो देखाहोतो कहो, विस्मय छोड़कर पारणकरो। मैंने तिनसे कहा, हे लोगो ! मैंने कुछ नहीं देखा, सुना ॥ ५० ॥

कामात्मा तत्कृपणधीर्मायासन्दर्शनादृतः ।
तया हरेर्माययाहं मूढो व्याकुलितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥

परन्तु मैं अत्यन्त काममोहितहूं और मेरा अन्तःकरण अत्यन्त दुर्बलहै। मैं भगवानकी मायाके देखनेका अभिलाषी हुआथा। (मैं अत्यन्त मूर्खहूं)

मैं उससमय उन्हीं हरिकी मायासे इतिकर्त्तव्यताविमूढ होगयाहूं मेरी इन्द्रियां व्याकुल होतीहैं ॥ ५१ ॥

न शर्म्म वेद्मि कुत्रापि स्नेहमोहवशं गतः ।
आत्मनो विस्मृतिरियं को वेद विदितां तु ताम् ॥ ५२ ॥

मैं स्नेहके और मोहके वशमें ऐसा होगयाहूं कि, किसी प्रकारसे स्थिर नहीं होसकता मैं नहीं कह सकता कि, मैं कहांतक आपेको भूलगयाथा; परन्तु मैं जो हरिके मायाजालमें पडाहूं तिसको कोईभी अनुभव नहीं करसका ॥ ५२ ॥

इति भार्य्याधनागार–पुत्रोद्वाहानुरक्तधीः ।
अनन्तोऽहं दीनमना न जाने स्वापसम्मितम् ॥ ५३ ॥

इसप्रकारसे स्त्रीपुत्र, धनागार और पुत्रके विवाहादि विषयमें मेरा मन अत्यन्त अनुरागी और दौडा जो तिस्से मैं बहुतही शोकित और दुःखित होनेलगा । मैं अनन्त क्याकहूं और कौनहूं कुछभी न समझसका (पुरुषोत्तमकी समस्त बातें) मुझको स्वप्नसी जानपडनेलगीं ॥ ५३ ॥

मां वीक्ष्य मानिनी भार्य्या विवशं मूढवत्स्थितम् ।
क्रन्दन्ती किमहोऽकस्मादालपन्ती ममान्तिके ॥ ५४ ॥

इसी अवसरमें अभिमानवाली मेरी भार्या मुझको विवश और मूढके समान स्थित देखकर ‘ हाय ’ ! अचानक क्या हुआ ! कहकर रोते २ मेरे निकट आई ॥ ५४ ॥

इह तां वीक्ष्य तांस्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् ।
हंसोऽप्येको बोधयितुमागतो मां सदुक्तिभिः ॥ ५५ ॥

पुरुषोत्तमक्षेत्रमें मैं अपनी पहली स्त्रीको निहार अपने उन स्त्री पुत्रोंकी याद करके अत्यन्तही कातर और दुःखित होने लगा उसी अवसरमें एक परमहंस श्रेष्ठ उक्तिसे मुझको समझानेके लिये उस स्थानमें आये ॥ ५५ ॥

धीरो विदितसर्व्वार्थः पूर्णः परमधर्म्मवित् ॥ ५६ ॥

यह परमहंस धीर, सर्वज्ञ, पूर्ण और परमधार्मिक ॥ ५६ ॥

सूर्य्याकारं सत्त्वसारं प्रशान्तं दान्तं शुद्धं लोकशो-
कक्षयिष्णुम्।ममाग्रे तं पूजयित्वा मदङ्गाः पप्रच्छुस्ते
प्रच्छुमध्यानकामाः ॥ ५७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे
अनन्त-मायादर्शनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी, सत्वगुणावलम्बी, शान्त, शुद्ध और सबके शोक दुःखको दूर करनेवालेथे। मेरे कुटुम्बी लोग मेरे सामने खडे हुए उन परमहंसकी पूजा करके उनसे पूछने लगे किसप्रकारसे इनकी कुशल होगी ॥ ५७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयां-
शे अनन्तमायादर्शनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

द्वितीयांशः।

पञ्चमोऽध्यायः।

सूत उवाच–उपविष्टे तदा हंसे भिक्षां कृत्वा यथोचिताम्।
ततः प्राहुरनन्तस्य शरीरारोग्यकाम्यया ॥ १ ॥

लोमहर्षण बोलेः–जब परमहंस यथायोग्य भिक्षाकरके बैठगए (तब पुरुषोत्तमतीर्थके ब्राह्मणलोग) उनसे यह पूछते हुए कि, यह (अनन्त किसप्रकारसे रोगरहित होगा ॥ १ ॥

हंसस्तेषां मतं ज्ञात्वा प्राह मां पुरतः स्थितम्।
तव चारुमती भार्य्या पुत्राः पञ्च बुधादयः ॥ २ ॥

तिनके अभिप्रायको जानकर परमहंस मुझको सन्मुख देख मेरे ऊपर दृष्टि डालकर बोलेः–हे अनन्त ! चारुमती नामक तुम्हारी भार्या बुध आदि पांच पुत्र ॥ २ ॥

धनरत्नान्वितं सद्म सम्बाधं सौधसंकुलम्।
त्यक्त्वा कदागतोऽसीह पुत्रोद्वाहदिने न तु ॥ ३ ॥

अटा अटारियोंसे विराजमान अनेक प्रकारके धनरत्नसे युक्त परस्पर मिलाहुआ अपूर्व गृह इन सबको छोड़कर यहांपर कब आएहो ! आज तुम्हारे पुत्रका विवाह दिन हैना ? ॥ ३ ॥

समुद्रतीरसञ्चारः पुराद्धर्म्मजनादृतः।
निमन्त्र्य मामिहायातः शोकसंविग्नमानसः ॥ ४ ॥

(तुम समुद्रके दक्षिणकिनारेपर रहतेहो) आजभी तुमको समुद्रके तीरपर घूमते हुए देखाहै। तहांके समस्त धार्मिक लोगही तुम्हारा आदर किया करतेहैं। (तुमने पुत्रके विवाहोत्सवमें) हमकोभी आज निमंत्रणदिया है। इस समय तुम अपनी पुरीसे यहांपर आयेहो। देखताहूं कि, तुम्हारा अन्तःकरण शोकसे अत्यन्त सन्तापित होरहा है ॥ ४ ॥

त्वञ्च सप्ततिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो !।
त्रिंशद्वर्षीयवत्कस्मादिति मे संभ्रमो महान् ॥ ५ ॥

हे ज्ञानिन् ! मैंने वहांपर तुमको सत्तर वर्षका वृद्ध देखाहै, अब तुमको यहांपर देखताहूं कि, तुम तीस वर्षके युवाहो इकसा क्या कारणहै ? इस बातका हमको अत्यन्त संशय हुआहै ॥ ५ ॥

इयं भार्य्या सहाया ते न तत्रालोकिता क्वचित्।
अहं वा क्व कुतस्तस्मात्कथं वा केन काशितः ॥ ६ ॥

मैं देखताहूं कि, यह नारी तुम्हारी भार्या और सहाय करनेवालीहै, इसको तो मैंने वहांपर कभी नहीं देखा। (यह कहांसे आई) मैं भी कहांसे किसप्रकार कहांपर आया और कौन मुझको यहांपर लेआया ॥ ६ ॥

स एव वा न वापि त्वं नाहं वा भिक्षुरेव सः।
आवयोरिह संयोगश्चेन्द्रजाल इवाभवत् ॥ ७ ॥

तुम क्या वही अनन्त हो वा और कोई हो मैं भी क्या वही भिक्षुकहूं

या और कोईहूं ? तुम्हारा व हमारा इन दोनोंजनोंका यहांपर मिलना इन्द्र-जालकी समान जानपड़ताहै ॥ ७ ॥

त्वं गृहस्थः स्वधर्मज्ञो भिक्षुकोऽहं परात्मकः ।
आवयोरिह संवादो बालकोन्मत्तयोरिव ॥ ८ ॥

तुम स्वधर्मनिष्ठ गृहस्थ हो, मैं परमार्थचिन्तामें तत्पर भिक्षुक ब्राह्मणहूं यहांपर हम दोनोंका कथोपकथन, बालक और मतवालेके कथोपकथनकी बराबरहै (और) असंबद्ध ज्ञान पड़ताहै ॥ ८ ॥

तस्मादीशस्य मायेयं त्रिजगन्मोहकारिणी ।
ज्ञानाप्राप्याद्वैतलभ्या मन्येऽहमिति भो द्विज ! ॥ ९ ॥

हे ब्रह्मन् ! हमको जान पड़ताहै कि यह जगदीश्वर विष्णुजीकी मायाहै इस्सेही त्रिलोकीके लोग मोहित हुए रहतेहैं। साधारणज्ञानसे यह समझमें नहीं आती, अद्वैतज्ञान होनेपर यह माया समस्त समझमें आजातीहै ॥ ९ ॥

इति भिक्षुः समाश्राव्य यदन्यत्प्राह विस्मितः ।
मार्कण्डेय ! महाभाग ! भविष्यं कथयामि ते ॥ १० ॥

भिक्षुपरमहंसने मुझसे विस्मित अंतःकरणसे यह कहकर मार्कण्डेयसे कहा, हे महाभाग ! मार्कण्डेय ! तुमसे होनहार कथा कहताहूं श्रवण करो ॥ १० ॥

प्रलये या त्वया दृष्टा पुरुषस्योदराम्भसि ।
सा माया मोहजनिका पन्थानं गणिका यथा ॥ ११ ॥

सुना होगा कि प्रलयकालमें परमपुरुषके पेटवाले जलमें माया रहा करतीहै, वह माया सबको मोहित करतीहै । वेश्या जिस प्रकार राजमार्ग पर बैठतीहै, तैसेही ॥ ११ ॥

तमो ह्यनन्तसन्तापा नोदनोद्यतमक्षरी ।
ययेदमखिलं लोकमावृत्यावस्थयास्थितम् ॥ १२ ॥

यह माया त्रिलोकीमें व्यापकर स्थिति करतीहै यह मायाही तमो-

गुणरूप होकर सबको मिथ्यासंसारमें चलातीहै । यह मायाही अनंत संतापका कारणहै, किसीसे इसका ध्वंस नहीं होताहै ॥ १२ ॥

लये लीने त्रिजगति ब्रह्मतन्मात्रतां गतः ।
निरुपाधौ निरालोके सिसृक्षुरभवत् परः ॥ १३ ॥
ब्रह्मण्यपि द्विधाभूते पुरुषप्रकृती स्वया ।
भासा संजनयामास महान्तं कालयोगतः ॥ १४ ॥

प्रलयकालमें जब त्रिलोकी लय होजातीहै, जब प्रकाश न होनेसे चारों ओर अंधकार होजाताहै, जब दिग्देश कालादिका कोई चिह्नतक नहीं रहता, तब परब्रह्म सृष्टि करनेका अभिलाषी होकर तन्मात्ररूपसे प्रगट होताहै । प्रथम तो ब्रह्म, अपने माहात्म्य करके पुरुष और प्रकृति, इन दो अंशोंमें विभक्त हुआ । फिर कालकी सहायता करके पुरुष और प्रकृतिका संयोग होनेपर महत्तत्व उत्पन्न हुआ (१) ॥ १३ ॥ १४ ॥

कालस्वभावकर्म्मात्मा सोऽहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
त्रिवृद्विष्णु-शिव-ब्रह्म-मयः संसारकारणम् ॥ १५ ॥

काल और अदृष्ट सहकृत प्रकृतिसे उत्पन्न हुए महत्तत्त्वसे अहंकारतत्त्व उत्पन्न होताहै । अहंकारतत्त्व तीन गुणके भेदसे विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु

---

(१) प्रकृति और पुरुष नित्यहैं । प्रलयकालके समय यह निरूपाधि ब्रह्मके अभिन्नरूपमें रहते हैं । पुरुष चेतनस्वरूपहै, प्रकृति जडस्वरूपहै । प्रकृति स्वयं किसी पदार्थको उत्पन्न नहीं करसकतीहै; पुरुषके संयोगसेही महत् अहंकारादिको उत्पादनकरतीहै । प्रकृतिसे महत्तत्व, महत्तत्त्वसे अहंकारतत्व, अहंकार तत्त्वसे पंचतन्मात्र और ११ इंद्रिय, पंचतन्मात्रसे पंचभूत उत्पन्न होतेहैं । सांख्यवाले इनकोही २४ तत्त्व कहतेहैं । नेत्र, कान, नासिका, जीभ और त्वक् यह पांच ज्ञानके द्वार होनेसे ज्ञानेन्द्रिय शब्दसे पुकारे जातेहैं । वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, यह पांच कार्यके साधन होनेसे कर्मेन्द्रिय शब्दसे पुकारे जाते हैं मन उभयात्मक इन्द्रियहै । सबमें यह ग्यारहवीं इन्द्रियहै । शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र, और गन्धतन्मात्र । इन पांचको पंचतन्मात्र कहा जाताहै । इस समस्त सृष्टिके विषयमें काल (समय) सहकारीहै अर्थात् विना सृष्टिकालके उपस्थित हुए कभीभी कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं होता ।

और महेशको उत्पन्न करताहै। फिर यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश सारे संसारको उत्पन्न करतेहैं (१) ॥ १५ ॥

तन्मात्राणि ततः पञ्च जज्ञिरे गुणवन्ति च।
महाभूतान्यपि ततः प्रकृतौ ब्रह्मसंश्रयात् ॥ १६ ॥

पहली पहल इस अहंकारतत्त्वसे त्रिगुणयुक्त पंचतन्मात्र उत्पन्न हुआ। पंचतन्मात्रसे पंच महाभूत उत्पन्न होतेहैं। प्रकृतिमें पुरुषके अधिष्ठितहोनेपर ऐसी सृष्टि होतीहै (२) ॥ १६ ॥

जाता देवासुरनरा ये चान्ये जीवजातयः।
ब्रह्माण्डभाण्डसंभार–जन्मनाशक्रियात्मिकाः ॥ १७ ॥

अनन्तर देव, असुर, मनुष्य और इस ब्रह्माण्डभाण्डोदरमें उत्पन्न व नाशवान और जो समस्त जीव, जन्तु या पदार्थ विद्यमानहैं, वह सबमें उत्पन्न होतेहैं ॥ १७ ॥

मायया मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः।
संसारशरणव्यग्रो न वेदात्मगतिं क्वचित् ॥ १८ ॥

परमात्माकी मायासे सर्व प्रकारसे ढके रहनेपर यह समस्त जीव संसा-

---

१ सत्व, रज और तमोगुण प्रकृतिकी साम्यावस्थामें रहतेहैं। रजोगुणमय होनेसे ब्रह्माजी सृष्टि-कर्त्ता, सत्वगुणमय होनेसे विष्णुजी रक्षा कर्त्ता और तमोगुणमय होनेसे महादेवजी संहारकर्त्ता हुए हैं।

२ शब्दतन्मात्रसे आकाश, स्पर्श तन्मात्रसे वायु, रूपतन्मात्रसे तेज, रसतन्मात्रसे जल और गन्धतन्मात्रसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। इन महाभूतोंकी उत्पत्तिके समयमेंभी पहले परमाणु, फिर द्व्यणुक इत्यादि क्रमहै।

सांख्यकारिकामें कहाहै कि " मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त " इत्यादि। मूलप्रकृतिको केवल प्रकृति कहाजाताहै, वह किसीकी विकृति नहीं है। महत्तत्त्व प्रकृतिकी विकृति और अहंकारकी प्रकृतिहै। अहंकार, पंचतन्मात्रकी प्रकृति और महत्तत्वकी विकृतिहै। पंचतन्मात्र, भौतिक परमाणु पंचककी प्रकृति और अहंकारकी विकृति है। तिसके अनुसार महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व और पंच-तन्मात्र, यह प्रकृतिशब्दमैंभी युक्त होतेहैं, इस कारण यहांपर प्रकृतिशब्दका अर्थ केवल मूलप्रकृति नहीं है। उस्से आठ तत्त्व अभिहित हुए हैं।

रमेंही लिपटे रहतेहैं और संसारी कामोंमेंही उलझे रहतेहैं, अपने उद्धारके उपायको कुछभी नहीं सोचते ॥ १८ ॥

अहो बलवती माया ब्रह्माद्या यद्वशे स्थिताः ।
गावो यथा नसि प्रोता गुणबद्धाः खगा इव ॥ १९ ॥

कैसा आश्चर्यहै ! माया कैसी बलवतीहै ! मायाका कैसा अद्भुत सामर्थ्यहै! ब्रह्मादि देवतालोगभी इस मायाके वशमें रहकर नाथसे बिंधे बैलकी समान डोरीसे बंधे पक्षीकी समान (संसारचक्रमें) निरंतर घूमतेहैं ॥ १९ ॥

तां मायां गुणमय्यां ये तितीर्षन्ति मुनीश्वराः ।
स्रवन्तीं वासनानक्रां त एवार्थविदो भुवि ॥ २० ॥

जो महर्षिलोग इस प्रकारकी वासनारूप, नक्र-चक्र (नाके-भँवर) उत्पन्न करनेवाली महाप्रवाहवती गुणमयी माया (रूप महानदी) के पार होनेकी अभिलाषा करतेहैं, उनकाही जन्म सार्थकहै और वही यथार्थमें तत्त्वज्ञानीहैं ॥ २० ॥

शौनक उवाच–मार्कण्डेयो वशिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे ।
श्रुत्वा गुरुवचो भूयः किमाहुः श्रवणादृताः ॥ २१ ॥

शौनकजी बोलेः—मार्कण्डेय, वशिष्ठ, वामदेव व और ऋषिलोगोंने यह आश्चर्यका वाक्य सुनकर क्या कहा ? अनंतका उपाख्यान सुननेवाले॥ २१॥

राजानोऽनन्तवचनामिति श्रुत्वा सुधोपमम् ।
किं वा प्राहुरहो सूत ! भविष्यमिह वर्णय ॥ २२ ॥

राजाओंने अनन्तके मुखसे अमृतकी समान यह वाक्य सुनकर क्या कहा ? हेसूत ! यह समस्त होनहार कथा वर्णन करो ॥ २२ ॥

इति तद्वच आश्रुत्य सूतः सत्कृत्य तं पुनः ।
कथयामास कार्त्स्न्येन शोकमोहविघातकम् ॥ २३ ॥

सूतजीने यह सुनकर शौनककी प्रशंसा करके शोक मोह नाशक उन समस्त तत्त्वज्ञानकी कथाओंका फिर विस्तारसे वर्णन करना आरम्भ किया ॥ २३॥

सूत उवाच–तत्रानन्तो भूपगणैः पृष्टः प्राह कृतादरः ।
तपसा मोहनिधनमिन्द्रियाणाञ्च निग्रहम् ॥ २४ ॥

सूतजी बोले,–इसके उपरान्त राजाओंने आदरपूर्वक अनन्तसे पूछा तब अनन्तने तपकरके मायाका परिहार और इन्द्रियनिग्रहका वृत्तान्त कहा ॥ २४ ॥

अनन्त उवाच ॥ अतोऽहं वनमासाद्य तपः कृत्वा विधानतः।
नेन्द्रियाणां न मनसो निग्रहोऽभूत्कदाचन ॥ २५ ॥

अनन्तने कहा कि फिर मैंने विधिविधानके साथ वनमें जाकर तप करना आरंभ किया; परन्तु किसी प्रकारसेभी इन्द्रियोंको और मनको वशमें नकरसका ॥ २५ ॥

वने ब्रह्म ध्यायतो मे भार्य्यापुत्रधनादिकम् ।
विषयश्चान्तरा शश्वत्संस्मारयति मे मनः ॥ २६ ॥

मैं वनमें बैठकर जबही परब्रह्मका ध्यानकरूं, उसीसमय निरन्तर स्त्री, पुत्र, धन व और सब बातें मुझे याद आयाकरें ॥ २६ ॥

तेषां स्मरणमात्रेण दुःखशोकभयादयः ।
प्रतुदन्ति मम प्राणान्धारणा-ध्याननाशकाः ॥ २७ ॥

मेरे अन्तःकरणमें स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदिकी याद आतेही दुःख, शोक, भय आदि होनेलगे, तिस्से मेरा अन्तरात्मा अत्यन्त व्याकुलहो, बस मेरे ध्यान धारणामें विघ्नहुआकरे ॥ २७ ॥

ततोऽहं निश्चितमतिरिन्द्रियाणाञ्च घातने ।
मनसो निग्रहस्तेन भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥

फिर मैंने इन्द्रियोंके नष्ट करनेका संकल्प किया, विचारा कि निःसन्देह इन्द्रियोंके नष्टकरतेही मनको वशकर सकूंगा ॥ २८ ॥

अतो मामिन्द्रियाणाञ्च निग्रहव्यग्रचेतसम् ।
तदधिष्ठातृदेवाश्च दृष्ट्वा मामीयुरञ्जसा ॥ २९ ॥

मैं जब इसप्रकारसे संकल्पकरके इन्द्रियोंको दमन करने लगा, तब इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतालोग अकस्मात् आयकर मेरी ओर देखने लगे ॥ २९ ॥

रूपिणो मामथोचुस्ते भोऽनन्त ! इति ते दश ।
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्वि-वह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥ ३० ॥

उनदश इन्द्रियोंके दश अधिष्ठाता अपना २ रूप धारण करके आयेथे तिन्होंने हमसे कहा, हे अनन्त ! हम दिक्, वात, अर्क, प्रचेता, दो अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्रहैं ॥ ३० ॥

इन्द्रियाणां वयं देवास्तव देहे प्रतिष्ठिताः ।
नखाग्रकाण्डसांभिन्नान्नास्मान्कर्त्तुमिहार्हसि ॥ ३१ ॥

हम दशजन दश इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताहैं । हम तुम्हारे शरीरमें प्रतिष्ठितहैं । हमको नखकी नोकसे छिन्न और नष्टकरना तुमको उचित नहींहै ॥ ३१ ॥

न श्रेयो हि तवानन्त ! मनोनिग्रहकर्म्मणि ।
छेदने भेदनेऽस्माकं भिन्नमर्म्मा मरिष्यसि ॥ ३२ ॥

विशेष करके ऐसा करनेसे तुम्हारा कोई भलाहोगा, या तिस्से मनको तुम वश करसकोगे सो नहीं; अधिक होगा तो यह होगा कि, इन्द्रियोंके छिन्न भिन्न करनेसे तुमहीं मर्ममें व्यथापायकर मरजाओगे ॥ ३२ ॥

अन्धानां बधिराणाञ्च विकलेन्द्रियजीविनाम् ।
वनेऽपि विषयव्यग्रं मानसं लक्षयामहे ॥ ३३ ॥

हम देखतेहैं कि अन्धे, बहरे और विकल इन्द्रियोंवाले जीव जब जन रहितवनमें वास करतेहैं तबभी तिनके मन विषयभोगलालसासे लोलुप होतेहैं ॥ ३३ ॥

जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेहं मनोऽनुगः ।
बुद्धिर्भार्य्या तदनुगा वयमित्यवधारय ॥ ३४ ॥

यह शरीर गृहस्वरूपहै, आत्मा गृहस्थरूपहै, बुद्धि गृहिणीस्वरूपहै और मन परिचारकस्वरूपहै । हमलोगोंको भी बुद्धिरूप भार्याके अनुगत परिचारक (सेवक) जानो ॥ ३४ ॥

कर्मायत्तस्य जीवस्य मनो बन्धविमुक्तिकृत् ।
संसारयति लुब्धस्य ब्रह्मणो यस्य मायया ॥ ३५ ॥

जीवगण अपने २ कर्मके अधीनहैं, अर्थात् जो जैसा कर्मकरताहै वह तैसाही फल भोगताहै । मनहीं मुक्ति और संसार बन्धनका कारण है । जगदीश्वरकी मायाके अनुसार मनही लोभी पुरुषको संसारचक्रमें घुमाताहै ॥ ३५ ॥

तस्मान्मनोनिग्रहार्थं विष्णुभक्तिं समाचर ।
सुखमोक्षप्रदा नित्यं दाहिका सर्व्वकर्म्मणाम् ॥ ३६ ॥

इस कारण तुम मनको वशमें करनेकेलिये विष्णुजीमें भक्ति स्थापन करो विष्णुजीकी भक्तिही निरन्तर सबकर्मोंका ध्वंस करतीहै और विष्णुभक्तिसेही सुख वा मोक्ष प्राप्त हो जासकताहै (१) ॥ ३६ ॥

द्वैताद्वैतप्रदानन्द-सन्दोहा हरिभक्तिका ।
हरिभक्त्या जीवकोष-विनाशान्ते महामते ! ॥ ३७ ॥

हरिभक्तिसे द्वैत और अद्वैतका ज्ञानहोजाताहै, इसकारण हरिभक्तिही

---

१ पाप पुण्यरूप कर्मके वश करके तिसका फल भोगनेके लिये संसारमें जन्म लेना पड़ता है । बिना इस पापपुण्यका ध्वंस हुए मोक्ष नहीं होता । भगवद्गीतामें कृष्णजीने अर्जुनसे कहा है किः—

" ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्ज्जुन ! " हे अर्ज्जुन ! ज्ञानरूप अग्नि समस्त कर्मको भस्म करदेता है । अर्थात् तत्त्वज्ञान होनेपर पूर्वसंचित पापपुण्य ध्वंस होजाता है, और फिर भी किसी कार्यमें ज्ञानीको पाप या पुण्य नहीं होसकता; इसकारण संसारबन्धनका मूल पाप पुण्य न रहै, तो जन्मभी नहीं होता ॥

आनन्दसन्दोह दायिनीहै। हे महामते ! हरिभक्तिसे जीवकोष अर्थात लिंगशरीर ध्वंसहोगा (१) ॥ ३७ ॥

परं प्राप्स्यसि निर्वाणं कल्केरालोकनात्त्वया।
इत्यहं बोधितस्तेन भक्त्या संपूज्य केशवम् ॥ ३८ ॥

इस समय तुम कल्किजीका दर्शन करो, तिस्से परमनिर्वाणको प्राप्त कर सकोगे। जब परमहंसने मुझको ऐसा उपदेश दिया तब मैं भक्तिपूर्वक केशवकी पूजाकरके ॥ ३८ ॥

कल्किं दिदृक्षुरायातः कृष्णं कलिकुलान्तकम् ॥ ३९ ॥

कलिके कुलका नाश करनेवाले कल्किजीका दर्शन करनेको इस स्थानमें आयाहूं ॥ ३९ ॥

दृष्टं रूपमरूपस्य स्पृष्टस्तत्पदपल्लवः।
अपदस्य श्रुतं वाक्यमवाच्यस्य परात्मनः ॥ ४० ॥

इसस्थानमें रूपहीन ईश्वरके रूपका दर्शन किया, पदहीन ईश्वरके चरण पल्लवको स्पर्श करके कृतार्थ होगया। जो वाक्यहीन हैं, उन जगत्पतिके वाक्य सुने ॥ ४० ॥

इत्यनन्तः प्रमुदितः पद्मानाथं निजेश्वरम्।
कल्किं कमलपत्राक्षं नमस्कृत्य ययौ मुनिः ॥ ४१ ॥

यह कहकर अनन्त मुनि हर्षित हृदयसे अपने ईश्वर, कमलदललोचन, पद्मानाथ, कल्किजीको नमस्कार करके चलेगये ॥ ४१ ॥

राजानो मुनिवाक्येन निर्वाण-पदवीं गताः।
कल्किमभ्यर्च्य पद्माञ्च नमस्कृत्य मुनिव्रताः ॥ ४२ ॥

---

१ "पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्। अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ॥" लिंगशरीरमें प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान यह पांचवायु, मन, बुद्धि और कर्मेन्द्रिय पांच और पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं। स्थूलशरीरके मध्यमें यह अमिश्रभूत-निर्मित सूक्ष्मशरीर रहता है। इस सूक्ष्मशरीरको पुरुष कहते हैं। मृत्युकालमें स्थूलशरीरध्वंस होनेपर सूक्ष्मशरीरध्वंस नहीं होता। यह सूक्ष्मशरीरही परलोकमें वा दूसरी देहमें जायकर पहले जन्मके पाप पुण्यका फल भोगता है मुक्तिके समयमें यह सूक्ष्म शरीर नष्ट होजाता है, इस कारण फिर जन्म लेनेकी सम्भावना नहीं रहती।

इसप्रकार मुनिके वचन सुनकर राजालोग मुनियोंकी समान व्रत नियमादिका अनुष्ठान करनेलगे और वे कल्कि पद्माकी पूजा करके मुक्तिमार्गके पथिक हुए ॥ ४२ ॥

शुक उवाच—अनन्तस्य कथामेतामज्ञानध्वान्त-नाशिनीम् ।
मायानियन्त्रीं प्रपठञ्छृण्वन्बन्धाद्विमुच्यते ॥ ४३ ॥

शुकने कहाः—इन अनन्तकी कथा पढने या श्रवण करनेसे संसारकी माया नियमित होजातीहै, अज्ञानरूप अंधकार दूर होजाताहै और संसार बन्धनसे मुक्ति होजातीहै ॥ ४३ ॥

संसाराब्धि-विलासलालसमतिः श्रीविष्णुसेवादरो
भक्त्याख्यानमिदं स्वभेद-रहितं निर्माय धर्मात्मना ।
ज्ञानोल्लास-निशात-खड्गमुदितः सद्भक्ति-दुर्गाश्रयः
षड्वर्गं जयतादशेषजगतामात्मस्थितं वैष्णवः ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे अनन्त-मायानिरसनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो धर्मात्मावैष्णव हैं, विष्णुसेवापरायण होकरभी संसारसागरमें विलास करनेकी लालसासे रहतेहैं, वह इस आख्यान करके संसारके अभेद ज्ञानरूप उल्लसित तीक्ष्ण खड्गको धारण करके उठाय भक्तिरूप दुर्गके आश्रितहो, शरीरास्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छैः शत्रुओंको पराजितकरें ॥ ४४ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे अनन्तमायानिरसनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

द्वितीयांशः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

सूत उवाच-- गते नृपगणे कल्किः पद्मया सह सिंहलात् ।
शम्भलग्राम-गमने मतिं चक्रे स्वसेनया ॥ १ ॥

सूतजी बोलेः-इसके उपरान्त राजाओंके चलेजानेपर कल्किजीने पद्माके साथ और सेनाके सहित सिंहलद्वीपसे गमन करनेकी अभिलाषा की ॥ १ ॥

ततः कल्केरभिप्रायं विदित्वा वासवस्त्वरन् ।
विश्वकर्म्माणमाहूय वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥

तब देवराज इन्द्रजीने, कल्किजीके अभिप्रायको जानकर तत्काल विश्वकर्मा (१) को बुलायके कहा ॥ २ ॥

इन्द्र उवाच-विश्वकर्मञ्छम्भले त्वं गृहोद्यानाट्ट-घट्टितम् ।
प्रासादहर्म्य-संबाधं रचय स्वर्णसञ्चयैः ॥ ३ ॥

इन्द्रबोलेः-हे विश्वकर्मन् ! तुम शम्भलग्राममें जाय सुवर्णके समूहसे धवरहर, महल, अटा अटारियें गृह उद्यानादि बनाओ ॥ ३ ॥

रत्नस्फटिक-वैदूर्य्य-नानामणि-विनिर्मितैः ।
तत्रैव शिल्पनैपुण्यं तव यच्चास्ति तत्कुरु ॥ ४ ॥

रत्न, स्फटिक, वैदूर्य (२) आदि अनेक मणियोंसे (अनेक प्रका-

---

(१) विश्वकर्मा-ऋग्वेदमें इनका नाम त्वष्टा है । इनकी कन्याका नाम सरन्यु वा संज्ञा हुआ। विवस्वान् (सूर्य) के साथ इस कन्याका विवाह हुआ । अश्विनेय गण इसके पुत्र हुए । (Muir's Oriental Studies) पुराणोंके मतसे विश्वकर्मा देवताओंका शिल्पी है । इसका पिता प्रभास नामक वायु और माता योगसिद्धाहै । इसके पुत्रका नाम वृत्र हुआ ।

(२) मणिविशेष । डाक्टर रामदासने अपनी रत्नरहस्य नामक पुस्तकमें कहा है, " कोई २ कहते हैं कि विदुरदेशीय पर्वतपर उत्पन्न होनेके कारण इसका " वैदूर्य " नाम हुआहै । इस मणीका व्यवहार अति प्राचीनकालसे होता आयाहै । रामायण व महाभारतादि प्राचीन पुस्तकोंमेंभी इसका वर्णन है । व्यवहारकी वस्तु होनेसे इसके अनेक संस्कृत नामहैं । जैनाचार्यहेमचंद्रने इसके दोनाम कहेहैं। यथा:-'वैदूर्य' बालवायजम् । किन्तु राजनिघण्टु आदि ग्रन्थोंमें इसके केतुरत्न, कैतव, प्रावृष्य, अभ्ररोह खराब्दांकुर, विदूररत्न, विदूरज्ञ नाम देखे जाते हैं ।

महर्षि शुक्राचार्यने कहाहै-ओत्त्वक्ष्याभश्चलत्तन्तुवैदूर्यः केतुप्रीतिकृत् ॥

(शुक्रनीति ४ अध्याय २ प्रकरण ४६ श्लोक)

इस कवितामें वैडूर्य मध्य श्रेणीके अन्तर्गत वर्णन हुआ है राजनिघण्टुमें वैडूर्य मणिकी कान्तिका वर्णन दिखाई देता है । यथा:-

एकं वेणुपलाशकोमलरुचामायूरकण्ठत्विषा मार्ज्जारेक्षणपिंगलच्छविजुषा ज्ञेयं त्रिधाच्छायया । यद्गात्रं गुरुतां दधाति नितरां स्निग्धन्तुदोषोज्झितं वैडूर्य्यं विशदं वदन्ति सुधियः स्वच्छन्तु तच्छोभनम् ।

भावप्रकाशमें कहा हैः-वैदूर्य्यं दूरजं रत्नं स्यात्केतुग्रहवल्लभम् ।

वैड्डर्य दूरदेशमें उत्पन्न होता है, इस कहनेसे डाक्टर रामदासका मत समर्पित हुआ है ।

प्राचीन समयमें गृहशान्तिके लिये रत्नका व्यवहार होताथा । तिसकाल केतु ग्रहकी शान्तिके लिये वैड्डर्यमणिके व्यवहारका चलनथा । ज्ञातहोताहै कि, इसी कारण वैडूर्यमणिको केतुप्रिय कहा है ।

रके शिल्पकार्य करना बरन) शिल्पविद्यामें तुम जहांतक निपुणहो, तिस निपुणताके प्रगट करनेमें कसर मत करियो ॥ ४ ॥

श्रुत्वा हरेर्वचो विश्वकर्मा शर्म निजं स्मरन्।
शम्भले कमलेशस्य स्वस्त्यादि-प्रमुखान्गृहान् ॥ ५ ॥

तब विश्वकर्माने देवराजके यह वचन सुन अपना मंगल होना जान शम्भलग्राममें कमला-नाथके लिये स्वास्ति आदि अनेक प्रकारके गृह (बनाए) ॥ ५ ॥

हंससिंहसुपर्णादिमुखांश्चक्रे स विश्वकृत्।
उपर्य्युपरि तापघ्नवातायनमनोहरान् ॥ ६ ॥

कोई गृह हंसमुख, कोई गृह सिंहमुख, कोई गृह गरुड़मुख इत्यादि अनेक प्रकारके गृह हुए। समस्त गृह दुतल्ले, तितल्ले आदि एकके ऊपर एक बनने लगे। ग्रीष्म निवारण करनेके लिये बहुतसी खिड़कियां शोभायमान होने लगीं ॥ ६ ॥

नानावनलतोद्यानसरोवापीसुशोभितः।
शम्भलश्चाभवत्कल्केर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ७ ॥

अनेक प्रकारके वन, लता, उद्यान, सरोवर, दीर्घिका (डिग्घी) आदिसे कल्किजीका शम्भल ग्राम इन्द्रकी अमरावतीके समान अपूर्व शोभाको धारण करता हुआ ॥ ७ ॥

कल्किस्तु सिंहलाद्द्वीपाद्बहिः सेनागणैर्वृतः।
त्यक्त्वा कारुमतीं कूले पाथोधेरकरोत्स्थितिम् ॥ ८ ॥

इस ओर सिंहलद्वीपमें सेनाके साथ कारुमती नगरीसे कल्किजी बाहर निकले फिर वह समुद्रके किनारेपर(सेनाकी छावनी डाल उस दिन)ठहरे ॥ ८ ॥

बृहद्रथस्तु कौमुद्या सहितः स्नेहकातरः।
पद्मया सहितायास्मै पद्मानाथाय विष्णवे ॥ ९ ॥

कन्याके स्नेहसे कातरहो कौमुदी नामक रानीके साथ राजा बृहद्रथ

(उस समुद्रके किनारेतक आया) और सन्तुष्ट हृदयसे पद्माको और पद्मानाथ विष्णुजीको ॥ ९ ॥

ददौ गजानामयुतं लक्षं मुख्यश्च वाजिनाम् ।
रथानाञ्च द्विसाहस्रं दासीनां द्वे शते मुदा ॥ १० ॥

दशहजार हाथी, लक्ष उत्तम घोड़े, दो हजार रथ और दो शत दासियें दान करता हुआ ॥ १० ॥

दत्त्वा वासांसि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुलोचनः ।
तयोर्मुखालोकनेन नाशकत्किञ्चिदीरितुम् ॥ ११ ॥

वह अनेक प्रकारके वस्त्र और अनेक रत्नदान करके भक्ति व स्नेहभरे नेत्रोंसे जामाता और कन्याके वदनकमलको देखता रहा, कोईभी वचन न कहसका ॥ ११ ॥

महाविष्णुदम्पती तौ प्रस्थाप्य पुनरागतः ।
पूजितः कल्किपद्माभ्यां निजकारुमतीं पुरीम् ॥ १२ ॥

वह कन्या और जमाईको विदाकर तिन करके पूजितहो, तिनको (शंभलग्राममें) पठाय कारुमती नामक अपनी नगरीमें लौट आया ॥ १२ ॥

कल्किस्तु जलधेरम्भो विगाह्य पृतनागणैः ।
पारं जिगमिषुं दृष्ट्वा जम्बुकं स्तम्भितोऽभवत् ॥ १३ ॥

इसके उपरान्त कल्किजीने सेना समूहके साथ समुद्रके जलमें स्नान करके देखा कि एक शृगाल जलके ऊपर होता हुआ पारको जाताहै । तब वह खड़े होगये ॥ १३ ॥

जलस्तम्भमथालोक्य कल्किः सबलवाहनः
प्रययौ पयसां राशेरुपरि श्रीनिकेतनः ॥ १४ ॥

फिर वह लक्ष्मीनाथ कल्किजी जलस्तम्भको हुआ देखकर सेना और वाहनोंके साथ समुद्रके ऊपरको होकर चले ॥ १४ ॥

गत्वा पारं शुकं प्राह याहि मे शम्भलालयम् ॥ १५ ॥

उन्होंने समुद्रके पार होकर शुकसे कहाः—हे शुक ! तुम शम्भलग्राममें हमारे स्थानपर जाओ ॥ १५ ॥

विश्वकर्म्मकृतं यत्र देवराजाज्ञया बहु ।
सद्म संबाधममलं मत्प्रियार्थं सुशोभनम् ॥ १६ ॥

वहांपर विश्वकर्माने इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार हमारा प्रिय कार्य सिद्ध करनेको बहुतसे शोभायमान् निर्मल गृह बनाएहैं ॥ १६ ॥

तत्रापि पित्रोर्ज्ञातीनां स्वस्ति ब्रूयाद्यथोचितम् ।
यदत्राङ्ग ! विवाहादि सर्व्वं वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १७ ॥

तुम वहां जाकर हमारे मातापिताके निकट और जातिवालोंके निकट यथारीतिसे हमारा कुशल सम्वाद देना । हमारे विवाहादिका समस्त वृत्तान्त कहना ॥ १७ ॥

पश्चाद्यामि वृतस्त्वेतैस्त्वमादौ याहि शम्भलम् ॥ १८ ॥

मैं सेनाके साथ पीछे आताहूं, तुम शम्भलग्राममें आगे जाओ ॥ १८ ॥

कल्केर्वचनमाकर्ण्य कीरो धीरस्ततो ययौ ।
आकाशगामी सर्व्वज्ञः शम्भलं सुरपूजितम् ॥ १९ ॥

परम धीर सर्वज्ञ कीर (तोता) कल्किजीके वचन सुनकर आकाशमार्गमें उडा । कुछ देरके पीछेही आदरके योग्य शम्भलग्राममें पहुंचा ॥ १९ ॥

सप्तयोजनविस्तीर्णं चातुर्वर्ण्यजनाकुलम् ।
सूर्य्यरश्मिप्रतीकाशं प्रासादशतशोभितम् ॥ २० ॥

यह शम्भलग्राम सातयोजनका विस्तारवालाहै । यहांपर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र यह चार वर्ण वास करतेहैं । । सूर्यकी किरणोंके समान श्वेत और तेजयुक्त सैकडों अटारियें चारों ओर शोभा विस्तार कर रहीहैं ॥ २० ॥

सर्व्वर्त्तुसुखदं रम्यं शम्भलं विह्वलोऽविशत् ॥ २१ ॥

यह नगर इस प्रकारसे बना और बसाहै कि किसी ऋतुमेंभी कष्ट

नहीं होता। इस नगरकी रमणीय शोभा देखते २ तोता विह्लहो प्रवेश करने लगा ॥ २१ ॥

गृहाद्गृहान्तरं दृष्ट्वा प्रासादादपि चाम्बरम्।
वनाद्वनान्तरं तत्र वृक्षाद्वृक्षान्तरं व्रजन् ॥ २२ ॥

शुक, एक गृहसे दूसरे गृहमें (एक महलसे दूसरे महलमें) कभी दूसरे महलके अग्रभागसे आकाशमें वहांसे उद्यानमें, उद्यानसे और उद्यानमें, वृक्षसे दूसरे वृक्षपर गमन करनेलगा ॥ २२ ॥

शुकः स विष्णुयशसः सदनं मुदितोऽव्रजत्।
तं गत्वा रुचिरालापैः कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ २३ ॥

इसप्रकार हर्षित चित्तसे शुक विष्णुयशाके गृहमें पहुंचा। फिर विष्णुयशाके निकट जाय मीठी वार्त्ताकर अनेक प्रकारकी प्रियकथाकह ॥ २३ ॥

कल्केरागमनं प्राह सिंहलात्पद्मया सह ॥ २४ ॥

सिंहलद्वीपसे पद्माके साथ कल्किजीके आनेका वृत्तान्त निवेदन किया २४

ततस्त्वरन्विष्णुयशाः समानार्य्यप्रजाजनान्।
विशाखयूपभूपालं कथयामास हर्षितः ॥ २५ ॥

फिर विष्णुयशाने शीघ्रतापूर्वक हर्षित हृदयसे विशाखयूप नामक राजासे और मान्य व प्रधान २ राजाओंसे समस्त वृत्तान्त वर्णन किया ॥ २५ ॥

स राजा कारयामास पुर-ग्रामादि मण्डितम्।
स्वर्णकुंभैः सदम्भोभिः पूरितैश्चन्दनोक्षितैः ॥ २६ ॥

राजा विशाखयूपने (स्त्रीके साथ कल्किजीके आनेका वृत्तान्त जानकर) चन्दनसे छिडके हुए जलपूर्णसुवर्णकुम्भसे ग्राम और नगरको सजाया ॥ २६ ॥

कालागुरुसुगन्धाढ्यैर्दीपलाजाङ्कुराक्षतैः।
कुसुमैःसुकुमारैश्च रम्भापूग-फलान्वितैः।
शुशुभे शम्भलग्रामो विबुधानां मनोहरः ॥ २७ ॥

देवतालोगोंकाभी मन हरण करनेवाला शम्भलग्राम, अगरु आदि सुगन्धद्रव्यसे, प्रकाश मालासे, सुगन्ध मनोहर फूलोंकी मालासे केला, सुपारी आदि फलसे, खीलें, अक्षत नये पत्ते आदिसे (अनदेखी) शोभा धारण करताहुआ ॥ २७ ॥

तं कल्किः प्राविशद्भीम-सेनागण-विलक्षणः ।
कामिनी-नयनानन्दमन्दिराङ्गः कृपानिधिः ॥ २८ ॥

कामनियोंके नेत्रोंके आनन्दमन्दरस्वरूप परमसुन्दर कृपानिधान कल्किजी भयदाई सेनाको साथ लेकर नगरमें प्रवेश करनेलगे ॥ २८ ॥

पद्मया सहितः पित्रोः पदयोः प्रणतोऽपतत् ।
सुमतिर्मुदिता पुत्रं स्नुषां शक्रं शचीमिव ।
ददृशे त्वमरावत्यां पूर्णकामा दितिः सती ॥ २९ ॥

उन्होंने पद्माके साथ मिलकर मातापिताके चरणोंमें प्रणाम किया । देवलोकमें जिसप्रकार दितिजी इन्द्र और शचीको देखकर पूर्णकाम और आनन्दित हुईथी, तैसेही सती सुमति, पुत्र कल्कि और पुत्रवधू पद्माको देखकर आनान्दिता और पूर्ण मनोरथवाली हुई ॥ २९ ॥

शम्भलग्रामनगरी पताकाध्वज-शालिनी ।
अवरोधसुजघना प्रासादविपुलस्तनी ।
मयूरचूचका हंस-संघहारमनोहरा ॥ ३० ॥
पटवासोद्योतधूमवसना कोकिलस्वना ।
सहासगोपुरमुखी वामनेत्रा यथाङ्गना ।
कल्किं पतिं गुणवती प्राप्य रेजे तमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

पताका ध्वजासे युक्त शम्भल नगरीरूप रमणी और ईश्वर कल्किजीको पतिस्वरूप पाय शोभा धारण करती हुई । अन्तःपुर तिसका जघन स्वरूप; प्रासाद तिसके पीनस्तनरूप, मयूर तिसके चूचकस्वरूप, हंसमाला तिसकी मुक्ताहारस्वरूप, विविध प्रकारके गन्धद्रव्योंका धूम तिसका वस्त्रस्व-

रूप, कोकिलका वाक्य तिसका वाक्यस्वरूप, फाटक तिसके सहास्यवदनस्वरूप अधिक क्या कहैं वह शम्भलनगरी सुन्दर नेत्रवाली गुणवतीके रूपसे शोभाको प्राप्तहोनेलगी ॥ ३० ॥ ३१ ॥

स रेमे पद्मया तत्र वर्षपूगानजाश्रयः ।
शम्भले विह्वलाकारः कल्किः कल्कविनाशनः ॥ ३२ ॥

अज, सर्वाश्रम, पापका नाश करनेवाले कल्किजी, अपने कार्योंको भूलकर उस शम्भलनगरमें पद्माके साथ आनन्दमंगलसे बहुत वर्ष बिताते हुए ॥ ३२ ॥

कवेः पत्नी कामकला सुषुवे परमेष्ठिनौ ।
बृहत्कीर्तिबृहद्बाहू महाबलपराक्रमौ ॥ ३३ ॥

कुछ काल पीछे कविकी कामकलानामक स्त्रीमें बृहत्कीर्ति और बृहद्बाहु नामक महाबली पराक्रमी परम धार्मिक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥

प्राज्ञस्य सन्नतिर्भार्या तस्यां पुत्रौ बभूवतुः ।
यज्ञविज्ञौ सर्व्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ ॥ ३४ ॥

प्राज्ञकी स्त्री, सन्नतिनेभी दोपुत्र प्रसवकिये जिनके नाम यज्ञ और विज्ञ हुए यह जितेन्द्रिय और समस्तलोकमें पूजित हुए ॥ ३४ ॥

सुमन्तकस्तु मालिन्यां जनयामास शासनम् ।
वेगवन्तञ्च साधूनां द्वावेतावुपकारकौ ॥ ३५ ॥

सुमंत्रकी भार्या मालिनीके गर्भसे शासन और वेगवान नामक दोपुत्र उत्पन्न हुए जो कि साधुओंका उपकार करतेरहे ॥ ३५ ॥

ततः कल्किश्च पद्मायां जयो विजय एव च ।
द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ ॥ ३६ ॥

कल्किजीसे पद्माके गर्भमें जय और विजयनामक दोपुत्र जन्म लेते हुए । यह दो पुत्र लोकमें विख्यात और महाबली पराक्रमी हुए ॥ ३६ ॥

एतैः परिवृतोऽमात्यैः सर्व्वसम्पत्समन्वितौ ।
वाजिमेधविधानार्थमुद्यतं पितरं प्रभुः ॥ ३७ ॥

इस समस्त परिवारसे युक्त और सर्व सम्पत्तिसे कल्किजी युक्त हुए। उन्होंने ब्रह्माजीके समान पिताजीको (१) अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करनेमें तैयार हो ॥ ३७ ॥

समीक्ष्य कल्किः प्रोवाच पितामहमिवेश्वरः।
दिशां पालान्विजित्याहं धनान्याहृत्य इत्युत ॥ ३८ ॥

देखकर कहा कि, मैं दिग्पालोंको पराजितकर धन इकट्ठा करके ॥ ३८ ॥

कारयिष्याम्यश्वमेधं यामि दिग्विजयाय भोः ! ॥ ३९ ॥

आपको अश्वमेधयज्ञ कराऊंगा। इस समय दिग्विजयके अर्थ यात्रा करता हूं ॥ ३९ ॥

---

(१) अश्वमेधयज्ञ प्राचीन वैदिक यज्ञ है। ऋग्वेदमेंभी अश्वमेधका वर्णन है। शुक्लयजुर्वेदके शतपथ ब्राह्मणमें अश्वमेधयज्ञका वर्णन विस्तारसे लिखा है। राजाके अतिरिक्त और किसी साधारण मनुष्यको अश्वमेधयज्ञका अधिकार नहींथा।

इस यज्ञमें पशुकी आवश्यकता होती है। अश्वही प्रधान पशु है। छागादि और पशुभी अनावश्यक नहीं हैं, तोभी इन पशुओंकी प्रधानता नहीं। यज्ञके लिये इक्कीस खम्भ बनाये जातेथे। बिचले खम्भमें यज्ञके अश्वको बांधकर उसका संस्कार किया जाताथा। फिर राजाकी आज्ञासे वह अश्व इच्छानुसार घूमनेको छोडदिया जाताथा। राजकुमारगण अश्वकी रक्षा करते और कोई राजा यज्ञको बिगाडनेके दुरभिलाषसे यज्ञका घोडा हरण करता, तो अश्वके रक्षक राजालोग युद्ध करके तिसका उद्धार करतेथे। इस प्रकारसे भ्रमण करनेके पीछे यज्ञके घोडेको यज्ञक्षेत्रमें लौटालाते। एक वर्षमें घोडेके लौटनेकी विधि है। उस संस्कृत और लौटे हुए अश्वको मंत्रमें कहे हुए अनुष्ठानसे बध करके होम किया जाताथा। यज्ञके पीछे दक्षिणादान और अवभृतस्नान है। उन सब बातोंका लिखना निष्प्रयोजन है। अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करनेके पीछे इन्द्रपदवी प्राप्तिका अधिकार या पुण्य होताहै। अश्वमेध यज्ञके घोडेपर यजमान राजाका और प्रतिद्वन्दी अश्वचोर राजाका भयानक युद्ध हुआ करताथा। संस्कृतशास्त्रमें प्रवादहै कि इन्द्र अपने इन्द्रत्व लोप होजानेके डरसे यजमान राजाके अश्वको चुरा लेताथा। इन्द्रने राजा सगरका घोडा चुरायाथा, रघुके नेत्रोंको बचाकर दिलीपके यज्ञका घोडा लेकर भागाथा। इस प्रकारके अनेक उपाख्यान संस्कृत ग्रन्थोंमें लिखेहैं। इन बाधाविपत्तियोंसे बचकर कहीं अश्वमेध यज्ञ पूरा हो जाता था। इस यज्ञको कोई बडा चक्रवर्ती राजाही करताथा।

इति प्रणम्य तं प्रीत्या कल्किः परपुरञ्जयः ।
सेनागणैः परिवृतः प्रययौ कीकटं पुरम् ॥ ४० ॥

यह कहकर शत्रुपुरके जीतनेवाले कल्किजीने प्रसन्नहो पिताको नमस्कार किया। फिर वह सेनाके साथ पहले कीकटपुरको (जीतनेके लिये) चले.

बुद्धालयं सुविपुलं वेदधर्म्मबहिष्कृतम् ।
पितृदेवार्चनाहीनं परलोकविलोपकम् ॥ ४१ ॥

यह कीकटपुर अत्यन्त विस्तृत नगर है बौद्धोंका प्रधान आलयहै। इस देशमें वैदिक धर्मका अनुष्ठान नहीं; यहांके लोग पितृपूजा या देवपूजा नहीं करते और परलोकका भयभी नहीं रखते ॥ ४१ ॥

देहात्मावादबहुलं कुलजातिविवर्ज्जितम् ।
धनैः स्त्रीभिर्भक्ष्यभोज्यैः स्वपराभेददर्शिनम् ॥ ४२ ॥

इस देशमें बहुत लोग शरीरमेंही आत्माभिमान करतेहैं। वह दृश्यमान शरीरके अतिरिक्त और आत्माको स्वीकार नहीं करते। उनको कुलाभिमान या जात्यभिमान कुछभी नहीं है वह लोग धनके विषयमें, स्त्रीग्रहण करनेके विषयमें या भोजनके विषयमें सबकोही समान समझतेहैं, किसीको भी ऊंच या नीच नहीं जानते ॥ ४२ ॥

नानाजनैः परिवृतं पानभोजनतत्परैः ॥ ४३ ॥

इस देशमें अनेक प्रकारके मनुष्य हैं। वह सबही पान भोजनादि रूप (इस लोकके सुखसाधन करनेमेंही समय बितातेहैं) ॥ ४३ ॥

श्रुत्वा जिनो निजगणैः कल्केरागमनं क्रुधा ।
अक्षौहिणीभ्यां सहितः संबभूव पुराद्बहिः ॥ ४४ ॥

इसके उपरान्त जिनने जब सुना कि, कल्कि सेवकोंके साथ युद्ध कर-

नेको आतेहैं, तब वह दो अक्षौहिणी (१) सेनाके सहित (संग्राम करनेके अर्थ) नगरसे बाहर निकला ॥ ४४ ॥

गजरथतुरगैः समाचिता भूः कनकविभूषण-
भूषितैर्वराङ्गैः ॥ शतशतरथिभिर्धृतास्त्रशस्त्रै-
र्ध्वजपटराजि-निवारितातपैर्बभौ सा ॥ ४५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बुद्धनिग्रहे
कीकटपुरगमनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

शत २ तुरंगोंसे, शत २ रथोंसे, शत शत हाथियोंसे सुवर्ण-भूषणविभूषित श्रेष्ठवर्णके रथियोंसे अस्त्र शस्त्रधारी (पदाति समूह) से पृथ्वी ढकगई। सेनाकी पताकाओंके समूहसे धूपका निवारण होने लगा । तिस कालमें युद्धार्थी लोग अनहुई शोभाको धारण करते हुए ॥ ४५ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे
बुद्धनिग्रहे कीकटपुरगमनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

(१) सेनाकी एक विशेष संख्याका नामहै । २१८७०–हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोडे १०९३५० पैदलकी एक अक्षौहिणी होती है । सब जोड़ २१८७०० हुआ । कोषकार अमरसिंहने कहाहै ।

एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्तिः पञ्चपदातिका । पत्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम् ॥
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः । अनीकिनी दशानीकिन्यक्षौहिण्यथ सम्पदि ॥
(अमरकोष स्वर्गवर्ग ८०।८१ श्लोक)

	रथ ।	हाथी ।	घोडे ।	पैदल ।	जोड़ ।
पत्ति ।	१	१	३	५	१०
सेनामुख ।	३	३	९	१५	३०
गुल्म ।	९	९	२७	४५	९०
गण ।	२७	२७	८१	१३५	२७०
वाहिनी ।	८१	८१	२४३	४०५	८१०
पृतना ।	२४३	२४३	७२९	१२१५	२४३०
चमू ।	७२९	७२९	२१८७	३६४५	७२९०
अनीकिनी ।	२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५	२१८७०
अक्षौहिणी ।	२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	२१८७००

सेनाकी यह प्राचीन गिन्नेकी रीति है । जैसे अँग्रेजोंके, " रेजीमेन्ट " " ब्रिगेड " आदि हैं; वैसेही हमारे यहां पृतना, चमू, पत्ति, अनीकिनी, आदिसे सेनाके गणित करनेकी रीतिथी ।

द्वितीयांशः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

सूत उवाच । ततो विष्णुः सर्व्वजिष्णुः कल्किः कल्कविनाशनः ।
कालयामास तां सेनां करिणीमिव केसरी ॥ १ ॥

सूतजी बोलेः—अनंतर सिंह जिस प्रकार हथिनीपर धावमान होताहै, वैसेही पापापहारी सर्वविजयी विष्णु कल्किजीने उस बौद्धकी सेनापर धावा किया ॥ १ ॥

सेनाङ्गनां तां रतिसङ्गरक्षतां रक्ताक्तवस्त्रां
विवृतोरुमध्याम् । पलायतीं चारुविकीर्ण-
केशां विकूजतीं प्राह स कल्किनायकः ॥ २ ॥

नायकरूप सेनानायक कल्किजी, रति युद्धके समान युद्धमें घायलहुई, रुधिर लगे वस्त्र पहिरे, जिसका मध्यदेश (कमर) खुला हुआहै ऐसी भागती हुई, खुले बालवाली, चिल्लाती हुई सेनारूप स्त्रीसे बोले ॥ २ ॥

रे बौद्धा ! मा पलायध्वं निवर्त्तध्वं रणाङ्गणे ।
युध्यध्वं पौरुषं साधु दर्शयध्वं पुनर्मम ॥ ३ ॥

रे बौद्धगण ! तुम लोग रणभूमिसे भागो मत, लौटो, युद्धकरो, तुम्हारी जितनी सामर्थहै तिसके दिखानेमें कसर मत करो ॥ ३ ॥

जिनो हीनबलः कोपात्कल्केराकर्ण्य तद्वचः ।
प्रतियोद्धुं वृषारूढः खड्गचर्म्मधरो ययौ ॥ ४ ॥

पहले तो जिन(१)हीन हुआथा, वह अब कल्किजीके यह वचन सुनकर क्रोधमें भर ढाल तलवार लेकर युद्ध करनेकोलिये कल्किजीके प्रति दौडा ॥ ४ ॥

---

(१) जिन—बुद्ध, अर्हत् । बुद्ध वा अर्हत् जयशील होनेसे जिन नाम करके पुकारे जातेहैं यहांका जिन कल्किजीके समयका एक जिनोक्त धर्मावलम्बी राजा व उक्त सम्प्रदायका नेता मानागया है। स्वयं बुद्धजीके सिवाय, जो लोग बौद्धधर्ममें पूर्णरूपसे पारदर्शी होते, वही अर्हत् जिन इत्यादि उपाधि प्राप्त करते थे । कृषि भारद्वाज और सुन्दरिक भारद्वाज नामक दो वैदिक धर्मावलम्बी ब्राह्मणोंने भगवान् बुद्धजीको गुरू बनाय, बौद्ध धर्मको ग्रहण करके अर्हत् उपाधि पाईथी । (सूत्रनिपात बौद्धोंका ग्रंथ देखो ।)

नानाप्रहरणोपेतो नानायुधविशारदः ।
कल्किना युयुधे धीरो देवानां विस्मयावहः ॥ ५ ॥

वह अनेक प्रकारके अस्त्रोंसे संग्राम करनेमें चतुरथा, इस कारण बहुतसे अस्त्र ग्रहण करके कल्किजीके साथ युद्ध करने लगा । उस संग्राम करनेमें निपुण जिनने ऐसा युद्ध करना आरम्भ किया कि, जिसको देखकर देवताओंकोभी विस्मय हुआ ॥ ५ ॥

शूलेन तुरगं विद्ध्वा कल्किं बाणेन मोहयन् ।
क्रोडीकृत्य द्रुतं भूमेर्नाशकत्तोलनाद्दतः ॥ ६ ॥

उसने शूल चलाकर घोड़ेको बींधडाला और बाणसे कल्किजीको मोहित व अचेतन किया । फिर उसने शीघ्रतासे तिनको (हरण करके ले जानेके मनसे) गोदीमें उठानेकी चेष्टा की, परन्तु किसी प्रकारसे नहीं उठासका ॥ ६ ॥

जिनो विश्वंभरं ज्ञात्वा क्रोधाकुलितलोचनः ।
चिच्छेदास्य तनुत्राणं कल्केः शस्त्रञ्च दासवत् ॥ ७ ॥

तब जिनने काल्किजीको विश्वम्भर मूर्ति जाना, क्रोधके मारे तिसके नेत्र चलायमान होगये । फिर उसने कल्किजीको बन्दीकी समान समझकर तिनका वर्म (बख्तर) और अस्त्र शस्त्र तोड़ताड डाले ॥ ७ ॥

विशाखयूपोऽपि तथा निहत्य गदया जिनम् ।
मूर्च्छितं कल्किमादाय लीलया रथमारुहत् ॥ ८ ॥

यह देखकर राजा विशाखयूपने जिनको गदा मारकर घायल किया और लीलासेही मूर्च्छित हुए काल्किजीको ग्रहण करके अपने रथपर चढा ॥ ८ ॥

लब्धसंज्ञस्तथा कल्किः सेवकोत्साहदायकः ।
समुत्पत्य रथात्तस्य नृपस्य जिनमाययौ ॥ ९ ॥

काल्किजीभी चैतन्य हुए । वह भक्तोंको उत्साह देनेको विशाखयूप राजाके रथसे छलांगमार पृथ्वीपर कूदे और जिनके सामने गमन करते हुए ॥ ९ ॥

शूलव्यथां विहायाजौ महासत्त्वस्तुरङ्गमः ।
रिङ्गणैर्भ्रमणैः पादविक्षेपहननैर्मुहुः ॥ १० ॥

महाबली कल्किजीके अश्वभी शूलकी व्यथाको दूर बहाय संग्राम-भूमिमें आय, कूदकर, भ्रमणकर लातें चलाकर ॥ १० ॥

दण्डाघातैः सटाक्षेपैर्बौद्धसेनागणान्तरे ।
निजघान रिपून्कोपाच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११ ॥

दांतोंसे काटकर केशोंको चलायमानकर बौद्धसेनाके मध्यमें स्थित हुए सैकडों हजारों शत्रुओंको क्रोधमें भरकर नाश करतेहुए ॥ ११ ॥

निश्वासवातैरुड्डीय केचिद्द्वीपान्तरेऽपतन् ।
हस्त्यश्वरथसंबाधाः पतिता रणमूर्द्धनि ॥ १२ ॥

(इन भयंकर घोडोंके) श्वासकी पवनसे कोई २ वीर दूसरे द्वीपमें उड-कर गिरे और कोई इस श्वासकी पवनसे उडतेही हाथी घोडे और रथा-दिसे टकराकर रणभूमिमेंही गिरने लगे ॥ १२ ॥

गर्ग्या जघ्नुः षष्टिशतं गर्गः कोटिशतायुतम् ।
विशालास्तु सहस्राणां पञ्चविंशं रणे त्वरन् ॥ १३ ॥

गर्ग और तिसके अनुचरोंने थोडे समयके बीचमेंही बौद्धोंकी साठ हजार सेनाका नाश किया । सेनाकेसहित गर्ग्यनेभी एक करोड दश हजार सेनाका संहार किया । विशाल और उसकी सेनाने बौद्धोंकी पचीस हजार सेनाको हराया ॥ १३ ॥

अयुते द्वे जघानाजौ पुत्राभ्यां सहितः कविः ।
दशलक्षं तथा प्राज्ञः पञ्चलक्षं सुमन्त्रकः ॥ १४ ॥

संग्राम करके कविने दोनों पुत्रोंकी सहायतासे शत्रुओंकी २० हजार सेनाका संहार किया । इस प्रकारही प्राज्ञने दशलाख और सुमंत्रकने पांचलाख सेनाको हराय रणमें शयन करादिया ॥ १४ ॥

जिनं प्राह हसन्कल्किस्तिष्ठाग्रे मम दुर्मते ! ।
दैवं मां विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् ॥ १५ ॥

इसके उपरान्त कल्किजीने हँसकर जिनसे कहा, रेदुर्मते ! भागता क्यों है ? सन्मुख आ । सर्वत्र शुभाशुभ फलदाता अदृष्टस्वरूप मुझको समझ । (अर्थात् तुम जैसा पापाचरण करते आएहो, मैं तैसाही फल दूंगा) ॥ १५ ॥

मद्बाणजालभिन्नाङ्गो निःसङ्गो यास्यसि क्षयम् ।
न यावत्पश्य तावत्त्वं बन्धूनां ललितं मुखम् ॥ १६ ॥

तुम अभी मेरे बाणोंसे घायल देहवाले होकर परलोकको जाओगे, तिस कालमें कोईभी तुम्हारे साथ नहीं जायगा अतएव इस बीचमें तुम भाई बन्धुओंका ललित मुख देखलो ॥ १६ ॥

कल्केरितीरितं श्रुत्वा जिनः प्राह हसन्बली ।
दैवं त्वदृश्यं शास्त्रे ते वधोऽयमुररीकृतः ।
प्रत्यक्षवादिनो बौद्धा वयं यूयं वृथाश्रमाः ॥ १७ ॥

कल्किजीके यह वचन सुन बलवान् जिनने हँसकर कहा, अदृष्ट कभी प्रत्यक्ष नहीं होता । हम लोग प्रत्यक्षवादी बौद्धहैं, प्रत्यक्षके सिवाय और किसीको नहीं मानते । शास्त्रमें कहाहै कि, अदृष्ट (और प्रत्यक्ष विषय)हमारे द्वारा हत होगा ॥ १७ ॥

यदि वा दैवरूपस्त्वं तथाप्यग्रे स्थिता वयम् ।
यदि भेत्तासि बाणौघैस्तदा बौद्धैः किमत्र ते ॥ १८ ॥

इस्से तुम वृथा परिश्रम करतेहो । यद्यपि तुम दैवस्वरूप होओ तथापि हम लोग सामने खडेहैं । जो तुम बाणसे हमको बींधलो, तो क्या बौद्धगण तुमको क्षमा करेंगे ? ॥ १८ ॥

सोपालम्भं त्वया ख्यातं त्वय्येवास्तु स्थिरो भव ।
इति क्रोधाद्बाणजालैः कल्किं घोरैः समावृणोत् ॥ १९ ॥

तुमने जो हमारे प्रति तिरस्कारके वचन कहे, सो तुमपरही लौटें, स्थिर होओ । जिनने यह कहकर तीक्ष्ण बाणोंसे कल्किजीको ढकदिया ॥ १९ ॥

स तु बाणमयं वर्षं क्षयं निन्येऽर्कवद्धिमम् ॥ २० ॥

सूर्यके दर्शनसे जिस प्रकार हिमका वर्षना क्षयको प्राप्त होजाताहै, तैसेही बाणोंकी वह वर्षा कल्किजीसे क्षयको प्राप्त होने लगी ॥ २० ॥

ब्राह्मं वायव्यमाग्नेयं पार्जन्यं चान्यदायुधम् ।
कल्केर्दर्शनमात्रेण निष्फलान्यभवन्क्षणात् ॥ २१ ॥

ब्रह्मास्त्र, वायव्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, मेघास्त्र व और समस्त अस्त्र कल्किजीको दखतेही क्षणभरमें निष्फल होगये ॥ २१ ॥

यथोषरे बीजमुप्तं दानमश्रोत्रिये यथा ।
यथा विष्णौ सतां द्वेषाद्भक्तिर्येन कृताप्यहो ॥ २२ ॥

जिस प्रकार ऊषर खेतमें बीज बोनेसे तिस्से नाजकी उत्पत्ति नहीं होती, जिस प्रकार अश्रोत्रिय (वेद न पढ़ा हुआ) पात्रको दान करनेसे फल नहीं प्राप्त होता, साधुजनका अनिष्ट करके विष्णुजी प्रति भक्ति करनेसे पुण्य नहीं होता (वैसेही जिनके समस्त अस्त्र विफल होने लगे) ॥ २२ ॥

कल्किस्तु तं वृषारूढमवप्लुत्य कचेऽग्रहीत् ।
ततस्तौ पेततुर्भूमौ ताम्रचूडाविव क्रुधा ॥ २३ ॥

इसके उपरान्त कल्किजीने छलांगमारकर बैलपर, चढेहुए जिनके केशग्रहण करलिये । तब अरुण शिखा (मुर्गे) की समान दोनोंही पृथ्वीमें गिरकर क्रोधसहित (अछाड पछाड और झपट) करने लगे ॥ २३ ॥

पतित्वा स कल्किकचं जग्राह तत्करं करे ॥ २४ ॥

पृथ्वीमें गिरकर जिनने एक हाथसे कल्किजीके केश और एक हाथसे उनका हाथ पकड लिया ॥ २४ ॥

ततः समुत्थितौ व्यग्रौ यथा चाणूरकेशवौ ।
धृतहस्तौ धृतकचौ ऋक्षाविव महाबलौ ।
युयुधाते महावीरौ जिनकल्की निरायुधौ ॥ २५ ॥

फिर चाणूरनामक दैत्य और केशवकी समान दोनोंजने तत्काल पृथ्वीपरसे उठे दोनोंने दोनोंके केश और हाथ पकड लिये । यह दोनों महावीर

आयुधहीन हो, दो महाबली रीछोंके समान मल्लयुद्ध करनेलगे (१) ॥ २५ ॥

ततः कल्की महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् ।
विभज्य पातयामास तालं मत्तगजो यथा ॥ २६ ॥

तब मतवाला हाथी जिसप्रकार ताड़के वृक्षको तोड डालताहै, तैसेही महावीर कल्किजीने लात मारकर जिनकी कमर तोडकर उसको पृथ्वीमें गिरादिया ॥ २६ ॥

जिनं निपतितं दृष्ट्वा बौद्धा हाहेति चुक्रुशुः ।
कल्केः सेनागणा विप्रा जहृषुर्निहतारयः ॥ २७ ॥

जिनको (रणभूमिमें पडाहुआ) देख बौद्धोंकी सेना हाहाकार करने लगी हे ब्राह्मणों ! शत्रुके मारे जानेसे कल्किजीकी सेनाके हर्षकी सीमा न रही ॥ २७ ॥

जिने निपतिते भ्राता तस्य शुद्धोदनो बली ।
पादचारी गदापाणिः कल्किं हन्तुं द्रुतं ययौ ॥ २८ ॥

इस प्रकारसे जिनके रणमें गिरनेपर उनका भ्राता महाबली शुद्धोदन (२) गदा ग्रहण करके पैदलही कल्किजीका नाश करनेके अभिप्रायसे तत्काल दौडा ॥ २८ ॥

कविस्तु तं बाणवर्षैः परिवार्य्य समन्ततः ।
जगर्ज्ज परवीरघ्नो गजमावृत्य सिंहवत् ॥ २९ ॥

तब हाथीपर चढेहुए, शत्रु वीरके संहार करनेवाले कविने बाणवर्षाय कर शुद्धोदनको छायलिया और सिंहके समान गर्जने लगा ॥ २९ ॥

---

(१) चाणूर–मथुराके पति कंसका अनुचर विशेष । कंसके यहां धनुषयज्ञमें जाय श्रीकृष्णजीने चाणूर और मुष्टिक मल्लको मारा । (भागवत, विष्णुपुराण)

चाणूर अन्ध्रदेशका रहनेवालाथा । (हरिवंश) वर्तमान हैदराबाद दक्षिणमें प्राचीन आन्ध्रदेशथा, वस ज्ञात हुआ कि; चाणूर दक्षिणी था । आन्ध्रका पिछला नाम त्रिकलिंग (तैलंग) है, इस कारण चाणूरको तैलङ्गी भी कहाजासकताहै ।

(२) शुद्धोदन–भगवान शाक्यसिंह बुद्धजीके पिताका नाम शुद्धोदन इस कारण बुद्धको शौद्धोदन शौद्धोदनि कहतेहैं । (महावंश, ललितविस्तर)

गदाहस्तं तमालोक्य पतिं स धर्म्मवित्कविः।
पदातिगो गदापाणिस्तस्थौ शुद्धोदनाग्रतः ॥ ३० ॥

शुद्धोदनको गदाहाथमें लिये और पैदल देखकर धर्मका जाननेवाला कविभी (हाथीसे उतरकर) पैदलहो गदाग्रहण करके शुद्धोदनके सामने खडाहोगया ॥ ३० ॥

स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रमः।
गजः प्रतिगजेनेव दन्ताभ्यां सगदावुभौ ॥ ३१ ॥
युयुधाते महावीरौ गदायुद्धविशारदौ।
कृतप्रतिकृतौ मत्तौ नदन्तौ भैरवान्रवान् ॥ ३२ ॥

भीमविक्रम शुद्धोदननेभी तिसके साथ युद्धकरना आरम्भ किया। जिस प्रकार हाथी शत्रुके हाथीके साथ दांतोंसे युद्ध करता है तैसेही गदायुद्ध-विशारद महावीर कवि और शुद्धोदन दोनों गदायुद्ध करनेलगे । दोनोंने रणमदमत्त होनेके कारण भयंकर शब्द करना आरम्भ किया और गदासे एक दूसरेकी चोटको निवारण करनेलगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

कविस्तु गदया गुर्व्या शुद्धोदनगदां नदन्।
करादपास्याशु तया स्वया वक्षस्यताडयत् ॥ ३३ ॥

इसके उपरान्त कविने सिंहनाद करके गदाके बडे आघात करके शुद्धोदनके हाथसे गदा गिराकर तत्काल अपनी गदाको तिसकी छातीमें मारा॥ ३३॥

गदाघातेन निहतो वीरः शुद्धोदनो भुवि।
पतित्वा सहसोत्थाय तं जघ्ने गदया पुनः ॥ ३४ ॥

गदासे घायल होकर वीर शुद्धोदन तत्काल पृथ्वीमें गिरपडा; परन्तु सहसा उठकर फिर गदासे उसको मारा ॥ ३४ ॥

संताडितेन तेनापि शिरसा स्तम्भितः कविः।
न पपात स्थितस्तत्र स्थाणुवद्विह्वलेन्द्रियः ॥ ३५ ॥

कवि, उस गदासे ताडित होकर पृथ्वीपर गिरातो नहीं; परन्तु विकलेंद्रिय और अचेतन होकर खम्भके समान खडा रहगया ॥ ३५ ॥

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतैः।
प्रावृतं तरसा माया-देवीमानेतुमाययौ॥ ३६॥

फिर जब शुद्धोदनने देखा कि, यह महाबली और पराक्रमीहै हजारों रथी इसके साथहैं, तब वह तत्काल (१) मायादेवीके बुलानेको चलागया३६॥

---

(१) मायादेवी—माया। बौद्धलोग मायावादी हैं, इसीसे इनका दूसरा नाम मायाहै। युद्धभूमिमें मायादेवीके आनेका भावार्थ ऐसाहैः—युद्धमें कल्किजीके पराजित करनेको असमर्थ होकर फिर बौद्धोंने मायायुद्ध करना आरम्भ किया। इस मायायुद्धका उत्पन्न करनेवाला शम्बरासुरथा. । इसीसे मायाका दूसरा नाम शाम्बरी (साबरि) है। दैत्यलोग बहुधा समरमें मायायुद्ध किया करते थे। इन्द्रजित, घटोत्कच इत्यादि राक्षस और चित्रसेनादि गन्धर्वगणभी मायायुद्धमें चतुरथे। असुरोंसे किसी २ मनुष्यनेभी मायायुद्ध सीखाथा। राजा दुर्योधनके मामा शकुनिने पाण्डवोंके साथ अनेक प्रकारका मायायुद्ध किया था। मायायुद्धमें अद्भुत बातें हुआ करतीहैं। युद्धस्थानमें अचानक सिंह, व्याघ्र, सर्प, अग्नि,जल आंधी, बिजली आदि उत्पन्न होकर शत्रुओंको डराकर मारदेते हैं। इसी कारण मायाको अघटन घटनापटीयसी और विसदृशप्रतीतिसाधनी कहतेहैं।

"विचित्रकार्यकरणा अचिन्तितफलप्रदा। स्वप्नेन्द्रजालवल्लोके माया तेन प्रकीर्त्तिता॥"
(देवीपुराण ४५ अध्याय)

इस ओर माया ईश्वरशक्ति है, इसीसे यह मायादेवी संग्राममें आय कल्किजीके देहमें प्रवेशकर अन्तर्द्धान होगई। मायाके नाम, यथा—प्रकृति, अविद्या, अज्ञान, प्रधान, शक्ति अजाहै।

भगवती दुर्गाके नाम यहहैंः—

"दुर्गे शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि। जये मे मंगलं देहि नमस्ते सर्वमंगले॥
राजञ्छ्रीवचनो माश्च याश्च प्रापणवाचकः। तां प्रापयति या सद्यः सा माया परिकीर्त्तिता॥
माश्च मोहार्थवचनो याश्च प्रापणवाचनः। तं प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्त्तिता॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड २७ अ०)

बौद्धोंका मायावादी होना नीचेके दो श्लोकोंसे प्रगटहै। श्रीकृष्णजी कहते हैं—
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥"
(गीता ७ अ० १४। १५ श्लोक)

मायावादी होनेके कारण बौद्धलोग ईश्वरको नहीं मानते इसकारण नास्तिक हैं।

बौद्ध, आर्हत्, जैनादि धर्मावलम्बियोंका नास्तिक और असुर स्वभाव स्वयं कृष्णजीने अर्जुनसे कहा है। भगवद्गीता १६ अध्याय ७। ८। ९। १०। ११ श्लोक देखो।

यस्या दर्शनमात्रेण देवासुरनरादयः ।
निःसाराः प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रयाः ॥ ३७ ॥

इस मायादेवीको देखतेही देव, असुर, मनुष्य आदि त्रिलोकीके समस्त प्राणीही तेजरहित और प्रतिमाकी समान चेष्टाहीन होजातेहैं ॥ ३७ ॥

बौद्धा शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुनः ।
योद्धुं समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः ॥ ३८ ॥

फिर शौद्धोदन आदि बौद्धगण उस मायादेवीको सामने लाय लाख २

शाक्यसिंह बुद्ध देवकी माताका नामभी मायादेवी है । इसी कारणसे बुद्धदेवका नाम मायासुत, और मायादेवी सुत है ।–(ललित विस्तर, महावंश अमरकोष)

इस और बौद्ध या सौगतके मतसे वाक्, पाणि, चरण, पायु और शिश्न यह पञ्चकर्मेन्द्रिय; नाक, जीभ, नेत्र, खाल और कान, यह पांच ज्ञानेन्द्रिय;मन और बुद्धि । इन बारह इन्द्रियोंवाले शरीरकी भली· भांतिसे सेवा करनाही प्रधान कर्महै । (अष्टादश विद्या १ खण्डमें) कहा है । इसीसे देखा जाता है कि, गीतामें कहे हुए असुरस्वभाववाले नास्तिकोंका कामोपभोग और इन बौद्ध वा सौगत लोगोंका १२ स्थान वाले शरीरकी भलीभांतिसे सेवा करना एकही कर्म और धर्म है ।

परन्तु बौद्धधर्मके ग्रंथोंमें लिखा है कि, भगवान् शाक्यसिंह स्वयं काम (मार) को जीतकर काम· जित वा मारजित हुएथे । उन्होंने औरोंकोभी कामदेवके जीतनेको बहुत उपदेश दियेथे । पालिभाषाके सूत्रनिपातनामक ग्रंथमें लिखा है:–

" जिसको कामभोगके प्राप्त करनेकी वासनाहो और तिसमें वह पुरुष निष्फलहो तो उसके हृदयमें दुःख होता है और वह यहांपर बहुत दुःखपाता है । सर्पपर पांव रखनेकी समान जिसने इन्द्रिय सुखको त्याग दिया है, उसने तृष्णा या वासनाको जीत लिया । दास, दासी, गाय, घोडा, चांदी, सोना, पृथ्वी वा अनेक प्रकारके धनोंका जो आदमी बहुत लोभ करता है निश्चय पाप उसको घेरेगा, विपत्तियोंके हाथसे उसका मर्दन होगा । उसके पीछे दुःख इस प्रकार जांयगे जैसे बांध टूटनेपर पानी बहता है इस कारण अप्रमत्त और चिन्ताशील होना चाहिये आनन्द सुखको सदा छोडैं तब नावमें बैठे हुए यात्रीकी समान पार होजायगा ॥ सूत्रनिपात (बौद्धग्रंथ धर्मराज वन्द्योपाध्यायके द्वारा अनुवादित (इस) प्रकार औरभी बहुत कुछ लिखा है" ।

म्लेच्छ(१)सेनापतियोंको साथ लेकर युद्ध करनेकेलिये उपस्थित हुए॥ ३८॥

सिंहध्वजोत्थितरथां फेरु-काक-गणावृताम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रजननीं षड्वर्गपरिसेविताम् ॥ ३९ ॥

सिंहध्वजसे शोभायमान रथपर सवारहो मायादेवी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र उत्पन्न करतीहुई। कौवे और गीदड तिसको चारों ओरसे घेर कर (घोर शब्द करना आरम्भ करते हुए।) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता यह छैवर्ग तिसकी सेवा करनेलगे ॥ ३९ ॥

नानारूपां बलवतीं त्रिगुणव्यक्तिलक्षिताम् ।
मायां निरीक्ष्य पुरतः कल्किसेना समापतत् ॥ ४० ॥

अनेकप्रकारके रूप धारण करनेवाली बलवती, त्रिगुणरूपवाली माया देवीको सामने देखकर कल्किजीकी सेना एक२करके प्रायःसबही गिरगई४०

निःसाराः प्रतिमाकाराः समस्ताः शस्त्रपाणयः ॥ ४१ ॥

वह योधालोग कि, जिनके हाथमें शस्त्रथे निस्तेज और प्रतिमाकी समान साररहित होगए ॥ ४१ ॥

कल्किस्तानालोक्य निजान्भ्रातृज्ञातिसुहृज्जनान् ।
मायया जायया जीर्णान्विभुरासीत्तदग्रतः ॥ ४२ ॥

इसके उपरान्त, अपने भ्राता, जाति और सुहृद् लोगोंको मायारूप अपनी भार्यासे अभिभूत और जर्जरित होता हुआ देखकर विभू कल्किजी तिसके निकट पहुँचे ॥ ४२ ॥

---

(१) म्लेच्छगण—अनार्यगण, अहिन्दूगण। यथाः—
गोमांसखादको यस्तु विरुद्धं बहु भाषते। सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते ॥
(प्रायश्चित्ततत्त्वधृतबौधायन वचन)

"पौण्ड्काश्चौण्ड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥" (मनु० १० अध्याय)

पौण्ड्रक, ओण्ड्र, द्रविड, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खशादि अनार्य जातिवाले म्लेच्छ कहलाते हैं ।

म्लेच्छदेश यथाः–

चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते । म्लेच्छदेशः स विज्ञेय आर्यावर्त्तस्ततः परम् ॥ ''

(टीकाकार भरत)

म्लेच्छ जातिकी उत्पत्ति महाराज ययातिके पुत्र तुर्वसु और द्रुह्यसे हुई है । जराके ग्रहण न करनेसे ययातिने इनको यह शाप दियाथा कि तुह्मारी सन्तान सन्तति वेदविरुद्ध म्लेच्छ जाति होगी ।

(भागवत)

म्लेच्छोंकी उत्पत्तिके विषयमें मतभेदभी पाया जाता है । ब्राह्मणोंने जगत्के अहितकारी महापापी वेन राजाको शाप देकर मारडाला; फिर तिसकी देहको मथा । तिसके शरीरसे काले अंजनकी समान प्रभावाली (कृष्णवर्ण) म्लेच्छ जाति उत्पन्न हुईथी । यथाः–

''वंशे स्वायम्भुवे ह्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः । मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीतातिदुर्मुखी ॥
सुतीर्था नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा । अधर्मनिरतः कामी बलवान् वसुधाधिपः ॥
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः । धर्माचारप्रसिद्ध्यर्थं जगतोऽस्य महर्षिभिः ॥
अनुनीतोऽपि न ददद्नुज्ञां स यदा ततः । शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ॥
ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः । तत्कायान्मथ्यमानात्तु निष्पेतुर्म्लेच्छजातयः ॥
शरीरे मातृवंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः ॥''

(मत्स्यपुराण १० अध्याय)

म्लेच्छ भाषाका सीखना वा अभ्यास करना आर्यगणोंके लिये वर्जितहै ।

'' नपातयेदिष्टकाभिः फलानि वै फलेनतु । नम्लेच्छभाषां शिक्षेत नाकर्षेच्च पदासनम् ॥

(कूर्मपुराण, उपविभाग २५ अध्याय)

महाभारतमेंभी ऐसाही वर्जन है; फिर महाभारतमें यहभी लिखाहै कि, कोई २ आर्यजाति वालेभी म्लेच्छभाषाको सीखतेथे । यथाः–जब युधिष्ठिरादि वारणावत नगरको गए, तब महाबुद्धिमान विदुरजीने धर्मराज युधिष्ठिरको म्लेच्छभाषामें उपदेश दियाथा और युधिष्ठिरभी इनके कहनेको समझेथे । महाभारतके आदि पर्वका १४५ अध्याय देखो ॥

महर्षि व्यासजीने आर्योंके लिये म्लेच्छभाषाका सीखना न सीखना दोनों बातें क्यों लिखीं ? इसका गूढ कारणहै । कोई २ वस्तु या विषय एक समयमें अनुकूल होताहै और फिर एक समयमें प्रतिकूल होजाताहै । जब पहलीपहल भारतवर्षमें थोडेसे म्लेच्छ आर्य जातिका कोई २ कार्य करनेके लिये प्रवेश कर आयेथे तब आर्य जातिके लोग उनका विशेष आदर व यत्न करते उनकी भाषा स्वयं सीखते और उनको अपनी भाषा सिखाते थे।परन्तु किसी बातका बहुत बढ़ना अच्छा नहीं फिर यहांतक हुआ कि आर्यलोगोंमें बहुतसे म्लेच्छ बसकर अपने आचार व्यवहारोंको दिखाने लगे । आजकल जिस प्रकार अनेक हिन्दू लोग; मुसल्मान व अँगरेजोंके आचार व्यवहारमें लिप्त हो न खानेके योग्य वस्तुएँ खातेहैं । इसी भांति उस कालमें कोई २ हिन्दू मुसल्मानोंके साथ बहुत हेलमेल करके अखाद्य वस्तुएँ भोजन करते थे । इसही आचार व्यवहारकी रक्षाके लिये महाभारतादि धर्म ग्रंथोंमें म्लेच्छका समागम करना तो दूर रहा; म्लेच्छभाषाका सीखनातक वर्जित लिखाहै । पराई भाषाके सीखनेसे, अपना आचार व्यवहार जितना बिगडताहै, उतना और किसी बातसे नहीं

बिगड़ता । प्रथम ज्ञान और युवा अवस्थाके समय धर्मके नाश होनेका विशेष खटका रहताहै , सो हिन्दूओंको इसी समय अँग्रेजीकी शिक्षा मिलती है। इसी कारणसे साथही साथ धर्मका नाश होता हुआभी दिखाई देता है ।

शक, पह्लव, पारद, चीन, हूण, यवनादि जातिके लोग प्रथम क्षत्रिय थे, फिर बाहु राजाका राज्य हरलेने और उसको वनवासी करनेसे जब उसके पुत्र महराज सगर उक्त लोगोंके मारनेको तैयार हुए, तब वे सब प्राणभयसे वसिष्ठजीकी शरणमें आये। वसिष्ठजीने राजा सगरसे कहा कि, शरणागतको मारना नहीं चाहिये । मैं इनको जीवनमृतक किये देता हूं ऐसा करनेसे तुम्हारी प्रतिज्ञा और इनके प्राण इन दोनोंकी रक्षा होजायगी । यह कहकर वसिष्ठजीने राजा सगरसे अपना अभिप्राय प्रगट किया, तब राजा सगरने इन क्षत्रियोंको सनातन आर्यधर्म और द्विज–संगसे भ्रष्ट करके अनेक प्रकारके चिह्न इनके करादिये । शक लोगोंका आधाशिर मूंडागया, यवन और काम्बोज (कम्बोह) लोगोंका समस्तशिर मूँडा गया. पारदोंको मुक्तकेश और पह्लवोंको दाढी मूछ धारण करनेकी आज्ञादी और दूसरे क्षत्रियोंके स्वाध्याय (वेदाध्ययन) और वषट्कारसे दूर करदिया । दण्डित सब क्षत्रिय अपने धर्मके छूट जानेसे ब्राह्मणोंसे त्यागे जाकर म्लेच्छपनको प्राप्त हुए ।

(विष्णुपुराण ४ अंश, ३ अध्याय)

ज्ञात होताहै कि, भारतवर्षके बौद्धधर्मावलम्बी जिस समय हिन्दुओंसे फटकारे जाकर मध्य एशिया, चीन, काबुल, सिंहल, ब्रह्म, श्याम आदि राज्योंमें भागे और तिन २ स्थानोंके क्षत्रियादि आर्य जातिवाले अपने धर्मको छोड फटकारे या निकाले हुए लोगोंके द्वारा बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए, उसी समय भारतवर्षके आर्योंने उनको जातिसे निकालकर म्लेच्छ करडाला । इन्हीं बातोंको लेकर पुराणोंमें सगर राजा करके शकादिका उपरोक्त दंड व म्लेच्छपन दान करनेके विषयमें उपाख्यान बने हैं ।

वाल्मीकीयरामायण और महाभारत यह दोनों ग्रन्थ भगवान् शाक्यसिंह बुद्धदेवके प्रगट होनेसे बहुतही पहलेके बने हैं, फिर किस कारणसे बौद्धोंका विषय इन दोनों ग्रंथोंमें स्थान पासकता है; परन्तु शाक्यसिंह बुद्ध देवके पहलेभी कल्पभेदसे अनेक बुद्धोंने जन्म लियाथा, बौद्धशास्त्रसूत्रनिपातग्रंथमें लिखा है कि, शाक्यसिंह बुद्धदेवके पहले भद्रकल्पके तीसरे बुद्धका नाम कश्यपथा । यह शाक्यसिंह बुद्ध इसके जन्मसे ५५० वर्ष पहले हुएथे। डाक्टर राजा राजेन्द्रलालमित्र (L. L. D., C. I. E.) कहते हैं, कि, रामायण और महाभारत यह दोनों ग्रन्थ शाक्यसिंहसे बहुतही पहलेके बने हुएथे। (Indo-Aryans, Vol. I. P.18) वाल्मीकीयरामायणके अयोध्याकाण्डमें १०९ सर्गके मध्य श्रीरामचंद्रजी महर्षि जाबालिजीसे कहते हैं:–

" बौद्धको तस्करकी समान दण्ड देना चाहिये और नास्तिकके लिये भी यही दण्ड उचित है ।"
पंडित ज्वालाप्रसादामिश्रद्वारा अनुवादित वाल्मीकीयरामायण अयोध्याकाण्ड १०९ सर्ग ॥

इससे भलीभांति प्रमाणित होता है कि महर्षि वाल्मीकिजीके समयसे पहलेभी भारतवर्षमें बुद्धलोगोंने जन्मलेकर बौद्धधर्मका प्रचार कियाथा और तिसकालके आर्यलोगोंकी ताडनासे देशको छोडकर बौद्ध लोग भारत वर्षके बाहर और देशोंको भागगएथे ॥

तामालोक्य वरारोहां श्रीरूपां हरिरीश्वरः ।
सा प्रियेव तमालोक्य प्रविष्टा तस्य विग्रहे ॥ ४३ ॥

जब श्रीहरिने श्रीरूपा, श्रेष्ठ मुखवाली मायाकी ओर जैसेही देखा, वैसेही वह मायाभी प्यारी भार्याकी समान तिनके शरीरमें प्रवेश करके लीन होगई ॥ ४३ ॥

तामनालोक्य ते बौद्धा मातरं कतिधा वराः ।
रुरुदुः संघशो दीना हीनस्वबलपौरुषाः ॥ ४४ ॥

अपनी जननी मायाको न देख पापकर प्रधान २ बौद्ध बल और पौरुषहीन होकर सैकडों इकट्ठेहो वारंवार आर्तनाद करने लगे ॥ ४४ ॥

विस्मयाविष्टमनसः क्व गतेयमथाब्रुवन् ।
कल्किः समालोकनेन समुत्थाप्य निजाञ्जनान् ॥ ४५ ॥

वह बडे विस्मित चित्तसे कहने लगे कि(हम लोगोंकी माता माया देवी) कहां चलीगई इस ओर कल्किजीभी दृष्टि डालकर अपनी सेनाको उठाय ४५

निशातमसिमादाय म्लेच्छान्हन्तुं मनो दधे ।
सन्नद्धं तुरगारूढं दृढहस्तधृतत्सरुम् ॥ ४६ ॥

तीक्ष्ण असि ग्रहणकरके म्लेच्छोंका नाशकरनेके अभिलाषी हुए। उन्होंने तैयार व घोडेपर सवारहो हाथमें दृढतासे खड्गको धारण किया॥४६॥

धनुर्निषङ्गमनिशं बाणजालप्रकाशितम् ।
धृतहस्ततनुत्राणगोधाङ्गुलिविराजितम् ॥ ४७ ॥

बाणोंके समूहसे शोभायमान तरकश और धनुष शोभायमान होने लगा। तिनके शरीरमें बख्तर और अंगुलित्राण (गुश्ताना) अपूर्व शोभाको विस्तार करता हुआ ॥ ४७ ॥

मेघोपर्य्युत्तताराभं दंशनस्वर्णबिन्दुकम् ।
किरीटकोटिविन्यस्तमणिराजिविराजितम् ॥ ४८ ॥

उनके बख्तरके ऊपरीभागमें सुवर्णके बिन्दु लगेथे सो ऐसे ज्ञातहोनेलगे मानो नीलजलधर (नीलाबादर) की मालामें तारे प्रकाशित होरहेहैं॥४८॥

कामिनीनयनानन्दसन्दोहरसमन्दिरम् ।
विपक्षपक्षविक्षेपक्षिप्तरूक्षकटाक्षकम् ॥ ४९ ॥

किरीटके अग्रभागमें लगे हुए अनेक प्रकारकी मणियें शोभायमान होने लगीं ॥ ४९ ॥

निजभक्तजनोल्लास-संवासचरणाम्बुजम् ।
निरीक्ष्य कल्किं ते बौद्धास्तत्रसुर्धर्म्मनिन्दकाः ॥ ५० ॥

वह विपक्षपक्ष (शत्रुओं) को विक्षिप्त (पागल) करनेके लिये तिनके प्रति रूक्ष (रूखा) कटाक्ष निक्षेप (डालने-चलाने) करनेलगे । उनके चरणकमलका दर्शनकरनेसे भक्तजनोंका मन हर्षित हुआ । कामिनियोंकी नयनानन्दधाराके रस-मान्दिरस्वरूप उन कल्किजीको देखकर धर्मकी निन्दा करनेवाले बौद्धलोग भयसे व्याकलहोगये ॥ ५० ॥

जहृषुः सुरसंघाः खे यागाहुतिहुताशनाः ॥ ५१ ॥

(धर्मनिन्दकोंके परास्तहोनेसे) 'अग्निमें यज्ञस्थलके बीच फिर आहुति दीजायगी' यह कहकर देवतालोग परमप्रसन्न हुए ॥ ५१ ॥

सुबलमिलनहर्षः शत्रुनाशैकतर्षः समरवरविलासः
साधुसत्कारकाशः । स्वजनदुरितहर्त्ता जीवजातस्य
भर्त्ता रचयतु कुशलं वः कामपूरावतारः ॥ ५२ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे
बौद्धयुद्धो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो सजी हुई सेनाके समूहके समागम करके हर्षितहो समस्त शत्रुओंका संहार करनेके अभिलाषी हुएथे, जो महासंग्राममें लीलापूर्वक युद्ध करतेहैं, जो साधु वृन्दके सत्कार करनेकी अभिलाषासे अवतरेथे, जो निज जनोंके दुःखोंको दूरकरतेहैं, जो समस्तजीवोंके स्वामीहैं, जिन्होंने

साधुगणोंकी कामनाके पूर्ण करनेको पृथ्वीमें अवतार लियाहै, वह कल्किजी तुम्हारा मंगलकरें ॥ ५२ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बौद्धयुद्धो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं द्वितीयांशः ।

तृतीयांशः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सूत उवाच-ततः कल्किर्म्लेच्छगणान्करवालेन कालितान् ।
बाणैः संताडितानन्याननयद्यमसादनम् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले । अनन्तर कल्किजी, म्लेच्छोंमें कुछेकको बाणोंसे बींधकर कुछेकको खड्गसे मारकर यमराजके गृहमें भेजते हुए ॥ १ ॥

विशाखयूपोऽपि तथा कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छान्निन्युर्यमक्षयम् ॥ २ ॥

इसी प्रकारसे विशाखयूप, कवि, प्राज्ञ, सुमंत्रक, गार्ग्य, भार्ग्य, विशाल आदि (वीर लोगोंनेभी) इन म्लेच्छोंको यमराजके गृहमें पठाया ॥ २ ॥

कपोतरोमा काकाक्षः काककृष्णादयोऽपरे ।
बौद्धाः शौद्धोदना याता युयुधुः कल्किसैनिकैः ॥ ३ ॥

कपोतरोमा, काकाक्ष, काककृष्णादि बौद्ध और शौद्धोदनगण आकर कल्किजीकी सेनाके साथ संग्राम करने लगे ॥ ३ ॥

तेषां युद्धमभूद्धोरं भयदं सर्व्वदेहिनाम् ।
भूतेशानन्दजनकं रुधिरारुणकर्दमम् ॥ ४ ॥

ऐसा अत्यन्त घोर युद्ध हुआ कि, सर्व प्राणी डरे (यह देखकर सर्वका संहार करनेवाले तमोगुणयुक्त) भूतनाथ (महेश) आनन्दित हुए । रुधिर करके लालकीचके होनेसे (संग्रामभूमि ढकगई) ॥ ४ ॥

गजाश्वरथसंघानां पततां रुधिरस्रवैः ।
स्रवन्ती केशशैवाला वाजिग्राहा सुगाहिका ॥ ५ ॥

जो हाथी, घोडे और रथी गिरने लगे तिनके रुधिरकी एक नदी बहने लगी । इस नदीमें केश, शिवारेके समूहके समान शोभायमान होने लगे । अश्वरूप ग्राह धारमें मग्न (डूब) होगये ॥ ५ ॥

धनुस्तरङ्गा दुष्पारा गजरोधःप्रवाहिणी ।
शिरःकूर्म्मा रथतरिः पाणिमीनासृगापगा ॥ ६ ॥

धनुष तरंगकी समान, दिखाई देने लगे, हाथियोंने इस कठिनसे पार होने योग्य नदीके पुलिनकी समान शोभा धारण की । कटे हुए मस्तक इस रुधिरकी नदीमें कछुएकी समान, रथ नावकी समान कटेहुए हाथ मीनकी समान ॥ ६ ॥

प्रवृत्ता तत्र बहुधा हर्षयन्तो मनस्विनाम् ।
दुन्दुभेयरवा फेरुशकुनानन्ददायिनी ॥ ७ ॥

नगाडोंकी ध्वनि (जलकिलोलके) शब्दकी समान शोभायमान होने लगी । इस रुधिरकी नदीके किनारेपर गीदड और बाज पक्षियोंके आनन्दकी ध्वनि होनेलगी यह देखकर साधुगण प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥

गजैर्गजा नरैरश्वाः खैरुष्ट्रा रथै रथाः ।
निपेतुर्बाणभिन्नाङ्गाश्छिन्नबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ॥ ८ ॥

गजारूढ (हाथीके सवार) गजारूढ योधाके साथ, घुडसवार घुडसवार योधाके साथ, उष्ट्रारूढ (ऊंटका सवार)उष्ट्रारूढ योधाके साथ, रथी रथीके साथ संग्राम करके बाणोंसे विद्ध और हथकटे, चरण कटे व शिरकटे होकर गिरने लगे ॥ ८ ॥

भस्मना गुण्ठितमुखा रक्तवस्त्रा निवारिताः ।
विकीर्णकेशाः परितो यान्ति सन्यासिनो यथा ॥ ९ ॥

कुछेक लडवैये (परास्त और डरजानेसे) गेरुआँकपडे पहर, मुँहपर राख मल, बाल खोले, संन्यासी वन, रोके जानेपरभी तहांसे जाने लगे ॥ ९ ॥

व्यग्राः केऽपि पलायन्ते याचन्त्यन्ये जलं पुनः ।
कल्किसेनाशुगक्षुण्णा म्लेच्छा नो शर्म्म लेभिरे ॥ १० ॥

कोई २ घबडाहटके मारे भागने लगे, कोई २ वारम्वार पानी माँगने लगे। इस प्रकार कल्किजीकी सेनाके बाणोंसे बिंधा हुआ म्लेच्छोंकी सेनाका कोईभी कुशलसे न रहा ॥ १० ॥

तेषां स्त्रियो रथारूढा गजारूढा विहङ्गमान् ।
समारूढा हयारूढा खरोष्ट्रवृषवाहनाः ॥ ११ ॥

(म्लेच्छ सेनाके हार जानेपर) तिनकी स्त्रियें, कोई रथपर चडकर, कोई हाथीपर चढ़कर, कोई विहङ्गमपर चढ़कर, कोई घोडेपर चढकर, कोई गधेपर चढकर, कोई ऊंटपर चढकर, कोई बैलपर चढ़कर ॥ ११ ॥

योद्धुं समाययुस्त्यक्त्वा पत्यपत्यसुखाश्रयान् ।
रूपवत्यो युवत्योऽतिबलवत्यः पतिव्रताः ॥ १२ ॥

वहांपर युद्ध करनेको आईं जहांपर उनके पति युद्ध कररहे थे। इन रूपवंती बलवती पतिव्रता युवती रमणियोंने सन्तानके सुख या सन्तानके आश्रयकी कामना नहीं की ॥ १२ ॥

नानाभरणभूषाढ्याः सन्नद्धा विशदप्रभाः ।
खड्गशक्तिधनुर्बाणवलयाक्तकराम्बुजाः ॥ १३ ॥

यह उजली कान्तिवाली स्त्रियां अनेक गहने पहर, युद्धके साजसे सजधजकर खड्ग, शक्ति, धनुष और बाण धारण करके आईथीं। इनके करकमलमें अपूर्व खँडुए शोभायमान हो रहे थे ॥ १३ ॥

स्वैरिण्योऽप्यतिकामिन्यो पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः ।
ययुर्योद्धुं कल्किसैन्यैः पतीनां निधनातुराः ॥ १४ ॥

रमणीय आकारवालीं इन स्त्रियोंमें कोई २ स्वैरिणी, कोई पतिव्रता, और कोई वार विलासिनीथीं। यह (पिता वा) पतिके मरजानेसे कातर हो कल्किसेनाके साथ युद्ध करनेको आगे बढीं ॥ १४ ॥

मृद्भस्मकाष्ठचित्राणां प्रभुताम्नायशासनात् ।
साक्षात्पतीनां निधनं किं युवत्योऽपि सेहिरे ॥ १५ ॥

शास्त्रमें कहाहै कि, मनुष्य, मिट्टी, राख, काष्ठादि वस्तुकी प्रभुता (की रक्षा प्राणका दाँव लगाकर करताहै फिर) युवतियोंका सामनेही प्राणके समान पतियोंकी मृत्युका सहलेना असम्भवहै ॥ १५ ॥

ताः स्त्रियः स्वपतीन्बाणभिन्नान्व्याकुलितेन्द्रियान् ।
कृत्वा पश्चाद्युयुधिरे कल्किसैन्यैर्धृतायुधाः ॥ १६ ॥

इसके उपरान्त म्लेच्छोंकी स्त्रियें अपने २ स्वामियोंको बाणसे बिंधा हुआ और विह्वल देखकर तिनको पीछे हटाय अस्त्र ग्रहण करके कल्किजीकी सेना के साथ संग्राम करने लगीं ॥ १६ ॥

ताः स्त्रीरुद्वीक्ष्य ते सर्वे विस्मयस्मितमानसाः ।
कल्किमागत्य ते योधाः कथयामासुरादरात् ॥ १७ ॥

उन अबलाओंको युद्ध करता हुआ निहार कल्किजीकी सेनाने विस्मययुक्त चित्तसे कल्किजीके निकट आय यत्नसहित सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित किया ॥ १७ ॥

स्त्रीणामेव युयुत्सूनां कथाः श्रुत्वा महामतिः ।
कल्किः समुदितः प्रायात्स्वसैन्यैः सानुगो रथैः ॥ १८ ॥

युद्ध चाहनेवाली स्त्रियोंका वृत्तान्त सुनकर हर्षित हृदयसे महा बुद्धिमान् कल्किजी, रथपर चढीहुई सेनाके साथ और अनुचरों (सेवकों) के साथ उस स्थानमें आये ॥ १८ ॥

ताः समालोक्य पद्मेशः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणीः ।
नानावाहनसंरूढा कृतव्यूहा उवाच सः ॥ १९ ॥

अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये, अनेक वाहनोंपर चढीहुई, व्यूह रचना करके श्रेणी बांधे स्थित म्लेच्छोंकी उन स्त्रियोंको देखकर पद्माके स्वामी कल्किजी कहना आरम्भ करते हुए ॥ १९ ॥

कल्किरुवाच-रे स्त्रियः शृणुतास्माकं वचनं पथ्यमुत्तमम् ।
स्त्रिया युद्धेन किं पुंसां व्यवहारोऽत्र विद्यते ॥ २० ॥

कल्किजी बोलेः—हे अबलाओ ! मैं तुमसे हित और उत्तम वाक्य कहताहूं, श्रवण करो। स्त्रीके साथ पुरुषको युद्ध करनेका व्यवहार नहींहै॥ २०॥

मुखेषु चन्द्रबिम्बेषु राजितालकपंक्तिषु ।
प्रहरिष्यन्ति के तत्र नयनानन्ददायिषु ॥ २१ ॥

तुम्हारे इस चंद्रमाके समान वदनपर अलकराजि (जुल्फें) शोभायमान होरहीहैं । इनको देखकर सबकेही मनमें आनन्द होताहै । इस समय कौन पुरुष इस मुखपर प्रहार करेगा ? ॥ २१ ॥

विभ्रान्ततारभ्रमरं नवकोकनदप्रभम् ।
दीर्घापाङ्गेक्षणं यत्र तत्र कः प्रहरिष्यति ॥ २२ ॥

इस मुखरूपीचंद्रपर दीर्घ अपाङ्गवाले, खिले हुए कमलके समान नेत्रोंमें ताराररूपी भ्रमर भ्रमणकररहेहैं । ऐसे मुखपर कौन पुरुष प्रहारकरेगा ॥ २२॥

वक्षोजशम्भू सत्तार-हारव्यालविभूषितौ ।
कन्दर्पदर्पदलनौ तत्र कः प्रहरिष्यति ॥ २३ ॥

तुम्हारे हृदयमें कुचरूप शम्भु विराजमानहोरहेहैं, सुन्दरहारने सर्पके समान उन कुचरूपी महादेवजीको विभूषित किया है, सो देखनेसे मदनका दर्पभी चूर्ण होजाताहै; (फिर भला) कौन पुरुष उनके ऊपर अस्त्रप्रहार करेगा ॥ २३॥

लोललीलालकव्रातचकोराक्रान्तचाद्रिकम् ।
मुखचन्द्रं चिह्नहीनं कस्तं हन्तुमिहार्हति ॥ २४ ॥

तुम्हारे मुखरूप सुधाकरमें चंचल अलकरूप चकोर चांदनीका पान करतेहैं । परन्तु इस मुखचंद्रमें (यथार्थ चंद्रमाकी नांई) कलंक नहींहै पृथ्वीपर ऐसा कौन पुरुषहै, जो उस मुखपर प्रहार करसकेगा ॥ २४ ॥

स्तनुभार-भराक्रान्त-नितान्तक्षीण-मध्यमम् ।
तनुलोमलताबन्धं कः पुमान्प्रहरिष्यति ॥ २५ ॥

तुम्हारा अति पतला मध्यदेश पीनपयोधरों (बडेस्तनोंमें) के बोझसे कुछेक झुकगयाहै, तहांपर सूक्ष्म २ रोमें विराजमानहैं; कौन पुरुष उस अंगमें प्रहार करेगा ? ॥ २५ ॥

नेत्रानन्देन नेत्रेण समावृतमनिन्दितम् ।
जघनं सुघनं रम्यं बाणैः कः प्रहरिष्यति ॥ २६ ॥

तुम्हारे इन नयनानन्ददायक, वस्त्रसे ढके दोषके स्पर्शसे रहित परमरमणीय घन जघन ढकेहुएहैं; कौन पुरुष बाण वर्षाकर उन परमरमणीक जघनको बींधेगा ? ॥ २६ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्राहस्य प्राहुराद्दताः ।
अस्माकं त्वं पतीन् हंसि तेन नष्टा वयं विभो ! ।
हन्तुं गतानामस्त्राणि कराण्येवागतान्युत ॥२७ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर म्लेच्छोंकी स्त्रियें हँसकर बोलीं, हे महात्मन् ! जब कि, आपने हमारे पतियोंको मारडाला, तब हमाराभी नाश होगया । यह कहकर स्त्रियें कल्किजीका नाशकरनेको उद्यत हुईं । वह जिन अस्त्रोंको छोडने लगीं, वह उनके हाथमें ही रहे (किसी भांति उनके हाथमेंसे न छूटे) ॥ २७ ॥

खड्ग-शक्ति-धनुर्बाण-शूल-तोमर-यष्टयः ।
ताः प्राहुःपुरतो मूर्त्ताः कार्त्तस्वरविभूषणाः ॥ २८ ॥

खड्ग शक्ति(१)धनुबाण,शूल,तोमर(२)यष्टि आदि,सुवर्णसे विभूषितशस्त्रोंके देवतालोग मूर्त्ति धारणकरके प्रगटहो म्लेच्छोंकी स्त्रियोंसे कहने लगे ॥ २८ ॥

---

(१) प्राचीन कालके अस्त्र, शस्त्रोंके दो भागथे;–

अस्यते क्षिप्यते यत्तु मंत्रयंत्राग्निभिश्च तत् । अस्त्रं तदन्यतः शस्त्रमसिकुंतादिकञ्च यत् ।
अस्त्रन्तु द्विविधं ज्ञेयं नालिकं मान्त्रिकं तथा ॥ (शुक्रनीति ४ अ०, ७प्रकारण । १९१ । १९२ श्लो०)

अर्थात्;–मंत्र, यंत्र अथवा अग्नि करके जो छोड़े जाते हैं तिनको अस्त्र (चलानेके योग्य) कहते हैं । इसके सिवाय प्रहरण हैं । जैसे कुन्त,खड्ग, असि आदिको शस्त्र कहते हैं । अस्त्रोंके नालिक और मांत्रिक यह दो भाग हैं ।

शक्तिभी अस्त्रोंमें गिनी गई है । शुक्रनीतिमें शक्तिका वृत्तान्त नहीं लिखा । डाक्टर रामदासजीने शक्तिका जो वृत्तान्त संकलित किया है, सो लिखते हैं ।

'शक्ति-के आकारका वर्णन इस प्रकारसे है-

शक्तिर्हस्तद्वयोत्सेधा तिर्यग्गति रनाकुला । तीक्ष्णजिह्वाग्रनखरा घण्टानादभयङ्करी ॥
व्यादितास्याति नीला च शत्रुशोणितरंजिता । अस्त्रमाला परिक्षिप्ता सिंहास्या घोरदर्शना ॥
बृहत्सरुर्दूरगमा पर्वतेन्द्रविदारिणी । भुजद्वय प्रेरणीया युद्धे जयविधायिनी ॥

इस वर्णनको देखकर शक्तिका यथार्थ गठन या आकार स्थिर नहीं होता । जैसा हम संस्कृत जानते हैं वैसाही इसका भाषानुवाद किया । जो समझ सके वह अधिकभी समझले । शक्ति लगभग दोहाथके लम्बी होती है, सिंहके समान मुख और जीभ अति तीक्ष्ण होती है, नखभी तीक्ष्ण होते हैं। मूठ बडी होती है । देखनेमें अतिभयंकर, घण्टानाद करनेसे भयदाई, जिसके अंग शत्रुके रुधिरसे रंगे होते हैं, अस्त्रजालसे जड़ी हुई, जिसका रंग गाढ़ा नीला है, अत्यन्त दूर जानेवाली, टेढी चालसे युक्त पर्वतोंके राजा हिमवान्कोभी विदीर्ण करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली, युद्धमें जयदायिनी, इस प्रकारकी शक्तिको दोहाथसे उठाकर चलाना होता है ॥

यह घोररूपवाली शक्ति छै प्रकारके मार्ग अर्थात् क्रियाके आश्रित है । पहली क्रिया उत्तोलन, (उठाना) दूसरी भ्रामण अर्थात् घुमाना, तीसरी वल्गन अर्थात् आस्फालन, चतुर्थ नामन अर्थात् ऊपर आस्फालित करके नीचे वागमें धरना, पांचवी मोचन अर्थात् निशानेपर छोड़ना, छठा भेदन अर्थात् निशानेका अंगभेद करना । यह ६ प्रकारके शक्तिकार्य वैशम्पायनोक्त धनुर्वेदमें भी लिखे हैं । यथाः-

"तोलनं भ्रामणञ्चैव वल्गनं नामनं तथा । मोचनं भेदनञ्चेति षण्मार्गाः शक्तिसंश्रिताः ॥"

यह शक्तिअस्त्रका विवरण है । इस्से शक्तिका रूप भली भांति नहीं जाना जाता । भारतरहस्य पुस्तकसे यह वृत्तान्त लिखा गया है-

(२) डाक्टर रामदासने अपनी भारतरहस्य नामक पुस्तकमें लिखा है 'तोमर' इस अस्त्रका वर्णन तीन प्रकारसे है । वैशम्पायनजीके कहे धनुर्वेदके अनुसार यह एक प्रकारका लौह फलक और काष्ठदण्ड युक्त तीर है । शार्ङ्गधरके मतसे यह फलदार शलाकाकार तीर है; अग्निपुराणमें कहे धनुर्वेदके मतसे यह सीधे पंखवाला तीर है,सबके मतसे यह धनुष्रके चलानेका तीरही है धनुर्वेदमें लिखा है । कि,-

"तोमरः काष्ठकायः स्याल्लौहशीर्षैः सुपुच्छवान् ।
हस्तत्रयोन्नताङ्गश्च रक्तवर्णस्त्ववक्रगः । "

तोमरका शरीर काठका बनाहुआ होता है, तिसका शीर्षक अर्थात् फल लोहेका बना होता है। लम्बाईमें ३ हाथ और पूंछदार होता है । इसकी गति अवक्र अर्थात् सीधी होती है। इस. अर्थको ठीक रखकर शार्ङ्गधरने एक बात अधिक कही हैं यथाः-

"फलवच्छीर्षप्रदेशः स्यात्तोमरस्त्वायसस्तथा । "

अर्थात् सर्पके फनकी समान फलवाले लोहेके तीरका नाम तोमर है । अग्निपुराणके धनुर्वेदमें इसका आकार या गठन कुछ नहीं लिखा । परन्तु क्रियायें समस्त लिखीहै । यथाः-

"दृष्टिघातं भुजाघातं पार्श्वघातं द्विजोत्तम । ऋजुपक्षेषुणापातं तोमरस्य प्रकीर्तितम् ॥"

तोमरास्त्रका कार्यभी तीन प्रकारकाहै । वैशम्पायन मुनिजी लिखतेहैं । यथाः-

"उद्धानं विनियुक्तञ्च वेधनञ्चेति तत्त्रिकम् । वल्गितं शस्त्रतत्त्वज्ञाः कथयन्ति नराधिपाः ॥"

शास्त्र तत्वके जाननेवाले राजालोग कहते हैं कि, तोमरका कार्य तीन प्रकारकाहै । प्रथम उद्धान (ऊंचा करना) द्वितिय विनियुक्ति अर्थात् प्रयोग और तीसरा वेधन अर्थात् निशानेमें छेद करना ।"

(आर्यजातिके युद्धास्त्र, भारतरहस्य)

शस्त्राण्यूचुः—यमासाद्य वयं नार्य्यो हिंसयामः स्वतेजसा।
तमात्मानं सर्व्वमयं जानीत कृतनिश्चयाः॥ २९॥

अस्त्र बोलेः—हेस्त्रियो ! हमने जिनसे तेजपायाहै और जिस तेज करके हम प्राणियोंकी हिंसाकरतेहैं, सो इनको वही परमात्मा सर्वमय ईश्वर जानो और दृढ विश्वासकरो॥ २९॥

तमीशमात्मना नार्य्यः ! चरामो यदनुज्ञया।
यत्कृता नामरूपादिभेदेन विदिता वयम्॥ ३०॥

हे स्त्रियो ! हम इन्हीं ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार विचरण किया करतेहैं, तिनसेही हम नामरूपको प्राप्तहोकर विख्यात हुएहैं॥ ३०॥

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श-शब्दाद्या भूतपञ्चकाः।
चरन्ति यदधिष्ठानात्सोऽयं कल्किः परात्मकः॥ ३१॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, इन पंचगुणके आधार पंचभूतहैं, इनकरके अधिष्ठित होकरही अपना २ कार्य करतेहैं, यह कल्किजी वही परमात्माहैं॥ ३१॥

काल-स्वभाव-संस्कार-नामाद्या प्रकृतिः परा।
यस्येच्छया सृजत्यण्डं महाहङ्कारकादिकान्॥ ३२॥

तिनकी आज्ञाके अनुसारही काल, स्वभाव, संस्कार, नामादिकी आदि भूत परम प्रकृति, महत्तत्व, अहंकारतत्वादि समस्त ब्रह्माण्डको उत्पन्न करतीहै॥ ३२॥

यन्मायया जगद्यात्रा सर्गस्थित्यन्तसंज्ञिता।
य एवाद्यः स एवान्ते तस्यायः सोऽयमीश्वरः॥ ३३॥

सृष्टि, स्थिति प्रलय रूप जगत्प्रपंच तिसकी मायाके सिवाय और कुछ नहीं है। वही सबके आदि और अन्तहैं। तिनसेही संसारकी समस्त शुभबातें होतीहैं। यह बली ईश्वरहै॥ ३३॥

असौ पतिर्मे भार्य्याहमस्य पुत्राप्तबान्धवाः।
स्वप्नोपमास्तु तन्निष्ठा विविधाश्चैन्द्रजालवत्॥ ३४॥

यह हमारा पति, मैं इनकी स्त्री, यह मेरा पुत्र यह मेरा आत्मीय, यह मेरा बन्धु; स्वप्नकी समान यह सब है; इन्द्रजालके समान विविध व्यवहार इससेही प्रकाशित होरहेहैं ॥ ३४ ॥

स्नेहमोहनिबन्धानां यातायातदृशां मतम् ।
न कल्किसेविनां रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ॥ ३५ ॥

जो लोग स्नेह और मोहके अधीनहो (जन्ममृत्युको केवल) आना जाना समझतेहैं, जिन्होंने राग द्वेष, हिंसा आदिको उखाडडालाहै, जो लोग कल्किजीके सेवकहैं, वह (इस इन्द्रजालकी बातोंको सत्य) नहीं समझते ॥ ३५ ॥

कुतः कालः कुतो मृत्युः क्व यमः क्वास्ति देवताः ।
स एव कल्किर्भगवान्मायया बहुलीकृतः । ॥ ३६ ॥

काल कहांसे हुआ ? मृत्यु कहांसे आतीहै ? यम कौनहै ? देवतालोग कौनहैं? केवल यह भगवान् कल्किजीही माया करके बहुतसे होगएहैं॥ ३६॥

न शस्त्राणि वयं नार्य्यःसंप्रहार्य्या न च क्वचित् ।
शस्त्रप्रहर्तृभेदोऽयमविवेकः परात्मनः ॥ ३७ ॥

हे नारियो ! हम शस्त्रनहींहैं, हममें किसीपर प्रहार करनेकी शक्ति नहींहै। यह परम देवताही शस्त्रहैं और यह परमदेवताही शस्त्रका प्रहार करसकतेहैं। यह दो भेदहैं सो तो केवल परमात्माकी मायाहै ॥ ३७ ॥

कल्किदासस्यापि वयं हन्तुं नार्हाः कथोद्धतम् ।
हनिष्यामो दैत्यपतेः प्रह्लादस्य यथा हरिम् ॥ ३८ ॥

जब दैत्यपति प्रह्लादके कहेके अनुसार, नाराणयजीने नृसिंहमर्तिको धारणाकियाथा, तब उनपर हम जिस प्रकार आघात नहीं करसकेथे, वैसेही कल्किजीके सेवकोंपरभी आघात करनेकी सामर्थ्य हममें नहीं है ॥ ३८ ॥

इत्यस्त्राणां वचः श्रुत्वा स्त्रियो विस्मितमानसाः ।
स्नेहमोहविनिर्मुक्तास्तं कल्कि शरणं ययुः ॥ ३९ ॥

अस्त्रोंके यह वचन सुनकर स्त्रियोंके हृदय विस्मयसे युक्त हुए । तब वह स्नेह और मोहको छोडकर उन कल्किजीकी शरणमें आने लगीं॥ ३९॥

ताः समालोक्य पद्मेशः प्रणता ज्ञाननिष्ठया ।
प्रोवाच प्रहसन् भक्ति-योगं कल्मषनाशनम् ॥ ४० ॥

म्लेच्छोंकी उन समस्त स्त्रियोंको ज्ञान और निष्ठासे प्रणत होते देख पद्माके पति कल्किजीने मुस्कायकर उनसे पापपुंजका नाशकरनेवाला भक्तियोग कहना आरम्भ किया ॥ ४० ॥

कर्म्मयोगञ्चात्मनिष्ठं ज्ञानयोगं भिदाश्रयम् ।
नैष्कर्म्यलक्षणं तासां कथयामास माधवः ॥ ४१ ॥

फिर उन्होंने आत्मनिष्ठ ज्ञानयोग और भेद ज्ञानका कारण कर्मयोग और किस प्रकारसे भाग्याधीन होना नहीं पडता, सो समस्त स्त्रियोंसे कहा ४१ ॥

ताः स्त्रियः कल्कि-गदित-ज्ञानेन विजितेन्द्रियाः ।
भक्त्या परमवापुस्तद्योगिनां दुर्ल्लभं पदम् ॥ ४२ ॥

फिर वह स्त्रियें कल्किजीके वचनोंसे ज्ञान पाय, इन्द्रियोंको जीत भक्ति करके उस दुर्लभ परमपद मोक्षको प्राप्तहुई जो पद योगियोंकोभी दुर्लभहै ॥ ४२ ॥

दत्त्वा मोक्षं म्लेच्छबौद्धप्रियाणां कृत्वा युद्धं
भैरवं भीमकर्म्मा । हत्वा बौद्धान् म्लेच्छ-
संघांश्च कल्किस्तेषां ज्योतिः स्थानमापूर्य्य रेजे ॥ ४३ ॥

इस प्रकारसे भयंकर कर्म करनेवाले कल्किजीने भयंकर युद्ध करके बौद्ध और म्लेच्छोंका नाश किया । फिर वह उनकी स्त्रियोंको मुक्तिपद दे मृतकहुए इन म्लेच्छ और बौद्धोंको ज्योतिर्मय स्थानमें (प्रकाशित) भेजकर शोभायमान होने लगे ॥ ४३ ॥

ये शृण्वन्ति वदन्ती बौद्धनिधनं म्लेच्छक्षयं सादरा-
ल्लोकाः शोकहरं सदा शुभकरं भक्तिप्रदं माधवे ।

तेषामेव पुनर्न जन्ममरणं सर्व्वार्थसम्पत्करं
मायामोहविनाशनं प्रतिदिनं संसारतापच्छिदम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे म्लेच्छ-निधनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

म्लेच्छोंका यह क्षय और बौद्धोंका नाश जो लोग आदरपूर्वक कहेंगे या सुनेंगे, तिनके समस्त शोक दूर होंगे। वे सदा कल्याण भाजन होंगे, माधवके प्रति उनको भक्ति उत्पन्न होगी। इस्से फिर उनका जन्म न होगा, न मृत्यु होगी। इस वृत्तान्तके श्रवण करनेसे समस्त सम्पत्तियां प्राप्त होतीहैं, मायामोह दूर होजाताहै और फिर संसारके ताप नहीं सहने पड़ते ॥ ४४ ॥

इति श्रीसानुवादे काल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे म्लेच्छ विनाशोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तृतीयांशः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

ततो बौद्धान् म्लेच्छगणान्विजित्य सह सैनिकैः ।
धनान्यादाय रत्नानि कीकटात्पुनराव्रजत् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले—बौद्ध और म्लेच्छोंको पराजितकर धनरत्न ले कल्किजी सेनाके साथ कीकट नगरसे लौटे ॥ १ ॥

कल्किः परमतेजस्वी धर्म्माणां परिरक्षकः ।
चक्रतीर्थं समागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ २ ॥

इसके उपरान्त धर्मकी रक्षा करनेवाले उन परम तेजस्वी कल्किजीने चक्रतीर्थ (१) में आय विधि विधानसे स्नान किया ॥ २ ॥

---

(१) चक्रतीर्थ—नैमिषारण्यक एकतीर्थ। लखनऊके वायुकोणमें ४५ माइल दूरपर बाईं ओर विख्यात नैमिषारण्य है। वर्त्तमान नीमखार है। पहला गौरव कुछभी नहीं, केवल चक्रतीर्थही विद्यमानहै इसी स्थानमें विष्णुजीके चक्रकी नय शीर्ण हुई थी। चक्रतीर्थ एक षटकोण सरोवरहै, इसके चारों ओर मन्दिरहै। सरोवरका विस्तार ८० हाथ है। कुण्डसे जल दक्षिण दिशाकी ओरसे १४ हाथ चौंडे गोदावरीके नालेके द्वारा बाहर निकलताहै। उत्तरमें ११० फीट लम्बा, ४०० फीट चौडा और ५०० फीट ऊंचा एक किलाहै।

भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्बहुभिः स्वजनैर्वृतः ।
समायातान्मुनींस्तत्र ददृशे दीनमानसान् ॥ ३ ॥

वह कल्किजी लोकपालके समान भ्राताओं और बहुतसे आत्मीय स्वजनोंसे युक्तहोकर वहांपर वास करने लगे । एकसमय कल्किजीने देखा कि, कुछ मुनिलोग हृदयमें दुःखपाय वहांपर आयेहैं ॥ ३ ॥

समुद्विग्यागतांस्तत्र परिपाहि जगत्पते ।
इत्युक्तवन्तो बहुधा ये तानाह हरिः परः ॥ ४ ॥

यह मुनिलोग, भयके मारे कल्किजीके निकट जाय वारम्वार कहने लगे हे जगन्नाथ ! रक्षाकरो फिर नारायणजीने तिनसे कहा ॥ ४ ॥

वालखिल्यादिकानल्पकायाञ्चीरजटाधरान् ।
विनयावनतः कल्किस्तानाह कृपणान्भयात् ॥ ५ ॥

और वालखिल्यादि (१) छोटे शरीरधारी, छिन्न वसन पहरे जो महर्षि लोग कातर होकर आये थे तिनके निकटभी विनयसे झुककर कहने लगे ॥ ५ ॥

कस्माद्यूयं समायाताः केन वा भीषिता बत ।
तमहं निहनिष्यामि यदि वा स्यात्पुरन्दरः ॥ ६ ॥

आपलोग कहांसे आतेहैं ? आप किस्से भीत हुएहैं सो कहो ? जो वह देवराज इन्द्रभी होगा तोभी मैं तिसका नाश करूंगा ॥ ६ ॥

इत्याश्रुत्य कल्किवाक्यं तेनोल्लासितमानसाः ।
जगदुः पुण्डरीकाक्षं निकुम्भदुहितुः कथाः ॥ ७ ॥

---

(१) इन मुनियोंकी देहका परिमाण अंगुष्ठके पोरुएकी समान है । गिनतीमें यह ६०,००० हैं। इन अत्यन्त प्रभाववालोंने पुलस्त्यकी कन्याके गर्भमें ऋतुके औरससे जन्म लियाथा । यह लोकपति धर्मका विचार किया करतेथे । महाभारतमें जहां कण्वमुनिके आश्रमका वृत्तान्त है तहांपर इनको यति लिखा है । यथाः—

" यतिभिर्वालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणान्वितम् ॥ "

कल्किपुराणमें वालखिल्योंको मुनिने कहा है । महाभारतमेंभी यति शब्दसे पुकारे गये हैं । यति और मुनि एक नहीं है । यतिधर्म और मुनिधर्ममें पृथक्ता है

कमलदलके समान नेत्रवाले कल्किजीके यह वचन सुनकर ऋषि मुनियों-के चित्तमें आनन्द हुआ और उन्होंने राक्षसी निकुम्भकी पुत्रीकी कथाका कहना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

मुनय ऊचुः—शृणु विष्णुयशः पुत्र ! कुम्भकर्णात्मजात्मजा।
कुथोदरीति विख्याता गगनार्द्धसमुत्थिता ॥ ८ ॥

मुनि बोलेः—हे विष्णुयशोनन्दन ! कहतेहैं श्रवण कीजिये। कुम्भकर्णके पुत्र निकुम्भकी एक कन्याहै, वह आकाशमंडलसे आधी ऊंचीहै। तिसका नाम कुथोदरीहै ॥ ८ ॥

कालकञ्जस्य महिषी विकञ्जजननी च सा।
हिमालये शिरः कृत्वा पादौ च निषधाचले।
शेते स्तनं पाययन्ती विकञ्जं प्रस्नुतस्तनी ॥ ९ ॥

यह राक्षसी, कालकञ्ज नामक राक्षसकी भार्या है। इसके पुत्रका नाम विकञ्जहै। यह राक्षसी (१) हिमालय पर्वतपर मस्तक रक्खे और निषधाचल (२) पर चरण स्थापितकिये विकंजके निकट स्तन रखकर उसको स्तनपान करा रहीहै ॥ ९ ॥

तस्या निश्वासवातेन विवशा वयमागताः।
दैवेनैव समानीताः संप्राप्तास्त्वत्पदास्पदम्।
मुनयो रक्षणीयास्ते रक्षःसुच विपत्सु च ॥ १० ॥

---

(१) हिमालय—पर्वत विशेष। हिन्दोस्थानके उत्तरमें यह पर्वत है। पुराणोंमें इसको पर्वतराज कहा है। इसकी भार्या, पितृगणोंकी कन्या मैना (मेनका) हुई। इसके पुत्रका नाम मैनाक और पुत्रियोंका नाम गंगा व उमा हुआ। गंगा और उमा शिवजीकी भार्या हैं। परन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे गंगाजी, विष्णुजीकी भार्या हैं। पुराणोंमें कहा है कि, पहले पर्वतोंके पंखथे इसकारण वह जहां तहां उडते फिरते हुए प्राणियोंका अनभल किया करते, तब इन्द्रने वज्रमारकर तिनके पंखोंको काटडाला। हिमालयका पुत्र मैनाक इस डरसे कि, कहीं इन्द्र वज्र चलाकर मेरे पंखोंको भी न काटडाले; समुद्रके भीतर जाकर छिपा। एकबार मैंने एक समाचार पत्रमें देखाथा। कि, किसी १ समुद्रके मध्यमें एक प्रकारके पर्व्वत हैं, जोकि अतिवेगसे एक स्थानमें एक स्थानसे एक दूसरे दूर स्थानको चले जाते हैं। जो यह बात सत्यहो तो देखा जाता है कि, पर्वतोंके अचल सचल दोनों नामोंका चलन् हुआ। एकबात यहहै कि, जब पर्वत चल सकता है, तब पौराणिक ऋषियोंका यह कहना कि, 'पर्वत चलतेथे' अविश्वासके

योग्य नहीं है । यद्यपि एक मैनाक समुद्रमें स्थित है, तथापि दो मैनाक पर्वत स्थलमें और पाये जाते हैं । तिनमें एक मैनाक शोणनदकी उत्पत्तिका स्थान है । इसीसे शोणनदका दूसरा नाम मैनाकप्रभ है । दूसरा मैनाक चट्टग्रामकी ओरहै । हिमालयसे निम्न लिखित नदियें उत्पन्न हुई हैं ।

प्राचीन नाम	वर्त्तमान नाम ।
अलकानन्दा	अलकनन्दा ।
गङ्गा	गंगा ।
सरस्वती	सरस्वती (सरसुत)
सिन्धु	सिन्धु (Indus)
चन्द्रभागा (असिक्नी)	चन्द्रभागा (Chenab)
यमुना (कालिन्दी)	यमुना, जमना (Jumna)
शतद्रु	शतद्रु (Sutlej)
वितस्ता	वितस्ता (Jhelum)
ऐरावती (इरावती)	इरावती (Ravi)
कुहू	को (Koh) वा काबुलनदी (Elbot)
गोमती	गोमती (Goomti)
धूतपापा	धोवा (Dhaba) साहाबाद देश ।
बाहुदा	महानन्दा, मालदहके निकट (Wilford)
दृषद्वती	कागार (Wilford)
विपाशा	विपाशा (Beas)
देविका (सरयू)	घर्घरा (Gogra)
वङ्क्षु (चक्षु)	अक्सस (Oxus) हिमालयके उत्तरविभागमें
विशाला	सरस्वती नदीकी एक शाखा ।
गण्डकी	गण्डकी (Gundak)
कौशिकी	कुशी, कुरुक्षेत्रकी ओर एक कौशिकी नदीहै ।
चुलुका	(Chaulkoya) कामरूप देशमें Smith's Geography of India)
कुण्डला	(Kundel) ब्रह्मपुत्रमें गिरती है, लक्षीपुरविभागमें ।
सदानीरा	गण्डकी और सरयूके बीचमें बहती है अमरकोषमें इसका दूसरा नाम करतोरा है ।
सुधामा	Suwawan ! अयोध्या देशके गोन्डा (Gonda) भागमें बहती है । (Smith Geography of Iindia

(२) निषध– पर्वत विशेष -। यह इलावृत और हरिवर्षका सीमा पर्वत है, इलावृतके दक्षिणमें स्थित है ।

(भागवत, पंचमस्कन्ध १६ अध्याय)

हम, उसके श्वासकी पवनसे विवशहोकर यहांपर आएहैं । दैवही हमको यहांपर लायाहै। तिस्सेही हम आपके चरणोंको प्राप्तहुए । आपका कर्तव्य कर्म यहहै कि, विपत्कालमें राक्षससे हमारी रक्षाकरो ॥ १० ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः परपुरञ्जयः ।
सेनागणैः परिवृतो जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ ११ ॥

मुनियोंके यह वचन सुनकर शत्रुपुरके जीतनेवाले कल्किजी सेनाको साथ ले हिमालयपर्वतपर गये ॥ ११ ॥

उपत्यकां समासाद्य निशामेकां निनाय सः ।
प्रातर्जिगमिषुः सैन्यैर्ददृशे क्षीरनिम्नगाम् ॥ १२ ॥

उन्होंने हिमालयकी तराईमें पहुँचकर वहांपर एक रात्रि बिताईथी । फिर जब प्रातःकालही सेनाके सहित यात्रा करनेके अभिलाषी हुए कि, इतनेहीमें एक दूधकी नदी देखी ॥ १२ ॥

शंखेन्दुधवलाकारां फेनिलां बृहतीं द्रुतम् ।
चलन्तीं वीक्ष्यते सर्व्वे स्तम्भिता विस्मयान्विताः ॥ १३ ॥

यह नदी शंखके समान और चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण और बडीथी चारों ओर झाग उठरहे, नदीका दुग्ध अतिवेगसे बह रहा । ऐसी दूधकी नदीको देख कल्किजीके सेवक विस्मययुक्त होकर घबडासेगए ॥ १३ ॥

सेनागणगजाश्वादिरथयोधैः समावृतः ।
कल्किस्तु भगवांस्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनीश्वरान् ॥ १४ ॥

इसके उपरान्त भगवान् कल्किजी यद्यपि तिसका कारण जानतेथे; तथापि यह गज, अश्व, रथ, पैदल आदि समस्त योधाओंसे युक्तहो महर्षियोंसे ॥ १४ ॥

पप्रच्छ का नदी चेयं कथं दुग्धवहाभवत् ।
ते कल्केस्तु वचः श्रुत्वा मुनयः प्राहुरादरात् ॥ १५ ॥

पूछते हुए कि, इस नदीका नाम क्याहै ! और दूध किस कारणसे इसमें बहताहै। कल्किजीके यह वचन सुनकर मुनियोंने आदरपूर्वक कहा ॥ १५ ॥

शृणु कल्के पयस्वत्याः प्रभवं हिमवद्गिरौ।
समायाता कुथोदर्याः स्तनप्रस्रवणादिह ॥ १६ ॥

हे कल्कि ! इस दुग्धवती नदीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कहतेहैं श्रवणकरो. कुथोदरी नामक राक्षसीके एक स्तनका दूध इस हिमालयपर गिरनेसे सोई नदीरूपसे बहाहै ॥ १६ ॥

घटिकासप्तकैश्चान्या पयो यास्यति वेगितम्।
हीनसारा तटाकारा भविष्यति महामते ॥ १७ ॥

इसके उपरान्त सातघडी पीछे और एक दूधकी नदी बहैगी (राक्षसीके दूसरे स्तनके दूधसे उसनदीकी उत्पत्ति है) हे महाबुद्धिमान् ! फिर यह नदी जलहीन और किनारेके समान होजायगी ॥ १७ ॥

इति श्रुत्वा मुनीनान्तु वचनं सैनिकैः सह।
अहो किमस्या राक्षस्याः स्तनादेका त्वियं नदी ॥ १८ ॥

यह वचन सुनकर कल्किजी और उनकी सेना कहने लगी । कैसा आश्चर्य है ! इसराक्षसीके स्तनके दूधसे यह बडी नदी उत्पन्नहुई है ॥ १८ ॥

एकं स्तनं पाययति विकञ्जं पुत्रमादरात्।
न जानेऽस्याः शरीरस्य प्रमाणं कतिधा भवेत् ॥ १९ ॥

एक स्तन विकञ्जको आदरपूर्वक पान करातीहै (तिस्से यह नदी उत्पन्न हुईहै) इसके शरीरका परिमाण कितनाहै, सो बुद्धिके जानने योग्य नहीं ॥ १९ ॥

बलं वास्या निशाचर्य्या इत्यूचुर्विस्मयान्विताः।
कल्किः परात्मा सन्नह्य सेनाभिः सहसा ययौ ॥ २० ॥

और इसराक्षसीमें बल कितनाहै ? सबने विस्मयसे युक्त होकर यह कहा तब परमात्मा कल्किजी एकसाथ सजधजकर और सेनाले निशाचरीके निकट चले ॥ २० ॥

मुनिदर्शितमार्गेण यत्रास्ते सा निशाचरी ।
पुत्रं स्तनं पाययन्ती गिरिमूर्ध्नि घनोपमा ॥ २१ ॥

मुनिगण उस राक्षसीके वासस्थानका मार्ग दिखाने लगे । उन्होंने जायकर देखा कि, मेघाकार राक्षसी पर्वतके शिखरपर बैठकर पुत्रको स्तन पिलारहीहै ॥ २१ ॥

श्वासवातातिवातेन दूरक्षिप्तवनद्विपाः ।
यस्याः कर्णबिलावासे प्रसुप्ताः सिंहसंकुलाः ॥ २२ ॥

बनैले हाथी तिसके श्वासकी पवनसे टकराकर दूर फिंक रहेहैं, कानोंके छेदोंमें सिंहगण शयनकररहेहैं ॥ २२ ॥

पुत्रपौत्रैः परिवृता गिरिगह्वरविभ्रमाः ।
केशमूलमुपालभ्य हरिणाः शेरते चिरम् ॥ २३ ॥

गिरिगुहाके भ्रमसे बेटे पोतोंके साथ हरिणगण तिसके रोम-छिद्रोंमें शयनकररहेहैं ॥ २३ ॥

यूका इव न च व्यग्रा लुब्धजातङ्कया भृशम् ।
तामालोक्य गिरेर्मूर्ध्नि गिरिवत्परमाद्भुताम् ॥ २४ ॥
कल्किः कमलपत्राक्षः सर्व्वांस्तानाह सैनिकान् ।
भयोद्विग्नान्बुद्धिहीनांस्त्यक्तोद्यमपरिच्छदान् ॥ २५ ॥

वह ब्याधसे कुछभी न डरतेहैं, बरन् लीखकी समान लगे हुएहैं ॥ पर्वतके शिखरपर दूसरे पर्वतके समान उस राक्षसीको देखकर कमलके समान नेत्रवाले कल्किजी, भयसे कातर, हतबुद्धि और अस्त्रादि त्यागकरनेके लिये तैयार हुए सिपाहियोंसे कहने लगे ॥ २४ ॥ २५ ॥

कल्किरुवाच—गिरिदुर्गे वह्निदुर्गं कृत्वा तिष्ठन्तु मामकाः ।
गजाश्वरथयोधा ये समायान्तु मया सह ॥ २६ ॥

कल्किजी बोलेः—इस पहाडी दुर्गमें तुमलोग अग्नि करके दुर्ग बनायकर वासकरो । हाथियोंके सवार, घुडसवार और रथपर सवार हुए जो लडवैय्येहैं वह सब हमारे साथ आवें ॥ २६ ॥

अहं स्वल्पेन सैन्येन याम्यस्याः संमुखं शनैः ।
प्रहर्त्तुं बाणसन्दोहैः खड्गशक्तिपरश्वधैः ॥ २७ ॥

मैं थोडीसी सेनाले बाणसमूह, खड्ग, शक्ति और परशुसे प्रहार करनेके लिये इसके सन्मुखकी ओर क्रमसे गमन करताहूं ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वास्थाप्य पश्चात्तान्बाणैस्तामहनद्बली ।
सा क्रुधोत्थाय सहसा ननर्द परमाद्भुतम् ॥ २८ ॥

कल्किजी यह कह सेनाको पीछे रख बाणसे राक्षसीपर आघात करने लगे। राक्षसीनेभी औचक क्रोधके साथ उठकर अति अद्भुत ध्वनि की ॥ २८ ॥

तेन नादेन महाता वित्रस्ताश्चाभवञ्जनाः ।
निपेतुः सैनिकाः सर्व्वे मूर्च्छिता धरणीतले ॥ २९ ॥

उस महान् शब्दसे समस्तही भीत होगये। सेनापति लोग मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २९ ॥

सा रथांश्च गजांश्चापि विवृतास्या भयानका ।
जघास प्रश्वासवातैः समानीय कुथोदरी ॥ ३० ॥

तब वह भयानक कुथोदरी मुख फैलाय प्रश्वास (अर्थात् खैंचनेकी पवन) से रथ, हाथी और घोडे आदिको खैंचकर भोजन करने लगी ॥ ३० ॥

सेनागणास्तदुदरं प्रविष्टाः कल्किना सह ।
यथर्क्षमुखवातेन प्रविशन्ति पिपीलिकाः ॥ ३१ ॥

जिस प्रकारसे रीछ मुखपवनसे खेंचताहै तो (वहांकी) समस्त चींटियें उसके मुखमें प्रवेशकर जातीहैं, ऐसेही सेनाके साथ कल्किजीने उस राक्षसीके उदरमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥

तद्दृष्ट्वा देवगन्धर्व्वा हाहाकारं प्रचक्रिरे ।
तत्रस्था मुनयः शेपुर्जेपुश्चान्ये महर्षयः ॥ ३२ ॥

यह देखकर देवता और गन्धर्वगण हाहाकार करने लगे। मुनियोंने शाप दिया और कोई कोई महर्षिने कल्किजीकी कुशल कामनासे मंत्रका जप करना आरम्भ किया ॥ ३२ ॥

निपेतुरन्ये दुःखार्त्ता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः।
रुरुदुः शिष्टयोधा ये जहृषुस्तन्निशाचराः ॥ ३३ ॥

और वेदके जाननेवाले ब्राह्मण लोग दुःखितहो उस स्थानमें गिरगए। प्रभुभक्त सिपाहीलोग रोने लगे। निशाचर लोगोंने आनन्द प्रगट करना आरम्भ किया ॥ ३३ ॥

जगतां कदनं दृष्ट्वा सस्मारात्मानमात्मना।
कल्किः कमलपत्राक्षः सुरारातिनिषूदनः ॥ ३४ ॥

देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले कल्किजीने इस प्रकारसे संसारका दुःख देखकर अपने आपही अपनेको स्मरण किया ॥ ३४ ॥

बाणाग्निं चैलचर्म्मभ्यां कर्म्मणे यानदारुभिः।
प्रज्वाल्योदरमध्ये तु करवालं समाददे ॥ ३५ ॥

तब उन्होंने अंधकारमय उदरमें बाणसे अग्नि प्रगट की और वस्त्र, चर्म व रथ काष्ठादिसे इस अग्निको चैतन्यकर खड्ग उठाया ॥ ३५ ॥

तेन खड्गेन महता कुक्षिं निर्भिद्य बन्धुभिः।
बलिभिर्भ्रातृभिर्वीरैर्वृतः शस्त्रास्त्रपाणिभिः ॥ ३६ ॥
बहिर्बभूव सर्वेशः कल्किः कल्कविनाशनः।
सहस्राक्षो यथा वृत्रकुक्षिं दम्भोलिनेमिना ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार इन्द्र वज्रसे वृत्रासुरकी कोख भेदकर निकले थे वैसेही सर्वेश्वर पापके हरण करनेवाले कल्किजीने उस बडे खड्गसे राक्षसीकी दाहिनी कोखको भेद डाला और बलवान् अस्त्र शस्त्रधारी भाई बन्धुओंके सहित निकल आये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

योनिरंध्राद्गजरथास्तुरगाश्चाभवन्बहिः।
नासिकाकर्णविवरात्केऽपि तस्या विनिर्गताः ॥ ३८ ॥

उस राक्षसीके योनिमार्गसेभी कितने एक हाथी, घोडे, रथ और पयदल निकले ॥ ३८ ॥

ते निर्गतास्ततस्तस्याः सैनिका रुधिरोक्षिताः।
तां विव्यधुर्निक्षिपन्तीं तरसा चरणौ करौ ॥ ३९॥

तब रुधिरसे भीगे शरीरवाले सिपाहियोंने निकलकर देखा कि; राक्षसी हाथ और पांव चला रहीहै, व वह तत्काल बाण चलाकर उसको बींधने लगे ॥ ३९ ॥

ममार सा भिन्नदेहा भिन्नकुक्षिशिरोधरा।
नादयन्ती दिशो घोरं चूर्णयन्ती च पर्वतान् ॥ ४० ॥

जब उसके उदर मस्तक आदि समस्त अंग छिन्न भिन्न होगये, तब उसने शब्दसे दशों दिशाओंको भरादिया और आस्फालन (हाथ पांवके पटकने) से पर्वतोंको चूर्णकर उस राक्षसीने प्राणोंको छोडा ॥ ४० ॥

करञ्जोऽपि तथा वीक्ष्य मातरं कातरोऽभवत्।
स विकञ्जः क्रुधाधावत्सेनामध्ये निरायुधः ॥ ४१ ॥

माताकी यह अवस्था देखकर विकञ्ज कातर हुआ और क्रोधितहो विना अस्त्रकेही सेनामें प्रवेश करगया ॥ ४१ ॥

गजमालाकुलो वक्षोवाजिराजिविभूषणः।
महासर्पकृतोष्णीषः केसरीमुद्रिताङ्गुलिः ॥ ४२ ॥

उसकी छातीमें हाथियोंकी माला, सब अंगोंमें घोडोंकी श्रेणीके आभरण, मस्तकोंपर कुछेक बडे अजगरोंकी पगडी और हाथकी उँगलियोंमें सिंहसमूह अँगूठी रूपसे पडे हुएहैं ॥ ४२ ॥

ममर्द कल्किसेनां तां मातुर्व्यसनकर्षितः।
स कल्किस्तं ब्राह्ममस्त्रं रामदत्तं जिघांसया ॥ ४३ ॥
धनुषा पञ्चवर्षीयं राक्षसं शस्त्रमाददे।
तेनास्त्रेण शिरस्तस्य च्छित्वा भूमावपातयत् ॥ ४४ ॥

वह माताके शोकसे कातर होकर कल्किजीकी सेनाको पीडा देनेलगा। कल्किजीने उस पांच वर्षके बालकका नाश करनेके अर्थ ब्रह्मास्त्र धारण

किया और उस अस्त्रसे उसका मस्तक काटकर पृथ्वीपर डाला ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

रुधिराक्तं धातुचित्रं गिरिशृङ्गमिवाद्भुतम् ।
सपुत्रां राक्षसीं हत्वा मुनीनां वचनाद्विभुः ॥ ४५ ॥

मुनियोंके वचनसे कल्किजीने, गेरुआदिसे चित्रित पर्वतके शिखरके समान अतिअद्भुत रुधिरसे लिप्त पुत्रसहित राक्षसीका नाश किया ॥ ४५ ॥

गङ्गातीरे हरिद्वारे निवासं समकल्पयत् ।
देवानां कुसुमासारैर्मुनिस्तोत्रैः सुपूजितः ॥ ४६ ॥

देवतालोग फूल वर्षाते हुऐ मुनिलोग स्तुति करने लगे । फिर तहांसे जायकर कल्किजीने हरिद्वारमें (१) स्थित गंगाजीके किनारे जायकर सेनाकी छावनी डाली ॥ ४६ ॥

---

(१) हरिद्वार–तीर्थ विशेष ! इसका दूसरानाम हरद्वार, गंगाद्वार और मायापुरहै । मायादेवीकी मूर्तिहोनेसे इसका नाम मायापुरहै । सात मोक्षदायक पुरियोंमेंसे यहभी एकहै । हरिद्वार एक साधारण कसबाहै । यहांपर गंगाजी हिमवानकी शैवालिक श्रेणीको बगलमें रखकर पर्वती देशोंको छोड़ती हुई भारतकी समतल (इकसार) भूमिमें प्रवेश करतीहैं । जहांपर पर्वतोंको छोड़ाहै, तहां दोधाराहोकर दक्षिणको बहीहैं, दोनोंके बीचमें एक द्वीपसा होगयाहै । पाश्चिमकी धाराके किनारे तीर्थादिहैं; परन्तु दोनोंधाराओंके विभक्त होनेके ऊपर विष्णुपद घाटहै (हरिकी पैरी) घाटकी ३९ सीढीहैं । मानसिंहका बनाया पहला घाट छोटाथा. शैव और वैष्णव संन्यासियोंने एकबार स्नानकेलिये झगड़ा करके बहुतसे आदमियोंका नाशकिया इसकारण गवर्नमेन्टने सन् १८१९ में वर्त्तमान घाटपर विष्णुचरण युक्ताकिये । इसघाटपर गंगाजीका विस्तार ६७० हाथहै । घाटके ऊपर अनेक मन्दिर और घरहैं । कुछदूर दक्षिणको एकनदी गंगाजीमें गिरतीहै । सर्वनाथका मन्दिर यहांपर विख्यातहै । मन्दिरकी मूर्ति बुद्ध जीके समानहै । और दो खडीहुई मूर्त्तिहैं । वेदीके निकट चक्र और सिंह शोभायमानहैं । इस मन्दिरके कुछदूर दक्षिणमें भैरव मन्दिरहै, तदुपरान्त मायादेवीहैं मायादेवीका मन्दिर पत्थरका बनाहुआहै द्वारपर ९०० वर्षका खुदा हुआ पत्थर लगाहै, भीतर त्रिमस्तक, ४ हाथवाली असुरसंहारिणी दुर्गाजी हाथोंमें चक्र, त्रिशूल और मुण्ड लिये हुयेहैं । निकट ही आठहाथकी शिवमूर्ति और नांदिया बैलहै । दक्षिणमें मायापुरहै । मायापुरके दक्षिणकी गंगाजीमेंसे नहर निकलकर रुडकीको गईहै । नहरमें भतनानदीका मुखहै । इस स्थानमें नारायण शिलामन्दिरहै । मन्दिरकी प्रत्येक ईंट चारों ओर अर्ध हाथ लम्बी और तीन अंगुल चौंड़ीहै। निकटही५००हाथ समचतुष्कोण राजा वेनका किलाहै।जो इन वस्तुओंके देखनेकी इच्छा न हो तो मायापुरके दक्षिणमें नहर जहांसे आरम्भ हुईहैं तहांसे पारहो कुछ दूर दक्षिणको जाना चाहिये । वहांपर पहले कहेहुये द्वीपके शेषमें पूर्व दिशाकी धारासे एक धारा आकर पश्चिम धारामें मिलतीहै । इस संगमस्थानमें जलका

निनाय तां निशां तत्र कल्किः परिजनावृतः ।
प्रातर्ददर्श गङ्गायास्तीरे मुनिगणान्बहून् ॥
तस्याः स्नानव्याजविष्णोरात्मनो दर्शनाकुलान् ॥ ४७ ॥

उसरात्रिको विष्णुजीका अवतार कल्किजी परिजनोंके साथ उसी स्थानमें बिताकर प्रातःकाल देखते हुए कि, मुनिलोग गंगास्नानके मिषसे तिनको देखनेके लिये व्याकुलहोरहेहैं ॥ ४७ ॥

हरिद्वारे गङ्गातटनिकटपिण्डारकवने
वसन्तं श्रीमन्तं निजगणवृतं तं मुनिगणाः ।

विस्तार दोहजार हाथ है। इसके दक्षिणमें प्रसिद्ध कनखल तीर्थ है। इस स्थानमें शिवजीने दक्षका यज्ञ नष्ट करदियाथा। यहांपर सतीकुण्ड या दक्षेश्वर शिवजी हैं। प्राचीन मन्दिर वटवृक्षसे टूट जानेके कारण नया मन्दिर शकाब्द १७७० में बनाहै। नेपालके राजाका दियाहुआ एक घंटा भीतर लगाहै। विष्णुपद घाटसे कनखल १॥ कोश है। हरिद्वारके हिमालयका नाम शिवालिक पर्वत है, पुराणमें इसकाही नाम कनखल श्रेणी है। कनखल पर्वतके ऊपर देखने योग्य अनेक वस्तुएँ हैं। बहुधा यात्री जिस पर्वतपर चढतेहैं सो हरिद्वारकी ओरको झुका हुआहै, परन्तु कटी हुई मिट्टी और पत्थरोंके टुकडोंके पड़े रहनेके कारण सावधानीसे चढना पड़ता है। पर्वतके ऊपर वेदीमें नौ हाथ ऊंचा एक पत्थरका त्रिशूल गड़ा हुआ है। शूलके ऊपर चंद्रमा सूर्यकी मूर्ति और शूलके दण्डमें गणेशजीकी मूर्ति है। नीचेकी ओर पूर्वदिशामें कालिकादेवी और पश्चिममें हनुमानजीकी मूर्तिहै। शीतकालमें हरिद्वारमें बडा शीत और बर्फ पड़ताहै, यहांतक कि, लोहेकी वस्तुभी अगर छुई जाय तो वहभी जलातीहै। चैत्रसंक्रान्तिमें स्नानका समयहै। बारह वर्षके अन्तमें जब बृहस्पति कुम्भराशिमें प्रवेश करताहै तब बड़ाभारी मेला होताहै। शकाब्द १७८८ और १८०० में बड़े मेले हुएथे मेलेमें नागे और संन्यासियोंका बड़ा जोर रहताहै। मय फौजके गवर्नमेन्ट सावधान रहतीहै। भारतवर्षीय राजालोग और गुरुकी प्रधानताके अनुसार संन्यसीलोग टुकडियोंमें बैठकर स्नान करतेहैं। जब हाथीके ऊपर महन्तजी और नीचे लम्बी २ डाढी मूछवाले जटाधारी, कुछ नंगे, खाकी, माध्वाचारी, रामानुजी, नागा आदि भारतवर्षकी असंख्य सम्प्रदायें स्वर्णछत्र, चामर और पताकादि लेकर झुंडके झुंड चिल्लाते २ हरिद्वारके तंग रास्तेसे होते हुए विष्णुपद घाटको जातेहैं और जब दोनों ओर गवर्नमेण्टके साथ रक्षकगण सावधानीसे शब्द करते हैं, तब मनमें एक अनिर्वचनीय भावका उदय होताहै कितने एक ' हर हर बम् बम्' कहते हुए जलमें जाकर गिरते हैं। उनके बादको दूसरा दल "नारायण, हरे नारायण" कहता हुआ आगे बढताहै। एकदल 'जय शिव शम्भो जय शिव शम्भो, कहकर आनेलगा। सन्ध्यातक ऐसीही भीड रहा करतीहै। जो हरिद्वारके निकट मयदान और पर्वत न होते तो इस असंख्य फौज फर्रे और संन्यासी लोगोंको कहांसे स्थान मिलता। (ग्रंथकार)

स्तवैः स्तुत्वा स्तुत्वा विधिवदुदितैर्जह्नुतनयां
प्रपश्यन्तं कल्किं मुनिजनगणा द्रष्टुमगमन् ॥ ४८ ॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कुथोदरी-
वधानन्तरं मुनिदर्शनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हरिद्वारमें गंगातीरके निकट निजजनोंके साथ कल्किजी वास करतेहैं। और जह्नुकी पुत्री (गंगा) का दर्शन करतेहैं, ऐसे समयमें आय मुनिलोग दर्शनकरके विधिबोधित स्तुतिवाक्य करके वारम्वार तिनका स्तोत्र करने लगे ॥ ४८ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कुथो-
दरीवधान्तरं मुनिदर्शनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयांशः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

सूत उवाच–सुस्वागतान्मुनीन्दृष्ट्वा कल्किः परमधर्म्मवित् ।
पूजयित्वा च विधिवत्सुखासीनानुवाच तान् ॥ १ ॥

सूतजी बोलेः–परधार्मिक कल्किजीने मुनियोंको सुखसे आयाहुआ और सुखसे बैठाहुआ देखकर विधिविधानसे तिनकी अर्चना करके कहा ॥ १ ॥

कल्किरुवाच–के यूयं सूर्य्यसङ्काशा मम भाग्यादुपस्थिताः ।
तीर्थाटनोत्सुका लोकत्रयाणामुपकारकाः ॥ २ ॥

कल्किजीबोलेः–साक्षात् सूर्यके समान तेजस्वी, तीर्थ भ्रमण करनेमें तत्पर, त्रिलोकीका हितसाधन करनेमें रत आपलोग कौनहैं ? आज हमारे भाग्यसेही आपलोग यहांपर आनपहुँचेहैं ॥ २ ॥

वयं लोके पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो यशस्विनः ।
यतः कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिताः ॥ ३ ॥

आज हम लोकमें पुण्यवान्, भाग्यवान् और यशस्वी हुए, क्योंकि आपलोगोंने आज हमको कृपाकटाक्षसे अवलोकन किया ॥ ३ ॥

ततस्ते वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो गालवो भृगुः ।
पराशरो नारदोऽश्वत्थामा रामः कृपस्त्रितः ॥ ४ ॥

इसके उपरान्त वामदेव,अत्रि,(१)वसिष्ठ, (२) गालव,(३)भृगु,(४) पराशर,(५) नारद, (६)अश्वत्थामा, परशुराम, कृपाचार्य, त्रित ॥ ४ ॥

---

(१)अत्रिमुनिसप्तर्षि मण्डलमेंहैं ब्रह्माजीके नेत्रोंसे इनका जन्महुआ। ब्रह्माजीकी छायासे कर्दमनामक प्रजापतिकी उत्पत्तिहुईथी। इनकी स्त्रीका नाम देवहूतिथा। देवहूतिके गर्भसे कर्दमजीके एकपुत्र और कला अनसूया आदि ९ कन्या जन्मी। पुत्रका नाम कपिलदेवजी था। कर्दममुनिकी अनसूयाकन्याके साथ अत्रिमुनिका विवाह हुआ। इनके दत्त, दुर्वासा और चंद्र यह तीन पुत्र जन्मे। भागवतमें इनका वृत्तान्त लिखाहै।

(२) वसिष्ठ–ब्रह्माजीके प्राणसे वसिष्ठजीका जन्महुआ। कर्दम मुनिकी कन्या अरुन्धती इनकी भार्याहुई। मित्र और वरुणके औरससे तिनका जन्महुआ। इसकारणसे इनको मैत्रावरुणि कहते हैं। यथाः–

इति पृष्टो नरेन्द्रेण कथ्यतामिति भूपते। वसिष्ठं नोदयामासुः समस्तं ते तपोधनाः ॥
मुनिभिः प्रेरितः सोऽपि यथावद्व्रतमानसः। योगमास्थाय सुचिरं मैत्रावरुणिरात्मवान् ॥
(अग्निपुराण–मृतधेनुविधि अध्याय)

इन श्लोकोंमें मैत्रावरुणि शब्द युक्तहुआहै, अग्निपुराणके वराह प्रादुर्भाव अध्यायमें कहाहैः
मित्रावरुणयोश्चैव कुण्डिनो ये परिश्रुताः। एकार्षेयास्तथैवान्ये वसिष्ठानामविश्रुताः ॥
(अग्निपुराण)

कूर्मपुराणमें सप्तर्षियोंको वसिष्ठजीका पुत्र कहाहै। यथाः–
वसिष्ठश्च तथोर्जायां सप्तपुत्रानजीजनत्। कन्याञ्च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम् ॥
रजोगात्रोर्द्ध्वबाहुश्च मनवश्चानवस्तथा। सुतपाः शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजसः ॥
सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वयज्ञेषु भाविनः। अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः सुताः ॥
(कूर्मपुराण। १२ अध्याय)

कूर्मपुराणके इस श्लोकसे वह प्रमाणित होताहै कि सप्तर्षिगण वसिष्ठजीके पुत्रथे। यही वसिष्ठजी सूर्यवंशके कुलगुरु हुए।

(३) गालव–तपस्वी, एक धर्मात्मा मुनिथे। इनका अधिक वृत्तान्त नहीं पायागया ॥

(४) भृगु–मुनिविशेष। यहमुनि ब्रह्माजीकी त्वक्से उत्पन्न हुएथे। इनके साथ कर्दम मुनिकी कन्या ख्यातिका विवाह हुआथा। भृगुकी कन्याका नाम श्रीः है। ऊपर भागवतका मत कहा अब अग्निपुराणका मत कहतेहैं–

कथितस्ते यदा सर्गः पृष्टः सूत त्वयानघ। भृगुसर्गात्प्रभृत्येष सर्गो नः कथ्यतां पुनः।
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना श्रीसूर्यमुदधेः पुनः। तथा धाता विधाता च तस्यां जातौ भृगोः सुतौ ॥

आयतिर्नियतिश्चैव मेरुकन्ये महाप्रभो । धातुर्विधातुस्ते भार्ये ययोर्जातौ सुतावुभौ ।
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः । ततो वेदशिरा जज्ञे प्राणस्य द्युतिमान्सुतः ॥

भृगुकी कन्या लक्ष्मी, दूसरीनार (समुद्र मथनेके समय समुद्रसे) उत्पन्न हुई थी भृगुके पुत्रोंका नाम धाता और विधाताथा । मेरुकी कन्या आयति और नियतिके साथ धाता और विधाताका विवाह हुआ । तिनके प्राण और मृकण्डुनामक दो पुत्र जन्मे । मृकण्डुके मार्कण्डेय नामक पुत्र हुआ । मार्कण्डेय मुनिके पुत्रका नाम वेदशिरा हुआ । प्राणके यहां द्युतिमान् नामक एक पुत्र जन्मा । यही भृगुजीकी संक्षिप्त वंशावली है ।

(५) पराशर–शक्तिके पुत्र थे । इनके पुत्र वेदव्यासजी कृष्णद्वैपायन नामसे प्रसिद्ध हुए । औरभीः–

सुतं तज्जनयच्छक्तेरदृश्यन्ती पराशरम् । काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ।

(अग्निपुराण)

पराशरजी एक जालजीवी जातिवालेकी कन्याके रूपपर मोहित हुए थे । तिसकेही गर्भसे वेदव्यासजीका जन्म हुआ ।

(६) नारदजी–देवर्षिविशेष । यह ब्रह्माजीके शापसे ऊपर इन नामक गन्धर्व होकर जन्मे । फिर ब्राह्मणके औरससे शूद्राके गर्भमें जन्मेथे ।

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो गोपराजकः । कलावती तस्य पत्नी वन्ध्या चापि पतिव्रता ॥
स्वामिदोषेण सा वन्ध्या काले च भर्त्तुराज्ञया । उपस्थितं वने घोरे नारदं काश्यपं मुनिम् ॥
क्रोशमानञ्च श्रीकृष्णं ज्वलन्तं ब्रह्मवर्चसा । तस्थौ सुवेशं कृत्वा सा ध्यानान्तञ्च मुनेः पुरः ॥
उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहरिं हृदि । गोपिकाहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिलस्य च कामिनी ॥
पुत्रार्थिनी चागताहं त्वन्मूलं भर्त्तुराज्ञया । वीर्याधानं कुरु मयि स्त्री नोपेक्ष्या ह्युपस्थिता ॥
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा । वृषलीवचनं श्रुत्वा चुकोप मुनिपुङ्गवः ॥
वृषलीतत्पुरस्तस्थौ शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा यास्यति मेनका ॥
तस्या ऊरुस्थलं दृष्ट्वा मुनेर्वीर्यं पपात ह । ऋतुस्नाता च वृषली कृत्वा तद्भक्षणं मुदा ॥
सा विप्रगेहे साध्वी च सुषाव तनयं वरम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, ब्रह्मखण्ड)

कान्यकुब्ज (कनोज) में द्रुमिल नामक एक गोपराज था तिसकी भार्या कलावती अत्यन्त पतिव्रताथी । परन्तु स्वामीके दोषसे वह बांझ हुईथी । निकटके घोर वनमें काश्यप नारद तप करतेथे, पतिकी आज्ञासे कलावती वहां गई । मुनिजीका ध्यानभंग होनेके पीछे श्रेष्ठ वेश धारण करे कलावती तिनसे बोली हे मुने ! मुझमें वीर्य आधान करो । नारदजी अत्यन्त क्रोधित हुए । इसी समयमें मेनका नामक देवकामिनी उस मार्गसे जातीथी,। काश्यप नारदजी तिसके ऊरुकी सुन्दरताई देखकर मोहित हुए । तिनका वीर्य गिरपडा । कलावतीने ऋतुस्नान कियाथा । इसने उस वीर्यको अनन्दसे भक्षण करलिया । इसके उपरान्त साध्वी कलावतीने किसी ब्राह्मणके गृहमें ब्रह्मतेजसे दीप्तिवान एक बालक जना । वह बालक उत्तरकालमें नारद नामसे प्रसिद्ध हुआथा । यथाः–

अनावृष्ट्येवशेषे च काले बालो बभूवह । नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः ॥

ददाति नारं ज्ञानञ्च बालकेभ्यश्च बालकः । जातिस्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः ॥
वीर्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने । मुनीन्द्रस्य वरेणैव तेनायं नारदाभिधः ॥
कल्पान्तरे ब्रह्मकण्डाद्बभवुर्बहवो नराः । नवान्ददौ तत्कण्ठञ्च तेन तन्नारदः स्मृतः ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड)

अनावृष्टिके अंतमें नारदजीका जन्म हुआ । उनके जन्म लेतेहीपर पृथ्वीपर जल बरसा । इसी कारण "नार अर्थात् जलदान किया है" इस अर्थसे तिनका नाम नारद हुआ । इत्यादि अनेक अर्थसे नारद नाम हुआथा फिर ब्रह्माजीने उनका नाम नारद रक्खा । वह बालक नारदजी ब्राह्मणके गृहमें वास करने लगे । इसी समयमें चार ब्राह्मण उस ब्राह्मणके घरपर आये । तिनमेंसे एक ब्राह्मणने यह जानकर कि नारदजी ब्राह्मणके पुत्रहैं, इनको विष्णुमंत्र दानकिया । बालक नारदजीने विष्णुमंत्रको पाय गंगातीरपर जाय दिव्य हजार वर्षतक तप किया । उन्होंने एक समय ध्यानमें मुरलीधारी, चन्दन लगाए दो भुजावाली बालक मूर्त्तिको देखा । तिनका समस्त शोक जाता रहा । फिर उस बालकको पीपलकी जड़में खड़ाहुआ न देख पाकर नारदजी रोने लगे । तब देववाणी हुई कि, एकवार गोविन्दजीकी मूर्ति देखली, अब उसका दर्शन नहीं मिलेगा । मृत्युके पीछे उस मूर्तिका दर्शन फिर मिलेगा । बालक नारद इस देववाणीको सुनकर परम प्रसन्न हुए फिर काल पायकर शरीर छोड़ा । वह शापसे छुटकारापाय ब्रह्मपदमें लीनहो अमृतानन्दको भोगने लगे । तत्पश्चात् कई कल्प बीतनेपर जब फिर संसारकी सृष्टि होने लगी तब मरीचि आदि मुनियोंके साथ नारदजीने ब्रह्माके कंठसे जन्म लिया । इसप्रकार ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है ।

श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मध्य नारदजीके पूर्व जन्मकी माताके सम्बन्धमें विरोधहै । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे गोपराजकी रानीके गर्भसे नारदजीका जन्म हुआ । परन्तु भागवतके मतानुसार एक ब्राह्मणकी दासीके गर्भसे नारदजीका जन्म हुआ श्रीमद्भागवतमें व्यासजी और नारदजीका साक्षात् होनेपर नारदजीने कहाथाः—

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्याश्च कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षिताम् ।

(श्रीमद्भागवत, १ स्कन्ध, ५ अध्याय, २३ श्लोक)

प्रथम वयसमेंही नारदजी धर्मानुरागीथे । माताके स्नेहसे अपनी अभिलाषाको पूरी नहीं करसके । एक समय उनकी माता दूध दोहन कररहीथी कि, इतनेमें एक कालसर्पने उसको डसलिया । इसीसे इनकी माता मरगई । तब नारदजी निष्कंण्टक होकर तप करने लगे । एकदिन नारायणजीका दर्शन हुआ । यह बातें ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमेंभी लिखी हैं । फिर नारदजीने ब्रह्मदेहमें प्रवेश कियाथा । सृष्टिके समय फिर मूर्ति धारण की दूसरे जन्ममें वीणालिये त्रिभुवनमें घूमते रहाकरतेथे । हरिके प्रसादसे तिनकी गति वेरोकही । यथाः—

अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन् पर्येम्यस्कन्दितव्रतः । अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥
देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् । मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥

(श्रीमद्भागवत, प्रथमस्कन्ध, ६ अध्याय ३२ । ३३ श्लो०)

इसप्रकार हरिगुणगान करते हुए नारदजी त्रिभुवनमें घूमाकरतेथे । नारदजी परम प्रेमिक और भक्तथे ।

दुर्वासा देवलः कण्वो वेदप्रमितिरङ्गिराः ।
एते चान्ये च बहवो मुनयः शंसितव्रताः ॥ ५ ॥

दुर्वासा,(१)देवल,(२)कण्व, (३) वेदप्रमिति और अंगिरा (४) यह समस्त मुनिगण व और २ बहुतसे महाव्रतवाले ऋषिलोग ॥ ५ ॥

कृत्वाग्रे मरुदेवापी चन्द्रसूर्य्यकुलोद्भवौ ।
राजानौ तौ महावीर्य्यौ तपस्याभिरतौ चिरम् ॥ ६ ॥

चन्द्रसूर्यकुलमें उत्पन्नहुए महावीर्यशाली तपस्यामें निरत महाराज मरु और देवापिको सन्मुख देखकर ॥ ६ ॥

ऊचुः प्रहृष्टमनसः कल्किं कल्कविनाशनम् ।
महोदधेस्तीरगतं विष्णुं सुरगणा यथा ॥ ७ ॥

पापके नाशकरनेवाले कल्किजी कहनेलगेः—जैसे हर्षित अन्तःकरणवाले देवताओंने महासागरके तीरपर स्थित हुए विष्णुजीसे कहाथा, वैसेही ऊपर कहेहुए ऋषिलोगोंने काल्किजीके निकट (अपना २ अभिप्राय प्रगट करनेकी इच्छा की) ॥ ७ ॥

मुनय ऊचुः—जयाशेषजगन्नाथ ! विदिताखिलमानस ! ।
सृष्टिस्थितिलयाध्यक्ष ! परमात्मन्प्रसीद नः ॥ ८ ॥

---

(१) भागवत में दुर्वासाजीको अत्रिमुनिका पुत्र बताया है । महादेवजीके अंशसे इनका जन्म हुआ । विष्णु पुराणमें भी इनको महादेवजीका अंश कहा है । "दुर्वासाः शङ्करस्यांशश्चचार पृथिवीमिमाम् "—इस आधे श्लोकसे यह प्रमाणित होता है । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें भी कहा है, कि, और्वमुनिकी कन्या कन्दली तिनकी भार्या हुई ।

(२) देवलमुनि धर्मशास्त्रके वक्ताथे । इन्होंने रम्भानामक अप्सराके शापसे अष्टावक्रके नामको धारणकर जन्म लियाथा । ऐसा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है ।

(३) कण्वमुनिजीने पुत्रवंशीय अप्रतिरथ नामक क्षत्रियके औरससे जन्मालियाथा । यथाः—

सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ।
तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥ (भागवतम्)

(४) महर्षिअंगिराजीका वर्णन इसप्रकार भागवतमें लिखाहै कि, यह ब्रह्माजीके मुखसे उत्पन्न हुए । कर्द्दममुनिकी कन्या श्रद्धा इनकी स्त्रीहुई । इनके उतथ्य और बृहस्पति नामक दो पुत्रहुए और सिनीवाली, कुहूः, राका, अनुमति यह चारकन्याहुई ।

मुनिलोग कहने लगे। हे जगन्नाथ ! तुमने सबको जीत लियाहै तुम त्रिलोकीके अन्तःकरणकी वृत्तिको जानतेहो। हे परमात्मन् ! तुम अनन्त संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयकरतेहो, इस समय प्रसन्न होवो ॥ ८ ॥

कालकर्म्मगुणावास प्रसारितनिजक्रिय ! ।
ब्रह्मादिनुतपादाब्ज ! पद्मानाथ प्रसीद नः ॥ ९ ॥

हे पद्मानाथ ! तुम कालस्वरूपहो, जगतके गुणकर्म तुममेंही विद्यमानहैं ब्रह्मादि देवता लोगभी तुम्हारे चरणकमलकी स्तुति किया करतेहैं। तुम इस समय हमारे प्रति प्रसन्न होवो ॥ ९ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह जगत्पतिः ।
कावेतौ भवतामग्रे महासत्त्वौ तपस्विनौ ॥ १० ॥

इस प्रकार मुनियोंके वचन सुनकर जगत्पति कल्किजी कहने लगे। हे मुनिगण ! तुम्हारे सन्मुख यह जो महाबली पराक्रमी और तपमें रत दो जने दीखतेहैं यह कौनहैं ॥ १० ॥

कथमत्रागतौ स्तुत्वा गङ्गां मुदितमानसौ ।
का वा स्तुतिस्तु जाह्नव्या युवयोर्नामनीचके ॥ ११ ॥

यह किस निमित्तसे गंगाजीका स्तोत्रकर संतुष्ट चित्तसे यहांपर आए हैं ? (कल्किजी उन दोनों आए हुओंसे कहने लगे) तुम किस कारणसे गंगाजीका जप करतेहो, तुम कौनहो ? और तुम्हारा नाम क्याहै ? (यह समस्त वृत्तान्त हमसे प्रगट करके कहो) ॥ ११ ॥

तयोर्मरुः प्रमुदितः कृताञ्जलिपुटः कृती ।
आदावुवाच विनयी निजवंशानुकीर्त्तनम् ॥ १२ ॥

इसके उपरान्त उन दोनों जनोंमेंसे कार्य करनेमें चतुर मरु संतुष्ट होकर हाथ जोड़कर खड़ा होगया और विनययुक्तवचनसे अपने वंशका कीर्त्तन करने लगा ॥ १२ ॥

मरुरुवाच—सर्वं वेत्सि परात्मापि अन्तर्यामिन्हृदि स्थितः ।
तवाज्ञया सर्वमेतत्कथयामि शृणु प्रभो ॥ १३ ॥

मरुने कहा, आप हृदयके परमात्मा और अन्तर्यामीहैं । हे प्रभो ! आप सबही कुछ जानतेहैं।आपकी आज्ञासे समस्त कहताहूं,श्रवण कीजिये ॥ १३॥

तव नाभेरभूद्ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ।
ततो मनुस्तत्सुतोऽभूदिक्ष्वाकुः सत्यविक्रमः ॥ १४ ॥

आपकी नाभिसे ब्रह्माने जन्म लिया । ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिसे मनु, मनुसे सत्य विक्रमकारी इक्ष्वाकु उत्पन्न हुएथे ॥ १४ ॥

युवनाश्व इति ख्यातो मान्धाता तत्सुतोऽभवत् ।
पुरुकुत्सस्तत्सुतोऽभूदनरण्यो महामतिः ॥ १५ ॥

इक्ष्वाकुका पुत्र युवनाश्व, युवनाश्वका पुत्र मान्धाता, मान्धाताका पुत्र पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे महा बुद्धिमान् अनरण्य जन्मे ॥ १५ ॥

त्रसदस्युः पिता तस्माद्धर्य्यश्वरुयरुणस्ततः ।
त्रिशङ्कुस्तत्सुतो धीमान्हरिश्चन्द्रः प्रतापवान् ॥ १६ ॥

अनरण्यका पुत्र त्रसदस्यु,तिससे हर्यश्व हर्यश्वका पुत्र अरुण हुआ । अरुणका पुत्र बुद्धिमान् त्रिशंकु; त्रिशंकुसे प्रतापवान् माहराज हरिश्चन्द्रने (१) जन्म लियाथा ॥ १६ ॥

हरितस्तत्सुतस्तस्माद्भरुकस्तत्सुतो वृकः ।
तत्सुतः सगरस्तस्मादसमञ्जास्ततोंऽशुमान् ॥ १७ ॥

महाराज हरिश्चन्द्रका पुत्र हरित, (कोई १ रोहित कहतेहैं) हरितका पुत्र भरुक, भरुकका पुत्र वृक, वृकका पुत्र असमञ्जा, असमञ्जासे अंशुमान उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥

---

(१) महाराज हरिश्चन्द्र अत्यन्त सत्यवादी राजाथे । इन्होंने सत्यके लिये राजपाट, धनदौलत स्त्री पुत्रको त्यागा बरन् अपने शरीरतकको बेंच दियाथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटकमें इन्हींके चरित्रका चित्र उतारा है । उक्त पुस्तक भारतजीवन प्रेस बनारसमें मिलती है हरिश्चन्द्रके सत्य विषयमें उक्त बाबूसाहबने क्याही उत्तम लिखा है यथाः—

" चंद्रटरै सूरजटरै, टरै जगत व्यौहार । पै दृढ़ श्रीहरिचंद्रको, मिटै न सत्य विचार ॥
वेचि देह दारा सुवन, होय दासहू भन्द । राखि है निजवच सत्यकरि, अभिमानी हरिचंद ॥"

ततो दिलीपस्तत्पुत्रो भगीरथ इति स्मृतः।
येनानीता जाह्नवीयं ख्याता भागीरथी भुवि।
स्तुता नुता पूजितेयं तव पादसमुद्भवा॥ १८॥

अंशुमानका पुत्र दिलीप, दिलीपके भगीरथ नामक विख्यात पुत्रथे, गंगाको वही लायेथे, इस कारणसे गंगा भागीरथी नामसे विख्यातहैं। आपके चरणसे उत्पन्न होनेके कारण संसारमें लोग इनका स्तोत्र करते, प्रणाम करते और पूजा करतेहैं॥ १८॥

भगीरथात्सुतस्तस्मान्नाभस्तस्मादभूद्बली।
सिन्धुद्वीपसुतस्तस्मादायुतायुस्ततोऽभवत्॥ १९॥

भागीरथका पुत्र नाभ, नाभका पुत्र बलवान् सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपसे अयुतायुने जन्म ग्रहण किया॥ १९॥

ऋतुपर्णस्तत्सुतोऽभूत्सुदासस्तत्सुतोऽभवत्।
सौदासस्तत्सुतो धीमानश्मकस्तत्सुतो मतः॥ २०॥

अयुतायुका पुत्र ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णका पुत्र सुदास, सुदासका पुत्र सौदास और सौदासका पुत्र बुद्धिमान् अश्मक हुआ॥ २०॥

मूलकात्स दशरथस्तस्मादेडविडस्ततः।
राजा विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्गो दीर्घबाहुकः॥ २१॥

अश्मकका पुत्र मूलक मूलकका पुत्र दशरथ दशरथसे एडविडने जन्मलिया। एडविडका पुत्र विश्वसह, विश्वसहका पुत्र खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गका पुत्र दीर्घबाहुथा॥ २१॥

ततो रघुरजस्तस्मात्सुतो दशरथः कृती।
तस्माद्रामो हरिः साक्षादाविर्भूतो जगत्पतिः॥ २२॥

दीर्घबाहुका पुत्र रघु, रघुसे अज, अजके पुत्र दशरथ और दशरथ जीसे साक्षात् जगन्नाथ हरिने श्रीरामरूपसे अवतारलिया॥ २२॥

रामावतारमाकर्ण्य कल्किः परमहर्षितः।
मरुं प्राह विस्तरेण श्रीरामचरितं वद॥ २३॥

रामावतारकी कथा सुनकर कल्किजी परम हर्षको प्राप्तहुए और विस्तार सहित श्रीरामचरित्रके वर्णन करनेको मरुसे कहा ॥ २३ ॥

सीतापतेः कर्म्म वक्तुं कः समर्थोऽस्ति भूतले ।
शेषः सहस्रवदनैरपि लालायितो भवेत् ॥ २४ ॥

मरुने कहाः-इसपृथ्वीमें ऐसा कौनहै जो सीतानाथ रामचन्द्रजीके कार्योंका वर्णन करसके बरन् हजार मुखवाले अनन्तजीभी वर्णन करनेको समर्थ नहींहैं; तथापि आपकी आज्ञासे अपनी बुद्धिके अनुसार पवित्र और पाप तापका दूर-करनेवाला श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र वर्णन करताहूं ॥ २४ ॥

तथापि शेमुषी मेऽस्ति वर्णयामि तवाज्ञया ।
रामस्य चरितं पुण्यं पापतापप्रमोचनम् ॥ २५ ॥

पूर्वकालमें ब्रह्मादि देवताओंकी प्रार्थनासे सूर्यवंशके विषय राम,लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न इन चार अंशोंकरके दशरथजीसे राक्षसोंका अन्त करनेवाले जानकीके पति श्रीरामचन्द्रजीने अवतारलिआ, जिन्होंने शैशवावस्थामें विश्वामित्रजीके यज्ञके मध्यमें विघ्नकरनेवाले राक्षसोंको बलसे नष्ट करके श्रेष्ठताको प्रकाशितकिया ॥ २५ ॥

अजादिविबुधार्थितोऽजनि चतुर्भिरंशैः कुले
रवेरजसुतादजो जगति यातुधानक्षयः ।
शिशुः कुशिकजाध्वरक्षयकरक्षयो यो बला-
द्बली ललितकन्धरो जयति जानकीवल्लभः ॥ २६ ॥

जिनकी महिमासे फिर कामनापूर्ण जगत्में फिर पुनर्जन्म नहीं होता, जो अत्यन्त बलवान् और प्रभासम्पन्नहैं ऐसे समस्त शस्त्रविद्याके जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजी जनमोहरूप धारण करके लक्ष्मणजीके सहित मुनियोंके साथ राजा जनकजीकी सभामें गमन करतेहुए ॥ २६ ॥

मुनेरनुसहानुजो निखिलशस्त्रविद्यातिगो
ययावतिवनप्रभो जनकराजराजत्सभाम् ।

विधाय जनमोहनद्युतिमतीव कामद्रुहः
प्रचण्डकरचण्डिमा भवनभञ्जने जन्मनः ॥ २७ ॥
तमःप्रतिमतेजसं दशरथात्मजं सानुजं
मुनेरनु यथा विधेः शशिवदादिदेवं परम् ।
निरीक्ष्य जनको मुदा क्षितिसुतापतिं संमतं
निजोचितपणक्षमं मनसि भर्त्सयन्नाययौ ॥ २८ ॥

ब्रह्माजीके पीछे जिसप्रकार चंद्रमाजी बैठे हों तैसेही वह अनुपम तेजस्वी श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित विश्वामित्र मुनिके पीछे विधिके अनुसार बैठे, आदिदेव परमवस्तु साक्षात् तिनको देखकर जनकजीने विचारा कि, यह जानकी के योग्य वरहैं और जिनके पणको अनुचित समझ अपनेको मनहीं मनमें धिक्कारते हुए श्रीरामचंद्रजीके निकट गये ॥२७॥२८॥

स भूपपरिपूजितो जनकजेक्षितैरर्चितः
करालकठिनं धनुः करसरोरुहे संहितम् ।
विभज्य बलवद्दृढं जय रघूद्वहेत्युच्चकै-
र्ध्वनिं त्रिजगतीगतं परिविधाय रामो बभौ ॥ २९ ॥

जनकजीके आदर औ जानकीजीके कटाक्षसे सत्कार पाय श्रीरामचंद्रजीने वह अत्यन्त कठिन धनुष हाथमें लेकर दो टुकडे करडाला । तब " श्रीरामचंद्रजीकी जय " इस ऊंची ध्वनिने त्रिलोकीको व्याप्त किया तिस्से श्रीरामचंद्रजी अत्यन्त शोभायमान होने लगे ॥ २९ ॥

ततो जनकभूपतिर्दशरथात्मजेभ्यो ददौ
चतस्र उपतीर्मुदा वरचतुर्भ्य उद्वाहने ।
स्वलंकृतनिजात्मजाः पथि ततो बलं भार्गव-
श्चकार उररीनिजं रघुपतौ महोग्रं त्यजन् ॥ ३० ॥

इसके उपरान्त राजा जनकने राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न दशरथजीके इन चार पुत्रोंको सीता, उर्मिला माण्डवी और श्रुतकीर्ति अपनी यह

चार अलंकृता कन्या आनन्दसे दान करदीं ॥ फिर यह सब विवाह करके अयोध्याको आ रहे हैं कि, इसी समय मार्गमें भृगुनन्दन परशुरामजीने रामचंद्रजीके ऊपर अपना अमित विक्रम प्रगट किया ॥ ३० ॥

ततः स्वपुरमागतो दशरथस्तु सीतापतिं
नृपं सचिवसंयुतो निजविचित्रसिंहासने।
विधातुममलप्रभं परिजनैः क्रियाकारिभिः
समुद्यतमतिं तदा द्रुतमवारयत्केकयी ॥ ३१ ॥

फिर राजादशरथजीने अयोध्यामें आय मंत्रियोंके साथ सलाहकर सीता पति श्रीरामचंद्रजीको अपने विचित्र सिंहासनके देनेका संकल्प किया। अभिषेककी समस्त तैयारियें होने लगीं। परिजनलोग अभिषेककी सामग्री इकट्ठी करनेमें लगे। इसी समयमें कैकईने आय रामाभिषेकमें उद्योग करते हुए दशरथजीको शीघ्र रोका ॥ ३१ ॥

ततो गुरुनिदेशतो जनकराजकन्यायुतः
प्रयाणमकरोत्सुधीर्यदनुगः सुमित्रासुतः।
वनं निजगणं त्यजन्गुहगृहे वसन्नादरात्
विसृज्य नृपलाञ्छनं रघुपतिर्जटाचीरभृत् ॥ ३२ ॥

फिर पिताकी आज्ञासे सीता और लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचंद्रजी वनको गये फिर साथ आतेहुए पुरवासियोंको छोड (१) गहके गृहमें जाय राज चिह्नोंको त्याग, जटा, वल्कल धारण किये ॥ ३२ ॥

प्रियानुजयुतस्ततो मुनिमतो वने पूजितः
स पञ्चवटिकाश्रमे भरतमातुरं संगतम्।
निवार्य्य मरणं पितुः समवधार्य्य दुःखातुर-
स्तपोवनगतोऽवसद्रघुपतिस्ततस्ताः समाः ॥ ३३ ॥

---

(१) गुहगृह। गुह अनार्य निषाद जातिका स्वामीथा इसके गुणोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने इसके साथ मित्रता की और आदरसहित हृदयसे लगायां। गंगाके उत्तर किनारेपर शृंगवेरपुर (वर्त्तमान संगरूर) Sungroor नामक नगरमें इसकी राजधानी थी।

तहांपर मुनिवेषसे पूजित हो (१) पञ्चवटीके आश्रममें वास करते हुए। इस स्थानमें (२) चित्रकूटमें भरतजी कातरहो तिनके निकट आये। उन्होंने भरतको समझाया और पिताजीके मरणकी वार्त्ता सुन दुःखित हुए और शेष-वर्ष तपोवनमें बिताते हुए ॥ ३३ ॥

---

(१) पंचवटीवन। दण्डकारण्यके अन्तर्गत गोदावरी नदीके किनारेपर यह वन है। इसका वर्त्तमान नाम नासिक तीर्थ है। " नादगांवके बाद कइएक स्टेशन पार होनेके पीछे नासिकरोड है। स्टेशनसे नाशिक नगर उत्तर-पश्चिममें ६ माइल है। नजदीकही चार जनोंके बैठने लायक तांगा नामक गाडी पाई जाती है। यह गाडी घन्टेमें ७ मील चलती है। दिन भरका भाडा २॥) रु० है। नासिक नगरके देखनेसे काशीकी याद आती है। विस्तारित, थाई और तेजधारवाली गोदावरीके किनारे प्रायः आध मैलतक घाट और मंदिरोंकी शोभा है। किनारेपर कोई स्नान करता है, कोई जप करता है, कोई चीज वस्तुको साफ करता और कोई " त्र्यम्बकस्य जटोद्भूते गौतमस्याघनाशिनि। " कहकर गोदावरीकी स्तुति कर रहाहै। कोई उपर मन्दिरमें दौड रहा है, कोई दुकानदारोंसे सौदा मोल ले रहा है यौवन मदमातीकामिनियोंसे नगर कंपायमानसाहै। विशप हिवर आदि भ्रमण कारियोंने कहा है, नारियलके वर्णकी भारत-कामिनियें, विलायतकी श्वेतरंगवाली स्त्रियोंसे अच्छी हैं। यहांपर ३५००० आदमियोंकी वस्ती है; तिनमें १०००० ब्राह्मण हैं। गौतमीके (गोदावरीके) उत्तर तटपर स्थित इस नगरमें प्रवेश करके हम पंचवटीके रघुनाथजीके मन्दिरमें पहुँचे। पंचवटमें पंचवटी विद्यमान है, इसके सिवाय और कोई वन नहीं। नासिक बड़ा भारी तीर्थ है। यहांपर लक्ष्मणजीने शूर्पणखा की नाक काटी, इसी कारणसे इसका नाम नासिक हुआ है। रामचंद्रजीने सीताजीके लिये यहांपर बड़ा विलाप कियाथा। इस स्थानका वर्णन करके वाल्मीकिजीने जगत्को मोहित किया है। यहांसे बहुत दूर झिड़िकाल्लुमें मारीचका वध हुआथा। सत्यहो वा मिथ्याहो, इस स्थानमें दौडते हुए हरिणके पदचिह्न पत्थरपर साफ दिखाई देते हैं। " (भारत भ्रमण)

(२) चित्रकूट-पर्वत विशेष। पयस्विनी (पिसानी-Pisaui) नदीके किनारे स्थितहै बुन्देलखण्डके बान्दा नगरसे चित्रकूट प्रायः २५ क्रोश दक्षिण पूर्वकोहै। इस पवित्र स्थानमें अनेक मन्दिरहैं। रामलक्ष्मणजीका मन्दिर प्रधान है। यहांपर महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम है। यह स्थान वैष्णवोंका परम पूज्यहै। विशेष करके रामोपासक लोग इसका अत्यन्त आदर करते हैं। यहांपर ' सीताफल ' नामक एक प्रकारका फल पाया जाताहै। (Calcutta Review VOL. XXIII) यहांपर मन्दाकिनी नामक एक नदी है। ग्यारेटसाहब कहतेहैं कि इस मन्दाकिनी नदीका वर्त्तमान नाम पिसानी (Pissani) है। (Garrett's ClassicalDictionay of India)

" इसके पीछे मारकुण्डा स्टेशनहै। चारों ओर पहाड और जंगलही दिखाई देतेहैं। इस स्टेशनसे ६ कोश दूर हमीरपुरसे चित्रकूटको जाना पडता है। चित्रकूट पर्वतकी वनशोभा अत्यन्त सुन्दरहै।

दशाननसहोदरां विषमबाणवेधातुरां
समीक्ष्य वररूपिणीं प्रहसतीं सतीं सुन्दरीम् ।
निजाश्रयमभीप्सतीं जनकजापतिर्लक्ष्मणा-
त्करालकरवालतः समकरोद्विरूपां ततः ॥ ३४ ॥

फिर कामबाणसे पीडित, श्रेष्ठ वेषवाली, सुन्दरी, हास्ययुक्त, अपने प्रति अभिलाषाकिये रावणकी बहिन शूर्पणखाको देखकर रामचन्द्रजीने लक्ष्मण-जीको इशारा किया, लक्ष्मणजीने भी तीक्ष्णकरवाल (तलवार) से राक्षसीको कुरूप कियाथा अर्थात इसके नाक कान काटडाले ॥ ३४ ॥

समाप्य पथि दानवं खरशरैः शनैर्नाशयन्
चतुर्दशसहस्रकं समहनत्खरं सानुगम् ।
दशाननवशानुगं कनकचारुचञ्चन्मृगं
प्रियाप्रियकरो वने समवधीद्बलाद्राक्षसम् ॥ ३५ ॥

फिर मार्गमें दानवको नष्टकर चौदह हजारसेनाके स्वामी रावणके वशमें हुए (मातहद) खर दूषणको (उसके) अनुचरोंके साथ संहार किया फिर सीताजीकी प्रिय कामनासे चंचल सुवर्णमय मृगरूपी राक्षसका वध किया ॥ ३५ ॥

ततो दशमुखस्त्वरंस्तमभिवीक्ष्य रामं रुषा
व्रजन्तमनुलक्ष्मणं जनकजा जहाराश्रमे ।
ततो रघुपतिः प्रियां दलकुटीरसंस्थापितां
न वीक्ष्य तु विमूर्च्छितो बहु विलप्य सीतेति ताम् ॥ ३६ ॥

एक ओर मन्दाकिनी बहतीहै, तिसके किनारे तीर्थमन्दिर पर्वतके ऊपर श्रीराम, सीता और लक्ष्मणजीकी पाषाणमयी मूर्त्ति हैं। यहांपर रामघाट, देवाङ्गना, हनुमानधरा, फटिकशिला, गुप्त गोदावरी, पर्वतपर अनसूयाकी प्रतिमा, भरतकुण्ड, कामाख्यानाथ पर्वत, पयोष्णी नदी, दासहनुमानस्थान, वीरहनुमानस्थान, बालादिवाकर और गफ हनुमानस्थान आदिके दर्शन होते हैं।

कलकत्तारिवियूसे पहले दिखा आए हैं कि चित्रकूटकी पयोष्णी नदीकाही वर्त्तमान नाम पिसानी है। और भारतभ्रमण पुस्तकमें भी मन्दाकिनी और पयोष्णी दो नदियोंका नाम लिखा है इससे ज्ञात होता है कि ग्ब्रेट साहबने मन्दाकिनीको पयोष्णी (Piaui) नदी कहकर धोखाखाया है।

इसके उपरान्त मार्गमें रामलक्ष्मणको गमन करता हुआ देख, रावणने शीघ्रही आश्रमसे सीताजीको हरण किया । पर्णकुटीमें सीताजीको न देखपाय "हा सीते" कह बहुत विलापकर श्रीरामचन्द्रजी मूर्छित हुए ॥ ३६ ॥

वने निजगणाश्रमे नगतले जले पल्वले
विचित्य पतितं खगं पथि ददर्श सौमित्रिणा ।
जटायुवचनात्ततो दशमुखाहृतां जानकीं
विविच्य कृतवान्मृते पितरि वह्निकृत्यं प्रभुः ॥ ३७ ॥

फिर ऋषियोंके आश्रम, पर्वत, गुहा, जल और गढ़ोंमें सब कहीं सीताजीको खोजकर मार्गमें मरनेके निकट गिरे हुए जटायुको देखा । और तिस्से रावण करके सीताका हराजाना सुना । जब उस पितृतुल्य जटायुकी मृत्यु होगई तब उसका मृतककर्म किया ॥ ३७ ॥

प्रियाविरहकातरोऽनुजपुरःसरो राघवो
धनुर्धरधुरन्धरो हरिबलं नवालापिनम् ।
ददर्श ऋषभाचलाद्रविजवालिराजानुज-
प्रियं पवननन्दनं परिणतं हितं प्रेषितम् ॥ ३८ ॥

सीताजीके वियोगसे धनुषधारियोंकी धुर धारण करनेवाले लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचंद्रजीने नई जानीहुई वानरसेनाके साथ साक्षात् किया और सूर्यपुत्र वालिके लघुभ्राता सुग्रीव (जोकि ऋष्यमूकपर (१) रहतेथे) के मंत्री हनुमानजीको देखा ॥ ३८ ॥

---

(१) ऋषभ पर्वत—वाल्मीकीयरामायणमें इसका नाम ऋष्यमूक पर्वत है । "बिलारी" (मदरासप्रान्त) से ३० कोशदूर हाम्पि और आनिगान्धिमें किष्किन्ध्यादि पर्वत हैं । किष्किन्ध्यासे ४ कोश दूर ऋष्यमूक है । ऋष्यमूककी तराईमें पम्पासरोवर है । पम्पाको नदी व सरोवर दोनों नामसे पुकारा जा सकता है । सरोवरका जल छोटी नदीके मेलसे बगलमें वहती हुई तुङ्गभद्रा नदीमें गिरता है । मतङ्गसरोवर पंपाका अंश है पम्पाके पश्चिममें शबरीका आश्रम है । निकटही सरोवरके सामनेकी गुफामें सुग्रीवादि चार वानर रहा करतेथे । किष्किन्ध्यासे दूसरी ओर माल्यवान् पर्वत है । वर्षाकालके समय श्रीरामचंद्रजी यहीं रहेथे । ईशानदिशाकी ऊँची गुफामें तिनका वासस्थानथा । नीचे नदी वहती है । अवतकभी यह पर्वत स्वभावकी शोभासे सुन्दर है । (भारतभ्रमण) पूर्वघाट और नीलगिरि नामक—

ततस्तदुदितं मतं पवनपुत्रसुग्रीवयो-
स्तृणाधिपतिभेदनं निजनृपासनस्थापितम्।
विविच्य व्यवसायकैर्निजसखाप्रियं वालिनं
निहत्य हरिभूपतिं निजसखं स रामोऽकरोत् ॥ ३९ ॥

फिर रामचंद्रजीने सुग्रीव और हनुमानजीके प्रार्थना करनेपर सप्त तालको भेद डाला। और बाणसे वालिको मार सुग्रीवके साथ मित्रता कर तिसको वानरोंके राज्यपर स्थापित किया ॥ ३९ ॥

अथोत्तरमिमां हरिर्जनकजां समन्वेषयन्
जटायुसहजोदितैर्जलनिधिं तरन्वायुजः।
दशाननपुरं विशञ्जनकजां समानन्दय-
न्नशोकवनिकाश्रमे रघुपतिं पुनः प्राययौ ॥ ४० ॥

इसके उपरान्त पवनकुमार हनुमान्जी, जानकीजीको खोजते हुए संपातियुके कहनेके अनुसार समुद्रको उतरगये और लंकापुरीमें प्रवेश करके अशोकवनमें सीताजीको संभाषण करके आनन्द देते हुये और फिर रघुनाथजीके निकट आये ॥ ४० ॥

ततो हनुमता बलादमितरक्षसां नाशनं
ज्वलज्ज्वलनसंकुलज्वलितदग्धलङ्कापुरम्।
विविच्य रघुनायको जलनिधिं रुषा शोषयन्
बबन्ध हरियूथपैः परिवृतो नगैरीश्वरः ॥

पर्वतश्रेणीके मध्यका पर्वत है। इस स्थानसे कावेरी नदी उत्पन्न हुई है। (भागवत) बहुतसे ऋषभपर्वत हैं; यथा– १ कैलासके निकटका एक पर्वत। यह हिमालयका स्वर्णमय शृङ्ग है। इसकी बगलमेंही रजतमय कैलास है। इनदोनों पर्वतोंके मध्यमें मृतसञ्जीवनी, विशल्यकारिणी, सन्धिनी और सुवर्णकरणी नामक औषधि हैं। (रामरसायन लंकाकाण्ड १३ अ०)। २ दक्षिण सागरका एक पर्वत है। यहांपर रोहीतनामक गन्धर्व रहते हैं। शैलूष (बिभीषणका श्वशुर) ग्रामणी, शिक्ष, शुक और बभ्रू यह पांच गन्धर्व रोहितोंके स्वामी हैं। (वा० रामा० कि० काण्ड ४१ सर्ग)। ३ पूर्व सागरका एक धवलवर्ण पर्वत है। इस पर्वतपर सुदर्शन नामक एक सरोवर है। (वा० किष्कि० ४२ सर्ग)।

बभञ्ज पुरपत्तनं विविधसर्गदुर्गक्षमं
निशाचरपतेः क्रुधा रघुपतिः कृती सद्गतिः ॥ ४१ ॥

फिर रामचंद्रजीने, हनुमान करके बलपूर्वक राक्षसोंका नाश और लंका का जलाना जान, क्रोधसे पर्वतद्वारा समुद्रको बाँध वानरयूथके साथ लंकामें गमन किया। और राक्षसोंके स्वामी रावणके पुर प्राचीर (शहर पनाह) क़िले आदि समस्त तोडडाले ॥ ४१ ॥

ततोऽनुजयुतो युधि प्रबलचण्डकोदण्डभृत्
शरैः खरतरैः क्रुधा गजरथाश्वहंसाकुले ।
करालकरवालतः प्रबलकालजिह्वाग्रतो
निहत्य वरराक्षसान्नरपतिर्बभौ सानुगः ॥ ४२ ॥

अनन्तर लक्ष्मणजीके सहित महिपाल श्रीरामचंद्रजी, अतिउग्र शरासन (धनुष) धारणकर हाथी, घोडे रथसे युक्त तीक्ष्णबाण और कराल खड्गसे राक्षसोंका संहार करके करालकालकी जीभकी नोकके समान शोभायमान होनेलगे ॥ ४२ ॥

ततोऽतिबलवानरैर्गिरिमहीरुहोद्यत्करैः
करालतरताडनैर्जनकजारुषा नाशितान् ।
निजघ्नुरमरार्दनानतिबलान्दशास्यानुगान्
नलाङ्गदहरीश्वराऽशुगसुतर्क्षराजादयः ॥ ४३ ॥

फिर नल, अंगद, वानरराज सुग्रीव, पवनकुमार हनुमान, जाम्बवान व और दो महाबली वानरोंने वृक्ष चलाय, पर्वत चलाय, भयंकर प्रहारों करके महाबली पराक्रमी देवताओंके वैरी रावणके सेवक राक्षसोंका संहार किया, जो राक्षस कि जानकीजीके क्रोधमें भरनेसे पहलेही नष्टसे होरहे थे ॥ ४३ ॥

ततोऽतिबललक्ष्मणस्त्रिदशनाथशत्रुं रणे
जघान घनघोषणानुगगणैरसृक्प्राशनैः ।

प्रहस्त विकटादिकानपि निशाचरान्सङ्गतान्
निकुम्भमकराक्षकान्निशितखड्गपातैः क्रुधा ॥ ४४ ॥

महाघोर शब्दकारी, रुधिर पीनेवाले, अनुचरोंसे घिरेहुए, इन्द्रजितको महाबलवान् लक्ष्मणजीने मारडाला, फिर इन्होंनेही क्रोध करके प्रहस्त, निकुम्भ, मकराक्ष और विकटादि आये हुए राक्षसोंको मारडाला ॥ ४४ ॥

ततो दशमुखो रणे गजरथाश्वपत्तीश्वरै-
रलङ्घ्यगणकोटिभिः परिवृतो युयोधायुधैः ।
कपीश्वरचमूपतेः पतिमनन्तदिव्यायुधं
रघूद्वहमनिन्दितं सपदि सङ्गतो दुर्जयः ॥ ४५ ॥

इसके उपरान्त अतीत रावण लंघन करनेके योग्य करोड २ गजारूढ, रथसवार, घुडसवार और पयदलोंकी सेनाके साथ संग्रामस्थलमें, बानरसेनाके स्वामी सुग्रीवके प्रभु असीम दिव्यास्त्रोंके धारण करनेवाले श्रीरामचंद्रजीके निकट आय अस्त्रोंसे युद्ध करना आरम्भ करताहुआ ॥ ४५ ॥

दशाननमरिं ततो विधिवरस्मयावर्द्धितं
महाबलपराक्रमं गिरिमिवाचलं संयुगे ।
जघान रघुनायको निशितसायकैरुद्धतं
निशाचरचमूपतिं प्रबलकुम्भकर्णं ततः ॥ ४६ ॥

तब रघुवीर श्रीरामचंद्रजीने, ब्रह्माके निकट वर पानेसे वृद्धिको प्राप्त महाबली पराक्रमी संग्रामभूमिमें पर्वतकी समान अचल ऊधमी शत्रु, राक्षससेनाके पति रावणको और महाबलवान् कुम्भकर्णको तीक्ष्ण बाणोंसे बींधडाला ॥ ४६ ॥

तयोः खरतरैः शरैर्गगनमच्छमाच्छादितं
बभौ घनघटासमं मुखरमत्तडिद्दाहिभिः ।
धनुर्गुणमहाशनिध्वनिभिरावृतं भूतलं
भयङ्करनिरन्तरं रघुपतेश्च रक्षःपतेः ॥ ४७ ॥

इसके उपरान्त राम और रावणके परस्पर तीक्ष्ण बाणोंके चलनेसे आकाश ढकगया और ऐसा जान पडने लगा मानो बादलोंकी घटासे आकाशमंडल ढकगयाहै। बाणोंके परस्पर टकरानेसे शब्दसहित आगकी चिनगारियें निकलने लगीं, तिनसे शब्दायमान बिजलीकी समान शोभा हुई। वज्रके शब्दकी समान धनुषके रोंदेके शब्दसे पृथिवी व्याप्तहोगई, उस समय संग्रामस्थलने अत्यन्त भयंकर आकार धारण किया॥ ४७॥

ततो धरणिजारुषा विविधरामबाणौजसा
पपात भुवि रावणस्त्रिदशनाथविद्रावणः।
ततोऽतिकुतुकी हरिर्ज्वलनरक्षितां जानकीं
समर्प्य रघुपुङ्गवे निजपुरीं ययौ हर्षितः॥ ४८॥

इसके उपरान्त इन्द्रको भी भयदायक रावण, सीताजीके कोपसे और रामचंद्रजीके अस्त्राग्नि और सीताजकिी क्रोधाग्नि इन दोनों अग्नियोंसे भस्महोकरही मानो पृथ्वीपर गिरगया। रावणके मारे जानेपर कपिश्रेष्ठ हनुमानजीने जानकीजीको शुद्ध किया और रामचंद्रजीको समर्पण कर हर्षित चित्तसे अपने स्थानको चलेगए॥ ४८॥

पुरन्दरकथादरः सपदि तत्र रक्षःपतिम्।
बिभीषणमभीषणं समकरोत्ततो राघवः॥ ४९॥

फिर देवराज इन्द्रके कहे अनुसार श्रीरामचंद्रजीने अभीषण (शान्त) बिभीषण तत्काल राक्षस राज्यपर अभिषेकित किया॥ ४९॥

हरीश्वरगणावृतोऽवनिसुतायुतः सानुजो
रथे शिवसखेरिते सुविमले लसत्पुष्पके।
मुनीश्वरगणार्च्चितो रघुपतिस्त्वयोध्यां ययौ
विविच्य मुनिलाञ्छनं गुहगृहेऽतिसख्यं स्मरन्॥ ५०॥

वानर राजाओंके साथ सीता और लक्ष्मणजीको संग ले विमल शोभा-

यमान पुष्पकविमानमें सवार हो श्रीरामचंद्रजी अयोध्या (१) में आये चलनेके समय मार्गमें, वनके मध्य प्रवेश करनेके समय अपना मुनिवेश और गुह चाण्डालके साथ मित्रताका स्मरण करने लगे। फिर मुनिजनोंने आयकर तिनकी पूजा की ॥ ५० ॥

ततो निजगणावृतो भरतमातुरं सान्त्वयन्
स्वमातृगणवाक्यतः पितृनिजासने भूपतिः।
वसिष्ठमुनिपुङ्गवैः कृतनिजाभिषेको विभुः
समस्तजनपालकः सुरपतिर्यथा संबभौ ॥ ५१ ॥

फिर निजजनोंसे युक्तहो, मनके दुःखसे कातर हुए भरतजीको समझाया बुझाया। वे (रामजी) माताओंकी आज्ञाके अनुसार पितृसिंहासनपर बैठकर राज्यमें अभिषेकित हुए। वशिष्ठादि महर्षियोंने तिनका अभिषेक किया। फिर वह इन्द्रजीकी समान समस्त लोकोंके स्वामीहो शोभायमान होनेलगे ॥ ५१ ॥

---

१ महाकवि तुलसीदासजीने अयोध्यापुरीको प्रायः अवधपुरी कहकर स्वरचित रामायणमें लिखाहै। यथा–

अवधपुरी रघुकुल मणिराऊ। वेदविदित तेहि दशरथ नाऊं ॥ (बालकाण्ड)

अयोध्या उत्तरकोशलाकी राजधानीहै। वैवस्वत मनुकी आज्ञासे विश्वकर्माजीने सरयू नदीके किनारे अयोध्या नगरीको बसाया और बनाया। प्राचीन अयोध्याकी लम्बाई ४८ कोश और चौडाई बारह १२ कोशथी। रामचन्द्रजीके पुत्र कुशने अयोध्याको छोड कुछ दिनतक कुशावतीमें राज किया, किन्तु अयोध्याकी अधिष्ठात्री देवीकी कातरतासे फिर यहीं चले आये (रघुवंश देखो) अयोध्याका दूसरा नाम विनीताहै। (कल्पद्रुमकलिका) इसका टूटा फूटा चिह्न देखनेसे केवल वैराग्य आजाता है। इस समय यह जंगलसे पूर्ण और दिल्लीसे १८० कोश दूरहै। यह हुयैनसांगकी अयुता वा अयुदो और तिधतवालोंकी वागद वा भागदहै। तिधतवालोंके ग्रन्थमें लिखाहै कि साम्पर्क नामक एक शाक्यकपिलसे वागदमें निकाला गया, उस समय वह वहांसे (कपिलसे) बुद्धजीके केश और नख ले आयाथा और इस नगरीके स्थानमें उनको गाड़कर उसके ऊपर एक मन्दिर बनाया। जिसका नाम साम्पर्कस्तप ह। अयोध्याका एक नाम साकेतपत्तन है। (अध्यात्मरामायण, आरण्यकाण्ड, भार्गवविजय) अयोध्याको विशाख वा विशाखपत्तनभी कहतेहैं।

CUNNINGHMA'S ANCIENT GEOGRAPHY OF INDIA.

नरा बहुधनाकरा द्विजवरास्तपस्तत्पराः
स्वधर्म्मकृतनिश्चयाः स्वजनसङ्गता निर्भयाः।
घनाः सुबहुवर्षिणो वसुमती सदा हर्षिता
भवत्यतिबले नृपे रघुपतावभूत्सज्जगत् ॥ ५२ ॥

इसप्रकार अतिबलवान पराक्रमी रघुवीरके राज्यारंभ करनेपर समस्त प्रजा ऐश्वर्यवान् (निधियुक्त) हुई। ब्राह्मणलोग सदा तप करने लगे। सबही निजजनोंसे मिलकर निर्भयचित्तसे अपने अपने धर्मका अनुष्ठान करने लगे। समयपर बादरोंके सुवर्षा करनेसे वसुमती (पृथिवी) हर्ष युक्तहुई। समस्त जगत् सन्मार्गमें खडा होगया ॥ ५२ ॥

गतायुतसमाः प्रियैर्निजगुणैः प्रजा रञ्जयन्
निजां रघुपतिः प्रियां निजमनोभवैर्मोहयन्।
मुनीन्द्रगणसंयुतोऽप्ययजदादिदेवान्मखै-
र्धनैर्विपुलदक्षिणैरतुलवाजिमेधैस्त्रिभिः ॥ ५३ ॥

इस प्रकारसे दशहजार वर्षतक श्रीरामाभिरामने अपने गुणग्रामसे प्रजारंजन किया। उन्होंने मनोरथ पूर्ण करके अपनी प्यारी जानकीजीके मनको आनन्दित कियाथा। वह महर्षियोंके सहित बहुतसी दक्षिणा दे देकर अनेक यज्ञ करके देवताओंको संतुष्ट करते। और तीन अश्वमेध यज्ञभी इन्होंने निर्विघ्न करे ॥ ५३ ॥

ततः किमपि कारणं मनसि भावयन्भूपति-
र्जहौ जनकजां वने रघुवरस्तदा निर्घृणः।
ततो निजमतं स्मरन्समनयत्प्रचेतःसुतो
निजाश्रममुदारधी रघुपतेः प्रियां दुःखिताम् ॥ ५४ ॥

फिर श्रीरामचंद्रजीने निर्दयीहो, अन्तःकरणमें किसी एक कारणको सोचकर जानकीको वनमें छोडदिया। फिर उदार चित्तवाले वाल्मी-

किजी, अपनी बनाई हुई रामायणको स्मरण करके दुखित हुई श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी जानकीजीको अपने आश्रममें लेगए (१) ॥ ५४ ॥

(१) वाल्मीकि–जगत्प्रसिद्ध रामायणके रचयिता ऋषि। यह प्रचेताके पुत्रहैं। प्रचेता वरुण और एक मुनिका नामहै। पुराणमें १० प्रचेताओंका नामहैं। हविर्द्धानके औरससे धिषणा नामक पत्नीके गर्भमें प्राचीन बर्हिके सहित समुद्रकी पुत्री सवर्णाका विवाह हुआ। प्राचीनबर्हिके औरससे सवर्णाके गर्भमें १० पुत्र उत्पन्न हुए। इन पुत्रोंका नाम प्रचेता हुआ इन्होंने पिताकी आज्ञासे तप करके महादेवजीसे नारायणजीके माहात्म्यको जाना। फिर जब इन्होंने दशहजार वर्षतक समुद्रमें शयन करके विष्णुजकी आराधना की, तब कण्डु मुनिकी कन्या मारिषा इनकी भार्या हुई। (भागवत, विष्णुपुराण, अग्निपुराण, कूर्मपुराण, गरुड़पुराण) इनसे पहले उत्पन्न हुए दश पुत्र राक्षस थे। तदुपरान्त दक्षजीका जन्म हुआ। महाभारत, रामायण, और दूसरे पुराणोंमें इस बातका कोई वर्णन नहीं कि वाल्मीकिजी प्रचेताके पुत्र थे। वाल्मीकिजीके पिता भृगुवंशीय एक प्रचेता मुनि थे, इसी कारण वाल्मीकिजीको भार्गव कहागयाहै। यथाः–

रावणांतकरो राजा रघूणां वंशवर्द्धनः। वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ॥

(मत्स्यपुराण १२ अध्याय)

महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम पहले चित्रकूट पर्वतपर था। वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड ५६ सर्गमें रामजीका वाल्मीकिजीके आश्रममें जाना देखो। परन्तु रघुनन्दन गोस्वामीने चित्रकूटके वाल्मीकिजीको दूसरा वाल्मीकि कहाहै। यथाः–

"छोरजनी करि तहीं निवासा। भोराहि चित्रकूटके पासा।
तहां विद्वान सर्व गुणधामा। दूसर वाल्मीकि तेहि नामा।
गये तहां प्रभु करुणा कन्दा। पुलकि मिलउ ऋषि भयउ अनन्दा ॥"

(श्रीमद्रामरसायन अयोध्याकाण्ड ५ अध्याय)

भक्तमाल नामक ग्रन्थमें दूसरे वाल्मीकिजीके नामसे एक दूसरे वाल्मीकि मुनिके चरित्रका वर्णन हुआहै। यह मुनि, महाराज युधिष्ठिरके यज्ञमें गए थे।

फिर उनका आश्रम प्रयागविभागके अन्तर्गत तमसा नदीके किनारे था। यह तमसा नदी चित्रकूटके पहाडी देशसे उत्पन्न होकर बराबर पूर्वोत्तर दिशामें बहती हुई, प्रयागके कुछ दूर नीचेकी ओर गंगाजीके साथ मिलतीहै। महाकवि कालिदासजी कहतेहैंः–

रथात्स यंत्रा निगृहीतवाहात्तां भ्रातृजायां पुलिनेऽवतार्य।
गंगां निषादाहृतनौविशेषस्ततार सन्ध्यामिव सत्यसन्धः ॥ (रघुवंश १४ सर्ग ५२ श्लो०)

अस्यार्थः–सुमंत्र सारथीके द्वारा घोड़ोंकी लगाम खेंची जानेपर, सत्यसन्ध लक्ष्मणजीने भ्रातृजाय (भाभी) सीताजीको रथसे पुलिनमें (नदीके तीरपर) उतारा और निषाद करके लाई हुई नावमें तिनको सवार कराकर अपनी प्रतिज्ञा और गंगा, दोनोंकेही पार हुए ॥५२॥ (पं० ज्वालाप्रसादमिश्रद्वारा अनुवादित रघुवंश) तदुपरान्तः–

अशून्यतीरां मुनिसन्निवेशैः तमोऽपहन्त्रीं तमसां वगाह्य।
तत्सैकतोत्संगबलक्रियाभिः सम्पत्स्यते ते मनसः प्रसादः ॥ (रघु० १४ स० ७६ श्लो०)

अस्यार्थः– (वाल्मीकिजी सीताजीसे कहते हैं) मुनियोंकी कुटियोंसे घिरी हुई तीर

वाली, पाप दूर करनेहारी तमसामें स्नानकर उसके किनारे इष्ट देवताके पूजन करनेसे तेरे मनमें प्रसन्नता होगी ॥ ७६ ॥ (पं० ज्वालाप्रसादमिश्रद्वारा अनुवादित रघु० ४५३ सफा ६पं०)

महर्षि वाल्मीकि और महाकवि कालिदासजीके वर्णनसे भलीभाँति जाना जाता है कि, जिस स्थानमें गंगाजीके साथ तमसाका संगम होताहै तिसके कुछही दूरपर तमसाकी बांई ओर महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रमथा। नकशेमें यह तमसानदी (South Tonse) लिखी गईहै उत्तर तमसा (North Tonse) नदी अयोध्याकी भूमिमें सरयू और गोमतीके बीच वहती हुई। पूर्व दक्षिणकी ओर आकर प्रयागसे कुछ दूर गंगाजीके साथ मिलगई है

बहुत आदमी कहतेहैं और मैंभी कहताहूं कि, वर्त्तमान कानपुरसे कुछ दूर गंगाजीके किनारे विठूर नामक स्थानमें महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रमथा। लक्ष्मणजी गंगाके पारहो इसी आश्रममें सीताजीको छोड आयेथे। अवभी सुना जाताहै कि, विठूरमें गंगाजीके किनारे बहुतसे मन्दिर और रामसीता आदिकी मूर्त्ति हैं। यात्री लोग इस स्थानकोही महर्षिवाल्मीकिजीका आश्रम बतातेहैं। परन्तु यहांपर तमसा नामक कोई नदी नहीं है। पहली कही उत्तरतमसाभी, विठूरके निकट गंगाके उत्तरमें जो गोमतीहै, तिसके उत्तरमें बहतीहै। अतएव इस समय भलीभांति जाना जाता है कि, महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम विठूरमें नहींथा, बरन् प्रयागके निकट गंगापारमें दक्षिण तमसाके तटपरथा। लक्ष्मण व सीताजीके सहित रामचंद्रजी वनगमनके समयमें अयोध्यासे बराबर दक्षिणदिशामें आय शृङ्गवेरपुरमें गंगाजीके पारहो महर्षि भरद्वाजजीके आश्रममें आएथे। लक्ष्मणजीभी इसी मार्गसे सीताजीको महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रममें लाएथे। परन्तु भेद इतना है कि, शृङ्गवेर पुरमें गंगाजीके पार न होकर बराबर गंगाजीके उत्तर किनारे पर आय प्रयागके कुछ दूर दक्षिण गंगाके पारहुएथे। तिसकेही कुछ दूर पश्चात् दक्षिण तमसाके तटपर महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम वा तपोवन है। इनके प्रधान शिष्यका नाम. भारद्वाजथा। महर्षि वाल्मीकिजीने तिसके दक्षिण तमसा नदीके आश्रममेंही, रावणादि वध और सीता उद्धारके पीछे राज्यभोगके समय अपनी प्रसिद्ध अनन्त अमृतसागररूपी रामायण महाकाव्यकी रचना की।

इनही महर्षिजीने प्रथम अनुष्टुप् छन्दको निर्माण किया। तमसानदीके किनारे एक व्याध करके क्रौञ्च पक्षीके मारेजानेको देखकर तिनकी रसनासे यह प्रथम अनुष्टुप् छन्दका श्लोक निकलाथाः—

मा निषाद ! प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ (वा० रामा० बाल० २ सर्ग)

पद्मपुराणमें यह श्लोक कुछ बदला हुआसा है। यथाः—

मानिषाद ! प्रतिष्ठास्त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चपक्षिणोरेकमवधीः काममोहितम् ॥ (पद्मपु० पातालखंड, ९४ अ०)

प्रधानतः इन अनुष्टुप् छन्दोंमेंही रामायण महाकाव्य बनाया गया। इनके सिवाय मालिनी आदि कई प्रकारके छन्द भी और स्थानोंमें विशेषतः प्रति सर्गके पीछे व्यवहारमें आये हैं।

किसी २ का मत है कि, रामचंद्रजीका जन्म होनेसे साठ हजार वर्ष पहले वाल्मीकिजीने रामायण

ततः कुशलवौ सुतौ प्रसुषुवे धरित्रीसुता
महाबलपराक्रमौ रघुपतेर्यशोगायनौ ।
स तामपि सुतान्वितां मुनिवरस्तु रामान्तिके
समर्पयदनिन्दितां सुरवरैः सदा वन्दिताम् ॥ ५५ ॥

कुश और लव नामक दो महाबली पराक्रमी पुत्रोंको धरतीकी पुत्री सीताजीने उत्पन्न किया । इन कुमारोंने रामचंद्रजीके पास आय तिनके यशको गाया । इन दो पुत्रोंके साथ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीने निन्दारहित देवताओंसे पूजित सीताजीको श्रीरामचंद्रजीके निकट समर्पण किया ॥५५॥

ततो रघुपतिस्तु तां सुतयुतां रुदन्तीं पुरो
जगाद दहने पुनः प्रविश शोधनायात्मनः ।
इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपतेः पदाब्जे नता
विवेश जननीयुता मणिगणोज्ज्वलं भूतलम् ॥ ५६ ॥

सन्मुखही रोती हुई, पुत्रोंके सहित जानकीजीसे श्रीरामचंद्रजीने कहा-तुम अपनी शुद्धिके निमित्त (सबके सौंही) फिर अग्निमें प्रवेश करो सीताजीने रामचंद्रजीका यह वाक्य सुनकर उनके चरणकमलमें प्रणाम किया और आई हुई माता पृथ्वीके साथ मणियोंसे उज्ज्वल हुए पातालमें प्रवेश करगई ॥ ५६ ॥

निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाणं स्मरन्
वसिष्ठगुरुयोगतोऽनुजयुतोऽगमत्स्वं पदम् ।
पुरः स्थितजनैः स्वकैः पशुभिरीश्वरः संस्पृशन्
मुदा सरयुजीवनं रथवरैः परीतो विभुः ॥ ५७ ॥

चनाईथी । कोई २ कहते हैं कि, महर्षि वाल्मीकिजी पहले जन्ममें रत्नाकर नामक, एक चोर निषाद थे । इन्होंने रामका उलटा नाम जपकर (मरा २) बहुत दिनोंतक तप किया । इनके शरीरपर बमई जम गईथी रामनामके जपसे इनके समस्त पाप छूटे और यह सिद्ध हुये तब ब्रह्माजीने आकर इनको पुकारा इन्होंने वल्मीकके ठियेसे निकलकर उनको प्रणाम किया। ब्रह्माजीने वर देकर रामायण महाकाव्य बनानेकी आज्ञादी । इनके समस्त अंगमें वल्मीक उत्पन्न होगईथी, इस्सेही वाल्मीकि नाम हुआ ॥

रामचंद्रजी जानकीजीका इसप्रकारसे पातालमें समानादेख, इसबातका स्मरण करते गुरु वसिष्ठ, अनुजगण, पुरवासी लोग और पशुओंके साथ प्रसन्न चित्तसे सरयू नदीके जलको स्पर्श करके दिव्य विमानमें सवार हो वैकुण्ठधामको चलेगये ॥ ५७ ॥

ये शृण्वन्ति रघूद्वहस्य चरितं कर्णामृतं सादरात्
संसारार्णवशोषणञ्च पठतामामोददं मोक्षदम् ।
रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये
वंशानामपि वृद्धये प्रभवति श्रीशः परेशः प्रभुः ॥ ५८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे सूर्य्यवंशानुवर्णने श्रीरामचन्द्रचरितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस कर्णामृत श्रीरामचरित्रको जो लोग आदरपूर्वक सुनेंगे श्रीशपरमेश प्रभु श्रीरामचंद्रजीकी कृपासे तिनकी बाधा दूरहोगी, रोगकी शान्ति होजायगी, वंश बढेगा और धनसम्पत्ति, जन सम्पत्ति, स्वर्गादिसम्पत्ति तिनको प्राप्तहोगी। इसके पाठ करनेसे अन्तःकरणमें आनन्द उत्पन्न होगा, संसारसागर सूखजायगा और परमपुरुषार्थ मुक्तिपद प्राप्तहोगा ॥ ५८ ॥

इति सानुवादे श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे सूर्यवंशानुवर्णने श्रीरामचंद्रचरितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तृतीयांशः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

रामात्कुशोऽभूदतिथिस्ततोऽभून्निषधान्नभः ।
तस्मादभूत्पुण्डरीकः क्षेमधान्वाऽभवत्ततः ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीका पुत्र कुश, कुशका पुत्र अतिथि, अतिथिका पुत्र निषध, निषधका पुत्र नभ, नभका पुत्र पुण्डरीक, पुण्डरीकका पुत्र क्षेमधन्वा ॥ १ ॥

देवानीकस्ततो हीनः पारिपात्रोऽथ हीनतः ।
बलाहकस्ततोऽर्कश्च रजनाभस्ततोऽभवत् ॥ २ ॥

क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक, देवानीकका पुत्र हीन, हीनका पुत्र पारिपात्र-पारिपात्रका पुत्र बलाहक, बलाहकका पुत्र अर्क, अर्कका पुत्र रजनाभ ॥ २॥

खगणाद्विधृतस्तस्माद्धिरण्यनाभसाङ्गितः ।
ततः पुष्पाद्ध्रुवस्तस्मात्स्यन्दनोऽथाग्निवर्णकः ॥ ३ ॥

रजनाभका पुत्र खगण, खगणका पुत्र विधृत विधृतका पुत्र हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभका पुत्र पुष्प, पुष्पका पुत्र ध्रुव, ध्रुवका पुत्र स्यन्दन, स्यंदनका पुत्र अग्निवर्ण ॥ ३ ॥

तस्माच्छीघ्रोऽभवत्पुत्रः पिता मेऽतुलविक्रमः ।
तस्मान्मरुं मां केऽपीह बुधश्चापि सुमित्रकम् ॥ ४ ॥

अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र हुआ । यही अतुल विक्रमवाले शीघ्र हमारे पिताहैं मैं शीघ्रका पुत्रहूं । मेरा नाम मरु है । कोई २ मुझको बुध और कोई २ मुझको सुमित्र कहतेहैं ॥ ४ ॥

कलापग्राममासाद्य विद्धि सत्तपासि स्थितम् ।
तवावतारं विज्ञाय व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ ५ ॥

इतने दिनतक मैं कलाप ग्राम (१) में रहकर तप करताथा । सत्यवतीके पुत्र व्यासके मुखसे आपके अवतारका वृत्तान्त सुनकर मैं ॥ ५ ॥

प्रतीक्ष्य कालं लक्षाब्दं कलेः प्राप्तस्तवान्तिकम् ।
जन्मकोट्यंहसां राशेर्नाशनं धर्म्मशासनम् ।
यशःकीर्त्तिकरं सर्वकामपूरं परात्मनः ॥ ६ ॥

कलिके लक्ष वर्ष समयकी प्रतीक्षा करके आपके निकट आयाहूं । आप परमात्माहैं आपके समीप आनेसे कोटि जन्मके पापपुंज क्षय होजा-

(१) कलापग्राम–यह ग्राम हिमालय पर्वतके दाक्षिणमें है । यदुकुलका क्षय होनेपर श्रीकृष्णजीकी दूसरी रानी सत्यभामा तपकरनेको इसग्राममें गईथी ।

तेहैं, धर्मकी वृद्धि होतीहै, यश कीर्तिकी बढती होतीहै, समस्त कामना पूर्ण होतीहैं ॥ ६ ॥

कल्किरुवाच । ज्ञातस्तवान्वयस्त्वञ्च सूर्यवंशसमुद्भवः ।
द्वितीयः कोऽपरः श्रीमान्महापुरुषलक्षणः ॥ ७ ॥

कल्किजी बोलेः—तुम्हारी वंशावलीको अब हमने जाना;ज्ञात हुआ कि, तुम सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए राजाहो; परन्तु तुम्हारे साथ यह दूसरे जो दिखाई देते हैं, यह श्रीमान् और महापुरुषके लक्षणोंसे युक्त हैं सो यह कौन हैं ? ॥ ७ ॥

इति कल्किवचः श्रुत्वा देवापिर्मधुराक्षराम् ।
वाणीं विनयसम्पन्नः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

कल्किजीके ऐसे मधुर वचन सुनकर देवापिने विनययुक्त वचनोंसे कहना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

देवापिरुवाच । प्रलयान्ते नाभिपद्मात्तवाभूच्चतुराननः ।
तदीयतनयादत्रेश्चन्द्रस्तस्मात्ततो बुधः ॥ ९ ॥

देवापिने कहाः—प्रलयके अन्तमें आपके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुएथे । ब्रह्माजीका पुत्र आत्रि, अत्रिका पुत्र चंद्रमा, चन्द्रमाका पुत्र बुध ॥ ९ ॥

तस्मात्पुरूरवा जज्ञे ययातिर्नाहुषस्ततः ।
देवयान्यां ययातिस्तु यदुं तुर्वसुमेवच ॥ १० ॥

बुधका पुत्र पुरूरवा, पुरूरवाका पुत्र नहुष, नहुषका पुत्र ययाति हुआ । ययातिने देवयानिमें यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥ १० ॥

शर्मिष्ठायां तथा द्रुह्युञ्चानुं पूरुञ्च सत्पते ।
जनयामास भूतादिर्भूतानीव सिसृक्षया ॥ ११ ॥

हे साधुपालक ! इस ययातिने शर्मिष्ठामें द्रुह्यु अनु और पुरु यह तीन पुत्र उत्पन्न किएथे । सृष्टिके समय भूतादि अर्थात् तामस अहंकार जिस

१४

प्रकार पंचभूतको उत्पन्न करताहै, तैसेही ययातिने इन पांचों पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ११ ॥

पूरोर्जन्मेजयस्तस्मात्प्रचिन्वानभवत्ततः ।
प्रवीरस्तन्मनस्युवैं तस्माच्चाभयदोऽभवत् ॥ १२ ॥

पुरुका पुत्र जन्मेजय जन्मेजयका पुत्र प्रचिन्वान, प्रचिन्वानका पुत्र प्रवीर-प्रवीरका पुत्र मनस्यु, मनस्युका पुत्र अभयद, ॥ १२ ॥

उरुक्षयाच्च त्र्यरुणिस्ततोऽभूत्पुष्करारुणिः ।
बृहत्क्षेत्रादभूद्धस्ती यन्नाम्ना हस्तिनापुरम् ॥ १३ ॥

अभयदका पुत्र उरुक्षय, उरुक्षयका पुत्र त्र्यरुणि त्र्यरुणिका पुत्र पुष्करारुणि, पुष्करारुणिका पुत्र बृहत्क्षेत्र बृहत्क्षेत्रका पुत्र हस्ती हुआ । इस हस्ती राजाकेही नामसे (१) हस्तिनापुर नगर स्थापित हुआथा ॥ १३ ॥

---

(१) हस्तिनापुर–दिल्लीसे प्रायः ३० कोश पूर्वउत्तरके ओर दारानगरसे १२ कोश दक्षिण पश्चिमदिशामें वर्त्तमान गंगा नदीके ५॥ कोश पश्चिममें प्राचीन गंगाजीके किनारे पर स्थितहै । यह कुरु-पाण्डवोंकी राजधानी थी । जब गंगाजीने इसको ध्वंस करदिया तब पिछले कुरुपाण्डवोंके वंशवालोंने एलाहाबादके पश्चिममें यमुनाके तटपर बसी हुई कौशाम्बी नगरीमें आनकर वास कियाथा । (Ptolemy,s Ancient India. PP. 72. 122. 212) आजकल वहांके रहनेवाले इसको हत्नापुर कहतेहैं। (Journal. As. Bengal 1881, Part I.P.109) मेरठसे पचीस मील ईशानकोणमें गंगाजीके दाहिने किनारे प्रसिद्ध हस्तिनापुर है। युधिष्ठिरसे पांच पीढी पीछेही गंगाजीने हस्तिनापुरको ग्रास करलिया भारतभ्रमण शशिचन्द्रदत्तके मतसे यदि मिशर (Egypt) देशकी प्राचीन इमारतोंके चिह्न मसीहसे ४००० वर्ष पहलेकेभी हों, तो भी भारतवर्षकी प्राचीन इमारतोंके चिह्न तिनकेही समयके हैं । पृथिवीके जितने स्थानोंमें जितनी प्रकारकी ईटें पाई गईहैं तिनमें प्राचीन हास्तिनापुरके खंडहरकी ईटही सबसे बडी हैं । प्रत्येक ईटकी लम्बाई २० इंच, चौंडाई १० इंच और वेध २॥० इंच हैं । वह ईटें प्राचीन वाबिलन नगरकी ईटोंसे बडी हैं (Ruins of the old world, P. 146)

अब एक बडा संदेह होताहै कि, महाभारत आदिपर्वके ९५ अध्यायमें कहाहै कि, महाराज हस्तीने हस्तिनापुरको स्थापन किया, परन्तु इसही महाभारतमें आदिपर्वके ७४ अध्यायमें लिखा है कि, महाराज दुष्मन्त (दुष्यन्त) की राजधानीभी हस्तिनापुरमें थी यथा:–

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्त महौजसः । शकुन्तलां पुरस्कृत्य सपुत्रां गजसाह्वयम् ।

शब्दरत्नावलीकोषके मतसे गजाह्व, गजाह्वय वा गजसाह्वय शब्दका अर्थ हस्तिनापुर है । दुष्यन्तसे ग्रहण करनेवाला हस्ती पांच पुरुष नीचे हुआ । इस शंकाको कौन दूर कर सकता है ? ॥

अजमीढो द्विमीढश्च पुरमीढस्तु तत्सुताः ।
अजमीढादभूदृक्षस्तस्मात्संवरणात्कुरुः ॥ १४ ॥

हस्तीके तीन पुत्र हुए, अजमीढ द्विमीढ और पुरमीढ, अजमीढका पुत्र ऋक्ष, ऋक्षका पुत्र संवरण, संवरणका पुत्र कुरु (१) हुआ ॥ १४ ॥

---

(१) कुरु–इसनेही कुरुक्षेत्र वसाया। स्थाणुतीर्थसे इसका नाम स्थाण्वीश्वर हुआहै। जाते २ स्थान २ में आमके कुंज दिखाई देते हैं। पंजावमें कटहलका वृक्ष नहीं होता। आमभी वहुत नहीं होते, पानभी महँगे रहते हैं। प्राचीन स्थाण्वीश्वरनगर सब टूट गया। तिसकेही ऊपर वर्त्तमान नगर वसाहै। स्थाण्वीश्वरके निकट कुरुक्षेत्रका वडा भारी मयदान सांय सांय करता है। यही मैदानमें एक वडा सरोवरहै, चारों ओर सीढियें वनी हुई हैं,। सरोवर पूर्वपश्चिममें २३६४ हाथ लम्बा और उत्तरदक्षिणमें १२६६ हाथ चौंडाहै। वीचों बीचमें ३८६ हाथका वडा एक चौकोन टापू है। उत्तरदक्षिणसे १८ हाथके विस्तारवाले सेतुने दोनों ओरसे इसको स्पर्श कियाहै। टापूमें चारों ओर दीवार खिंचरही है। तिसके मध्य पश्चिमविभागमें चन्द्रकूप है। यह सरोवर महातीर्थ है। सूर्यग्रहणके समय बहुतसे यात्री स्नान करते और किनारेपर श्राद्धभी करते हैं। अकवरके समयमें वीरवलने चारों ओरसे इसको वँधवायाथा। औरंगजेवने इसको बहुतेरा बरबाद किया। यहांतक हुक्म दे रक्खाथा कि, जो यात्री स्नान करते हों, वीचके टापूमेंसे उनपर गोली चलाई जाय। सरोवरसे उत्तर और पीछे पश्चिममें जानेपर तीन मिले हुए मार्ग दिखाई देते हैं। वाईं ओरका मार्ग कैथलको, वीचका मार्ग पृथुदको और दाईं ओरका मार्ग आयुजस घाटपर गया है। सरस्वती सूखसी गई हैं जल बहुत थोडा है सरस्वतीके आसरेसे जानेपर आयुजसके उत्तरमें अस्थिपुर पाया जाताहै सन् ६३४ ई० में होयाननसं यहां पर बडी २ हड्डियें देखगया है। अस्थिपुरके उत्तरमें क्षीरवास घाट है, फिर विख्यात स्थाणुतीर्थ और तदुपरांत गंगा-तीर्थ इत्यादि हैं आयुजस घाटसे लेकर स्थाण्वीश्वरके उत्तरपूर्वमें रत्नयक्षतक ५ मैलके वीचमें ९१ तीर्थ हैं। मनुष्यके आकारसेभी वडी मूर्त्ति विष्णुजीकी–जो चक्रतीर्थमेंथी–महमूद गजनवीके हाथसे तोडीगई। सरोवरके उत्तर में अम्बालेकी सडकके वगलमें दिलीपगढ़की समस्त हिन्दुओंकी कीर्तियोंको नष्ट करके मुसलमानोंने मद्रसा, पत्थरकीमस्ज़िद, सैय्यद जलाली और जुम्मामस्ज़िद बनाई है।

सरोवरसे ढाईकोश दक्षिणपूर्वमें आमीना वा अभिमन्युवधका स्थान है। कुछ दूर दक्षिणमें पंडा-लोग स्यमन्तपंचकके और चार कुण्डदिखा देते हैं। सरोवरके एक मैल दक्षिण पश्चिममें कर्णगढ़ है। इसकी भीत नीचेको ५३३ हाथ और ऊपरमें ३३३ हाथ लम्बी है। भीतकी उंचाई २६ हाथ, मध्य-स्थलमें ३६ हाथ गंभीर और २६ हाथ वेष्टनका एक सूखा कुँआहै। निकटही कुरुध्वजतीर्थ और टूटे टाटे मन्दिर हैं। इनकी ईंटे अतिश्रेष्ठ हैं। कुरुक्षेत्रकी सीमाका निर्णय करना सहज वात नहीं है। मनु-जीके मतसे सरस्वती और दृशद्वतीके मध्यमें ब्रह्मावर्त्त है वर्तमान घाघराही दृषद्वती है। महाभारतमें लिखाहै कि, तरन्तक, अरन्तक, रामहृद और समचक्रुकमें पांच योजनके विस्तारवाली पितामहकी उत्तर

वेदी है। झिन्दके राजा कहते हैं कि, रामह्रदसा पवित्रस्थान अवश्यही हमारे राज्यमें है। इस प्रकारसे राजा और पंडाओंने अपना २ मत स्थापन करते २ एक गडबड कीहै। एक मत यह है कि, अरन्तक उत्तरपश्चिमकोणमें पिहोर दो कोश पश्चिममें है। दूसरे मतसे उसकाही नाम बहर यक्ष है यह सरस्वती किनारेपर पिहोरसे ११ कोश और रत्नयक्षसे २० कोश पश्चिमको है एक मत यह है कि, रामहृद, झिन्दसे दो कोश निकट है; दूसरे मतसे पुन्ध्री वा पुण्डरीकतीर्थ के समीपही है। पंडालोग रत्नयक्ष, बहरयक्ष और तृक् यक्षादिसे सीमा नियत करते हैं। दर्शक लोगोंको चाहिये कि, अब पंडालोगोंके झगडोंको छोडें। कुरुक्षेत्र एक बडा स्थान है। पहले इस स्थानमें बहुत दूरतक फैला हुआ कुरुजाङ्गल नामक जंगलथा। महाभारतमें लिखा है कि, यमुना कुरुक्षेत्रके बीचमें बह रही है। श्रीकृष्णजीने जो हिरण्वतीके किनारे पाण्डवोंका डेरा स्थापन कियाथा, सोभी कुरुक्षेत्रके बीचमें है। उत्तरमें सरस्वती और दक्षिणमें दृषद्वती हैं, इसके मध्यमें जो कुरुक्षेत्र है, तिसका नाम ब्रह्मावर्त्त है। विनशनप्रदेश अर्थात् जहांपर सरस्वती लोप हुई है तिसके पूर्वस्थ जो कुरुक्षेत्र है सो मध्यदेश गिना जाता है। मत्स्य और पांचालके साथ जो कुरुक्षेत्र लगा है सो ब्रह्मर्षिदेशमें धरा जाता है। स्थान भेदसे पुण्यताका है। कृष्ण और भीष्मजीने सेनाकी छावनी डालनेके समयमें तीर्थस्थानोंको छोड़ दियाथा। अधिक क्या कहा जाय तथापि इतना कहना ही काफी होगा कि, पानीपथ, स्थाण्वीश्वर और कर्नाल आदिको लेकर यह बडास्थान एक महातीर्थ है सैकडों मारके इस स्थानमें होगये। यज्ञका कुलाहल, युद्धका भयंकर शोरे और गीदडोंके हा हा करनेसे कितनीहीवार यह मयदान कम्पायमान होगया है। छह भारतवीर इस मयदानको अपना कहकर हर्षित हुयेथे और राजालोग इसके निकलजानेसे रोयेथे। इसी मयदानमें हमारे पूर्व पुरुषोंने भारतके लिये भयंकर युद्धमें प्राणोंको दान कर दिया। आज उनही वीरोंकी अस्थियोंके ऊपर पांव धरकर चलनेसे मन चंचल हो जाता है अहमदशाह आविद अलीके विरुद्ध भी पांच लक्ष महाराष्ट्रीवीर इकट्ठे हुए। अबतक मानो तलवारका झंझाशब्द और सदाशिवजीके कंठका स्वर सुनाई आता है। अबतकभी मानो सदाशिव कह रहे हैं अरे वीरगण! अनन्तकालके लिये अपनी संतानकी दासत्व जंजीर शत्रुके हाथमें देखो। पराये कार्यके लिये इनकी भुजाओंकी उत्पत्ति नहीं हुई है, लोहेका बोझ लादनेकी भी हमने खड्ग धारण नहीं किया। मिट्टीके नीचेसे भीष्म और द्रोणाचार्यकी हड्डियें उत्साहित करती हैं कि, यही कुरुक्षेत्रका मयदानहै। या जय होगी, अथवा स्वर्ग तो मिलेहीगा। इसी सरस्वतीके तीरपर आय लोगोंने प्रथमवास कियाथा और इस स्थानसेही राज्यको बढायाथा। इस नदीने अपने किनारेपर कितनीही बार ऋषि मुनियोंके मुखसे निकले वेदगानको श्रवण किया है। और कितनीही वार उत्साह पूर्ण वीरोंकी मुख कान्तिको देखा है इस जलके गुणसेही समस्त वेद, असंख्यपुराण और अनंत दर्शन प्रगट हुएथे। क्या इसजलके पीनेसे फिर वह भाव उदय नहीं होगा वह तेज क्या फिर प्रगट नहीं होगा? वीरपूजिता सरस्वतीजी क्रमसे लोप होरही हैं। इस देशके दक्षिणपश्चिममें हिसार वा हरियानेके जंगलमें सिंह पाया जाता है। यहांकी गायें बडे डीलवाली, सुन्दर और दुधारी होती हैं। एक २ बैल ४। ५ हाथतक ऊंचा होता है। पीतलके बर्तन पानीपतमें अच्छे बनते हैं।

कुरोः परिक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषध एव च।
सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनाच्च ततः कृती। ॥ १५ ॥

कुरुका पुत्र परीक्षित्, परीक्षित्के पुत्र सुधनु, जह्नु और निषध हुए। सुधनुका पुत्र सुहोत्र, सुहोत्रका पुत्र च्यवन ॥ १५ ॥

ततो बृहद्रथतस्मात्कुशाग्रादृषभोऽभवत्।
ततः सत्यजितः पुत्रः पुष्पवान्नहुषस्ततः ॥ १६ ॥

च्यवनका पुत्र बृहद्रथ, बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र, कुशाग्रका पुत्र ऋषभ, ऋषभका पुत्र सत्यजित, सत्यजितका पुत्र पुष्पवान्, पुष्पवान्का पुत्र नहुष हुआ ॥ १६ ॥

बृहद्रथान्यभार्य्यायां जरासन्धः परन्तपः।
सहदेवस्ततस्तस्मात्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ १७ ॥

बृहद्रथकी दूसरी भार्यामें शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले जरासन्धकी उत्पत्ति हुई। जरासन्धका पुत्र सहदेव, सहदेवका पुत्र सोमापि, सोमापिका पुत्र श्रुतश्रवा ॥ १७ ॥

सुरथाद्विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमोऽभवत्ततः।
जयसेनाद्रथानीकोऽभूद्युतायुश्च कोपनः ॥ १८ ॥

श्रुतश्रवाका पुत्र सुरथ सुरथका पुत्र विदूरथ, विदूरथका पुत्र सार्वभौम सर्वभौमका पुत्र जयसेन, जयसेनका पुत्र रथानीक हुआ, रथानीकसे क्रोधी स्वभाववाले युतायुका जन्महुआ ॥ १८ ॥

तस्माद्देवातिथिस्तस्मादृक्षस्तस्माद्दिलीपकः।
तस्मात्प्रतीपकस्तस्य देवापिरहमीश्वर ! ॥ १९ ॥

युतायुका पुत्र देवातिथि, देवातिथिका पुत्र ऋक्ष, ऋक्षका पुत्र दिलीप, दिलीपका पुत्र प्रतीपक हुआ। हे ईश्वर ! मैं प्रतीपकका पुत्र देवापिहूं ॥ १९ ॥

राज्यं शान्तनवे दत्त्वा तपस्येकधिया चिरम्।
कलापग्राममासाद्य त्वां दिदृक्षुरिहागतः ॥ २० ॥

मैं शान्तनुको अपना राज्य देकर कलापग्राममें रहा करताथा। तहां पर एकान्तचित्तसे तप करताथा, इसके उपरान्त आपके दर्शनोंकी अभिलाषासे यहांपर आयाहूं ॥ २० ॥

मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिःप्राप्य पदाम्बुजम् ।
तव कालकरालास्याद्यास्याम्यात्मवतां पदम् ॥ २१ ॥

मैंने इन मरुके साथ और इन समस्त मुनियोंके साथ आपके चरण सरोजको प्राप्त किया, इससे अब हमको कालके कराल कौरमें गिरना नहीं पडैगा हमको ब्रह्मज्ञानियोंका पद प्राप्त होगा ॥ २१ ॥

तयोरेवं वचः श्रुत्वा कल्किः कमललोचनः ।
प्रहस्य मरुदेवापि समाश्वास्य समब्रवीत ॥ २२ ॥

मरु और देवापिके ऐसे वचन सुनकर कमलदलके समान नेत्रवाले कल्किजी हँसे और उनको धैर्य बँधाकर कहनेलगे ॥ २२ ॥

कल्किरुवाच । युवां परमधर्म्मज्ञौ राजानौ विदितावुभौ ।
मदादेशकरौ भूत्वा निजराज्यं भरिष्यथः ॥ २३ ॥

कल्किजी बोलेः—मैं जानताहूं कि, तुम दोनों परम धर्मज्ञ राजाहो। इससमय तुम हमारी आज्ञाके अनुसार राजाहोकर अपने २ राज्यको पालन करो ॥ २३ ॥

मरो त्वामभिषेक्ष्यामि निजायोध्यापुरेऽधुना ।
हत्वा म्लेच्छानधर्म्मिष्ठान्प्रजाभूतविहिंसकान् ॥ २४ ॥

हे मरो ! इस समयमें प्रजापीडक प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले अधर्मी म्लेच्छोंका नाश करके तुमको तुम्हारी निज राजधानी अयोध्यापुरीमें अभिषेकित करूंगा ॥ २४ ॥

देवापे तव राज्ये त्वां हस्तिनापुरपत्तने ।
अभिषेक्ष्यामि राजर्षे हत्वा पुक्कसकान्रणे ॥ २५ ॥

हे राजर्षि देवापे ! मैं संग्रामभूमिमें पुक्कस लोगोंका संहार करके तुमको तुम्हारी राजधानी हस्तिनापुरमें राज्याभिषेकित करूंगा ॥ २५ ॥

मथुरायामहं स्थित्वा हरिष्यामि तु वो भयम् ।
शय्याकर्णानुष्ट्रमुखानेकजङ्घान्विनोदरान् ॥ २६ ॥

मैं मथुरा (१) नगरीमें रहकर तुम्हारा भय दूर करूंगा । शय्याकर्ण-लोगोंको, उष्ट्रमुखलोगोंको, एक जंघलोगोंको मैं ॥ २६ ॥

हत्वा कृतं युगं कृत्वा पालयिष्याम्यहं प्रजाः ।
तपोवेशं व्रतं त्यक्त्वा समारुह्य रथोत्तमम् ॥ २७ ॥

संहारकरके सत्ययुगको स्थापित कर प्रजाओंका पालन करूंगा, तुमलोगभी तपस्वी वेश और व्रतको छोडकर महारथपर सवार होवो ॥ २७ ॥

युवां शस्त्रास्त्रकुशलौ सेनागणपरिच्छदौ ।
भूत्वा महारथौ लोके मया सह चरिष्यथः ॥ २८ ॥

क्योंकि तुमलोग शस्त्र अस्त्र चलानेमें कुशलहो महारथीहो । तुम हमारे साथ (म्लेच्छादि धर्मसे विद्वेष करनेवाले पामरोंका नाश करनेको) विचरण करना ॥ २८ ॥

विशाखयूपभूपालस्तनयां विनयान्विताम् ।
विवाहे रुचिरापाङ्गीं सुन्दरीं त्वां प्रदास्यति ॥ २९ ॥

हे मरो ! विशाखयूप नामक राजा, विनयसे युक्त रुचिर अंगवाली परम सुन्दरी अपनी पुत्रीके साथ, तुम्हारा विवाह करदेगा ॥ २९ ॥

साधो भूपाल लोकानां स्वस्तये कुरु मे वचः ।
रुचिराश्वसुतां शान्तां देवापे त्वं समुद्वह ॥ ३० ॥

हे मरो ! तुम राजा होकर संसारके मंगलके लिये हमारे वचनको प्रति-

---

(१) मथुरा–यमुनाके निकट मधुवननामक स्थानमें मधुदैत्यके पुत्र लवणका नाश करके रामचन्द्रजीके छोटे भ्राता शत्रुघ्नजीने मथुरापुरी बसाई । (वा०रामायण उत्तरकाण्ड) ध्रुवने इस स्थानमें तप करके भगवानके दर्शन पायेथे (भागवत) श्रीकृष्णजीने इस मथुराके कारागारमें वसुदेवके औरससे देवकीके आठमें गर्भमें जन्म लेकर बडे भ्राता वलदेवजीके साथ मिलकर कंसका नाश कियाथा । (भागवत,हरिवंश) मन्दिर और घाटयुक्त मथुरा यमुनाके दाहिनी ओर स्थितहै वहाँसे ३ कोस वृन्दावन है । यमुनाके वाममें (दूसरी पार) गोकुल है । (भारतभ्रमण) एरिएन, प्लिनि, टलेमी आदि प्राचीन अँगरेज भूगोल जाननेवाले मथुराको मेथोरा (methora) कहतेहैं । (ptolemy's Ancient India P. 94)

पालन करो। हे देवापे ! तुमभी शान्तानामक रुचिराश्वकी पुत्रीसे विवाह करो ॥ ३० ॥

इत्याश्वासकथाः कल्केः श्रुत्वा तौ मुनिभिः सह।
विस्मयाविष्टहृदयौ मेनाते हरिमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

कल्किजीके यह वचन जो कि आशायुक्तथे—सुनकर, देवापि और मुनिगण, हृदयमें विस्मितहो संदेह छोड निश्चय करते हुए कि, यही हरि और ईश्वरहै ॥ ३१ ॥

इति ब्रुवत्यभयदे आकाशात्सूर्य्यसन्निभौ।
रथौ नानामणिव्रातघटितौ कामगौ पुरः।
समायातौ ज्वलद्दिव्यशस्त्रास्त्रैः परिवारितौ ॥ ३२ ॥

कल्किजी इस प्रकारसे अभय वचन कह रहेहैं कि, इतनेहीमें आकाश मार्गसे इच्छानुसार चलनेवाले दो रथ उतरे। सूर्यके समान इन दोनों रथोंका तेजथा, अनेक प्रकारके रत्नोंसे (१) बने हुएथे, उज्ज्वल दिव्य अस्त्र शस्त्र इनमें भरे थे ॥ ३२ ॥

---

(१) मूल्यवान्पाषाणखंडको रत्न कहतेहैं। वराह मिहिरने कहाहैः—
द्विपहयवनितादीनां स्वगुणविशेषेण रत्नशब्दोऽस्ति।
इहतूपलरत्नानामधिकारो वज्रपूर्वाणाम् ॥ (बृहत्संहिता ८० अध्याय)

हाथी, अश्व, स्त्री आदि अपने २ गुणविशेष करके रत्नशब्दसे युक्त होतेहैं। (जैसे अश्वरत्न, रमणीरत्न आदि) परन्तु यहांपर हीरे आदि उपल रत्नोंका अधिकार समझना चाहिये ॥ (म० अनुवादित बृहत्संहिता) यहांपरं रत्नशब्द इस अर्थमें युक्त हुआ है। रत्नकी उत्पत्ति सुनियेः—

अवध्यः सर्वदेवानां वलोनामासुरोऽभवत्। त्रिदिवेशोपकाराय त्रिदशैः प्रार्थितो मखे ॥
ततस्तेनात्मनः कायो देवानां सम्मुखे धृतः। देहे समर्पिते शक्रस्तद्वज्रेणाहनच्छिरः ॥
जातानि रत्नकूटानि वज्रेणाहतमस्तके। वज्रसंज्ञा कृता देवैः सर्वरत्नोत्तमोत्तमे ॥
(अगास्तिमत ५।६।७)

वल नामक एक असुरथा। देवतालोग उसको वध नहीं करसके। एक समय वलने यज्ञ कियाथा। इन्द्रका मंगल करनेके लिये इस अवसरमें देवताओंने वलसे तिसकी देहको मांगा। वलने तत्काल अपनी देह अर्पी (चाहने वाले) को देकर देवताओंके सम्मुख स्थापितकी। तव इन्द्रने बलके मस्तकपर वज्रप्रहार किया। वज्रसे हत हुए उस असुरके मस्तकमें रत्नकूट उत्पन्न हुए। देवताओंने इनका वज्र नाम रक्खा ॥

भावप्रकाश कहताहै कि, धन चाहनेवाले इस्से अत्यन्त आनन्दित होतेहैं । इस कारण शब्दशास्त्रविशारद पंडितोंने इस पदार्थका रत्न नाम रक्खा है । यथाः–

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत् । ततो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः ॥

महर्षि शुक्राचार्यने शुक्रनीतिमें कहा है। यथाः—

वज्रं मुक्ता प्रवालश्च गोमेदश्चेन्द्रनीलकाः । वैडूर्यं पुष्परागश्च पाचिर्माणिक्यमेव च ।

महारत्नानि चैतानि नव प्रोक्तानि सूरिभिः (शुक्रनीति ४ अ० २ प्रकरण ४१ श्लो०)

वज्र (हीरा), मुक्ता (मोती), प्रवाल (मूंगा), गोमेद, इन्द्रनील (नीलम), वैडूर्य पुष्पराग (पुखराज), (पद्मराग) पाचि (मरकत) और माणिक्य पंडितलोग इन नौको महारत्न कहते हैं । भावमिश्र कहते हैः—

वज्रं गारुत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च । इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैदूर्यमित्यपि ॥
मौक्तिकं विद्रुमाश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥ (भावप्रकाश)

विष्णुधर्मोत्तरमें कहाहैः—

मुक्ताफलं हीरकञ्च वैदूर्यः पद्मरागकम् । पुष्परागञ्च गोमेदं नीलं गारुत्मतं तथा ।
प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव । भावप्रकाशधृतविष्णुधर्मोत्तरवचन ॥

शुक्राचार्य, भावमिश्र और विष्णुधर्मोत्तरकारने नौ प्रकारके महारत्न कहे हैं । फिर विष्णुधर्मोत्तरमें यहभी कहा है कि, रत्न ३६ संज्ञावाले हैं । निःसन्देह रत्न ३६ प्रकारके हैं, परन्तु तिनमें नौ महारत्नथे । अग्निपुराणमें भी ३६ प्रकारके रत्न लिखे हैं । यथाः—

रत्नानां लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्यमिदं नृपैः । वज्रं मरकतं रत्नं पद्मरागञ्च मौक्तिकम् ॥
इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्यं गन्धशस्यकम् । चन्द्रकान्तं सूर्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा ॥
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतीयकं द्विज । स्फटिकं राजपर्यङ्कं तथा राजमयं शुभम् ॥
सौगान्धिकं तथा गन्धं शंखं ब्रह्ममयं तथा ॥ गोमेदं रुधिराक्षञ्च तथा भल्लातकं द्विज ॥
धूलीं मरकतञ्चैव तुथकं सीसमेव च । पीहुं प्रवालकञ्चैव गिरिवज्रं द्विजोत्तम ॥
भुजङ्गममणिं चैव तथा वज्रमणिं शुभम् । टिट्टिभञ्च भाग्यपिण्डं भ्रामरञ्च तथोत्पलम् ॥

यह ३६ प्रकारके रत्न हैं । इनमें जो उत्तम हैं तिनको महारत्न कहते हैं । इस कारण रत्नकी संख्या ३६ हैं, तिनमें ९ महारत्न हैं ॥ वराहमिहिर कहते हैः—

रत्नानि बलाद्दैत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि । केचिद्भुवः स्वभावात् वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम् ॥
(बृहत्संहिता, ८० अध्याय)

कोई कहते हैं कि, बलनामक दैत्यसे रत्नकी उत्पत्ति हुई है, कोई दधीचिसे रत्नकी उत्पत्ति हुई बतलाते हैं, कुछ लोग कहते है कि, पृथ्वीके स्वभाववशसे पत्थरोंमें विचित्रता हो जाती है; तिनकोही फिर रत्न कहते हैं । यह पिछलामतही युक्तियुक्त और संभवज्ञात होता है पूर्वकालके समय रत्न मांगलिक पदार्थों में गिना जाताथा । यथाः—

रत्नेन शुभेन शुभं भवति नृपाणामशुभमशुभेन । यस्मादतः परीक्ष्यं दैवं रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः ॥
(बृहतत्संहिता, ८० अध्याय)

शुभरत्न धारणं करनेसे राजाओंका शुभ और अशुभ रत्न धारण करनेसे अशुभ होता है । इस कारण जो लोग रत्नके दोष गुणसे जानकारहैं, तिनकरके दैव, दोष और गुणकी परीक्षा करना उचित है ॥

पहले समयमें रत्नका बडा गौरव और आदर था । आदमी इसको शुभ व पवित्र समझा करतेथे ॥
(म० अनुवादित् बृहत्संहिता)

दद्दशुस्ते सदोमध्ये विश्वकर्म्मविनिर्मितौ ।
भूपा मुनिगणाः सभ्याः सहर्षाः किमितीरिताः ॥ ३३ ॥

सभामें बैठेहुए मुनिगण, भूपाल व और जो कोई थे वह सबही विश्वकर्माके बनाये हुए रथोंको सभामें आया हुआ देखकर हर्षित हुए । और यह क्याहै ? ऐसा कहकर विस्मय प्रगट करने लगे ॥ ३३ ॥

कल्किरुवाच । युवामादित्यसोमेन्द्रयमवैश्रवणाङ्गजौ ।
राजानौ लोकरक्षार्थमाविर्भूतौ विदन्त्यमी ॥ ३४ ॥

कल्किजी बोले:—सबही जानतेहैं कि, तुम दोनों राजाहो और संसारकी रक्षाके लिये पृथ्वीका पालन करनेको सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, यम और कुबेरके अंशसे अवतरेहो ॥ ३४ ॥

कालेनाच्छादिताकारौ मम सङ्गादिहोदितौ ।
युवां रथावारुहतां शक्रदत्तं ममाज्ञया ॥ ३५ ॥

इतने दिनोंतक तुम अपने २ आकारको छिपाए हुए रहतेथे । अब (मेरा अवतार होनेपर) हमारे साथ मिलनेके लिये यहांपर आएहो । अब तुम हमारी आज्ञाके अनुसार इन्द्रजीके दिये हुए इन रथोंपर चढो ॥ ३५॥

एवं वदति विश्वेशे पद्मनाथे सनातने ।
देवा ववर्षुः कुसुमैस्तुष्टुवुर्मुनयोऽग्रतः ॥ ३६ ॥

पद्माके स्वामी, संसारके पति कल्किजी इस प्रकारसे वचन कह रहेहैं कि, इसी समयमें देवतालोग फूलोंकी वर्षा करने लगे । और मुनिलोग सामने आय स्तोत्र करते हुए ॥ ३६ ॥

गङ्गावारिपरिक्लिन्नशिरोभूतिपरागवान् ।
शनैः पर्व्वतजासङ्गशिववत्पवनो ववौ ॥ ३७ ॥

तहांपर मन्द पवन चलने लगा, महादेवजीके जटाजूटमें गंगाजलके मिलनसे विभूति गीली होगईथी, सुमन्दपवन महादेवजीके ऐसे विभूति परागको उड़ा रहीथी । वही पवन भगवती पार्वतीजीके अंगको स्पर्श करके मंगलमय गुणको प्राप्त हुआथा ॥ ३७ ॥

तत्रायातः प्रमुदिततनुस्तप्तचामीकराभो
धर्म्मावासः सुरुचिरजटाचीरभृद्दण्डहस्तः ।
लोकातीतो निजतनुमरुन्नाशिताऽधर्म्मसंघ-
स्तेजोराशिः सनकसदृशो मस्करी पुष्कराक्षः ॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे चन्द्रवं-
शानुकीर्त्तनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इसी समयमें सनक मुनिके समान तेजःपुंजशाली एक दण्डधारी ब्रह्मचारी वहांपर आये। इनके देहसे तपाए हुए सुवर्णके समान झिलमिलाती हुई प्रभा निकल रहीथी। धर्मके भवनरूप वह जटाधारी ब्रह्मचारी मनोहर वस्त्र पहरे हुएथे। उन कमलदलकी नाईं नेत्रवाले अलौकिक महापुरुषकी देहसे सुखका अक्षय भाव दिखाई दे रहाथा। तिनके तेजःपुंजमय देहके प्रबल स्पर्शसे लोकके पापपुंज दूर होरहेथे ॥ ३८ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे चन्द्र-
सूर्यवंशानुकीर्त्तनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

तृतीयांशः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

शुक उवाच—अथ कल्किः समालोक्य सदसाम्पतिभिः सह ।
समुत्थाय ववन्दे तं पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ॥ १ ॥

शुकबोले:-उस भिक्षुकको देखतेही सभासदोंके साथ कल्किजी उठ खड़े हुए और पाद्य, अर्घ्य व आचमनीय आदिसे तिसकी पूजाकी ॥ १ ॥

वृद्धं संवेश्य तं भिक्षुं सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।
पप्रच्छ को भवानत्र मम भाग्यादिहागतः ॥ २ ॥

समस्त आश्रमके पूज्य उस भिक्षुकको बैठायके कल्किजीने पूछा आप हमारे सौभाग्यहीसे यहां आये हैं। आप कौन हैं? ॥ २ ॥

प्रायशो मानवा लोके लोकानां पारणेच्छया ।
चरन्ति सर्वसुहृदः पूर्णा विगतकल्मषाः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य पापरहितहैं, जो पूर्णहैं और सबके सुहृदहैं वे मनुष्य बहुधा लोकका उद्धार करनेके अर्थ पृथ्वीपर घूमतेहैं ॥ ३ ॥

मस्कर्य्युवाच–अहं कृतयुगं श्रीश तवादेशकरं परम् ।
तवाविर्भावविभवमीक्षणार्थमिहागतम् ॥ ४ ॥

मस्करीने कहाः–हे श्रीनाथ ! मैं आपकी आज्ञाका पालनेवाला सत्ययुगहूं । आपका यह अवतार और प्रभाव प्रत्यक्ष देखनेकी अभिलाषासे यहांपर आयाहूं ॥ ४ ॥

निरुपाधिर्भवान्कालः सोपाधित्वमुपागतः ।
क्षणदण्डलवाद्यङ्गैर्मायया रचितं त्वया ॥ ५ ॥

आप उपाधिरहित कालस्वरूपहैं । आप क्षण, दण्ड, लवादि अंगों करके इस समय सोपाधि हुएहैं । आपकीही मायासे समस्त जगत् उत्पन्न हुआहै॥५॥

पक्षाहोरात्रमासर्त्तुसंवत्सरयुगादयः ।
तवेक्षया चरन्त्येते मनवश्च चतुर्दश ॥ ६ ॥

आपके निकट रहनेसे पक्ष, दिनरात, मास, ऋतु, संवत्सर, युगादि और चौदह मनु यह समस्तही नियमित होकर घूमतेहैं ॥ ६ ॥

स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः ।
तृतीय उत्तमस्तस्माच्चतुर्थस्तामसः स्मृतः ॥ ७ ॥

पहला स्वायम्भुवनामक मनु, दूसरा स्वारोचिषनामक मनु, तीसरा उत्तमनामक मनु, चौथा तामसनामक मनु, ॥ ७ ॥

पञ्चमो रैवतः षष्ठश्चक्षुषः परिकीर्त्तितः ।
वैवस्वतः सप्तमो वै ततः सावर्णिरष्टमः ॥ ८ ॥

पांचवां रैवतनामक मनु, छठा चाक्षुष नामक मनु, सातवां वैवस्वत नामक मनु, आठवां सावर्णिनामक मनु ॥ ८ ॥

नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्ततः ।
दशमो धर्म्मसावर्णिरेकादशः स उच्यते ॥ ९ ॥

नवम दक्षसावर्णिनामक मनु, दशम ब्रह्मसावर्णिनामक मनु, एकादश धर्म्मसावर्णिनामक मनु ॥ ९ ॥

रुद्रसावर्णिकस्तत्र मनुर्वै द्वादशः स्मृतः ।
त्रयोदशमनुर्वेदसावर्णिर्लोकविश्रुतः ॥ १० ॥

द्वादश रुद्रसावर्णिनामक मनु, त्रयोदश सर्वत्र विख्यात वेदसावर्णिनामक मनु ॥ १० ॥

चतुर्दशेन्द्रसावर्णिरेते तव विभूतयः ।
यान्त्यायान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदतः ॥ ११ ॥

चतुर्दश इन्द्र सावर्णिनामक मनु । यह सबही आपकी विभूतिके स्वरूपहैं यह सभी नामरूपादि भेदसे गमन करते और प्रकाशित होतेहैं ॥ ११ ॥

द्वादशाब्दसहस्रेण देवानाञ्च चतुर्युगम् ।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं सहस्रगणितं मतम् ॥ १२ ॥

देवताओंके बारह हजार वर्षका एक चौकडी युग होताहै । ऐसेही चार हजार वर्षमें, तीन हजार वर्षमें, दो हजार वर्षमें और एक हजार वर्षमें (क्रम-से) सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग होताहै ॥ १२ ॥

तावच्छतानि चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि ।
संन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्यांशोऽपि तथाविधः ॥ १३ ॥

इन चारों युगोंकी पूर्वसन्ध्या क्रमानुसार चारशत, (४००) तीनशत (३००) दोशत (२००) और एकशत (१००) वर्षकी होतीहै । इस चौकडी युगकी शेषसंध्याका परिमाणभी ऐसाहीहै ॥ १३ ॥

एकसप्ततिकं तत्र युगं भुङ्क्ते मनुर्भुवि ।
मनूनामपि सर्वेषामेवं परिणतिर्भवेत् ॥
दिवा प्रजापतेस्तत्तु निशा सा परिकीर्त्तिता ॥ १४ ॥

प्रत्येक मनु इकहत्तर चौकडी युगतक पृथ्वीको भोगताहै । ऐसेही सब मनु बदलतेहैं । जितने कालतक चौदह मनुका अधिकार रहताहै, सो ब्रह्माका एक दिनहै । इस कालकी समान समय ब्रह्माकी एक रातहै ॥ १४ ॥

अहोरात्रश्च पक्षस्ते माससंवत्सरर्त्तवः ।
सदुपाधिकृतः कालो ब्रह्मणो जन्ममृत्युकृत् ॥ १५ ॥

इस प्रकारसे काल, दिनरात, पक्ष, मास, वत्सर, ऋतु आदि उपाधि धारण करके ब्रह्माकी जन्ममृत्यु आदिका विधान करतेहैं ॥ १५ ॥

शतसंवत्सरे ब्रह्मा लयं प्राप्नोति हि त्वयि ।
लयान्ते त्वन्नाभिमध्यादुत्थितः सृजति प्रभुः ॥ १६ ॥

जब ब्रह्माकी आयु शतवर्षकी होजातीहै तब वह आपमें लयको प्राप्त होजातेहैं । फिर प्रलयकालके बीतजानेपर प्रभु ब्रह्माजी आपके नाभिकमलसे उत्पन्न होतेहैं ॥ १६ ॥

तत्र कृतयुगान्तेऽहं कालं सद्धर्म्मपालकम् ।
कृतकृत्याः प्रजा यत्र तन्नाम्ना मां कृतं विदुः ॥ १७ ॥

इसके बीच मैं कालका (एक) अंश कृतयुगहूं । मेरे अधिकारमें उत्तम धर्म प्रतिपालित होताहै । हमसे प्रजा, धर्मानुष्ठान करके कृतकृत्य होतीहै, इसी कारण मैं कृतयुगनामसे विख्यात हुआहूं ॥ १७ ॥

इति तद्वच आश्रुत्य कल्किर्निजजनावृतः ।
प्रहर्षमतुलं लब्धा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् ॥ १८ ॥

सत्ययुगके यह वचन सुनकर कल्किजी अपने अनुचरोंके साथ अपार आनन्दको भोगते हुए ॥ १८ ॥

अवहित्थामुपालक्ष्य युगस्याह जनान्हितान् ।
योद्धुकामः कलेः पुर्य्यां त्हष्टो विशसने प्रभुः ॥ १९ ॥

कलिका संहार करनेमें समर्थ कल्किजी सत्ययुगके आगमनको देखकर कलिके अधिकारकी विशसन नामकपुरीमें संग्राम करनेकी अभिलाषा करके अपने पीछे आनेवाले मनुष्योंसे कहते हुए ॥ १९ ॥

गजरथतुरगान्नरांश्च योधान्कनकविचित्रविभूषणा-
चिताङ्गान्। धृतविविधवरास्त्रशस्त्रपूगान्युधिनिपु-
णान्गणयध्वमानयध्वम् ॥ २० ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कृतयुगा-
गमनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो वीरगण हाथीपर चढकर युद्ध करतेहैं, जो रथोंपर सवार होकर युद्ध करनेमें समर्थहैं, जो पयदल सेनाहैं, जिन लोगोंका शरीर सुवर्णके विचित्र विचित्र आभूषणोंसे भूषितहै, जो कि, अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण करनेमें समर्थहैं, जो लोग संग्राम करनेमें निपुणहैं ऐसे वीरोंको लाओ और तिनकी गिनती करो ॥ २० ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृती-
यांशे कृतयुगागमनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

तृतीयांशः।

षष्ठोऽध्यायः।

सूत उवाच—इति तौ मरुदेवापी श्रुत्वा कल्केर्वचः पुरः।
कृतोद्वाहौ रथारूढौ समायातौ महाभुजौ ॥ १ ॥

सूतजी बोलेः—मरु और देवापिने (इस्से पहले कल्किजीकी आज्ञासे) विवाह करलिया था। इस समय वह दोनों महाबाहु वीर पुरुष दिव्य रथपर चढे हुए वहांपर आये ॥ १ ॥

नानायुधधरैः सैन्यैरावृतौ शूरमानिनौ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ दंशितौ बद्धहस्तकौ ॥ २ ॥

वे दोनों अगणित सेनाको साथ लिये और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये हुयेथे। स्वयं अपने महावीर होनेका अभिमान करनेवाले, हाथमें और सर्व शरीरको वर्मसे ढके हुए और उंगलियोंमें गुश्ताने लगाये हुएहैं ॥ २ ॥

काष्र्णायसशिरस्त्राणौ धनुर्द्धरधुरन्धरौ ।
अक्षौहिणीभिः षड्भिस्तु कम्पयन्तौ भुवं भरैः ॥ ३ ॥

उनके मस्तकपर कालेरंगका शिरस्त्राण (कूंगे, पागडी आदि) शोभायमानहै । वह सबसे उत्तम धनुष धारण करनेवाले हैं । वह छः अक्षौहिणी सेनासे पृथ्वीको कम्पायमान करतेहैं ॥ ३ ॥

विशाखयूपभूपस्तु गजलक्षैः समावृतः ।
अश्वैः सहस्रनियुतैः रथैः सप्तसहस्रकैः ॥ ४ ॥

विशाखयूपनामक राजाके साथ एक लाख हाथी, एक करोड अश्व और सात हजार रथ (१) थे ॥ ४ ॥

---

(१) प्राचीन समयमें रथका व्यवहार था । जैसे आजकल सवारियोंको घोड़े चलाते हैं। वर्णन देखकर ज्ञात होताहै कि,तबभी घोड़ेही रथोंमें जुततेथे। रथका आकार और उसका व्यवहार कैसा था,सो बहुत चेष्टा करनेसेभी निर्णय नहीं होसका । ऐसा प्रमाण पाया जाताहै कि, चार हजार वर्ष पहलेभी वरन् सृष्टिकी आदिमेंभी रथका व्यवहार होता था । ऋग्वेदके चौथे मण्डल, दूसरे सूक्तमें अग्निदेवताके रथका वर्णन है । हम लोग तो वेदोंको अनादि मानतेहैं, परन्तु विलायतके पंडित लोगभी ऋग्वेदको ४००० हजार वर्षका पुराना बतातेहैं । यथाः—

अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिंद्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥ (४ ऋचा)

"हे अग्ने ! तुम्हारे अश्व उत्तम, रथ उत्तम और धन उत्तमहै । इस मृत्युलोकवासियोंमें जिस यजमानका हव्य उत्तम है, तिसके अर्थ अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्राविष्णू और मरुद्गण और दोनों अश्विनीकुमारोंको लाओ ।" (श्रीयुक्तरमेश्चन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर)

इस ऋचामें "सुरथः" इस शब्दमें रथका नाम दिखाई देताहै । ऋग्वेदके समय एक श्रेणिके कारीगर केवल रथही बनाया करते थे ऋग्वेदमें लिखा है । यथाः—

अधाह्यद्वयमग्ने त्वाया पद्भिर्हस्तेभिश्चक्रमा तनुभिः ।
रथं न क्रंतो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्यआशुषाणाः ॥
(ऋग्वेदसंहिता, चतुर्थमण्डल, २ सूक्त, १४ ऋचा)

"हे अग्ने ! जिस्से कि, हम लोगभी तुम्हारी कामनासे हस्त, पद और शरीरसे (कार्य करते हैं) अतएव शिल्पिगण (कारीगर) जिस प्रकारसे रथ बनातेहैं, वैसेही यज्ञरत, शोभायमान कर्मवाले लोगोंने बाहुद्वारा (काष्ठ) मन्थन करके तुमको उत्पन्न किया ।" (श्रीयुतरमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर) औरभीः—

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णो ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नुचिद्यथा न सख्या वियोषद सन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥
(ऋग्वेदसंहिता, चतुर्थमण्डल, १६ सूक्त, २० ऋचा)

" जिस्से हमारी मित्रता अलग न हो, जिस्से उग्र और शरीररक्षक हमारे रक्षक होवें हम उसी प्रकारका आचरण करेंगे । ' भृगुगण (६) जिस प्रकार रथ बनातेहैं ' वैसेही अभीष्ट वर्षी और नित्य तरुण इन्द्रके लिये स्तोत्र रचना करेंगे । " श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर । टीका–" (६) सायनने ' भृगवः ' अर्थसे दीप्तिमान् सूत्रधारगण किया है । " (श्रीरमेशचन्द्र दत्त C. S कमिश्नर)

इन दो ऋचाओंमें रथ बनानेवाले शिल्पी और सूत्रधारलोगोंका वर्णन है । इस्से ज्ञात होताहै कि, उस समय रथका बहुत प्रचार और बहुतही व्यवहार था । ऐसा अनुमान करना बहुत अनुचित नहीं है । सायनाचार्यके मतानुसार भृगुशब्दका सूत्रधार अर्थ करनेसे ऐसा ज्ञात होताहै कि, उस समय काष्ठसे रथ बनताथा । काष्ठसे रथका बनाया जाना अनुमान करनेसे ऐसा निर्देश असंगत ज्ञात नहीं होता । युद्धके समयभी ऐसे रथका व्यवहार होताथा । युद्धका रथ गोचर्मसे मढा जाताथा । यथाः–

वनस्पते वीड्वंगो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीलय स्वास्थाता ते जयतु जित्वानि ॥

(ऋग्वेदसंहिता, ६ मण्डल, ४७ सूक्त २६ ऋक्)

" हे वनस्पति ! (से बने हुए रथ) तुम्हारे समस्त अवयव (अंग) दृढ हों, तुम हमारे बन्धु और रक्षक होवो, तुम श्रेष्ठ वीरगणों करके युक्त होओ । ' तुम गोद्वारा सन्नद्ध हो (८), तुम हम लोगोंको सुदृढ करो तुम्हारे ऊपर सवार हुआ रथी मानो सरलतासे शत्रुके जीतनेको समर्थ होवै । " श्रीयुक्तरमेशचन्द्रदत्त C. S. वर्द्धमान टीका–" (८) इसका अर्थ गोद्वारा आकृष्ट (खिंचा हुआ)ऐसा होसकताहै । परन्तु सायनाचार्यने इस ऋक्में और आगेके ऋक्में गोअर्थसे गोचर्म किया है । अर्थात् रथ गोचर्मसे आवृत है । " (श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर)

सायनाचार्यका अर्थही ठीक मालूम होता है । क्योंकि और दूसरी ऋचाओंमें ऐसा प्रमाण पाया जाता है कि, घोडे रथको खैंचते हैं । यथाः–

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुसारथिः ।
अभीशूनां महिमानं मनायतमनः पश्चादनु यच्छंति रश्मयः ॥

(ऋग्वेद संहिता, ६ मंडल, पंचसप्तति सूक्त ६ ऋक्)

" सुसारथि रथमें स्थित रहकर पुरस्थित घोडोंको जहाँ जहाँ लेजाने की इच्छा करता है, वहां ही लेजाता है । रश्मिसमूह (लगाम) (अश्वके पीछे रहकर इच्छानुसार नियमित करताहै, उनकी महिमा (का) स्तोत्र करो । "–(श्रीयुक्त रमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर)

इस ऋचाके पढनेसे साफ मालूम होता है घोडे रथको खैंचतेथे, सारथी घोडोंको चलाताथा । उस समयके बहुत पहले रथके व्यवहारके नियमका चलन हुआ होगा; यदि रथ नया पदार्थ होता, रथके सारथीके गुणागुण जाननेकी ऐसी सम्भावना नहीं । जब रथका व्यवहार उन्नति पर पहुँचा, तब क्रमसे सारथीके दोषगुण लोगोंने जानेथे, इसीकारण सुसारथि कहा गया है, ऐसा अनुमान करना असंगत नहीं है । विशेष करके ऋग्वेदके अनेक अंशोंमें रथका वर्णन है । रथारोही योधाके अस्त्रशस्त्र रथमें रक्खे जातेथे । यथाः–

पदातिभिर्द्विलक्षैश्च सन्नद्धैर्धृतकार्मुकैः ।
वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैः सर्वतः परिवारितः ॥ ५ ॥

तिसके साथ दोलाख पयदल सेना सजीहुई धनुष धारण किये आईथी पवनसे उनकी पगडियें और दुपट्टे काँपतेथे ॥ ५ ॥

रुधिराश्वसहस्राणां पञ्चाशद्भिर्महारथैः ।
गजैर्दशशतैर्मत्तैर्नवलक्षैर्वृतो बभौ ॥ ६ ॥

इसके सिवाय उसके साथ पचास हजार लालरंगके घोडे और दश हजार मतवाले हाथी, बहुतसे महारथी और नौलाख पयदल सेनाथी ॥ ६ ॥

अक्षौहिणीभिर्दशभिः कल्किः परपुञ्जयः ।
समावृतस्तथा देवैरेवमिन्द्रो दिवि स्वराट् ॥ ७ ॥

रथ वाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म्म ।
तत्रा रथमुपशग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्य मानाः ॥
(ऋग्वेदसंहिता, ६ मंडल, पंचसप्तति सूक्त ८ ऋक्)

".हव्य जिस प्रकारे अग्निको बढ़ाता है, वैसेही इस राजाका रथ वाहित धन इसे बढ़ावै रथमें इसके अस्त्रकवचादि रहते हैं, हमलोग सदा प्रसन्न मनसे उस रथकारी रथके समीप गमन करें।"– (श्रीयुतरमेशचन्द्रदत्त C. S, कमिश्नर)

इन के कई एक ऋचाओंमें रथमें एक प्रकारका स्थूल वृत्तान्त पाया जाता है ।

(१) रथके बनानेवाले कारीगरथे ।
(२) रथ बनानेवाले सूत्रधारोंको ' भुगु ' कहतेथे ।
(३) अतएव ऐसा अनुमान किया जाता है कि, रथ काठका बनताथा ।
(४) युद्धमें रथका व्यवहार होताथा ।
(५) युद्धके रथमें गोचर्मका आच्छादन रहताथा ।
(६) घोड़े रथको खींचतेथे ।
(७)सारथी रथको चलातेथे ।
(८) लगामसे घोडे रथमें जुड़ते और चलतेथे ।
(९) रथके भीतरे लडवैयेके अस्त्रशस्त्र रक्खेजातेथे ।

पीछेकी ऋचाओंमें प्रमाण है कि रथकी रक्षाके लिये रक्षक नियत होताथा।अब यही पिछला अनुमान किया जाता है कि, उस समय बहुतायतसे रथका व्यवहार होताथा और आगे उसकी विशेष उन्नति हुईथी । फिर एकाएक यह लोप होगया । उपनिषद् पुराण और काव्योंमें रथोंका विशेष वर्णन पाया जाता है । अतएव रथका व्यवहार भारतवर्षमें अति प्राचीन कालसे होताथा । यदि नई रोशनीवाले महाशयोंके मतसे ऋग्वेदको ४००० वर्षका माना जाय तौभी प्रमाणित होता है कि, ४००० वर्ष पहलेभी हिन्दुस्थानमें रथ बनतेथे (ग्रंथकार)

शत्रुके पुरको जीतनेवाले कल्किजी, इस प्रकारसे देवलोकमें स्थित हुए देवराज इन्द्रके समान दश अक्षौहिणी सेनासे युक्त होकर शोभायमान होने लगे ॥ ७ ॥

भ्रातृपुत्रसुहृद्भिश्च मुदितः सैनिकैर्वृतः ।
ययौ दिग्विजयाकाङ्क्षी जगतामीश्वरः प्रभुः ॥ ८ ॥

इस प्रकार भ्राता, पुत्र, सुहृद् और सेनाके समूहसे युक्त होकर जगत्के ईश्वर प्रभु कल्किजीने दिग्विजय करनेकी अभिलाषासे यात्रा करी ॥ ८ ॥

काले तस्मिन्द्विजो भूत्वा धर्म्मः परिजनैः सह ।
समाजगाम कलिना बलिनापि निराकृतः ॥ ९ ॥

बलवान् कलिके द्वारा निगृहीत हुआ धर्मभी इसी समय ब्राह्मणका वेश धारण करके उस स्थानमें आया ॥ ९ ॥

ऋतं प्रसादमभयं सुखं मुदमथ स्वयम् ।
योगमर्थं ततोऽदर्पं स्मृतिं क्षेमं प्रतिश्रयम् ॥ १० ॥

उसके सेवकोंमें ऋत, प्रसाद, अभय, सुख, प्रीति, योग, अर्थ, अनहंकार, स्मृति, क्षेम और प्रतिश्रय ॥ १० ॥

नरनारायणौ चोभौ हरेरंशौ तपोव्रतौ ।
धर्म्मस्त्वेतान्समादाय पुत्रान्स्त्रीश्चागतस्त्वरन् ॥ ११ ॥

नारायणजीके अंश नरनारायणथे, जो कि, तपमें निष्ठहैं, इन सबको ग्रहण करके और स्त्रीपुत्र लेकर धर्म शीघ्रतासे उसस्थानमें आया ॥ ११ ॥

श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ।
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा च ह्रीर्मूर्तिर्धर्मपालकाः ॥ १२ ॥

श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति तुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, धर्मपालक यह मूर्त्ति ॥ १२ ॥

एतांस्तेन सहायाता निजबन्धुगणैः सह ।
कल्किमालोकितुं तत्र निजकार्य्यं निवेदितुम् ॥ १३ ॥

अपने बन्धुओंसे युक्त हो कल्किजीका दर्शन करनेके लिये और अपने कार्यको निवेदन करनेके निमित्त उस स्थानमें आया ॥ १३ ॥

कल्किर्द्विजं समासाद्य पूजयित्वा यथाविधि ।
प्रोवाच विनयापन्नः कस्त्वं कस्मादिहागतः ॥ १४ ॥

कल्किजीने ब्राह्मणका दर्शन करके विनयसहित विधिविधानसे उनकी पूजाकी और कहाः—आप कौनहैं ? कहाँसे आते हैं ॥ १४ ॥

स्त्रीभिः पुत्रैश्च सहितः क्षीणपुण्य इव ग्रहः ।
कस्य वा विषयाद्राज्ञस्तत्तत्त्वं वद तावतः ॥ १५ ॥

आप पुण्यक्षीणहुए पुरुषके समान स्त्री और पुत्रोंके साथ किस राजाके अधिकारमेंसे आयेहैं ? सो ठीक २ हमसे कहिये ॥ १५ ॥

पुत्राः स्त्रियश्च ते दीना हीनस्वबलपौरुषाः ।
वैष्णवाः साधवो यद्वत्पाखण्डैश्च तिरस्कृताः ॥ १६ ॥

पाखण्ड करके पराजित विष्णु परायण साधुओंके समान आपके पुत्र, स्त्रियें आदि जन बल पौरुषहीन और अत्यन्त कातर हुएहैं ॥ १६ ॥

कल्केरिति वचः श्रुत्वा धर्म्मः शर्म्म निजं स्मरन् ।
प्रोवाच कमलानाथमनाथस्त्वतिकातरः ॥ १७ ॥

अनाथ और अतिकातर हुए धर्मने, कमलाके पति कल्किजीका यह वचन सुनकर अपने मंगलकेलिये उत्तर दिया ॥ १७ ॥

पुत्रैः स्त्रीभिर्निजजनैः कृताञ्जलिपुटैर्हरिम् ।
स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा मुदितं तं दयापरम् ॥ १८ ॥

पहले तो वह पुत्र, स्त्री व अनुचरोंके साथ हाथ जोडे हुए आनन्दमय दयामय नारायणजीकी पूजा करके नमस्कार कर स्तुति करनेलगा ॥ १८ ॥

धर्म्म उवाच—शृणु कल्के ममाख्यानं धर्म्मोऽहं ब्रह्मरूपिणः ।
तव वक्षःस्थलाज्जातः कामदः सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥

इसके उपरान्त धर्मने कहा । हे कल्के ! अपना वृत्तान्त कहताहूं श्रवण

कीजिये। पितामह (ब्रह्मा) रूपी आपकी छातीसे मैं उत्पन्न हुआहूं। मेरा नाम धर्म है। मैं समस्त प्राणियोंके अभिप्रायको सिद्ध करताहूं ॥ १९ ॥

देवानामग्रणीर्हव्यकव्यानां कामधुग्विभुः ।
तवाज्ञया चराम्येव साधुकीर्तिकृदन्वहम् ॥ २० ॥

देवताओंमें प्रथम गिन्नेके योग्य मैं यज्ञके मध्य हव्य कव्यके अंशका भागीहूं । मैं यज्ञके फलको दान करके साधुओंकी कामनाको पूर्ण किया करताहूं। आपकी आज्ञाके अनुसार मैं सदा साधुओंका कार्य करता हुआ विचरण करताहूं ॥ २० ॥

सोऽहं कालेन बलिना कलिनापि निराकृतः ।
शककाम्बोजशबरैः सर्व्वैरावासवासिना ॥ २१ ॥

इस समय शक (१) कम्बोज (२) शबर (३) आदि म्लेच्छ जातियें कलिके अधिकारमें वास करतीहैं। उस बलवान् कलिकरके मैं कालके क्रमसे पराजित हुआहूं ॥ २१ ॥

---

(१) शक–शकि (Sacœ) वासिथिय (Scythian) जाति है शकजातिकी आदिमें वास भूमिका नाम शाकद्वीप है । ग्रीक इतिहासके जाननेवाले और भूगोलवेत्ता शाकद्वीपको शाकताई और सिथिया (Seythia) कहा करतेथे । प्राचीन इतिहासके जाननेवाला ष्ट्रेवा कहताहै कि, मध्य एशियाके अन्तर्गत कास्पियनह्रदके पूर्वमें बसे हुए देशका नाम सिथिया है ॥ (राज्यस्थान प्रथमखण्ड, २१ । २२ पृष्ठ) परन्तु प्राचीन भूगोलिक टलेमीके मतसे शक अर्थात् शकाई (Sakai) और सिथिया (Scythia दो भिन्न देश हैं । शकाई देशकी पश्चिम सीमा साग्डियानई (Sogdianoi) सिथिया देशकी इयाकज- र्तिस (lixartes) नदीतक है, पूर्वसीमा सिथियादेकी सीमावाली अस्कटंकस (Askatangkas) पर्वत श्रेणी और हिमालय (Tmoos) पर्वत है और दक्षिणसीमा हिमालय पर्वत है। (Ptolbemy's Ancient India, PP. 283, 284)

(२) काम्बोज–अनार्य जाति । ग्रिफिथ साहब अनुमान करतेहैं कि, आरोचेसिया (Arochasia के निवासीही काम्बोजहैं । डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र (एल्,एल्, डी, सी, आई, ई,) कहतेहैं कि, प्राचीन काबुल राज्यही काम्बोज देशहै । और हिन्दूकुश पर्वतके रहवासीही काम्बोज जातिहैं । Indo Aryans Vol 1 PP. 172 332) म्याक्रीण्डल साहब कहते हैं टेलेमिका आराखोसिया (Arakhosia)वर्तमान अफगानिस्तानके पूर्वांश सिन्धुनदतक और उत्तरसीमा धुर (Chur) पर्वतहै । अर्थात् हिन्दूकुश पर्वतके पश्चिमांशतक फैली हुईहै। (Ptolemy's Ancient India, P. 317) ऐसा होतो डाक्टर राजेन्द्र- लाल मित्रकी मीमांसाही ठीकहैं । क्योंकि , काबुल वा अफगानिस्तान एकही देशहै और इन्दुकुश पर्वत का नामभी मिलताहै । परन्तु " वाल्मीकि और तत्सामयिक भूवृत्तान्त" नामक ग्रंथका बनानेवाला अनु-

अधुना तेऽखिलाधार ! पादमूलमुपागताः ।
यथा संसारकालाग्निसंतप्ताः साधवोऽर्दिताः ॥ २२ ॥

हे जगदाधार ! इस समय साधुलोग संसाररूप कालके अग्निसे संतापित होकर पीडित हुएहैं । इसी कारण मैं आपके चरण समीप आयाहूं ॥ २२ ॥

इति वाग्भिरपूर्वाभिर्धर्म्मेण परितोषितः ।
कल्किः कल्कहरः श्रीमानाह संहर्षयञ्छनैः ॥ २३ ॥

धर्मके यह अपूर्व वचन सुनकर पापका नाश करनेवाले श्रीमान् कल्किजी सबको हर्ष उपजाते हुए धीरे २ बोले ॥ २३ ॥

धर्म्म ! कृतयुगं पश्य मरुं चण्डांशुवंशजम् ।
मां जानासि यथा जातं धातृप्रार्थितविग्रहम् ॥ २४ ॥

हे धर्म ! यह देखो, सत्ययुग आपहुँचाहै । इस सूर्यवंशी राजाका नाम मरुहै । मैंने ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार जिसप्रकार शरीर धारण कियाहै सो तुम जानतेहो ॥ २४ ॥

कीटकैर्बौद्धदलनमिति मत्वा सुखी भव ।
अवैष्णवानामन्येषां तवोपद्रवकारिणाम् ।

मान करताहै कि, यह काम्बे उपसागरके निकटका देश होगा । परन्तु हम इस मतको ठीक नहीं समझते ।

(३) शबर–यह अनार्य जाति हिन्दोस्थानके पर्वतदेशोंके बासीहैं । यह लोग मोरके पंखोंको एक अच्छा गहना समझतेहैं । बाणपुरसे कटकतक खुरदा नामक स्थानके जंगलमें शौर और (Sours) गोदावरी नदीके दुतर्फा जंगलमें शौर (Souras) नामक दो अनार्य जातिहैं । क्या यही प्राचीन शबरहैं ?

कनिंहाम साहब टलेमीके शबराई (Sabaral) जातिको प्लिनिकी शुयारि (Suari) जातिके रूपसे ग्रहण करके प्राचीन अनार्य शबर जातिको निश्चय किया है । कानिंहाम कहतेहैं कि, इस जातिका कोई नियतवासस्थान नहीं है, यह लोग बन और जंगलोंमें घूमा करतेहैं । दक्षिणदिशामें पेन्नार नदीतक इनका वास है । इन शबर वा शुयार (Suars) जातिको अनेक लोग ग्वालियरके दक्षिण पश्चिममें नारोयर (नरवर ? और दक्षिण राजपूतानाके शुरियस (Surrius) नामसे परिचित बतातेहैं । यूलसाहब दक्षिण दिशामें शम्भल पुरतक इनका वासस्थान निश्चय करतेहैं । (Ptolemy's Ancient India P.175)

जिघांसुर्यामि सेनाभिश्वर गां त्वं विनिर्भयः ॥ २५ ॥

कीटक देशमें बौद्धोंका दमन किया, तिसको जानकर तुम सुखीहोगे। जो वैष्णव नहींहैं, जो लोग तुम्हारे प्रति उपद्रव किया करतेहैं, तिनका सहार करनेके लिये मैं सेनाके सहित यात्रा करताहूं, इस समय तुम चित्तमें निर्भय होकर पृथ्वीमें विचरणकरो ॥ २५ ॥

का भीतिस्ते क मोहोऽस्ति यज्ञदानतपोव्रतैः ।
सहितैः संचर विभो ! मयि सत्ये व्युपस्थिते ॥ २६ ॥

जब कि, मैं आ पहुंचाहूं, जब कि, सत्ययुग आगया है, तब तुमको क्या भयहै ? तुम किसकारण मोहसे व्याकुल हुएहो । इस समय तुम यज्ञदान और व्रतके साथ विचरणकरो ॥ २६ ॥

अहं यामि त्वया गच्छ स्वपुत्रैर्बान्धवैः सह ।
दिशां जयार्थं त्वं शत्रुनिग्रहार्थं जगत्प्रिय ॥ २७ ॥

हे धम ! तुम जगत्के प्यारे हो, तुम पुत्रोंके और बन्धुओंके साथ दिग्विजयके लिये और शत्रुओंका दमन करनेके लिये यात्राकरो । मैंभी तुम्हारे साथ चलताहूं ॥ २७ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा धर्मः परमहर्षितः ।
गन्तुं कृतमतिस्तेन आधिपत्यममुं स्मरन् ॥ २८ ॥

कल्किजीके यह वचन सुन अपार आनन्दको प्राप्तहो धर्मने अपने स्वामीपनको स्मरण किया और कल्किजीके साथ गमन करनेकी अभिलाषाकी ॥ २८ ॥

सिद्धाश्रमे निजजनानवस्थाप्य स्त्रियश्च ताः ॥ २९ ॥

यात्राके समय धर्म स्त्री और पुत्रोंको सिद्धाश्रम(१) में रखगया ॥ २९ ॥

सन्नद्धः साधुसत्कारैर्वेदब्रह्ममहारथः ।
नानाशास्त्रान्वेषणेषु संकल्पवरकार्मुकः ॥ ३० ॥

जिस समय युद्ध करनेके लिये धर्म चला तब साधुओंका सत्कार उसका संग्राम वेश हुआ । वेद और ब्रह्म महारथके रूपसे आये । अनेक अनेक शास्त्रोंके खोजने (विचारने) के विषयमें जो संकल्पहै, वह धर्मका धनुष हुआ ॥

सप्तस्वराश्वो भूदेवसारथिर्वह्निराश्रयः ।
क्रियाभेदबलोपेतः प्रययौ धर्म्मनायकः ॥ ३१ ॥

वेदके सातस्वर (२) तिसके रथके सात घोडे हुए ब्राह्मण उसके सारथी हुए । अग्नि तिसका आश्रय अर्थात् उसके बैठनेका आसन हुआ । इस प्रकारसे धर्मरूप सेनानी अनेक प्रकारके क्रियानुष्ठान रूप बडे बलसे युक्त होकर यात्राकरी ॥ ३१ ॥

---

(१) सिद्धाश्रम–तीर्थविशेष । सिद्धाश्रम दोहैं । एक विश्वामित्रजीका, दूसरा गणेशजीका । शौनकादि मुनियोंको समस्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराण सुनाकर सूतजी कहतेहैं:—

युष्माकं पादपद्मानि दृष्ट्वा पुण्यानि शौनक । अथ सिद्धाश्रमं यामि यत्र देवो गणेश्वरः ॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३३ अध्याय)

इससिद्धाश्रमका दूसरा नाम नारायणाश्रम है । यही सूत कहते हैं:—

विदाय देहि विप्रेन्द्र यामि नारायणाश्रमम् ।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३३ अ०)

यह दूसरा सिद्धाश्रमतीर्थ हिमालयपर्वत पर स्थित है । हरिद्वारतीर्थ भी हिमालयमें है । उस स्थानमें भगवान् कल्किजीके निकट धर्म आया । इस कारण जान पड़ता है कि, हरिद्वारके निकटका कोई स्थान यह सिद्धाश्रम होगा ।

(२) स्वरके साथ वेद गाया जाता है । सामवेदमें गेय गान, उह्यगानादि दिखाई देते हैं । जिन स्वरोंके संयोगसे यह वैदिकगान गाए जाते हैं इनको वैदिकस्वर कहते हैं । वेदमें प्रयोग करनेसे वैदिक और लोकमें प्रयोग करनेसे लौकिक कहते तो हैं परन्तु मूल सप्तस्वर एक हैं; वैदिक और लौकिक भेदसे मूलस्वरोंमें पृथकूता नहीं है । महर्षि पाणिनिने शिक्षाग्रन्थमें कहा है:–

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः । ह्रस्वो दीर्घ प्लुत इति कालतो नियमा अचि ॥
उदात्तौ निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ । स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥

(पाणिनीयशिक्षा, ११ । १२ श्लोक)

उदात्त, अनुदात्त और स्वरित यह तीन स्वरहैं । निषाद और गान्धार, उदात्त, ऋषभ और

यज्ञदानतपःपात्रैर्यमैश्च नियमैर्वृतः ।
खशकाम्बोजकान्सर्वाञ्छबरान्बर्बरानपि ॥ ३२ ॥

यज्ञ, दान, तप, यम, नियम आदि पात्रोंसे युक्त होकर इस प्रकार कल्किजी खश (१) काम्बोज, शबर बर्बरादि म्लेच्छोंको ॥ ३२ ॥

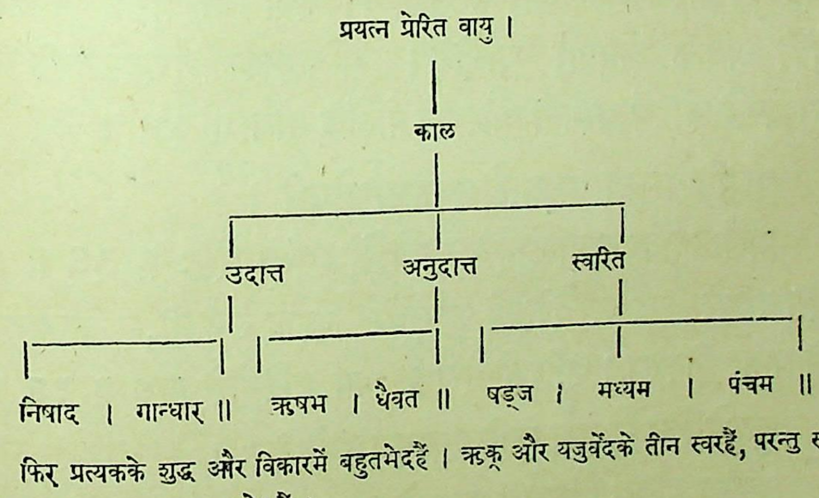
और धैवत अनुदात्त और स्वरितसे षड्ज, मध्यम और पंचमस्वर उत्पन्न होताहै । उदात्त' अनुदात्त और स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत इन तीन भागोंमें विभक्तथे ।

संगीतविद्यामें अहोबल बड़े होशियारथे । संस्कृत भाषामें तिनका बनाया हुआ " संगीत पारिजात " नामक एक संगीत ग्रंथहै । इस पुस्तकमें कहागयाहैः—

रञ्जयंति स्वतः स्वान्तं श्रोतॄणामिति ते स्वराः । षड्जर्षभौ च गान्धारस्तथा मध्यमपञ्चमौ ॥ धैवतश्च निषादोऽयमिति नामभिरीरिताः । शुद्धत्वविकृतत्वाभ्यां स्वरा द्वेधा प्रकीर्त्तिताः ॥

(संगीतपारिजात ६३ । ६४)

स्वरसे स्वभावकरकेही श्रवण करनेवालोंका चित्त प्रसन्न होजाताहै । षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन सात स्वरोंकेभी दो भागहैं; शुद्ध और विकृत । उनका लिखना निष्प्रयोजनहै । किसस्वरमें किसस्वरका अधिकारहै सो कहा जाताहैः—



फिर प्रत्यकके शुद्ध और विकारमें बहुतभेदहैं । ऋक् और यजुर्वेदके तीन स्वरहैं, परन्तु सामवेदमें पांच या सात स्वरका व्यवहार होताहैं ।

(१) खश—अनार्यजातिविशेष । यह जाति कश्मीरके बगली पर्वतों पर वासकरतीहै।(wilsons' Vishnunpuran) खशजातिका वर्त्तमान नाम खशियाहै (Khasiahs) यहलोग भोट (भोटिया) जातिके निकट रहतेहैं । गढ़वाल व कुमायूंके पहाडोंपर और अलकनन्दा व काली गंगानदीके बीचपहाडीदेशोंमें यह लोग रहतेहैं ।—(The Wild Tridesof India.P.123) (ग्रंथकार)

जेतुं काल्किर्ययौ यत्र कलेरावासमीप्सितम् ।
भूतावासबलोपेतं सारमेयवराकुलम् ॥ ३३ ॥

पराजित करनेके लिये, कलिके मनमाने स्थानमें गये । कलिका वासस्थान भूतोंका आवासरूप होनेसे दृढ होगयाथा, इस स्थानके चारों ओर कुत्ते बराबर भूंकरहेथे ॥ ३३ ॥

गोमांसपूतिगन्धाढ्यं काकोलूकशिवावृतम् ।
स्त्रीणां दुर्द्यूतकलहविवादव्यसनाश्रयम् ॥ ३४ ॥

इस स्थानमें गोमांसकी दुर्गन्ध आरहीथी; इस स्थानको काग और उल्लू घेर रहे थे । यह स्थान नारियोंके क्लेश, विवाद झगडे) अनेक प्रकारके व्यसन (लतें) और जुआ खेलनेका आश्रय था ॥ ३४ ॥

घोरं जगद्भयकरं कामिनीस्वामिनं गृहम् ।
कलिः श्रुत्वोद्यमं कल्केः पुत्रपौत्रवृतः क्रुधा ॥ ३५ ॥

यह पुरी घोररूपवाली और जगत्को भयदाईथी । इस पुरीमें सबही कोई स्त्रियोंकी आज्ञाके अनुसार चलतेथे । कल्किजीकी युद्धयात्राकी तयारि सुनकर कलि क्रोधमें भरगया और बेटे पोतोंके साथ ॥ ३५ ॥

पुराद्विशसनात्प्रायात्पेचकाक्षरथोपरि ।
धर्मः कलिं समालोक्य ऋषिभिः परिवारितः ॥ ३६ ॥

ऐसे रथपर चढकर जिसमें उल्लूकी ध्वजा लगीथी, विशसननामक नगरसे बाहर निकला । कलिको देखकर धर्म ऋषियोंके साथ ॥ ३६ ॥

युयुधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदितः ।
ऋतेन दम्भः संग्रामे प्रसादो लोभमाह्वयत् ॥ ३७ ॥

कल्किजीकी आज्ञाके अनुसार तिसके साथ युद्ध करना आरंभ करता हुआ, ऋतके साथ दम्भका यद्ध होने लगा । प्रसादने लोभको यद्ध करनेके लिये ललकारा ॥ ३७ ॥

समयादभयं क्रोधो भयं सुखमुपाययौ ।
निरयो मुदमासाद्य युयुधे विविधायुधैः ॥ ३८ ॥

अभयके साथ क्रोधका और सुखके साथ भयका संग्राम होनेलगा । प्रीतिके निकट आयकर निरय अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे युद्ध करनेलगा ॥३८॥

आधिर्योगेन च व्याधिः क्षेमेण च बलीयसा ।
प्रश्रयेण तथा ग्लानिर्जरा स्मृतिमुपाह्वयत् ॥ ३९ ॥

आधि योगके सहित और व्याधि बलवान् क्षेमके साथ संग्राम करने लगी ग्लानि प्रश्रयके साथ युद्ध करनेलगी, जराने स्मृतिके साथ युद्धकिया ॥३९॥

एवं वृत्तो महाघोरो युद्धः परमदारुणः ।
तं द्रष्टुमागता देवा ब्रह्माद्याः खे विभूतिभिः ॥ ४० ॥

इसप्रकारसे परमदारुण महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ, ब्रह्मादि देवता उस युद्धके देखनेको अपनी २ विभूतिके साथ आकाशमार्गमें आये ॥ ४० ॥

मरुः खशैश्च काम्बोजैर्युयुधे भीमविक्रमैः ।
देवापिः समरे चौनैर्बर्बरैस्तद्गणैरपि ॥ ४१ ॥

भयंकर पराक्रमवाले खश और काम्बोज लोगोंके साथ मरु संग्राम करने लगा, चीन (चोल) बर्बर और इनके सेवकोंके साथ देवापिने संग्राम किया ॥ ४१ ॥

विशाखयूपभूपालः पुलिन्दैः श्वपचैः सह ।
युयुधे विविधैः शस्त्रैरस्त्रैर्दिव्यैर्महाप्रभैः ॥ ४२ ॥

राजा विशाखयूपने पुलिन्द श्वपच लोगोंके साथ महा प्रभावशाली विविध दिव्य अस्त्र समूहोंसे संग्राम किया ॥ ४२ ॥

कल्किः कोकविकोकाभ्यां वाहिनीभिर्वरायुधैः ।
तौ तु कोकविकोकौ च ब्रह्मणो वरदर्पितौ ॥ ४३ ॥

सेनाके सहित कल्किजी विविध उत्तम अस्त्र शस्त्र चलायकर कोक और विकोकके साथ संग्राम करनेलगे । यह कोक और विकोक ब्रह्माजीसे वरदान पाकर अत्यन्त दर्पित हुएथे ॥ ४३ ॥

भ्रातरौ दानवश्रेष्ठौ मत्तौ युद्धविशारदौ ।
एकरूपौ महासत्त्वौ देवानां भयवर्धनौ ॥ ४४ ॥

यह दोनों भ्राता दानवोंमें श्रेष्ठ अत्यन्त उन्मत्त और संग्राम करनेमें उत्तम चतुरथे परस्पर यह दोनों भ्राता एक आत्मा और महाबलशालीथे देवताओं-कोभी भय पहुंचाने वालेथे ॥ ४४ ॥

पदातिकौ गदाहस्तौ वज्राङ्गौ जयिनौ दिशाम् ।
शुम्भैः परिवृतौ मृत्युजितावेकत्र योधनात् ॥ ४५ ॥

इनका शरीर वज्रके समान कठिन था, दिग्विजयीथे । यह दोनों भ्राता इकट्ठे होकर संग्राम करैं तो मृत्युकोभी जीत सकतेहैं । यह दोनों महावीर सेनासे युक्त होकर गदा हाथमें ले पैदलही युद्ध करना आरम्भ करते हुए ॥ ४५ ॥

ताभ्यां स युयुधे कल्किः सेनागणसमन्वितः ।
शुभानां कल्किसैन्यानां समरस्तुमुलोऽभवत् ॥ ४६ ॥

सेनासे युक्तहोकर कल्किजी इसकोक और विकोकके साथ घोरसंग्राम करनेलगे कल्किजीकी सेनाके प्रधान२ लडवैये घोर युद्ध करनेलगे ॥ ४६ ॥

ह्रेषितैर्बृंहितैर्दन्तशब्दैष्टङ्कारनादितैः ।
शूरोत्क्रुष्टैर्बाहुवेगैः संशब्दस्तलताडनैः ॥ ४७ ॥

घोडोंके हिनाहिनानेसे, हाथियोंके चिंघाडने और दातोंके शब्दसे, धनुषकी टंकारसे, शूरवीरोंकी भुजाओंके वेगसे, घूसोंके आघात और चप-तोंके आघातसे महाशब्द उत्पन्न होने लगा ॥ ४७ ॥

संपूरिता दिशः सर्वा लोका नो शर्म्म लेभिरे ।
देवाश्च भयसंत्रस्ता दिवि व्यस्तपथा ययुः ॥ ४८ ॥

इस शब्दसे दशों दिशाएँ भरगई । तिस काल कोई मनुष्यभी छुटकारा नहीं पासका । देवतालोग भयके मारे त्रासितहो आकाशमार्गके टेढे उलटे मार्गसे गमन करनेलगे ॥ ४८ ॥

पाशैर्दण्डैः खड्गशक्त्यृष्टिशूलैर्गदाघातैर्बाणपातैश्च घोरैः।
युद्धे शूराश्छिन्नबाह्वङ्घ्रिमध्याः पेतुः संख्ये शतशः कोटिशश्च॥४९॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्कि-
सेनासंग्रामो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस संग्राममें पाश, (१) खड्ग, दण्ड और शक्ति, ऋष्टि (२) शूल और गदा, (३) से घोर बाणोंसे करोड २ वीरोंके हाथ, चरण और कमरके छिन्न भिन्न होनेसे रणभूमि व्याप्तहोने लगी ॥ ४९ ॥

इति सानुवादे श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
कल्किसेनासंग्रामो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

(१) पाश—प्राचीन युद्धास्त्रविशेष। श्रीयुक्त रामदाससेनप्रणीत भारतरहस्य पुस्तकमें लिखा है कि, " पाश "—वैशम्पायनजीके कहे हुए धनुर्वेदमें पाशास्त्रका जिस प्रकार वर्णन है, ऐसा वर्णन आग्नेय धनुर्वेदमें नहीं बरन् बिलकुल अलग है। दोनों पुस्तकोंसे जाना जाता है कि, पाशास्त्र दो प्रकारकाथा। महाभारतादि ग्रन्थोंमेंभी वारुणपाश और पाश इन दोनोंका अलग २ वर्णन है। वैशम्पायनजीके कहे हुए धनुर्वेदकी पाश ऐसी होती है:-

पाशः सूक्ष्मावयवो लौहधातुस्त्रिकोणवान्। प्रादेशपरिधिः सीसगुलिकाभरणाञ्चितः।

लोहेके बडे सूक्ष्म २ टुकडोंसे पाश बनता है। त्रिकोणयुक्त, प्रादेशपरिमाणके घेरेसे युक्त और सीसेकी गोलियोंसे शोभायमान होता है इसके विषयमें आग्नेय धनुर्वेद लिखता है।

दशहस्तो भवेत्पाशो वृत्तः करमुखस्तथा। गुणकार्पासमुञ्जानामर्कस्नायवचर्मणाम् ॥
अन्येषां सुदृढानाञ्च सुकृतं परिवेष्टितम्। तथा त्रिंशत्समं पाशं बुधः कुर्यात्सुवर्त्तितम् ॥

वृत्त अर्थात् गोल और लम्बाईमें दशहाथ ऐसा पाश गुणरज्जु, कपासकी रस्सी, मूंजकी रस्सी, (किसी पशुविशेषकी स्नायु (तमसा) आककी छालका सूत्र और किसी विशेष चमडेसे बनता है। इसके अतिरिक्त उन पदार्थोंसे जोकि दृढ हैं और जिनसे सूत तैयार होता है—बनसकता है। ३० सूक्ष्मतार मिलाय भली भांति बटकर बनाया जाता है। इस पाशास्त्रकी क्रिया ऐसी है:-

कर्त्तव्यं शिक्षकैः स्थानं तस्य कक्षासु वै सदा। वामहस्तेन संगृह्य दक्षिणेनोद्धरेत्ततः ॥
कुण्डलस्याकृतिं कृत्वा भ्राम्यैकेन शिरोपरि। क्षिपेत्.......................॥
वल्गिते च प्लुते चैव तथा प्रव्रजितेषु च। समयोगविधिं ज्ञात्वा प्रयुञ्जीत सुशिक्षितः।
विजित्वा तु यथान्यायं ततो बन्धं समाचरेत्। कट्यां बद्धा ततः खड्गं वामपार्श्वावलम्बिनम् ॥
दृढं विगृह्य वामेन निष्कर्षेद्दक्षिणेन च ॥

अर्थात् यह कक्षस्थानमें रक्खा जाता है चलाने (प्रयोग) के समय कुण्डलाकार करके मस्तकके ऊपर एकबार घुमायकर चलाना होता है। इस अस्त्रके चलानेकी तीन प्रकार की गति हैं। तिनके नाम वल्गन, प्लवन और प्रव्रजन। इससे इच्छानुसार बांधकर अपने निकटको खैंच तलवारसे वध किया जाता है। अतिरिक्त इसके २५० अध्यायमें और क्रिया लिखी है। यथाः—

परावृत्तमपावृत्तं गृहीतं लघुसंहितम्। ऊर्ध्वक्षिप्तमधः क्षिप्तं सन्धारितविधावितम् ॥
श्येनपातं गजपातं ग्राहग्राह्यं तथैव च। एवमेकादशविधा ज्ञेयाः पाशविधारणाः॥

वैशंपायनजीने जो पाश कहा है तिसका कार्य ऐसा है–

प्रसारणं वेष्टनञ्च कर्त्तनञ्चेति ते त्रयः। योगाः पाशाश्रिता लोके पाशाः क्षुद्रसमाश्रिताः॥

पहले तिसका फैलाना, फिर तिस्से शत्रुको घेरलेना, फिर दूसरे अस्त्रसे काटना, पाशके प्रयोग यह तीन प्रकारके हैं और यह क्षुद्र लडवैय्येके आश्रित हैं।

ऋज्वायतं विशालञ्च तिर्यगंभ्रामितमेव च। पञ्चकर्म विनिर्दिष्टं व्यस्ते पाशे महात्मभिः॥

और एक प्रकारका पाश है, पांच कार्य तिसके महात्मा लोगोंने कहेहैं। यह पांचों पहले कहेहुए की समानहैं। (श्रीयुत डाक्टर रामदाससेन)

(२) ऋष्टि–अत्यन्त प्राचीन अस्त्र है। युद्धकालमें इसका व्यवहार होताथा। ऋग्वेदमें ऋष्टिका वृत्तान्त लिखाहै। यथा:–

आरुक्मैरायुधानर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत।
अरावेनाँ अह विद्युतो मद्गतो जच्छतीरिव भानुरतात्मनादिवः॥

(ऋग्वेदसंहिता ५ मं० ५२ सू० ६ ऋचा)

"(वृष्टिके) नेता और बलशाली मरुद्गण उज्ज्वल आभरण और विशेष. अस्त्रसे दीप्ति पातेहैं और (विरुद्रप) "ऋष्टि (१)" चलाते हैं, तड़िद्गणभी गर्जनेवाले जलकी राशिके समान प्रतिदिन तिनका अनुसरण करतेहैं। दीप्तिमान मरुद्गणोंकी प्रभा अपने आपही प्रवृत्त होकर वेगसे निकलती है।" (श्रीयुतरमेशचन्द्रदत्त C. S. कमिश्नर)

टीका। (१) "मूलमें ऋष्टीः" है। "आयुधाविशेषान्"। सायण । Iavetlns wilson (श्रीरमेशचन्द्र दत्त C. S.कमिश्नर) औरभीः–

वाशीमंत ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषंगिणः।
स्वश्वाःऽस्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम्॥

(ऋग्वेदसंहिता। पञ्चम मण्डल ५७। सूक्त २ ऋचा)

"हे श्रेष्ठबुद्धिवाले मरुद्गण! तुम्हारी वाशी और "ऋष्टि" (१) व श्रेष्ठ धनुष, बाण, तरकश, श्रेष्ठ अश्व और रथ है। तुम लोग अस्त्रसे सजो, हे पृश्निपुत्रगण! हमारा कल्याण करनेके लिये आगमन करो।" (श्रीमान् रमेशचन्द्रदत्त C. .S कमिश्नर)

टीका–"(१) वाशी" अर्थसे अस्त्रविशेष और ऋष्टिअर्थसेभी अस्त्राविशेष। परन्तु इनमेंसे कौन कौनसा अस्त्र है, सो बताना कठिन है। सायनाचार्यने १।३७।२ ऋचाने "वाशी" शब्दका अर्थ युद्धका गरजना कियाथा, परन्तु यहःपर "तक्षणसाधनमायुधम्" अर्थात् सूत्रधारोंका "वाइश" किया है। (wiloon) ने "वाशी" का अर्थ (Swordls) और ऋष्टिका अर्थ Sonces) किया है।" (श्रीरमेशचन्द्रदत्त C. S.)

श्रीमान् रमेशचन्द्रदत्तके मतानुसार ऋष्टिका अर्थ वा आधुनिक नाम,–'वर्षा' है।

(३) गदा प्राचीन अस्त्र विशेष। भारत रहस्यमें लिखा है, "गदा" गदा नामक अस्त्रका आकार और क्रिया ऐसी है।

अष्टास्रा पृथुबध्ना तु गदा हृदयसम्मिता॥

अर्थात् मूठ बडी होती है, आकार (अंग) अठपहलू होता है हृदयतक लम्बी होती है। (डाक्टर रामदाससेन)

वजनमें गदा २० सेरके लगभग होती है, इस गदाको लेकर जो वीरगण युद्ध करतेहैं उनकी वीरताका ध्यान करनेसेभी शरीर पुलकायमान होजाताहै, हृदयमें विस्मयरस प्रगट होता है।

तृतीयांशः।

सप्तमोऽध्यायः।

सूत उवाच—एवं प्रवृत्ते संग्रामे धर्म्मः परमकोपनः।
कृतेन सहितो घोरं युयुधे कलिना सह ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले:—जब इस प्रकारसे महासंग्राम आरंभ हुआ, तब धर्मने अत्यन्त क्रोध करके सत्ययुगके साथ मिल कलिके सहित घोर युद्ध करना आरंभ किया ॥ १ ॥

कलिर्द्दमित्रबाणौघैर्धर्म्मस्यापि कृतस्य च।
पराभूतः पुरीं प्रायात्त्यक्त्वा गर्द्दभवाहनम् ॥ २ ॥

फिर धर्म और सतयुगके भयंकर बाण झुण्डसे कलि हारकर अपनी सवारी गधेको छोड अपनी पुरीमें प्रवेश करता हुआ ॥ २ ॥

विच्छिन्नपेचकरथः स्रवद्रक्ताङ्गसञ्चयः।
छछुन्दर्गन्धः करालास्यः स्त्रीस्वामिकमगाद्गृहम् ॥ ३ ॥

उलूक ध्वजवाला उसका रथ छिन्नभिन्न होगया। उसके सब शरीरसे रुधिर चूने लगा। उसके गात्रसे छछून्दरकी गन्ध निकलने लगी। तिसके मुखका आकार अत्यन्त भयंकर होगया। इस प्रकारकी अवस्थाको प्राप्त होकर कलि स्त्री स्वामिक (१) गृहमें प्रवेश करताहुआ ॥ ३ ॥

---

(१) जिस घरमें स्वामी अथवा पुरुष जातिका अधिकार नहीं होता, स्त्रियांही सब प्रकारसे घरकी मालकिन होती हैं, उसको स्त्रीस्वामिक गृह कहतेहैं। जो पुरुष स्त्रैण नहीं होतेहैं, तो वह किसी प्रकार स्त्री जातिको सम्पूर्ण अधिकार नही सौंपते ॥ क्योंकि अधिकार करनेपर तिसकी सखी स्वेच्छा चारिताका आश्रम लेना पडताहै। जिस घरमें सहजबुद्धि अबलाजातिका अधिकार होताहै वहांपर अशांतिके अतिरिक्त अनेक प्रकारके दोष उत्पन्नहोतेहैं इसकाही प्रगट करना " स्त्री—स्वामिक" शब्दका अभिप्राय जानपड़ताहै। महर्षिमनुजीने कहा है:—"न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।" जहां धर्मशास्त्रसे इस विधिका उलंघन होताहै तहांपर जाति—बन्धन ढीला पड़जाताहै। तहांके रहनेवाले सनातन धर्मके विरोधी होतेहैं। कल्किपुराणमें इस विषयको भलीभांति प्रकाशित करनेके लीये ग्रंथकारने यहांपर "स्त्रीस्वामिक" शब्दका प्रयोग कियाहै।

दम्भः सम्भोगरहितोद्धृतबाणगणाहतः ।
व्याकुलः स्वकुलांगारो निःसारः प्राविशद्गृहम् ॥ ४ ॥

अपने कुलका अंगार स्वरूप साररहित दम्भ सम्भोगरहित करके छोडे हुए बाणोंसे घायलहो व्याकुल हृदयवालाहो अपने घरमें घुसगया ॥ ४ ॥

लोभः प्रसादाभिहतो गदया भिन्नमस्तकः ।
सारमेयरथं छिन्नं त्यक्त्वागाद्रुधिरं वमन् ॥ ५ ॥

लोभको प्रसादने मारा लातके लगनेसे उसका मस्तक चूर्ण होगया ॥ तिसका कुत्ते जुता हुआ रथ चूर्ण होनेसे वह उसको छोड रुधिर उगलते २ भाग गया ॥ ५ ॥

अभयेन जितः क्रोधः कषायीकृतलोचनः ।
गन्धाखुवाहं विच्छिन्नं त्यक्त्वा विशसनं गतः ॥ ६ ॥

अभयके साथ संग्राम करनेमें क्रोध पराजित हुआ, तिसके नेत्र लाल होगये । उसका वह रथ कि, जिसमें दुर्गन्ध आरहीथी और चूहे जुड रहेथे जब छिन्नभिन्न होगया, तब वह उसको छोड़कर विशसन नगरके भीतर घुसगया ॥ ६ ॥

भयं सुखतलाघाताद्गतासुन्यपतद्भुवि ।
निरयो मुदमुष्टिभ्यां पीडितो यममाययौ ॥ ७ ॥

सुखने भयके चनकटा मारा, तब वह मृतक होकर पृथ्वीपर गिरपडा । प्रीतिके घूंसेसे पीड़ित होकर निरय यमराजके यहां चलागया ॥ ७ ॥

आधिव्याध्यादयः सर्वे त्यक्त्वा वाहमुपाद्रवन् ।
नानादेशान्भयोद्विग्नाः कृतबाणप्रपीडिताः॥ ८ ॥

आधि, व्याधि आदि सबही सत्ययुगके बाणोंसे पीड़ितहो अपने २ वाहनोंको छोड चित्तमें डरकर अनेक देशोंमें भागगई ॥ ८ ॥

धर्म्मः कृतेन सहितो गत्वा विशसनं कलेः ।
नगरं बाणदहनैर्ददाह कलिना सह ॥ ९ ॥

फिर कृतयुगके साथ मिलकर धर्मने 'कलिकी प्रधान राजधानी' विनशननामक नगरमें प्रवेश किया और बाणकी अग्निसे कलिके साथ इस नगरको भस्म करडाला ॥ ९ ॥

कलिर्विप्लुष्टसर्वाङ्गो मृतदारो मृतप्रजः ।
जगामैको रुदन्दीनो वर्षान्तरमलक्षितः ॥ १० ॥

कलिके समस्त अंग जलगये । उसके स्त्रीपुत्र सबही यमराजके यहांके पाहुने हुए । वह अकेला दीन अन्तःकरणसे रोते २ गुप्त भावसे दूसरे वर्षमें भागगया ॥ १० ॥

मरुस्तु शककाम्बोजाञ्जघ्ने दिव्यास्त्रतेजसा ।
देवापिः शबरांश्चोलान्बर्बरांस्तद्गणानपि ॥ ११ ॥

इस ओर दिव्यास्त्रसमूहके तेजसे मरुने शक और काम्बोजोंको मारडाला । देवापिने भी शबर चोल और बर्बरोंकोभी ऐसेही मारडाला॥ ११ ॥

दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातैरर्दयामास वीर्यवान् ।
विशाखयूपभूपालः पुलिन्दान्पुक्कसानपि ॥ १२ ॥

परम तेजस्वी विशाखयूपराजाने दिव्य अस्त्र शस्त्र चलाय पुलिन्द और पुक्कसोंको (१) पराजित किया ॥ १२ ॥

जघानविमलप्रज्ञः खड्गपातेन भूरिणा ।
नानास्त्रशस्त्रवर्षैस्ते योधा नेशुरनेकधा ॥ १३ ॥

---

(१) कोई २ कहतेहैं कि, पुक्कस शब्द चाण्डाल जातिका दूसरा नामहै । मनुमें पुक्कस जातिका वर्णनहै । यथाः—

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः । शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥
(मनु १० अध्याय १८ श्लो०)

निषादके औरस व शूद्रास्त्रीके गर्भसे जिसका जन्म होताहै, तिसको निषाद कहतेहैं । निषादः—

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते । निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥
(मनु० १० अध्याय ८ श्लो०)

ब्राह्मणकी व्याहता शूद्राके गर्भमें निषादकी उत्पत्ति होतीहै । निषादका दूसरा नाम पारशवहै । इस निषादके औरससे शूद्राके गर्भमें पुल्कसकी उत्पत्तिहै । पुल्कस वर्णसंकर कहलातेहैं ।यह अति नीचजाति व दुःशीलथे । खोज करनेसे अबभी हमारे देशमें इस नीच जातिका होना पाया जाताहै ।

बराबर खड्गके प्रहारसे और बहुतसे अस्त्र शस्त्रोंको वर्षाकर निर्मल बुद्धिवाला विशाखयूप शत्रुओंका संहार करने लगा । इस प्रकार शत्रु-सेनाके वीरोंमेंसे बहुतसे मारेगये ॥ १३ ॥

कल्किः कोकविकोकाभ्यां गदापाणिर्युधां पतिः ।
युयुधे विन्यासविज्ञो लोकानां जनयन्भयम् ॥ १४ ॥

गदा चलानेमें चतुर महावीर कल्किजी गदा हाथमें ले समस्त लोकोंको भय उपजाते हुए कोक और विकोकके साथ संग्राम करने लगे ॥ १४ ॥

वृकासुरस्य पुत्रौ तौ नप्तारौ शकुनेर्हरिः ।
तयोः कल्किः स युयुधे मधुकैटभयोर्यथा ॥ १५ ॥

यह दोनों भ्राता वृकासुरके पुत्र और शकुनिके पोतेथे । पूर्व कालमें जिस प्रकार नारायणजीने मधु और कैटभके साथ संग्राम कियाथा (१) वैसेही कल्किजी इन दोनों महावीरोंके साथ संग्राम करने लगे ॥ १५ ॥

तयोर्गदा प्रहारेण चूर्णितांगस्य तत्पतेः ।
कराच्च्युतापतद्भूमौ दृष्ट्वोचुरित्यहो जनाः ॥ १६ ॥

कोक और विकोकने जब गदा मारी तब भगवान् कल्किजीका शरीर चूर्ण होगया, तिनके हाथसे गदा छूटकर पृथ्वीपर गिरगई । लोग विस्मय युक्त नेत्रोंसे इस बातको देखने लगे ॥ १६ ॥

ततः पुनः क्रुधा विष्णुर्जगज्जिष्णुर्महाभुजः ।
भल्लकेन शिरस्तस्य विकोकस्याच्छिनत्प्रभुः ॥ १७ ॥

---

(१) प्रलयकालके समय नारायणजी जलके मध्य शेषजीपर शयन कर रहेथे । तिसकाल उनकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ कि, जिस्से ब्रह्माजीने जन्म लिया । उस समय विष्णुजीके कानमेंसे मैल निकलकर गिराथा; उस मैलसे 'मधु' 'कैटभ' नामक दो दानवोंने जन्म लिया कि, जिन्होंने ब्रह्माजीके साथ युद्ध करना आरम्भ किया, परन्तु तबभी भगवान् निद्रासे नहीं उठे । ब्रह्माजी, दानवोंकी वीरतासे पराजित और व्याकुलहो नारायणजीकी कृपाको चाहने लगे । ब्रह्माजीके स्तोत्र करनेसे नारायणजीकी निद्रा भंग हुई । उन्होने इन दोनों दानवोंका प्राणसंहार करके ब्रह्माजीकी शंकाको दूर किया । अंतको इन दानवोंकी मेदसे पृथ्वी बनाई गई । मेदसे निर्मित होनेके कारण पृथ्वीका दूसरा नाम मेदिनी हुआ इत्यादि उपाख्यान पुराणोंमें प्रसिद्धहैं ।

इसके उपरान्त त्रिलोक विजयी महावीर संसारके स्वामी विष्णुजीने फिर क्रोधितहो भल्ल (१) नामक अस्त्रसे विकोकका मस्तक काटडाला ॥ १७ ॥

मृतो विकोकः कोकस्य दर्शनादुत्थितो बली ।
तद्दृष्ट्वा विस्मिता देवाः कल्किश्च परवीरहा ॥ १८ ॥

महा बलवान् विकोककी मृत्यु तो हुई परन्तु वह अपने भ्राता विकोककी दृष्टिके पडतेही मृत्युजीकी शेजपरसे उठ खडा हुआ । यह देखकर देवता लोग और शत्रुका संहार करनेवाले कल्किजी अत्यन्तही विस्मयको प्राप्तहुए ॥ १८ ॥

प्रतिकर्त्तुर्गदापाणेः कोकस्याप्यच्छिनच्छिरः ।
मृतः कोको विकोकस्य दृष्टिपातात्समुत्थितः ॥ १९ ॥

गदा हाथमें लिये कोकको, विकोकके फिर जी जानेका कारण होनेसे, कल्किजीने उसका मस्तक काटडाला कोक मृतक होतो गया; परन्तु विकोकके देखतेही तत्काल जीवनको प्राप्त हो उठ खडा हुआ ॥ १९ ॥

पुनस्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महाबलौ ।
कामरूपधरौ वीरौ कालमृत्यू इवापरौ ॥ २० ॥

इसके उपरान्त अभिलाषाके अनुसार रूप धारण करनेवाले महाबलवान् कोक और विकोक दोनों फिर मिलकर दूसरे काल और मृत्युके समान कल्किजीके साथ युद्ध करने लगे ॥ २० ॥

खड्गचर्मधरौ कल्किं प्रहरन्तौ पुनः पुनः ।
कल्किः क्रुधा तयोस्तद्भल्लाणेन शिरसी हते ॥ २१ ॥

वह ढाल तलवार लेकर कल्किजीके ऊपर वारम्वार चोट चलाने लगे । कल्किजीने क्रोधकरके बाणसे तिन दोनोंके मस्तकको ही काटडाला ॥ २१ ॥

---

(१) भल्ल–प्राचीन युद्धके योग्य अस्त्र विशेष । इसका व्यवहार बाणके समान है। यादवकोषमें कहा है:–"स्नुही दलफलो भल्लः" अर्थात् जिसबाणका फलक सेंढके पत्तेकी समान आकारवालाहो उसको भल्ल कहते हैं । यह अस्त्र धनुषमें चढाकर चलाया जाता है ।

पुनर्लग्ने समालोक्य हरिश्चिन्तापरोऽभवत्।
विसत्त्वत्वमथालोक्य तुरगस्तावताडयत् ॥ २२ ॥

दोनोंके मस्तकको दूसरी बार लगा हुआ देखकर नारायणजीको अत्यन्तही चिन्ता हुई। फिर कल्किजीके घोडेने कोक विकोकको प्रहार करते देखकर कठिन प्रहार किया ॥ २२ ॥

कालकल्पौ दुराधर्षौ तुरगेणार्दितौ भृशम्।
कल्केस्तं जघ्नतुर्बाणैरमर्षात्ताम्रलोचनौ ॥ २३ ॥

यमकी समान दुर्द्धर्ष कोक और विकोक कल्किजीके घोडे करके अत्यन्त प्रहारितहो क्रोधमें भर लाल नेत्र कर तिनके ऊपर बाणोंसे प्रहार करने लगे ॥ २३ ॥

तयोर्भुजान्तरं सोऽश्वः क्रुधा समदशद्भृशम्।
तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विशस्ताङ्गदकार्मुकौ।
पुच्छं जगृहतुः सप्तेर्गोपुच्छं बालकाविव ॥ २४ ॥

तिसकाल घोडेनेभी क्रोधमें आय कोक और विकोककी भुजाके जडमें काटखाया कि, जिस्से उनकी बाहोंकी हड्डियें चूरचूर होगई। बाजू और धनुष टूटगया। फिर जिसप्रकार बालक गायकी पूंछको पकडताहै, तैसेही उन दोनों महावीरोंने घोडेकी पूंछ पकडली ॥ २४ ॥

धृतपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ तत्क्षणात्पुनरुत्थितौ।
पश्चात्पद्भ्यां दृढं जघ्ने तयोर्वक्षसि वज्रवत् ॥ २५ ॥

उनको पूंछ पकडता हुआ देखकर घोडेको अत्यन्त क्रोध आया और पिछाडीके पांवोंसे दृढहो वज्रके समान उनकी छातीमें प्रचण्ड प्रहार किया ॥ २५ ॥

त्यक्तपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ तत्क्षणात्पुनरुत्थितौ
पुरतः कल्किमालोक्य बभाषाते स्फुटाक्षरौ ॥ २६ ॥

मूर्च्छित होकर कोक और विकोकने पूंछको छोडदिया (और

पृथ्वीमें गिरकर) तत्काल फिर उठ बैठे फिर तिन कल्किजीको सम्मुख देखकर तिन कोक और विकोकने स्पष्ट वाणीसे कल्किजीको युद्ध करनेके लिये पुकारा ॥ २६ ॥

ततो ब्रह्मा तमभ्येत्य कृताञ्जलिपुटः शनैः।
प्रोवाच कल्किं नैवामू शस्त्रास्त्रैर्वधमर्हतः ॥ २७ ॥

इसी समय कल्किजीके निकट ब्रह्माजी आय हाथ जोड़कर धीरे २ बोले कि, यह कोक और विकोक अस्त्र शस्त्रसे नहीं मारे जायँगे ॥ २७ ॥

कराघातादेककाले उभयोर्निर्मितो वधः।
उभयोर्दर्शनादेव नोभयोर्मरणं क्वचित्।
विदित्वेति कुरुष्वात्मन्युगपच्चानयोर्वधम् ॥ २८ ॥

हे परमात्मन् ! एक समयमेंही थप्पड़ मारकर दोनोंका वध किया जा सकताहै। इन दोनोंके मध्यमें एक जनेके देखते रहनेसे दूसरेकी मृत्यु नहीं होगी, आप इस बातको जानकर एक साथही दोनोंका नाश कीजिये॥ २८॥

इति ब्रह्मावचः श्रुत्वा त्यक्तशस्त्रास्त्रवाहनः।
तयोः प्रहरतोः स्वैरं कल्किर्दानवयोः क्रुधा।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यां बभञ्ज शिरसी तयोः ॥ २९ ॥

ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर कल्किजीने वाहनको छोड अस्त्र शस्त्रोंको त्याग दिया। अल्प २ (थोडा २) प्रहार करनेवाले उन दोनों दानवोंके बीचमें होकर कल्किजीने वज्रके समान दो घूंसे मारकर एकही साथ उनके मस्तकका चूर करडाला ॥ २९ ॥

तौ तत्र भग्नमास्तिष्कौ भग्नशृङ्गावगाविव।
पेततुर्दिवि देवानां भयदौ भुवि बाधकौ ॥ ३० ॥

देवताओंके लोकमें स्थित देवताओंकोभी भयकारी, सबका अनभल करनेवाले यह दोनों दानव शिर टूट जानेसे, शिखर टूटे दो पर्वतोंके समान पृथ्वीमें गिरपडे ॥ ३० ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं गन्धर्व्वाप्सरसां गणाः ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च मुनयः सिद्धचारणाः ।
देवाश्च कुसुमासारैर्ववर्षुर्हर्षमानसाः ॥ ३१ ॥

इस अद्भुत कार्यको देखकर गन्धर्व लोग गाने लगे, अप्सराओंने नाचना आरम्भ किया, मुनिलोग स्तुति करने लगे, देवगण, सिद्धगण और चारणगण हर्षित हृदयसे फूल वर्षाने लगे ॥ ३१ ॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुः प्रसन्नाश्चाभवन्दिशः ।
तयोर्वधप्रमुदितः कविर्दशसहस्रकान् ।
साश्वान्महारथान्साक्षादहनद्दिव्यसायकैः ॥ ३२ ॥

कोक और विकोकका मारा जाना देखकर आनन्दित और उत्साहित हो कविने दिव्यअस्त्रोंके समूहसे घोडे और रथोंके साथ दशहजार महारथ वीरों (१) का आपही नाश किया ॥ ३२ ॥

प्राज्ञः शतसहस्राणां योधानां रणमूर्द्धनि ।
क्षयं निन्ये सुमन्त्रस्तु रथिनां पञ्चविंशतिः ॥ ३३ ॥

---

(१) महारथकी उपाधि अत्यन्त सन्मान सूचक है । महारथकी शक्तिका परिमाण नहीं। यथाः–

एको दशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते ॥

शस्त्र और शास्त्रमें प्रवीण जो वीरपुरुष अकेला दशहजार धनुषधारी वीरोंको लड़ाता है, उसको महारथ कहते हैं औरभीः–

आत्मानं सारथिं चाश्वान्रक्षन्युध्येत यो नरः ।
स महारथसंज्ञः स्यादित्याहुर्नीतिकोविदाः ॥

नीति जाननेवाले पंडितलोग कहते हैं कि, जो पुरुष अपने सारथिकी और घोड़ोंकी रक्षा करके युद्ध करसके तिसको महारथ कहते हैं ।

रथेनैकेन यः शत्रून्साहङ्कारो व्रजत्यलम् । महारथः स विज्ञेयो युद्धशास्त्रविशारदः ॥

युद्धशास्त्रमें विशारद जो वीर अकेले रथकी सहायतासे हुंकार करके शत्रुओंके सामने हो सकता है, उसको महारथ जानना चाहिये ।

इन तीन श्लोकोंमें महारथका वृत्तान्त लिखा है । जो लिखा है इसका विचार करनेसे महारथीकी वीरताको देख मनमें आश्चर्य होता है । (ग्रंथकार)

उस रणभूमिमें प्राज्ञने एक लक्ष लडवैय्योंको मारडाला सुमंत्रके हाथसे भी पचीस रथी मारे गए ॥ ३३ ॥

एवमन्ये गार्ग्यभर्गविशालाद्या महारथान्।
निजघ्नुः समरे क्रुद्धा निषादान्म्लेच्छबर्बरान् ॥ ३४ ॥

इस प्रकारसे गार्ग्य, भर्ग, विशालादि वीरोंने क्रोधित होकर उस समय म्लेच्छ, बर्बर और निषादोंका संहार किया ॥ ३४ ॥

एवं विजित्य तान्सर्वान्कल्किर्भूपगणैः सह।
शय्याकर्णैश्च भल्लाटनगरञ्जेतुमाययौ ॥ ३५ ॥
नानावाद्यैर्लोकसंघैर्वराश्वैर्नानावस्त्रैर्भूषणैर्भूषिताङ्गैः।
नानावाहैश्चामरैर्वीज्यमानैर्यातो योद्धुं कल्किरत्युग्रसेनः॥३६॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कोक-
विकोकादीनां वधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

बडीभारी सेनाको साथ लेकर युद्ध करनेके लिये कल्किजी चले तिस कालमें अनेकप्रकारके बाजोंकी ध्वनि होनेलगी, अनेक प्रकारके उत्तम २ अश्वोंके समूह अनेक प्रकारके लोग तिनके साथ २ चले ॥ ३५ ॥

तिनके साथ अनेक प्रकारकी सवारियें आने लगीं चारों ओरसे चामर व्यजन होना आरम्भहुआ ॥ ३६ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
कोकविकोकादीनां वधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

तृतीयांशः।

अष्टमोऽध्यायः।

सूत उवाच–सेनागणैः परिवृतः कल्किर्नारायणः प्रभुः।
भल्लाटनगरं प्रायात्खड्गधृक्सप्तिवाहनः ॥ १ ॥

उग्रश्रवाजी बोले:-प्रभुनारायणकल्किजी घोडेपर सवार हो खड्ग धारण कर बहुत सारी सेनाके साथ भल्लाट नगर (१) कोगये ॥ १ ॥

स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञात्वा विष्णुं जगत्पतिम् ।
निजसेनागणैः पूर्णो योद्धुकामो हरिं ययौ ॥ २ ॥

कल्किजीको संसारका स्वामी हरि और विष्णुजीका पूर्ण अवतार जानकर, परम योगी भल्लाटका राजा संग्राम करनेका विचारकर सेनाके सहित (नगरसे बाहर) निकला ॥ २ ॥

स हर्षोत्पुलकः श्रीमान्दीर्घाङ्गः कृष्णभावनः ।
शशिध्वजो महातेजा गजायुतबलः सुधीः ॥ ३ ॥

हर्षमें भरनेसे उसके रोमाञ्च होगये यह राजा कृष्णजीका ध्यान कियाकरताथा। यह बुद्धिमान् श्रीमान् बडे डील डौलवाला और महा तेजमान था। नाम इसका शशिध्वज था॥ ३ ॥

तस्य पत्नी महादेवी विष्णुव्रतपरायणा ।
सुशान्ता स्वामिनं प्राह कल्किना योद्धुमुद्यतम् ॥ ४ ॥

इस राजा शशिध्वजकी शान्ता नामक भार्या महादेवी विष्णुजीके व्रतको करनेवालीथी । अपने स्वामीका कल्किजीके साथ युद्ध करनेको तैयार देखे सुशान्ताने कहा ॥ ४ ॥

नाथ कान्तं जगन्नाथं सर्व्वान्तर्यामिनं प्रभुम् ।
कल्किं नारायणं साक्षात्कथं त्वं प्रहरिष्यसि ॥ ५ ॥

---

(१) ठीक नहीं कहा जासकता कि, यह नगर कहांहै तोभी बोधहोताहै कि, सह्यपर्वतके उत्तर-पूर्वकोणमें जो शाखापर्वत इस समय षटपुर वा षटपुरापहाड़के नामसे विख्यात है यहीं पर कहीं भल्लाट नगर होसकताहै ? पश्चिम घाट पर्वतके उत्तरांशका नाम सह्यपर्वत होसकताहै । इस प्रकार अनुमान करनेका एक कारणहै यह कहागयाहै कि, भल्लाट नगरमें शर्याकर्ण नामक जाति वासकरतीहै परन्तु उसको शर्याकर्ण न कहकर सह्यकर्ण कहलिया जाय तो भी ठीकहै । षट्पुर वा षट्पुरापहाड सह्यपर्वतका कर्णस्वरूपहै । इस कारण तहांके लोग सह्यकर्णजाति अर्थात् सह्यपर्वतकी कर्णवासी जातिहै ।

हे नाथ ! संसारके जो स्वामीहैं, जगतके प्रार्थनीय सर्वान्तर्यामी प्रभु साक्षात् नारायणहैं, उन काल्किजीके ऊपर आप किसप्रकारसे प्रहार करेंगे ॥ ५ ॥

शशिध्वज उवाच–सुशान्ते परमो धर्म्मः प्रजापतिविनिर्मितः।
युद्धे प्रहारः सर्व्वत्र गुरौ शिष्ये हरेरिव ॥ ६ ॥

शशिध्वजने कहा–हे सुशान्ते ! पितामह ब्रह्माजीने इसप्रकार परम धर्म स्थिर कियाहै कि, संग्रामके स्थानमें नारायणजीके समान गुरुके शरीरमें वा शिष्यके शरीर बराबर प्रहार किया जा सकताहै ॥ ६ ॥

जीवतो राजभोगः स्यान्मृतः स्वर्गे प्रमोदते।
युद्धे जयो वा मृत्युर्वा क्षत्रियाणां सुखावहः ॥ ७ ॥

जो जीवित रहकर संग्रामभूमिसे लौट आवे तब तो अखण्डराज्यका भोग होताहै और जो मृत्यु हो जाय तो स्वर्गमें आनन्द सन्दोह भोग कर सकताहै। इस कारण क्षत्रियोंके लिये युद्धमें मृत्युहो वा जय हो दोनोंही बातें परम सुखकी देनेवालीहैं ॥ ७ ॥

सुशान्तोवाच–देवत्वं भूपतित्वं वा विषयाविष्टकामिनाम्।
उन्मदानां भवेदेव न हरेः पादसेविनाम् ॥ ८ ॥

सुशान्ता बोलीः–जो लोग कामीहैं, जिनके चित्त सदाही विषयमें आसक्त होरहेहैं जो लोग विषयके मदमें मतवालेहैं, उनहीके लिये युद्धमें जयहोनेपर अखण्डराज्य और पराजय होनेपर देवत्वका प्राप्त होना गिना गयाहै, परन्तु जो लोग नारायणजीके चरणोंकी सेवा करतेहैं, उनके लिये वह कुछ हैही नहीं ॥ ८ ॥

त्वं सेवकः स चापीशस्त्वं निष्कामः स चाप्रदः।
युवयोर्युद्धमिलनं कथं मोहाद्भविष्यति ॥ ९ ॥

आप सेवक और वह ईश्वरहैं, आप निष्काम और वह फलके दान करनेवाले नहींहैं। ऐसी अवस्थामें जो मोहका कार्य है, तैसा दोनों जनोंका युद्ध होना किसप्रकारसे सम्भावित होसकताहै ? ॥ ९ ॥

शशिध्वज उवाच–द्वन्द्वातीते यदि द्वन्द्वमीश्वरे सेवके तथा ।
देहावेशाल्लीलयैव सा सेवा स्यात्तथा मम ॥ १० ॥

राजा शशिध्वजने कहा–परम पुरुष भगवान् सुख दुःखादि द्वन्द्वों (१) सेपरेहैं । यदि उस ईश्वर और सेवकमें देह धारण करनेके कारण द्वन्द्व हो जाय तो वह विलास लीलाका सेवारूप माना जायगा ॥ १० ॥

देहावेशादीश्वरस्य कामाद्या दैहिका गुणाः ।
मायाङ्गा यदि जायन्ते विषयाश्च न किं तथा ॥ ११ ॥

जब कि, भगवान्‌जीने मूर्ति धारणकरी, तब कामादि मायाके अंशस्वरूप शरीरके गुणोंकी परम्परा उन नारायणजीके शरीरमें आरोपित होती है । कामादिके आरोपित होनेसे तिनकी देहमें कामादिके विषय क्यों नहीं आरोंपित होंगे ? ॥ ११ ॥

ब्रह्मतो ब्रह्मतेशस्य शरीरित्वे शरीरिता ।
सेवकस्याभेददृशस्त्वेवं जन्मलयोदयाः ॥ १२ ॥

जब ईश्वरमें पूर्ण स्वरूप और ब्रह्मता रहतीहै, तब उसको ब्रह्म कहते हैं । जब भगवान् मूर्त्ति ग्रहण वा शरीर धारण करतेहैं, तब उनको शरीरी कहतेहैं। जिस सेवककी भेद दृष्टि अलग होकर अभेद ज्ञानका संचार हुआहै, उसका जन्मलय और उदयभी ऐसेही होताहै ॥ १२ ॥

सेव्यसेवकता विष्णोर्माया सेवेति कीर्त्तिता ।
द्वैताद्वैतस्य चेष्टैषा त्रिवर्गजनिका सताम् ॥ १३ ॥

सेव्य और सेवकभावही सेवा कही जातीहै । यह केवल वैष्णवी मायाकाही कार्य है । इस द्वैताद्वैत चेष्टा करके साधुओंको त्रिवर्गकी प्राप्ति होतीहै ॥ १३॥

---

(१) सुख और दुःख, शीत और ग्रीष्मादि परस्पर विरुद्ध धर्मावलम्बी दोपदार्थोंको द्वन्द्व कहतेहैं सुख और दुःख एकपदार्थ नहीं वरन् परस्पर अत्यन्त विरुद्ध पदार्थहैं । सुख और दुःखमें कभी समानतानहीं; इस कारण सुख और दुःख द्वन्द्व नामसे पुकारे जातेहैं ग्रीष्ममें उष्णता, शीतमें शरदी, वस यह पदार्थ परस्पर विरुद्ध धर्मावलम्बी हैं, इसी कारण ग्रीष्म और शीतको द्वन्द्व कहाजाताहै ।

अतोऽहं कल्किना योद्धुं यामि कान्ते स्वसेनया।
त्वं तं पूजय कान्तेऽद्य कमलापतिमीश्वरम् ॥ १४॥

हे कान्ते ! इसीकारणसे मैं कल्किजीकेसाथ संग्राम करनेके अर्थ सेनाके साथ जाताहूं, हे प्रिये ! उन स्वामी नारायणजीकी तुम अब पूजाकरो ॥ १४॥

सुशान्तोवाच—कृतार्थाऽहं त्वया विष्णुसेवासंमिलितात्मना।
स्वामिन्निह परत्रापि वैष्णवी प्रथिता गतिः ॥ १५ ॥

सुशान्ता बोलीः—स्वामिन् ! आप विष्णुजीकी सेवा करके विष्णुजी-मेंही लीन होगये, इस्से मैं कृतार्थ होगई। क्या इस लोक और क्या पर-लोकमें केवल विष्णुकी पूजाके सिवाय दूसरी गति नहीं है ॥ १५ ॥

इति तस्या वल्गुवाग्भिः प्रणतायाः शशिध्वजः।
आत्मानं वैष्णवं मेने साश्रुनेत्रो हरिं स्मरन् ॥ १६ ॥

जब सुशान्ताने विनयपूर्वक ऐसे मनोहर वचन कहे, तब नेत्रोंमें नीर भर कर महाराज शशिध्वज विष्णुजीका स्मरण करने लगे और अपनेको परम वैष्णव समझा ॥ १६ ॥

तामालिङ्ग्य प्रमुदितः शूरैर्बहुभिरावृतः।
वदन्नाम स्मरन्रूपं वैष्णवैर्योद्धुमाययौ ॥ १७ ॥

अनन्तर राजा शशिध्वजने हर्षित हृदयसे प्यारी सुशान्ताको हृदयसे लगाय बहुतसे वीरोंके साथ हरिनाम स्मरण करते २ और युद्ध करनेके निमित्तभी वैष्णवोंको साथ ले यात्राकी ॥ १७॥

गत्वा तु कल्किसेनायां विद्राव्य महतीं चमूम्।
शय्याकर्णगणैर्वीरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ १८ ॥

राजा शशिध्वजने कल्किजीकी सेनामें प्रवेश करके कल्किजीकी बडीभारी सेनाको तितर वितर करदिया। तैयार हुए महावीर शय्याकर्ण लोग अस्त्र शस्त्र उठाय तिसके साथ मिलकर संग्राम करने लगे ॥ १८ ॥

शशिध्वजसुतः श्रीमान्सूर्य्यकेतुर्महाबलः।
मरुभूपेन युयुधे वैष्णवो धन्विनां वरः॥ १९॥

महाधनुषधारी, महाबलवान् परम वैष्णव शशिध्वजका पुत्र श्रीमान् सूर्यकेतु, सूर्यवंशके राजा मरुके साथ युद्ध करने लगा॥ १९॥

तस्यानुजो बृहत्केतुः कान्तः कोकिलनिस्वनः।
देवापिना स युयुधे गदायुद्धविशारदः॥ २०॥

सूर्यकेतुका छोटा भ्राता बृहत्केतु, अत्यन्त कमनीय मूर्तिवाला कोयलके समान मधुर ध्वनिकारी और गदायुद्धमें विशारदथा। यह देवापिके साथ संग्राम करने लगा॥ २०॥

विशाखयूपभूपस्तु शशिध्वजनृपेण च।
युयुधे विविधैः शस्त्रैः करिभिः परिवारितः॥ २१॥

राजा विशाखयूप हाथियोंके समूहसे युक्तहो अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र ले राजा शशिध्वजके साथ युद्ध करने लगा॥ २१॥

रुधिराश्वो धनुर्धारी लघुहस्तः प्रतापवान्।
रजस्यनेन युयुधे भर्गः शान्तने धन्विना॥ २२॥

लालरंगके घोडेपर चढकर फरतीले हाथवाला धनुषधारी प्रतापवान् भर्ग, धूरिपटलके मध्यमें धनुषधारी शान्तके साथ संग्राम करने लगा॥ २२॥

शूलैः प्रासैर्गदाघातैर्बाणशक्त्यृष्टितोमरैः।
भल्लैः खड्गैर्भुशुण्डीभिः कुन्तैः समभवद्रणः॥ २३॥

इसप्रकार शूलसे, प्रास (१), से गदासे बाणसे शक्तिसे, ऋष्टि, तोमर,

---

(१) प्रास—प्राचीन अस्त्र विशेष। यह अस्त्र युद्धके समयमें व्यवहार कियाजाताथा। शुक्रनीति पुस्तकमें प्रास नामक अस्त्रका संक्षिप्त वर्णनहै। यथाः—

'प्रासः स्यात्तु चतुर्हस्तदण्डयुक्तः क्षुराननः' (शुक्रनीति ४ अ ७ प्रकरण, ११५ श्लोक)

प्रास अस्त्रका डंडा ४ हाथका होताहै, इसके मुखका आकार छुरेकी समान होताहै। इस वर्णनको देखकर बर्छाका आकार ध्यानमें आताहै, परन्तु यह नहीं कहाजासकता कि, बर्छाही प्रासका दूसरा नाम या कुछ रूपान्तरहै।

भल्ल, खड्ग, भुशुण्डी और कुन्त(१)अस्त्रके प्रहारसे युद्ध चलने लगा ॥ २३॥

पताकाभिर्ध्वजैश्चिह्नैस्तोमरैश्छत्रचामरैः ।
प्रोद्धतधूलिपटलैरन्धकारो महानभूत् ॥ २४ ॥

रणभूमिमें धूरि उडने लगी । ध्वज चामर और ध्वजा पताकाकी छायासे और गाढी धूरिके उडनेसे संग्रामभूमिमें महान् अंधकार होगया ॥ २४॥

गगनेऽनुघना देवाः के वा वासं न चक्रिरे ।
गन्धर्व्वैः साधुसन्दर्भैर्गायनैरमृतायनैः ॥ २५ ॥

देवतालोग मेघके अन्तरमें स्थित होकर युद्धको देखने लगे, गन्धर्व-लोग अमृतके समान मधुर स्वरसे गाते २ युद्धके देखनेको आये ॥ २५ ॥

द्रष्टुं समागताः सर्व्वे लोकाः समरमद्भुतम् ।
शंखदुन्दुभिसन्नादैरास्फोटैर्बृंहितैरपि ॥ २६ ॥

समस्त लोकही उस अद्भुतसंग्रामके देखनेके लिये आये; संग्रामभूमि शंख और नगाडोंके शब्दसे वीरोंके ताल ठोकनेसे, हाथियोंकी चिङ्घाडसे ॥ २६ ॥

ह्रेषितैर्योधनोत्कुष्टैर्लोका मूका इवाभवन् ।
रथिनो रथिभिः साकं पदातिश्च पदातिभिः ॥ २७ ॥

घोडोंके हिनहिनानेसे, युद्धास्त्रोंके परस्पर टकरानेसे, सब लोक मूककी समान ज्ञात होने लगे अर्थात् कोई किसीकी बातको नहीं सुनसका । रथी लोग रथियोंके साथ, पैदल पैदलोंके साथ ॥ २७ ॥

---

(१) प्रासकी समान कुन्तभी एक अस्त्रहै । प्रासका डंडा चार हाथका और कुन्तका डंडा दशहाथका होताहै । कुन्तका अग्रभाग हलकी अनीके नोककी समान और मूलभाग खम्भके समान होताहै शुक्रनीति पुस्तकमें लिखाहै:-

‘ दशहस्तमितः कुन्तः फालाग्रः शंकुबुध्नकः ’ (४ अध्याय, ७ प्रकरण, २१५ श्लोक)

“ कुन्तके (धारणकरनेका) डंडा दशहाथ होताहै । उसकी नोक (पैंड या सीता) हलके फलककी नाईं और मूलभाग शंकु (कील) की, समान होताहै । ” कोई २ अनुमान करके कहतेहैं कि, आजकल जिसको चलितभाषामें बल्लम कहते, हैं वही तबका कुन्तहै; अथवा बल्लमही कुन्तका बदला हुआरूपहै । पुस्तक शुक्रनीतिमें तो इतनाहीं लिखाहै; फिर अनुमान पर निर्भर करके इसका विचार या मीमांसा करना निःसन्देह अत्यन्त युक्तिविरुद्धहै ।

हया हयैरिभाश्चेभैः समरोऽमरदानवैः ।
यथाभवत्स तु घनो यमराष्ट्रविवर्द्धनः ॥ २८ ॥

घुडसवार घुडसवारोंके साथ संग्राम करने लगे। पहले जिस प्रकार देवासुर संग्राम हुआथा, वैसेही यह युद्ध यमराजके यहां की प्रजासंख्याको बढाने लगा ॥ २८ ॥

शशिध्वजचमूनाथैः कल्किसेनाधिपैः सह ॥
निपेतुः सैनिका भूमौ छिन्नबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ॥ २९ ॥

शशिध्वजके सेनापति लोग कल्किजीकी सेनाके पति व और सिपाही लोग, हथकटे, चरणकटे और शिरकटे होकर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ २९ ॥

धावन्तोऽतिब्रुवन्तश्च विकुर्व्वन्तोऽसृगुक्षिताः ।
उपर्य्युपरि संछन्ना गजाश्वरथमर्दिताः ॥ ३० ॥

कोई कोई घायल होकर भाग रहाहै, कोई, २ चिल्लाताहै, कोई २ विकृत स्वरसे आर्त्तनाद करताहै, किसी २ का सब अंग रुधिरकी धारसे भीग रहाहै, कोई २ एकके ऊपर एक गिरकर पृथ्वीको ढके हुएहैं, कोई हाथीके पांवसे, कोई घोडेके पांवसे,कोई रथके पहियेके नीचे कुचल रहेहैं ॥ ३० ॥

निपेतुः प्रधने वीराः कोटिकोटिसहस्रशः ।
भूते सानन्दसन्दोहाः स्रवन्तो रुधिरोदकम् ॥ ३१ ॥

इस भांति इस संग्राममें सहस्र २ कोटि २ वीर पुरुष गिरे। संग्राम-भूमिमें रुधिरकी नदी बहने लगी। रुधिरकी नदीका यह प्रवाह; पिशाच, राक्षस, शृगाल, गृध्रादि प्राणियोंको आनन्दका देनेवाला हुआ ॥ ३१ ॥

उष्णीषहंसाः संछिन्नगजरोधोरथप्लवाः ।
करोरुमीनाभरणमसिकाञ्चनवालुकाः ॥ ३२ ॥

इस रुधिरके प्रवाहमें जो पगडियें गिरीथीं, वह हंसोंकी समान दिखाई देने लगीं, गिरेहुए हाथी टापुओंके समान जानपडे, रणसमूह नाव समूहकी समान दिखाई देने लगे, कटेहुए हाथ कटेहुए पांव मच्छ समूहकी समान दिखाई देने लगे, खड्ग सुवर्णकी रेतीके समान ज्ञात हुए ॥ ३२ ॥

एवं प्रवृत्ता संग्रामे नद्यः सद्योऽतिदारुणाः।
सूर्य्यकेतुस्तु मरुणा सहितो युयुधे बली ॥ ३३ ॥

इसप्रकार तत्कालही संग्रामभूमिमें अति दारुण नदी उत्पन्नहुई ॥ बलवान् सूर्यकेतु मरुके साथ संग्राम करने लगा ॥ ३३ ॥

कालकल्पो दुराधर्षो मरुं बाणैरताडयत्।
मरुस्तु तत्र दशभिर्मार्गणैरार्मूयद्भृशम् ॥ ३४ ॥

· कालके समान दुर्द्धर्ष सूर्यकेतुने बणोंसे मरुको घायल किया मरुने भी दशबाणोंसे सूर्यकेतुको अत्यन्त विद्ध किया ॥ ३४ ॥

मरुबाणाहतो वीरः सूर्य्यकेतुरमर्षितः।
जघान तुरगान्कोपात्पादोद्घातेन तद्रथम् ॥ ३५ ॥

वीर सूर्यकेतु मरुके बाणोंसे घायल हुआ और इसको क्रोध आगया तब इसने बडे क्रोधसे मरुके समस्त घोडोंका संहार किया और लात मार तिसका रथ ॥ ३५ ॥

चूर्णयित्वाऽथ तेनापि तस्य वक्षस्यताडयत।
गदाघातेन तेनापि मरुर्मूर्च्छामवाप ह ॥ ३६ ॥

चूर्ण करडाला। फिर गदासे उसकी छातीमें दारुण आघात किया। तिस्से मरु मूर्च्छित होकर गिरपडा ॥ ३६ ॥

सारथिस्तमपोवाह रथे नान्येन धर्म्मवित्।
बृहत्केतुश्च देवापिं बाणैः प्राच्छादयद्बली ॥ ३७ ॥

धर्मका जानने वाला सारथि अपने प्रभु मरुको और एक रथमें उठाकर लेगया। बाणोंके समूहसे बलवान् बृहत्केतुने देवापिको ढकदिया ॥ ३७ ॥

धनुर्विकृष्य तरसा नीहारेण यथा रविम्।
स तु बाणमयं वर्षं परिवार्य्य निजायुधैः ॥ ३८ ॥

जिसप्रकार सूर्य कुहरेसे ढक जाताहै, तैसेही बाणोंसे ढकेहुए देवापिने

तत्काल धनुष ग्रहण करके अपने बाणोंके वर्षण करनेसे शत्रुकी बाणधाराका निवारण किया ॥ ३८ ॥

बृहत्केतुं दृढं जघ्ने कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
भिन्नं शूलमथालोक्य धनुर्गृह्य पतत्रिभिः ॥ ३९ ॥

शिलापर शानलगे और तीक्ष्ण बाणोंसे जब अपने शूलतकको टूटा हुआ देखा, तब उसने फिर धनुष ग्रहण करके तिसमें (बाण चढाये) ॥ ३९ ॥

शितधारैः स्वर्णपुंखैर्गाद्ध्रपत्रैरयोमुखैः ।
देवापिमाशुगैर्जघ्ने बृहत्केतुः ससैनिकम् ॥ ४० ॥

सुवर्णखचित, लोहेके मुखवाले गिद्धोंके पंखोंसे युक्त तीक्ष्ण बाणजालको वर्षायकर देवापि पर और उसकी सेनाके ऊपर प्रहार करना आरंभ किया ॥ ४० ॥

देवापिस्तद्धनुर्दिव्यं चिच्छेद निशितैः शरैः ।
छिन्नधन्वा बृहत्केतुः खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ ४१ ॥

देवापिने भी तीक्ष्ण बाणोंको चलाकर बृहत्केतुका वह दिव्य धनुष काट डाला, जब बृहत्केतुका धनुष कटा, तब उसने देवापिका वध करनेके अभिप्रायसे खड्ग हाथमें लिया ॥ ४१ ॥

देवापेः सारथिं साश्वं जघ्ने शूरो महामृधे ।
स देवापिर्धनुस्त्यक्त्वा तलेनाहत्य तं रिपुम् ॥ ४२ ॥

फिर उसवीरने उस महासंग्रामके बीच देवापिके घोडोंको मारकर सारथिका वध किया तब देवापिने धनुष छोड उस शत्रुपर एक चपत चलाया॥ ४२॥

भुजयोरन्तरानीय निष्पिपेष स निर्दयः ।
तं द्व्यष्टवर्षं निष्क्रान्तं मूर्छितं शत्रुणार्दितम् ॥ ४३ ॥

तिसको दोनों भुजाओंमें दबाय निर्दयीहो पीसना आरंभ किया । तिस काल षोडश वर्षका बृहत्केतु शत्रुकरके पीडित हो मूर्च्छित और मृतकके समान होगया ॥ ४३ ॥

अनुजं वीक्ष्य देवापिमूर्ध्नि सूर्य्यध्वजोऽवधीत्।
मुष्टिना वज्रपातेन सोऽपतन्मूर्च्छितो भुवि।
मूर्च्छितस्य रिपुः क्रोधात्सेनागणमताडयत् ॥ ४४ ॥

अपने छोटे भ्राताकी यह दशा देखकर राजा सुर्यकेतुने देवापिके शिर-पर एक वज्रके समान घूंसा मारा, तिसके प्रहारसे देवापिभी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरपडा। देवापिके शत्रु सूर्यकेतुने देवापिको मूर्च्छित निहार क्रोधमें भरकर उसकी सेनाके ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

शशिध्वजः सर्व्वजगन्निवासं कल्किं पुरस्तादभिसूर्य्यवर्चसम्।
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणं बृहद्भुजं चारुकिरीटभूषणम् ॥४५॥

इस ओर राजा शशिध्वजने संग्रामभूमिके मध्य सामनेही कल्किजीको देखा। यह कल्किजी सूर्यके समान तेजस्वीहैं, केवल यही समस्त ब्रह्माण्डके आधारहैं, इनके दोनों नेत्र कमलके समानहैं, यह पीताम्बर धारण किये हुएहैं। इनकी बाँहें बड़ीहैं। इनका मस्तक मनोहर किरीटसे शोभायमान होरहाहै ॥ ४५ ॥

नानामणिव्रातचिताङ्गशोभया निरस्तलोकेक्षणहृत्तमोमयम्।
विशाखयूपादिभिरावृतं प्रभुं ददर्श धर्मेण कृतेन पूजितम् ॥ ४६॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे शशि-
ध्वजकल्किसेनयोर्युद्धं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

बहुत प्रकारके मणिसमूहोंसे विभूषित शोभा करके यह लोगोंके नेत्र और हृदयके अन्धकारको लीन करतेहैं। विशाख यूप आदि राजालोग इनके चारोंओर खडे हुएहैं। सत्य और धर्म उन सनातन भगवान्की पूजा कर रहेहैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीसानुवादे श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
शशिध्वजकल्किसेनयोर्युद्धं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

तृतीयांशः ।

नवमोऽध्यायः ।

सूत उवाच—हृदिध्यानास्पदं रूपं कल्केर्दृष्ट्वा शशिध्वजः ।
पूर्णं खड्गधरं चारुतुरगारूढमब्रवीत् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले—हृदयमें ध्यान करनेके योग्य, मनोहर घोडेपर चढ़ेहुए, खड्ग धारण किये, पूर्ण अवतार कल्किजीका रूप देखकर राजा शशिध्वज कहने लगा ॥ १ ॥

धनुर्बाणधरं चारु–विभूषणवराङ्गकम् ।
पापतापविनाशार्थमुद्यतं जगतां परम् ॥ २ ॥

क्योंकि यह जगत्पति कल्किजी, धनुर्बाण धारण करके मनोहर आभूषणोंसे भूषितहो पाप तापका नाश करनेके लिये तैयार हुएहैं ॥ २ ॥

प्राह तं परमात्मानं हृष्टरोमा शशिध्वजः ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष ! प्रहारं कुरु मे हृदि ॥ ३

रोमाञ्चित शरीरवालाहो राजा शशिध्वजने उन परमात्मासे कहा हे पुण्डरीकाक्ष ! आगमन करो। हमारे हृदयमें प्रहारकरो ॥ ३ ॥

अथवात्मन् बाणभिया तमोऽन्धे हृदि मे विश ।
निर्गुणस्य गुणज्ञत्वमद्वैतस्यास्त्रताडनम् ॥ ४ ॥

अथवा हे परमात्मन् !, हमारे बाणोंके गिरनेके डरसे तमके समूह करके अन्धे मेरे हृदयमें प्रवेश करके छिप रहो।जो निर्गुण होकरभी गुणको जानतेहैं। जो अद्वैत होकरभी अस्त्रप्रहार करनेको तैयार हुएहैं ॥ ४ ॥

निष्कामस्य जयोद्योगसहायं यस्य सैनिकम् ।
लोकाः पश्यन्तु युद्धे मे द्वैरथे परमात्मनः ॥ ५ ॥

जिन्होंने निष्कामहोकरभी जयके उद्योगके निमित्तसेनाका संहार कियाहै उसी परमात्माके साथ द्वैरथ युद्ध करताहूं, सबही दर्शनकरें ॥ ५ ॥

परबुद्धिर्यदि दृढं प्रहर्त्ता विभवे त्वयि ।
शिवविष्णोर्भेदकृते लोकं यास्यामि संयुगे ॥ ६ ॥

तुम विभुहो, मैं तुमपर दृढ प्रहार करूंगा । परन्तु प्रहार करनेके समय जो मैं आपको दूसरा (पर अपनेसे अलग) समझूं तो मुझको वह लोक प्राप्तहो कि, जो लोक शिव और विष्णुमें भेद समझनेवालोंको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा अक्रोधः क्रुद्धवद्विभुः ।
बाणैरताडयत्संख्ये धृतायुधमरिन्दमम् ॥ ७ ॥

अस्त्रधारी, शत्रु सन्तापकारी राजाशशिध्वजने इन वचनोंको सुनकर विभु कल्किजीका क्रोधरहित होकरभी क्रोधितके समान आकार देखा । और उस संग्रामभूमिमें बाणोंसे तिनपर प्रहार करने लगा ॥ ७ ॥

शशिध्वजस्तत्प्रहारमगणय्य वरायुधैः ।
तं जघ्ने बाणवर्षेण धाराभिरिव पर्वतम् ॥ ८ ॥

राजा शशिध्वजने उसप्रहारको प्रहारहीन समझा वरन् मेघ जिसप्रकार पर्वतके ऊपर जल वर्षाताहै तैसेही वह उनपर अनेकप्रकारके अस्त्र वर्षाने लगा॥८॥

तद्बाणवर्षभिन्नान्तः कल्किः परमकोपनः ।
दिव्यैः शस्त्रास्त्रसंघातैस्तयोर्युद्धमवर्त्तत ॥ ९ ॥

उन बाणों करके शरीर छिन्नभिन्न होनेके कारण कल्किजी अपार क्रोधित हुए । फिर दिव्यास्त्रोंसे उन दोनोंका महायुद्ध होने लगा ॥ ९ ॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रैर्वायव्यस्य च पार्वतैः ।
आग्नेयस्य च पार्ज्जन्यैः पन्नगस्य च गारुडैः ॥ १० ॥

ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्र, पर्वतास्त्रसे वायव्य अस्त्र, मेघास्त्रसे आग्नेय अस्त्र और गारुडास्त्रसे पन्नगास्त्र (खंडित होने लगे) (१) ॥ १० ॥

---

(१) पन्नगास्त्र–देवलब्ध अस्त्रविशेष । इन अस्त्रोंका मंत्र उच्चारणकरके प्रयोग और संहार किया जाता है । संस्कृत साहित्यमें इन अस्त्रोंका वर्णन पाया जाता है । रामायणके युद्धकाण्डमें और महाभारतके किसी २ पर्वमें इन दैवास्त्रोंका वर्णन है । वायव्य अस्त्रके प्रयोग करनेसे प्रबल वायु चलने लगती है और वह शत्रुको या निशानेको उड़ाकर लेजाती है। मेघास्त्रका प्रयोग करनेसे मेघ, बिजली, वज्रघात और मूसलधारसे वर्षा होती है, शत्रुगण मरते हैं । आग्नेयास्त्रका प्रयोग करनेसे भयंकर अग्नि अतिवेगसे जल उठती है,उस अग्निकी कराल ज्वालासे त्रिलोकीके भस्महोनेका डर रहता है, जब कोई आग्नेयास्त्रका प्रयोग करता तो दूसरा मेघास्त्र चलाता, वृष्टिधारासे आग्नेयास्त्र विफल हो जाताथा । पन्नगास्त्रके प्रयोग करनेसे विसियर सर्प उत्पन्न हो जातेथे, उनके डसनेसे शत्रुगण मरतेथे अथवा गारुड़ास्त्रका प्रयोग करनेसे पन्नगास्त्र विफल होताथा । गारुड़ास्त्रके प्रयोग करनेसे शत २ गरुड़ आयकर सर्पोंका भक्षण किया करतेथे। पुराणोंमें इस प्रकारसे अस्त्रशस्त्रोंका वृत्तान्त पाया जाता है । (ग्रंथकार)

एवं नानाविधैरस्त्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
लोकाः सपालाः संत्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥ ११ ॥

इस प्रकारसे परस्पर कल्किजी और राजा शशिध्वज परस्पर अनेक प्रकारके दिव्यास्त्रोंसे प्रहार करने लगे । लोक और लोकपाल सबही महाभीत हुए, वह मनमें समझने लगे कि,आज प्रलयका समय आपहुँचाहै॥ ११॥

देवा बाणाग्निसंत्रस्ता अगमन्खगमाः किल ।
ततोऽतिवितथोद्योगौ वासुदेवशशिध्वजौ ॥ १२ ॥

जो देवता लोग युद्धको देखनेके लिये आकाशके मार्गसे आयेथे, वह बाणोंकी आगसे भीत होने लगे । इस प्रकार कल्किजी और राजा शशिध्वज दोनों देवास्त्रका प्रयोग विफल होते देखकर ॥ १२ ॥

निरस्त्रौ बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम् ।
पदाघातैस्तलाघातैर्मुष्टिप्रहरणैस्तथा ॥ १३ ॥

अस्त्र छोड परस्पर बाहुयुद्ध करने लगे । लात मारकर, थप्पडमारकर, घूंसा मारकर (दोनोंका संग्राम होने लगा) ॥ १३ ॥

नियुद्धकुशलौ वीरौ मुमुदाते परस्परम् ।
वराहोद्धृतशब्देन तं तलेनाहनद्धरिः ॥ १४ ॥

दोनोंही वीर और दोनोंही युद्ध करनेमें भलीभाँति कुशल हैं, इसकारण परस्पर युद्धकी चतुरता देखकर प्रसन्न हुए । सृष्टिके आरंभकालमें जब वराह जीने पृथ्वीका उद्धार किया, तब जैसा शब्द हुआथा; वैसेही महा शब्दसे, कल्किजीने चपत मारकर प्रहारकिया ॥ १४ ॥

स मूर्च्छितो नृपः कोपात्समुत्थाय च तत्क्षणात् ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यामवधीत्कल्किमोजसा ।
स कल्किस्तत्प्रहारेण पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ १५ ॥

राजा शशिध्वज मूर्च्छित होगया और तत्काल उठ क्रोधमें भर बलपूर्वक वज्रके समान घूंसा कल्किजीके मारा उस प्रहारसे मूर्च्छित होकर कल्किजी पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १५ ॥

धर्म्मः कृतश्च तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं जगदीश्वरम्।
समागतौ तमानेतुं कक्षे तौ जगृहे नृपः ॥ १६ ॥

जगदीश्वर कल्किजीको मूर्च्छित देखकर उनको लेजानेके लिए धर्म और सत्ययुग वहांपर आये राजा शशिध्वजने धर्म और सत्ययुगको दोक क्षाओंमें लिया ॥ १६ ॥

कल्किं वक्षस्युपादाय लब्धार्थः प्रययौ गृहम्।
युद्धे नृपाणामन्येषां पुत्रौ दृष्ट्वा सुदुर्ज्जयौ ॥ १७ ॥

फिर वह कल्किजीको गोदमें उठाय कृत कृत्य हो अपने गृहकी ओर चलागया और विचारने लगा कि और कोई राजा मेरे दोनों पुत्रोंको संग्राममें पराजित नहीं कर सकेगा ॥ १७ ॥

कल्किं सुराधिपपतिं प्रधने विजित्य धर्म्मं कृतश्च
निजकक्षयुगे निधाय। हर्षोल्लसद्धृदय उत्पुलकः
प्रमाथी गत्वा गृहं हरिगृहे ददृशे सुशान्ताम् ॥ १८ ॥

इस प्रकारसे राजा शशिध्वज देवताओंके भी स्वामी कल्किजीको संग्राममें पराजितकर धर्म और सत्ययुग दोनोंको कांखमें ग्रहणकर हर्षमेंभर प्रमुदित हृदय और पुलकायमान शरीरसे सेनाके समूहको मर्दन व उच्छिन्नकर अपने गृहको गया और देखा कि, रानी सुशान्ता नारायणजीके गृहमें विराजमान है ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा तस्याः सुललितमुखं वैष्णवीनाञ्च मध्ये
गायन्तीनां हरिगुणकथास्तामथ प्राह राजा।
देवादीनां विनयवचसा शम्भले जन्मना वा
विद्यालाभं परिणयविधिम्लेच्छपाषण्डनाशम् ॥ १९ ॥

उसके चारोंओर वैष्णवियें बैठी हुईं नारायणजीके गुणोंकी कथा गानकर रही हैं। सुशान्ताका ललित वदनकमल देखकर राजाने कहा, जिन्होंने देवताओंके विमल वचन कहनेसे शम्भलग्राममें जन्म ग्रहण

किया है, (वही यह आये हैं)। इन्होंने इस २ प्रकारसे विद्यापाई है, इस २ प्रकारसे पाखण्डि और म्लेच्छोंको उजाड़ किया है ॥ १९ ॥

कल्किः स्वयं हृदि समायमिहागतोऽद्धा मूर्च्छिच्छ-
लेन तव सेवनमीक्षणार्थम्। धर्म्मं कृतञ्च मम कक्ष-
युगे सुशान्ते ! कान्ते विलोकय समर्च्चय संविधेहि ॥ २० ॥

हे सुशान्ते ! जो काल्किजी हृदयमें रहते हैं वह इस समय तुम्हारी शक्ति देखनेके निमित्त मायाका अवलम्बन करके मूर्च्छाके छल(मिस) से यहीं पर आये हैं। हे कान्ते ! यह देखो धर्म और सत्ययुग हमारी दोनों कक्षाओंमें स्थित हैं। तुम इनकी पूजाकरो ॥ २० ॥

इति नृपवचसा विनोदपूर्णा हरिकृतधर्म्मयुतं प्रणम्य नाथम्।
सह निजसखिभिर्ननर्त्त रामा हरिगुणकीर्त्तनवर्त्तना विलज्जा २१

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे धर्म्म-
कल्किकृतानामानयनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

राजा शशिध्वजके ऐसे वचन सुनकर सुशान्ता अत्यन्त प्रसन्न हुई। शशिध्वजकी छातीमें नारायण और दोनों कक्षाओमें सत्ययुग और धर्म थे, तिनको प्रणाम करके रानी सुशान्ता हरिनाम कीर्त्तन करने लगी। क्रमसे उसकी लाज दूर होगई। वह और उसकी सखियें (नारायणजीके प्रेममें विह्वलहो) नृत्य (१) करने लगीं ॥ २१ ॥

इ० सानु० श्रीकल्कि० अनु० भविष्ये तृती० धर्मकल्कि-
कृतानामानयनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

(१) हाव और भाव व्यञ्जक अंगविक्षेप चेष्टाका नाम नृत्य है। साहित्यशास्त्रमें नृत्यका वर्णन पाया जाता है। बहुत दिनोंसे भारतवर्षमें नृत्यकी रीति चली आती है। संगीत-पारिजात नामक संस्कृत संगीतपुस्तकमें कहाहै। यथा:—

ब्रह्मणोऽधीत्य भरतः संगीतं मार्गसंज्ञितत्। अप्सरोभिश्च गन्धर्वैः शम्भोरग्रे प्रयुक्तवान् ॥
ततोऽपि ताण्डवं ज्ञात्वा लास्यं ज्ञात्वोमयोदितम्। तत्सर्वं शिष्यसंघेभ्यः प्रोक्तवान् भरतो मुनिः।
(संगीत—पारिजात, २२।२३)

भरतमुनिने ब्रह्माजीके पास संगीतको सीखकर अप्सरा व गन्धर्वोंके द्वारा तिसका महादेवजीके सामने प्रयोग (अभिनय) किया। फिर महादेवजीसे ताण्डव और पार्वतीसे लास्यको सखिकर सब

तृतीयांशः ।

दशमोऽध्यायः ।

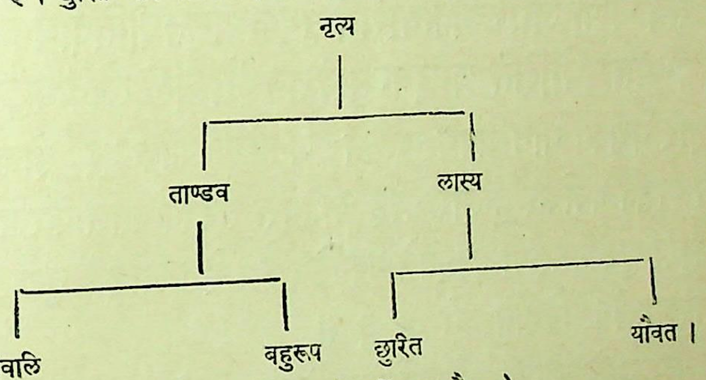
सुशान्तोवाच–जयहरेऽमराधीशसेवितं तव पदाम्बुजं भूरिभूषणम् । कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृतं त्यज महा मते ! मोहमात्मनः ॥ १ ॥

शिष्योंको यह विषय सिखाया । (संस्कृतनाट्यशास्त्र कहता है:–

देवरुच्या प्रतीतो यस्तालमानरसाश्रयः । सविलासोऽङ्गविक्षेपो नृत्यमित्युच्यते बुधैः–॥

(संगीतदामोदर)

ताल, मान और रसाश्रय, देवताओंके रुचिसंगत, सविलास अंगविक्षेपको पंडितलोग नृत्य कहते हैं । ताण्डव और लास्य दो प्रकारका नृत्यहै । फिर ताण्डवभी दो प्रकारकेहैं–पेवलि और बहुरूप। लास्य कीभी दो श्रेणि हैं । छुरित और यौवत यह दो प्रकारके लास्य हैं ।



यह नृत्यका विभाग है । (संगीतदामोदरमें कहा है:–)

ताण्डवञ्च तथा लास्यं द्विविधं नृत्यमुच्यते । पेवलिर्बहुरूपञ्च. ताण्डवं द्विविधं मतम् ॥

अंगविक्षेपबाहुल्यं तथाभिनयशून्यता । यत्र सा पेवलिस्तस्याः संगादेशीति लोकतः ॥

छेदनं भेदनं यत्र बहुरूपा मुखावली । ताण्डवं बहुरूपन्तद्दारुणागलमुद्धतम् ।

छुरितं यौवतञ्चेति लास्यं द्विविधमुच्यते । यत्राभिनयाद्यैर्भावै रसैराश्लेषचुम्बनैः ॥

नायिकानायकौ रङ्गे नृत्यतश्छुरितं हि तत् । मधुरं बद्धलीलाभिर्नटीभिर्यत्र नृत्यते ॥

वशीकरणविद्याभं तल्लास्यं यौवतं मतम् ॥

इस प्रकार कार्यविशेषसे नृत्यके विशेष नाम हुए । इनके सिवाय नृत्यके औरभी अनेक भेद हैं, बहुतायतके भयसे यहांपर न लिखे । संगीतदामोदरमें कहा है:–

गेयादुत्तिष्ठते वाद्यं वाद्यादुत्तिष्ठते लयः । लयतालसमारब्धं ततो नृत्यं प्रवर्त्तते ॥

(संगीतदामोदर)

गीतसे बाजेकी उत्पत्ति है, बाजेसे लयकी उत्पत्ति है, इसके उपरान्त लय और तालके आरम्भमें नृत्य होता है ।

सुशान्ता बोलीः—हरे जयहो । अपने ऊपरकी मोहकी आच्छन्नताको छोडो. हेमहामते ! साधु लोगों करके और इन्द्र करके सेवित अनेकप्रकारके भूषणोंसे भूषित यह तुम अपने चरणकमल हमारे सन्मुख स्थापन करो ॥ १ ॥

तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सतां मानसे स्थितम् ॥
रतिपतेर्मनोमोहदायकं कुरु विचेष्टितं कामलम्पटम् ॥ २ ॥

तुम्हारा यह शरीर संसारकी श्रेष्ठरूप सम्पत्तिसे बनाहै । तुम्हारा यह रूप साधुओंके हृदयमें जागरहाहै । तुम्हारे इसरूपका दर्शन करनेसे कामदेवके मनमें भी मोह होताहै, इस समय जिस्से हमारी मनोकामना पूर्ण हो सो आपकरें ॥ २ ॥

तव यशो जगच्छोकनाशनं मृदुकथामृतप्रीतिदायकम् ॥
स्मितसुधोक्षितं चन्द्रवन्मुखं तवकरोत्वलं लोकमङ्गलम् ॥३॥

तुम्हारे यशका गान श्रवण करनेसे जगत्का शोक दूर होताहै । मधुर वचनरूप अमृत वर्षाकर तुम्हारा यह चन्द्रमुख सबको प्रसन्न करताहै । तुम्हारा यह मुख मुस्कानरूपी अमृतसे प्रवाहित है । हेभगवान् ! तुम्हारा वदनकमल संसारका मंगलविधान करे ॥ ३ ॥

मम पतिस्त्वयं सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रियं कर्म्मणाचरेत् ॥
जहि तदात्मनः शत्रुमुद्यतं कुरु कृपां न चेदीदृगीश्वरः ॥ ४ ॥

कोई भी कभी हमारे पतिको पराजित नहीं कर सकाहै, जो इन्होंने किसी कार्यको करके आपको अप्रसन्न कियाहो तो तुम इस शत्रुभाव को छोडकर कृपाकरो, नहीं तो लोग तुमको कृपासागर परमेश्वर क्यों कहेंगे ॥ ४ ॥

महदहंयुतं पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्म्मितं वपुः ॥
तव निरीक्षणाल्लीलया जगत्स्थितिलयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥५॥

प्रकृति तुम्हारी भार्या है, सो महत्तत्त्व, अहंकारतत्त्व और पंचतन्मात्र

आदि (उपादान) से शरीरको निर्माण करतीहै । तुम्हारे पलक मारने और खोलनेसे इस (१) ब्रह्मकल्पित संसारमें सृष्टि, स्थिति और प्रलय होतीहै ॥ ५ ॥

भूवियन्मरुद्वारितेजसां राशिभिः शरीरेन्द्रियाश्रितैः ॥
त्रिगुणया स्वया मायया विभो कुरु कृपां भवत्सेवनार्थिनाम्॥६॥

हे देव ! क्षिति, जल, तेज, पवन, और आकाश, यह पंचभूत देहके और इन्द्रियोंके आश्रय हैं; तुम उसही भूतपंचक और त्रिगुणमयी अपनी मायासे अपने भक्तोंपर कृपाकटाक्ष करो ॥ ६ ॥

तव गुणालयं नाम पावनं कलिमलापहं कीर्त्तयन्ति ये ॥
भवभयक्षयं तापतापिता मुहुरहो जनाः संसरन्ति नो ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! तुम्हारे नामके गुणसे कलिकालके पाप ढेर दूर होजातेहैं । अनंत गुणोंके स्थान भवभयभंजन तुम्हारे पवित्र नामको जो लोग संसार के पापतापसे जर्जर होकर स्मरण करतेहैं, फिर उनका जन्म नहीं होता ॥ ७ ॥

तव जन्म सतां मानवर्द्धनं निजकुलक्षयं देवपालकम् ॥
कृतयुगार्पकं धर्म्मपूरकं कलिकुलान्तकं शन्तनोतु मे ॥ ८ ॥

तुम्हारे अवतार लेनेसे साधुओंका मान बढताहै, ब्राह्मणोंकी लक्ष्मी बढतीहै, देवताओंका (२) पालन होताहै, सत्ययुगको फिर अधिकारकी प्राप्ति होतीहै, धर्मकी वृद्धि और कलिकुलका संहार होताहै । इस समय तुम्हारे इस अवतारसे हमारा मंगलहो ॥ ८ ॥

मम गृहं पतिपुत्रनप्तृकं गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनैः ।
मणिवरासनं सत्कृतिं विना तव पदाब्जयोः शोभयन्ति किम्॥९॥

---

(१) ब्रह्मसत्य, जगन्मिथ्या; यही वेदान्तका प्रतिपाद्य है । वेदान्ती लोग कहते हैं । कि, यह प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत् ब्रह्मकल्पित हुआ है । यह अविद्याके प्रभावसे सत्यस्वरूपसा जान पडता है, परन्तु वास्तविक सत्य नहीं है ।

(२) याग यज्ञ होनेपर देवताओंको हव्य मिलता है । जब यज्ञादि न होते तब देवतालोग अतृप्त रहा करतेथे । इस समय यज्ञानुष्ठान होनेसे देवतालोगोंका पालन होने लगा; यह तात्पर्य है ।

हमारे गृहमें हमारे पति, पुत्र, पौत्र, हाथी, रथ, ध्वज, चामर, ऐश्वर्य मणिमय आसनादि सबही विद्यमानहैं। परन्तु तुम्हारे चरणकमलकी पूजाके विना इन सबकी कुछभी शोभा नहींहै ॥ ९ ॥

तव जगद्वपुः सुन्दरस्मितं मुखमनिन्दितं सुन्दरारवम्।
यदि न मे प्रियं वल्गुचेष्टितै परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्विह ॥ १० ॥

हे जगदात्मन्! सुन्दर मुस्कानसे शोभायमान सर्वाङ्ग सुन्दर मनोहर वाक्यविभूषित रमणीक चेष्टासे युक्त आपका यह मुख जो हमारा प्रियकार्य न करे, तो अभी हमारी मृत्युहो ॥ १० ॥

हयचरभयहरकरहरशरणखरतरवरशरदशबलमदन ।
जयहतपरभरभववरनशनशशधरशतसमरसभरवदन ॥ ११ ॥

तुम सबके भयको दूर करते हुए घोडेपर चढकर विचरण करतेहो, हे देव! तुम्हारे पैने बाणोंके प्रहारसे बहुतसे वीरपुरुष मृतक हुएहैं; जो बलवान् लडवैय्ये संग्राममें मारेगयेहैं, तुम उनका प्रतिपालन करतेहो। तुम्हारे रसदार वदन मण्डलपर शत २ चन्द्रमाओंकी कान्ति विराजमानहै। महादेव और ब्रह्माजी तुम्हारे आश्रयकी भीख चाहतेहैं। हेदेव! तुम निःसन्देह सनातन पूर्णब्रह्महो ॥ ११ ॥

इति तस्याः सुशान्ताया गीतेन परितोषितः।
उत्तस्थौ रणशय्यायाः कल्किर्युद्धस्थवीरवत् ॥ १२ ॥

अनन्तर कल्किजी इसप्रकार सुशान्ताके गीतसे संतुष्टहो संग्राममें स्थितहुए वीरकी समान रणसेजसे उठे ॥ १२ ॥

सुशान्तां पुरतो दृष्ट्वा कृतं वामे तु दक्षिणे।
धर्मं शशिध्वजं पश्चात्प्राहेति व्रीडितानन: ॥ १३ ॥

उन्होंने सन्मुख सुशान्ताको बायें सत्य युगको दाहिने धर्मको और पीछे राजा शशिध्वजको देखकर लाजसे झुके हुए मुख करके कहा ॥ १३ ॥

का त्वं पद्मपलाशाक्षि! मम सेवार्थमुद्यता।

कान्ते शशिध्वजः शूरो मम पश्चादुपास्थितः ॥ १४ ॥

अयि पद्मपलाशाक्षि ! तुम कौनहो ? किस कारण हमारी सेवा करनेके लिये तैय्यार हुईहो ? यह महावीर शशिध्वज किस कारण हमारे पीछे आयेहैं ? ॥ १४ ॥

हेधर्म्म ! हे कृतयुग ! कथमत्रागता वयम्।
रणाङ्गणं विहायास्याः शत्रोरन्तःपुरे वद ॥ १५ ॥

हेधर्म ! हे कृतयुग ! कहोकि, हमलोग रण मिको छोडकर किस निमित्तसे शत्रुके अन्तःपुरमें आये ॥ १५ ॥

शत्रुपत्न्यः कथं साधु सेवन्ते मामरिं मुदा।
शशिध्वजः शूरमानी मूर्च्छितं हन्ति नो कथम् ॥ १६ ॥

मैं शत्रुहूं, शत्रुकी स्त्रियां किस कारण प्रसन्नहृदयसे हमारी सेवा करतीहैं ? मैं मूर्च्छित होगयाथा, शूरमानी शशिध्वजने किस कारणसे मेरा नाश नहीं किया ॥ १६ ॥

सुशान्तोवाच—पाताले दिवि भूमौ वा नरनागसुराऽसुराः।
नारायणस्य ते कल्के के वा सेवां न कुर्व्वते ॥ १७ ॥

सुशान्ता बोली—पृथ्वीके रहनेवाले स्वर्गवासी वा रसातलवासी मनुष्य देवता, असुर वा नाग इनमें कौन नारायण कल्किजीकी सेवा नहीं करताहै? ॥ १७ ॥

यत्सेवकानां जगतां मित्राणां दर्शनादपि।
निवर्त्तन्ते शत्रुभावस्तस्य साक्षात्कुतो रिपुः ॥ १८ ॥

जगत जिसका सेवकहै, जगत् जिसका मित्ररूपहै, जिसका दर्शन करनेसे शत्रुभाव दूर होजाताहै, कोई क्या साक्षात सम्बन्धसे उसका शत्रु होसकताहै ? ॥ १८ ॥

त्वया सार्द्धं मम पतिः शत्रुभावेन संयुगे।
यदि योग्यस्तदानेतुं किं समर्थो निजालयम् ॥ १९ ॥

जो हमारे स्वामी शत्रुभावसे तुम्हारे साथ संग्राम करते तो क्या तुमको अपने स्थानमें लासकतेथे ? ॥ १९ ॥

तव दासो मम स्वामी अहं दासी निजा तव ।
आवयोः संप्रसादाय आगतोऽसि महाभुज ॥ २० ॥

हमारे स्वामी तुम्हारे दासहैं, मैं तुम्हारी दासीहूँ; हे महाभुज ! हमारे प्रति प्रसन्न होकर तुम आपही यहांपर आयेहो ॥ २० ॥

धर्म्म उवाच—अहं तवैतयोर्भक्त्या नामरूपानुकीर्त्तनात् ।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कलिक्षय ॥ २१ ॥

धर्म बोलाः—हे कलिनाशन ! यह दोनोंही जिसप्रकार आपके प्रति भक्ति करतेहैं, जिस प्रकारसे आपका नामकीर्तन करतेहैं, जिस प्रकारसे स्तोत्र करते हैं, तिसको देखकर कृतार्थ हुआ, अत्यन्त कृतार्थ हुआ ॥ २१ ॥

कृतयुग उवाच—अधुनाहं कृतयुगं तव दासस्य दर्शनात् ।
त्वमीश्वरो जगत्पूज्यसेवकस्यास्य तेजसा ॥ २२ ॥

कृतयुगने कहाः—आज मैं आपके इस दासका दर्शन पायकर सत्ययुग नामसे गिनागया। आपभी इस सेवकके तेज करके ईश्वर और जगत्पूज्य हुए ॥ २२ ॥

शशिध्वज उवाच—दण्डयं मां दण्डय विभो योद्धृत्वादुद्यतायुधम्।
येन कामादिरागेण त्वय्यात्मन्यपि वैरिता ॥ २३ ॥

शशिध्वजने कहाः—हेविभो ! मैंने युद्ध करके आपके शरीरमें अस्त्रका आघात कियाहै। आप हमारे आत्माहैं। मैंने काम क्रोधादि रागके वश होकर आपके साथ शत्रुता की है ॥ २३ ॥

इति कल्किर्वचस्तेषां निशम्य हसिताननः ॥
त्वयाजितोऽस्मीति नृपं पुनःपुनरुवाच ह ॥ २४ ॥

उन सबके यह वचन सुनकर मुस्काय कल्किजीने बारम्बार कहा कि, तुमनेही हमको जीत लियाहै ॥ २४ ॥

ततः शशिध्वजो राजा युद्धादाहूय पुत्रकान् ॥
सुशान्ताया मतिं बुद्ध्वा रमां प्रादात्सकल्कये ॥ २५ ॥

इसके उपरान्त राजा शशिध्वजने संग्रामस्थलसे पुत्रोंको बुलाय शान्ताके अभिप्रायको जान कल्किजीको रमानामक कन्या दान करदी ॥ २५ ॥

तदैत्य मरुदेवापी शशिध्वजसमाहृतौ ॥
विशाखयूपभूपश्च रुधिराश्वश्च संयुगात् ॥ २६ ॥

तिसकालमें मरु, देवापि, विशाखयूपराजा और रुधिराश्व यहलोग राजा शशिध्वज करके बुलाये जाकर संग्रामस्थलसे ॥ २६ ॥

शय्याकर्णनृपेणापि भल्लाटं पुरमाययुः ॥
सेनागणैरसंख्यातैः सा पुरी मर्दिताभवत् ॥ २७ ॥

शय्याकर्ण नामक राजाके साथ भल्लाट नगरमें गए । अगणित सेनाके समूहसे वह पुरी मर्दित होने लगी ॥ २७ ॥

गजाश्वरथसंबाधैः पत्तिच्छत्ररथध्वजैः ॥
कल्किनापि रमायाश्च विवाहोत्सवसम्पदाम् ॥ २८ ॥

हाथी, घोडे और रथ समूहके परस्पर भिडजानेसे रथसमूहके अडजानेसे पयदल, रथ और पताकासमूह करके कल्कि और रमाका परस्पर विवाहोत्सव पूरा हुआ ॥ २८ ॥

द्रष्टुं समीयुस्त्वरिता हर्षात्सबलवाहनाः ॥
शंखभेरीमृदङ्गानां वादित्राणाञ्च निस्वनैः ॥ २९ ॥

सबही हर्षके हेतु सबल और वाहनके सहित तिस उत्सव देखनेके लिये

आये । शंख भेरी (१) मृदंग (२) और दूसरे बाजोंकी ध्वनिसे॥२९ ॥

नृत्यगीतविधानैश्च पुरस्त्रीकृतमङ्गलैः ॥
विवाहो रमया कल्केरभूदतिसुखावहः ॥ ३० ॥

नृत्यगीतादिके अनुष्ठान करके और नगरकी स्त्रियोंके किये हुए मंगलाचरणसे रमा और कल्किजीका विवाह अत्यन्त सुखदायी हुआ ॥ ३० ॥

नृपा नानाविधैर्भोज्यैः पूजिता विविशुः सभाम् ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चावरजातयः ॥ ३१ ॥

राजालोगोंने अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्य करके सत्कार पाय सभामें प्रवेश किया । ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्र व और दूसरी जातिवाले ॥ ३१ ॥

विचित्रभोगावरणाः कल्किं द्रष्टुमुपाविशन् ॥
तस्यां सभायां शुशुभे कल्किः कमललोचनः ॥ ३२ ॥

विचित्र भूषण व अनेक प्रकारकी भोग्यवस्तु पाय कल्किजीका दर्शन कर लेनेके लिये उस सभामें बैठते हुए कमलके समान नेत्रवाले कल्किजी उस सभामें शोभायमान होने लगे ॥ ३२ ॥

---

(१) शंखभेरी–वाद्ययंत्रविशेष । एक प्रकारका बड़ा ढक्का । अनेक दिनसे भारतवर्षमें भेरीके बजनेकी रीति चली आई है । आनक, दुन्दुभि यह दो शब्द भेरीके पर्य्याय हैं ॥

(२) मृदंग–वाद्ययंत्र विशेष । आजकल इसको भाषामें "पखावज" कहतेहैं विशेषतः वैष्णव-लोग इसका अधिक व्यवहार करतेहैं । काठका बनाहोतो "पखावज" और मिट्टीका बनाहोतो "मृदंग" कहतेहैं । पखावज और मृदंगके बनानेकी रीति एकहीहै; यथाः–

मृत्तिकानिर्मितश्चैव मृदंगः परिकीर्त्तितः ॥ (संगीतदामोदर)

इसका परिमाण यह है:–

सार्द्धहस्तप्रमाणन्तु दैर्घ्यमस्य विधीयते । त्रयोदशांगुलं वाममथवा द्वादशांगुलम् ॥
दक्षिणञ्च भवेद्धीनमेकेनार्द्धांगुलेन वा । करणानद्धवदनो मध्ये चैव पृथुर्भवेत् ॥
(संगीतदामोदर)

लम्बाई डेढहाथकी होतीहै । बायें भागका वेध १३ या १२ अंगुल होताहै । बायें भागकी बनिस्वत दहिना भाग एक या आधा अंगुल कम होताहै । दोनों सिरे छोटे और बिचला भाग मोटा होताहै । चमडेसे मढ़कर 'थरलि' मलतेहैं । संगीतदामोदरमें 'थरलि' बनानेकी रीतिभी लिखीहै ।

नक्षत्रगणमध्यस्थः पूर्णः शशधरो यथा ॥
रेजे राजगणाधीशो लोकान्सर्वान्विमोहयन् ॥ ३३ ॥

तारोंमें जिसप्रकार पूर्णचन्द्रमा शोभायमान होताहै, तैसेही राजाओंके अधिपति कल्किजी समस्त लोकको मोहित करके शोभायमान होनेलगे ॥ ३३ ॥

रमापतिं कल्किमवेक्ष्य भूपः सभागतं पद्मदलायतेक्षणम् ॥
जामातरं भक्तियुतेन कर्म्मणा विबुध्य मध्ये निपसाद तत्र ह ३४॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किना रमाविवाहो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

कमलदलके समान नेत्रवाले कल्किजीने रमाका पाणिग्रहण किया यह देखकर और तिनको जामातृभावसे प्राप्त हो राजा शशिध्वज सभामें भक्तिके सहित विराजने लगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किना रमाविवाहो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

तृतीयांशः ।

एकादशोऽध्यायः ।

सूत उवाच–तत्राहुस्ते सभामध्ये वैष्णवं तं शशिध्वजम् ।
मुनिभिः कथिताशेष-भक्तिव्यासक्तविग्रहम् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले–महर्षियोंने जहांतक भक्ति (१) की सीमा वर्णन की

---

(१) भक्तिरसामृतनामक पुस्तकमें लिखाहैः–
अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् । आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धुप्रथमलहरी ९)

जिस कृष्णानुशीलनमें कृष्णजीके अतिरिक्त और किसी विषयकी कामना नहो जो ज्ञान और कर्मसे न ढकै और जिसमें अनुकूल भावसे कृष्णजीका अनुशीलन कराजाय, तिसको उत्तम भक्ति कहतेहैं ।

अर्थात् निष्काम होकर उपासना करना उचितहै । जिसमें ज्ञान और कर्मका अनुष्ठान करनेसे भक्तिका सोत रुक न जाय, ऐसे ज्ञान और कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये । जिन व्रत योगादि विष-

है, उस भक्तिसे पूर्ण है देह जिसका ऐसे परम वैष्णव शशिध्वज राजाको १

सुशान्ताञ्च कृतेनापि धर्म्मेण विधिवद्युताम् ॥ २ ॥

और कृतयुगके सहित व धर्मके साथ मिलीहुई सुशान्ताको देखकर आयेहुए राजाओंने और ब्राह्मणोंने कहा ॥ २ ॥

राजान ऊचुः—युवां नारायणस्यास्य कल्केः श्वशुरतां गतौ ॥
वयं नृपा इमे लोका ऋषयो ब्राह्मणाश्च ये ॥ ३ ॥

राजाओंने कहाः—इस समय आप लोग साक्षात् नारायण कल्किजीके श्वशुर हुये । परन्तु हम और यह सब राजालोग, ऋषि यह सारे ब्रह्माण और यह सारे वैश्यादि साधारण जन ॥ ३ ॥

प्रेक्ष्य भक्तिवितानं वां हरौ विस्मितमानसाः ।
पृच्छामस्त्वामियं भक्तिः क्व लब्धा परमात्मनः ॥ ४ ॥

हरिमें आपलोगोंकी भक्तिका विस्तार देखकर विस्मययुक्त हुएहैं और जाननेकी इच्छा करतेहैं कि,आपलोग यह परमात्मविषयकभक्ति कहांसे प्राप्त हुईहै ॥ ४ ॥

कस्य वा शिक्षिता राजन् ! किंवा नैसर्गिकी तव ।
श्रोतुमिच्छामहे राजन् ! त्रिजगज्जनपावनीम् ।
कथां भागवतीं त्वत्तः संसाराश्रमनाशिनीम् ॥ ५ ॥
शशिध्वज उवाच-स्त्रीपुंसोरावयोस्तत्तच्छृणुतामोघविक्रमाः
वृत्तं यज्जन्मकर्म्मादि स्मृतिं तद्भक्तिलक्षणाम् ॥ ६ ॥

हे राजन् ! यह भक्ति क्या किसीसे सीखीहै ? अथवा यह आपलोगोंकी

योंमें ईश्वरका नियम लंघन होताहो प्रतिकूलता हो, उनको छोड़कर भक्तिका अनुशीलन करना चाहिये । इसप्रकार जो भक्तिका रस उफनताहै उसको उत्तमा भक्ति कहतेहैं । नारदपंचरात्रमें कहाहैः—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् । हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते ।

(भक्तिरसामृतधृतनारदपंचरात्रीयरचन)

अनुकाल भाव (और) एकाग्रचित्तसे कायिक, वाचिक और मानसिक इन तीन उपाधियोंसे रहित हो कृष्णका अनुशीलन करनेसे तिसको उत्तमा भक्ति कहते हैं ।

स्वाभाविक भक्ति है। हे राजन्! आपसे हमने इस भगवद्भक्तिका कारण जाननेकी इच्छाकीहै। इसके श्रवण करनेसे भी त्रिलोकीके लोग पवित्र होतेहैं और इससे संसारप्रवृत्ति उखड जातीहै राजा शशिध्वजने कहाः– हे अमोघविक्रम राजाओ! हमारे स्त्रीपुरुषोंके जैसे जन्म कर्मादि हुए हैं और जिस प्रकारसे भक्तिकी स्मृति (याद) हुई है वह श्रवण कीजिये॥ ५॥ ६॥

पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽहं पूतिमांसभुक्।
गृध्रीयं मे प्रियारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ॥ ७॥

सहस्र युग बीते पहले मैं सडेहुए मांसका खानेवाला गृध्रथा। यह हमारी प्रिया शान्ता गिद्धिनीथी। यह गीध गिद्धिनी एक बडे वृक्षपर घोंसला बनाकर रहाकरतेथे॥ ७॥

चचार कामं सर्वत्र वनोपवनसंकुले।
मृतानां पूतिमांसौघैः प्राणिनां वृत्तिकल्पकौ॥ ८॥

बन और उपवनयुक्त सब स्थानोंमें यह रुचिके अनुसार घूमा करतेथे हम दोनोंही मृतक हुए जीवोंके दुर्गन्धवाले मांससे जीवनयात्रा निर्वाह करतेथे॥ ८॥

एकदा लुब्धकः क्रूरो लुलोभ पिशिताशिनौ।
आवां वीक्ष्य गृहे पुष्टं गृध्रं तत्राप्ययोजयत्॥ ९॥

एक समय हम दोनोंको देखकर कोई क्रूर आशयवाला व्याध हमारे पकडनेका लालची हुआ। फिर उस व्याधने हमको पकड़नेके लिये अपना पालू गीध छोडा॥ ९॥

तं वीक्ष्य जातविश्रम्भौ क्षुधया परिपीडितौ।
स्त्रीपुंसौ पतितौ तत्र मांसलोभितचेतसौ॥ १०॥

उस समय हमको बड़ी भूंख लगीथी, इस कारण हम उस पालेहुए गिद्धको देखकर विश्वासित हृदयसे मांसके लोभमें आय तिसके स्थानमें गिरे॥ १०॥

बद्धवावां वीक्ष्य तदा हर्षादागत्य लुब्धकः ।
जग्राह कण्ठे तरसा चञ्च्वाग्राघातपीडितः ॥ ११ ॥

व्याधने हम दोनोकों बँधाहुआ देखकर हर्ष युक्त हृदयसे उस स्थानमें आय शीघ्रतासे हमारा गला पकड लिया । हमभी प्राणपणसे उसको चोंचसे काटने लगे ॥ ११ ॥

आवां गृहीत्वा गण्डक्याः शिलायां सलिलान्तिके ।
मस्तिष्कं चूर्णयामास लुब्धकः पिशिताशनः ॥ १२ ॥

फिर मांसके लोभी व्याधने हम दोनोंको पकड गंगाजलके निकट गंडकी शिलापर पटक हम दोनोंका शिर चुर्णकर डाला ॥ १२ ॥

चक्राङ्कितशिलागङ्गामरणादपि तत्क्षणात् ।
ज्योतिर्मयविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ॥ १३ ॥

गंगाजीके किनारे और चक्रांकित शिलापर मृत्यु होनेके कारण हम तत्काल चतुर्भुजमूर्ति धारणकर प्रकाशमान विमानमें सवारहो ॥ १३ ॥

प्राप्तौ वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
तत्र स्थित्वा युगशतं ब्रह्मणो लोकमागतौ ॥ १४ ॥

स्वर्गलोकसे पूजित वैकुण्ठधाममें गये । उस स्थानमें शतयुग (१००) तक वास करके ब्रह्मलोकमें गये ॥ १४ ॥

ब्रह्मलोके पञ्चशतं युगानामुपभुज्य वै ।
देवलोके कालवशाद्गतं युगचतुःशतम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मलोकमें पांचशतयुगतक सुखभोग करके कालके वशसे ४०० युगतक देवलोकमें स्वर्गके सुखको भोगा ॥ १५ ॥

ततो भुवि नृपास्तावद्बद्धसूनुरहं स्मरन् ॥
हरेरनुग्रहं लोके शालग्रामशिलाश्रमम् ॥ १६ ॥

हे राजाओ ! तदुपरान्त हमने इस मृत्युलोकमें जन्म लियाहै, परन्तु शालग्रामशिलाका स्थान और नारायणजीका अनुग्रह यह सब हमारी स्मृतिमें जागरहाहै ॥ १६ ॥

जातिस्मरत्वं गण्डक्याः किं तस्याः कथयाम्यहम् ॥
यज्जलस्पर्शमात्रेण महात्म्यं माहदद्भुतम् ॥ १७॥

गण्डकी नदीके किनारेपर मरनेसे जातिके स्मरणकी कैसी अद्भुत शक्ति उत्पन्नहोतीहै सो क्या बताऊं। उसके जलको स्पर्श करतेही एक अपूर्व माहात्म्य होताहै ॥ १७॥

चक्रांकितशिलास्पर्शमरणस्येदृशं फलम् ॥
न जाने वासुदेवस्य सेवया किं भविष्यति॥ १८॥

चक्रसे अंकित शिलाको स्पर्श करनेसे मृत्यु होनेपर जब ऐसा फल मिलताहै, तब भगवान् वासुदेवकी सेवा करनेका फल किसी रीतिसे नहीं कह जा सकता ॥ १८॥

इत्यावां हरिपूजासु हर्षविह्वलचेतसौ ॥
नृत्यन्तावनुगायन्तौ विलुठन्तौ स्थिताविह ॥ १९॥

यही विचार कर हम कभी नृत्य करते हैं, कभी नारायणजीकी पूजामें एकान्ताचित्तसे आसक्त रहते हैं, कभी नारायणजीका गुण गाते हैं, भक्ति भावसे लोटते हैं। हम इस प्रकारसे यहांपर समय बिताते आये हैं ॥ १९॥

कल्केर्नारायणांशस्य अवतारः कलिक्षयः ॥
पुरा विदितवीर्य्यस्य पृष्टो ब्रह्ममुखाच्छ्रुतः ॥ २०॥

हमने ब्रह्माजीके मुखसे पहलेही सुनकर जानलियाथा कि, कलिका नाश करनेके लिये नारायणके अंश कल्किजी अवतार लेंगे। हम उनके वीर्यको भलीभांतिसे जानते हैं ॥ २०॥

इति राजसभायां स श्रावायित्वा निजाः कथाः ॥
ददौ गजानामयुतमश्वानां लक्षमादरात् ॥ २१॥

इस प्रकारसे सभामें अपने वृत्तान्तको वर्णनकर राजा शशिध्वजने कल्किजीको भक्तिपूर्णहृदयसे आदर दे दशहजार हाथी,एकलाख घोडे॥ २१॥

रथानां षट्सहस्रन्तु ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥
दासीनां युवतीनाञ्च रमानाथाय षट्शतम् ॥ २२ ॥

छैः हजार रथ, छैः सौ युवती दासी ॥ २२ ॥

रत्नानि च महार्घाणि दत्त्वा राजा शशिध्वजः ॥
मेने कृतार्थमात्मानं स्वजनैर्बान्धवैः सह ॥ २३ ॥

बहुतसे महामोलके रत्न देकर बन्धुबान्धवोंके साथ अपनेको कृतार्थ समझा ॥ २३ ॥

सभासद इतिश्रुत्वा पूर्वजन्मोदिताः कथाः ॥
विस्मयाविष्टमनसः पूर्णं तं मेनिरे नृपम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार राजाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनकर सभासदोंने मनमें विस्मितहो उसको पूर्ण जाना ॥ २४ ॥

कल्किं स्तुवन्तो ध्यायन्तः प्रशंसन्तो जगज्जनाः
पुनस्तमाहू राजानं लक्षणं भक्तिभक्तयोः ॥ २५ ॥

फिर तहांके सबलोग कल्किजीकी स्तुति करने लगे और ध्यान करने लगे । फिर उन्होंने राजा शशिध्वजसे और भक्ति भक्तके लक्षण पूछने आरम्भ किये ॥ २५ ॥

नृपा ऊचुः—भक्तिकाम्याद्भगवतः को वा भक्तो विधानवित् ।
किं करोति किमश्नाति क्व वा वसति वक्ति किम् ॥ २६ ॥

राजाओंने कहाः—भगवद्भक्ति किसका नाम है ? विधानका जाननेवाला, भक्त किसको कहा जासकता है ? यह भक्त क्या कार्य करताहै ? क्या आहार करता है ? कहां रहताहै ? किस प्रकारसे बात कहताहै ॥ २६ ॥

एतान्वर्णय राजेन्द्र ! सर्व्वं त्वं वेत्सि सादरात् ।
जातिस्मरत्वात्कृष्णस्य जगतां पावनेच्छया ॥ २७ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः ।
साधुवादैः समामन्त्र्य तानाह ब्रह्मणोदितम् ॥ २८ ॥

हे राजेन्द्र ! आप सब जानते हैं, इसकारण आप आदरपूर्वक तिस सब वार्ताको वर्णनकरें ॥ उनके यह वचन सुनकर राजा प्रफुल्लवदन हुआ और धन्यवाद दे तिनसे सम्भाषणकर जातिस्मरताके हेतु कृष्णनामसे जगत्को पवित्र करनेके अभिप्रायसे उसको कहना आरम्भ किया जिसको पहले ब्रह्माजीसे सुनाथा ॥ २७ ॥ २८ ॥

शशिध्वज उवाच—पुरा ब्रह्मसभामध्ये महर्षिगणसंकुले।
सनको नारदं प्राह भवद्भिर्यास्त्विहोदिताः ॥ २९ ॥

राजा शशिध्वजने कहा—पहले ब्रह्मलोकमें ब्रह्मसभाके बीच महर्षिलोग बैठे हैं कि, ऐसे समयमें यह कथा सनकादिने नारदजीसे पूछीथी कि, जो कथा आपलोग मुझसे पूछते हैं ॥ २९ ॥

तेषामनुग्रहेणाहं तत्रोषित्वा श्रुताः कथाः।
यास्ताः संकथयामीह शृणुध्वं पापनाशनाः ॥ ३० ॥

तिसकाल मैं भी उसही स्थानमें था, अतएव मैंने तिनके अनुग्रहसे वह समस्त वाक्य सुनेथे। हे पापनाशक सभासदो ! मैंने जो जो बातें सुनीथीं, वह इस समय आपसे कहताहूं श्रवण कीजिये ॥ ३० ॥

सनक उवाच—का भक्तिः संसृतिहरा हरौ लोकनमस्कृता।
तामादौ वर्णय मुने नारदावहिता वयम् ॥ ३१ ॥

सनकने पूछा—हे महर्षिनारद ! हरिमें किस प्रकारकी भक्ति करनेसे जन्म नहीं लेना पडता, किसप्रकारकी भक्ति प्रशंसाके योग्य है ? सो आप पहले वर्णन कीजिये। हम सावधानहृदयसे श्रवण करते हैं ॥ ३१ ॥

नारद उवाच—मनःषष्ठानीन्द्रियाणि संयम्य परया धिया।
गुरावपि न्यसेद्देहं लोकतन्त्रविचक्षणः ॥ ३२ ॥

नारदजीने कहा—लोकतंत्रका जानने वाला चतुर साधक उत्तम बुद्धिसे

नेत्र, कर्ण, नासिका, जीभ, त्वचा इस ज्ञानेन्द्रियपंचक (१) और मनको रोककर परमज्ञानका आश्रयले. गुरुके चरणमें देहको अर्पण करे ॥ ३२ ॥

गुरौ प्रसन्ने भगवान्प्रसीदति हरिः स्वयम् ।
प्रणवाग्निप्रियामध्ये मवर्णं तन्निदेशतः ॥ ३३ ॥

जो गुरु प्रसन्न होवै तो स्वयं भगवान् नारायणजी भी प्रसन्न होजातेहैं । गुरुजीकी आज्ञाके अनुसार प्रवण और अग्निकी प्रियाके बीचमें 'नमः' यह वर्ण 'ॐ नमः स्वाहा' (२) ॥ ३३ ॥

स्मरेदनन्यया बुद्ध्या देशिकः सुसमाहितः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ३४ ॥

अनन्यहृदयसे स्मरणकरे फिर शिष्यको चाहिये कि, सावधान हृदयसे कि, पाद्य अर्घ्य व आचमनीय आदिसे और स्नानीय वस्त्र भूषणोंसे ॥ ३४ ॥

पूजयित्वा वासुदेवपादपद्मं समाहितः ।
सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं स्मरेद्धृत्पद्ममध्यगम् ॥ ३५ ॥

कार्यमें उत्तम चित्त लगाय नारायणजीके चरणकमलकी पूजा करे । फिर हृदयकमलके बीचमें विराजमान रमणीय सर्वाङ्ग सुन्दर नारायणजीकी चिन्तना करे ॥ ३५ ॥

एवं ध्यात्वा वाक्यमनोबुद्धीन्द्रियगणैः सह ।
आत्मानमर्पयेद्विद्वान्हरावेकान्तभाववित् ॥ ३६ ॥

इस प्रकारसे ध्यान करके ज्ञानी और भावका जाननेवाला, वाक्य, मन बुद्धि और इन्द्रियोंके साथ आत्माको नारायणजीमें समर्पण करे ॥ ३६ ॥

---

(१) नेत्र, कान, नाक, जीभ और त्वचा इन पांचको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं । वेदान्त की पंचदशीनामक पुस्तकमें लिखा है ।

" श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणश्चेन्द्रियपंचकम् । कर्णादि गोलकस्थं तच्छब्दादि ग्राहकं क्रमात् ॥ सौक्ष्म्यात्कार्यानुमेयं तत्प्रायो धावेद्बहिर्मुखम् ॥

(पंचदशी भूतविवेकनामक दूसरा परिच्छेद ४ श्लोक)

नेत्रसे दर्शन, त्वचासे स्पर्श, कानसे श्रवण, जीभसेस्वाद और नासिकासे गंधका ज्ञान होता है ।

(२) यज्ञके मध्य अग्निमें घृत डालनेके समय "स्वाहा शब्द उच्चारण किया जाता है । श्रीमद्भागवतमें स्वाहाको अग्निकी भार्या लिखा है । स्वाहाके पिता दक्षप्रजापति हैं ।

अङ्गानि देवास्तेषान्तु नामानि विदितान्युत।
विष्णोः कल्केरनन्तस्य तान्येवान्यन्न विद्यते ॥ ३७ ॥

और देवमूर्ति कल्किमूर्ति अनन्त विष्णुजीकी अंगरूपहैं। उन सब नामोंको आप जानतेहैं। उनके सिवाय और कुछभी नहींहै ॥ ३७ ॥

सेव्यः कृष्णः सेवकोऽहमन्ये तस्यात्ममूर्त्तयः।
अविद्योपाधयो ज्ञानाद्वदन्ति प्रभवादयः ॥ ३८ ॥

कृष्णजी सेव्य मैं सेवक, सर्व जीव कृष्णजीकी मूर्तिहैं, ज्ञानीलोग कहतेहैं कि, अविद्याकी (१) उपाधिके वशसे इन सबकी उत्पत्ति होतीहै ॥ ३८ ॥

भक्तस्यापि हरौ द्वैतं सेव्यसेवकवत्तदा।
नान्यद्विना तमित्येव क्वच किञ्चन विद्यते ॥ ३९ ॥

जो भक्तहैं उसके लियेभी सेव्यसेवकरूप द्वैतभाव उदय होताहै। फल यहहै कि नारायणजीके विना और कोई वस्तु कहींभी नहींहै ॥ ३९ ॥

भक्तः स्मरति तं विष्णुं तन्नामानि च गायति।
तत्कर्माणि करोत्येव तदानन्दसुखोदयः ॥ ४० ॥

भक्त उन नारायणजीका स्मरण करताहै, हरिनामको गाताहै, नारायणजीके लिये कर्म करताहै, तिस्सेही उसको आनन्द और सुखका, उदय होताहै ॥ ४० ॥

नृत्यत्युद्धतवद्रौति हसति भ्रैति तन्मनाः।
विलुंठत्यात्मविस्मृत्या न वेत्ति कियदन्तरम् ॥ ४१ ॥

भक्त प्रचण्डकी नांई नृत्य करताहै, रोदन करताहै, हँसताहै, तन्मय होकर गमन करताहै, अपनेको भूलकर लोटताहै, कहींभी किसी भेदको नहीं देखता ॥ ४१ ॥

(१) जन्म और मृत्यु आदि अविद्याही है अविद्याके उपाधिभेदको जन्ममृत्यु आदि कहा जाता है। मध्वाचार्य कहते हैं:—

ब्रह्माद्वयं जातबुद्धौ जीवत्वेन विशेत्स्वयम्। "उपाधिकं जीवजन्म" नित्यत्वं वस्तु तत्स्मृतम् ॥

(व्यासाधिकरणमाला २ अ०३ पाद, १८ सूत्र)

एवंविधा भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी।
पुनाति सहसा लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ ४२ ॥

यही भगवद्विषयिणी अव्यभिचारिणी भक्ति (१) है; इस भक्तिके बलसे देव, दानव, गन्धर्व मानवादि समस्त लोग तत्काल पवित्र होजातेहैं ॥ ४२॥

भक्तिः सा प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मसम्पत्प्रकाशिता।
शिवविष्णुब्रह्मरूपा वेदाद्यानां वरापि वा ॥ ४३ ॥

जो नित्या प्रकृतिहै, जो ब्रह्मसम्पत्तिहै, वही भक्तिके रूपसे प्रकाशित हुईहै, यह भक्तिही वेदादिके बीचमें श्रेष्ठहै। यह भक्तिही विष्णु, ब्रह्मा और शिवरूपाहै ॥ ४३ ॥

भक्ताः सत्त्वगुणाध्यासाद्रजसेन्द्रियलालसाः।
तमसा घोरसंकल्पा भजन्ति द्वैतदृग्जनाः ॥ ४४ ॥

जिनको द्वैतज्ञानहै, तिनमेंसे जितनोंमें सत्त्वगुणका अध्यास होताहै वह इन्द्रियोंके व्यापारमें लालसा करतेहैं, जिनमें तमोगुणका आगमन होताहै वह घोर कार्यमें रत रहतेहैं ॥ ४४ ॥

सत्त्वान्निर्गुणतामेति रजसा विषयस्पृहाम्।
तमसा नरकं यान्ति संसाराद्वैतधर्म्मिणि ॥ ४५ ॥

संसारमें जो लोग द्वैतज्ञानसम्पन्नहैं तिनमें सत्त्वगुणकी अवाई होनेसे। निर्गुणता प्राप्त होतीहै, रजोगुणका आगमन होनेसे विषयभोगमें स्पृहा होतीहै, तमोगुणकी अंधिकाई होनेसे नरकगामी होतेहैं ॥ ४५ ॥

---

(१) बहुतकाल तक सत्कारादिके साथ सेवाका नाम अव्यभिचारिणी भक्ति है। यह सब मंगलोंमें प्रधान अर्थात् चतुर्वर्गफलकी देनेवाली और सर्वदा पूर्णानन्दमयी है यथाः–

सर्वमङ्गलमूर्द्धन्या पूर्णानन्दमयी सदा। द्विजेन्द्र तव चाप्यस्तु भक्तिरव्यभिचारिणी ॥

(भक्तिरसामृतासिन्धु ३ लहरी)

इसकोही अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं। अव्यभिचारिणी भक्तिका माहात्म्य विशेष प्रबल है। ऐसा वैष्णवशास्त्रमें कहा है।

उच्छिष्टमवशिष्टं वा पथ्यं पूतमभीप्सितम्।
भक्तानां भोजनं विष्णोर्नैवेद्यं सात्त्विकं मतम्॥ ४६॥

विष्णुजीका उच्छिष्ट, पवित्र, पथ्य, इच्छा किया हुआ नैवेद्य सात्त्विक आहार कहा जाताहै, वह सात्त्विक आहारही भक्तोंको भोजन करना चाहिये॥ ४६॥

इन्द्रियप्रीतिजननं शुक्रशोणितवर्द्धनम्।
भोजनं राजसं शुद्धमायुरारोग्यवर्द्धनम्॥ ४७॥

जो इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवालाहै, जिस्से वीर्य और रुधिर बढताहै, जिस्से परमायुकी वृद्धि होतीहै, जिस्से शरीर रोगरहित रहताहै ऐसे शुद्ध भोजनको राजसभोजन कहा जाताहै॥ ४७॥

अतः परं तामसानां कट्वम्लोष्णविदाहिकम्।
पूतिपर्य्युषितं ज्ञेयं भोजनं तामसप्रियम्॥ ४८॥

अब तामस आहार कहतेहैं! जो कटु, खट्टा, दग्ध, दुर्गन्ध और बासी है सो तामसआहार तामसी आदमियोंको प्याराहै॥ ४८॥

सात्त्विकानां वने वासो ग्रामे वासस्तु राजसः।
तामसं द्यूतमद्यादिसदनं परिकीर्त्तितम्॥ ४९॥

सत्त्वगुणका अवलम्बन करनेवाले वनमें, रजोगुणका अवलम्बन करनेवाले ग्राममें और तमोगुणका अवलम्बन करनेवाले जुएघर या सुरालयमें वास करतेहैं॥ ४९॥

न दाता स हरिः किञ्चित्सेवकस्तु न याचकः।
तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किमिति शाश्वती॥ ५०॥

नारायणजी किसीकोभी कुछ हाथसे उठाकर नहीं देते हैं, सेवकभी नारायणजीसे कुछ नहीं मांगता तोभी उनकी परस्पर परमप्रीति सदा दिखाई देती है। यह कुछ साधारण अद्भुत बात नहीं है अर्थात बडी अद्भुत बात है॥ ५०॥

इत्येतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्गुणकथनं सनको विबुध्य भक्त्या ।
सविनयवचनैः सुरर्षिवर्य्यं परिणुत्वेन्द्रपुरं जगाम शुद्धः ॥ ५१ ॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे नृपगण-
शशिध्वजसंवादे जातिस्मरत्वकथनं नाम
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शुद्ध हृदयवाले, महर्षिसनक भक्तिसहित देवर्षि नारदजीसे साक्षात् परमेश्वर भगवान् नारायणजीके गुणोंको श्रवण करते भये । वह विनययुक्त वचनोंसे देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारदजीकी स्तुति कर व उनको प्रणाम करके इन्द्रलोकमें गये ॥ ५१ ॥

इति सानुवादे श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
नृपगणशशिध्वजसंवादे जातिस्मरत्वकथनं
नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

तृतीयांशः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

शशिध्वज उवाच–एतद्वः कथितं भूपाः कथनीयोरुकर्म्मणः ।
कथा भक्तस्य भक्तेश्च किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ १ ॥

राजा शशिध्वजने कहाः–हे भूपालगण ! जिनका असाधारण कर्म कीर्त्तन करना चाहिये, तैसे भक्तोंका और भक्तिका माहात्म्य कहा, अब आज्ञा कीजिये कि क्या कहूं ॥ १ ॥

भूपा ऊचुः–त्वं राजन्वैष्णवश्रेष्ठः सर्व्वसत्त्वहिते रतः ।
तवावेशः कथं युद्धरङ्गे हिंसादिकर्मणि ॥ २ ॥

राजाओंने कहाः–हे राजन् ! आप परम वैष्णव हैं आप सर्व प्राणियोंका कल्याण साधन करने (अहिंसाही परम धर्म) में रत हैं फिर किस कारणसे आप हिंसादिदोषसे दूषित युद्धकार्यमें लगे ॥ २ ॥

प्रायशः साधवो लोके जीवानां हितकारिणः ।
प्राणबुद्धिधनैर्वाग्भिः सर्व्वेषां विषयात्मनाम् ॥ ३ ॥

हमने देखा है कि साधुलोग बहुधा प्राणद्वारा, बुद्धिद्वारा, धनद्वारा, वाक्यद्वारा विषयमें लिप्त जीवोंका हितानुष्ठान किया करते हैं ॥ ३ ॥

शशिध्वज उवाच—द्वैतप्रकाशिनी या तु प्रकृतिः कामरूपिणी।
सा सूते त्रिजगत्कृत्स्नं वेदांश्च त्रिगुणात्मिका ॥ ४ ॥

राजा शशिध्वजने कहाः—सत, रज तम यह तीन गुणवाली जो प्रकृति है तिस्सेही द्वैतभाव प्रगट होता है। यह प्रकृतिही कामरूपिणी अर्थात् सकलात्मिका (सांख्यदर्शनके मतसे) है। इस प्रकृतिसेही समस्त वेद और त्रिलोक उत्पन्न हुए हैं ॥ ४ ॥

ते वेदास्त्रिजगद्धर्म्मशासनाधर्म्मनाशनाः ।
भक्तिप्रवर्त्तका लोके कामिनां विषयैषिणाम् ॥ ५ ॥

जो लोग विषयके अभिलाषी कामी लोग हैं तिनके लिये त्रिजगत्का धर्मस्थापन करके अधर्मका नाश करके भक्तिको उत्पन्न करतेहैं ॥ ५ ॥

वात्स्यायनादिमुनयो मनवो वेदपारगाः ।
वहन्ति बलिमीशस्य वेदवाक्यानुशासिताः ॥ ६ ॥

वेदके जाननेवाले वात्स्यायन आदि महर्षिलोग और मनुष्य वेदवाक्यके अनुगामी होकर उन भगवान् ईश्वरके लिये बलिदान करते हैं ॥ ६ ॥

वयं तदनुगाः कर्म्मधर्म्मनिष्ठा रणप्रियाः ।
जिघांसन्तं जिघांसामो वेदार्थकृतनिश्चयाः ॥ ७ ॥

हम लोग तिनके अनुवर्ती हो धर्मकर्ममें रत रहते हुए संग्राम करतेहैं । वेदके तात्पर्यके अनुसार संग्रामके मध्य हम आततायीके प्राणोंका नाश करते हैं ॥ ७ ॥

अवध्यस्य वधे यावांस्तावान्वध्यस्य रक्षणे ।
इत्याह भगवान्व्यासः सर्व्ववेदार्थतत्परः ॥ ८ ॥

सर्व वेदार्थके जाननेमें विशारद भगवान् वेदव्यासजीने कहाहै कि अवध्यके मारनेसे अर्थात जो मारने योग्य नहो उसके मारनेसे जैसा पाप होता है, मारने योग्यके जीवकी रक्षा करनेसे भी वैसाही पाप होता है ॥ ८ ॥

प्रायश्चित्तं न तत्रास्ति तत्राधर्म्मः प्रवर्तते ।
अतोऽत्र वाहिनीं हत्वा भवतां युधि दुर्जयाम् ॥ ९ ॥

ऐसा आचरण न करनेसे इतना अधर्म होता है कि जिसका प्रायश्चित्त नहीं है । इसी कारणसे मैं संग्रामस्थलमें अपनी अजीत सेना समूहका संहारकर ॥ ९ ॥

धर्म्मं कृतञ्च कल्किंतु समानीयागता वयम् ।
एषा भक्तिर्मम मता तवाभिप्रेतमीरय ॥ १० ॥

धर्मको, सत्ययुगको और कल्किजीको लेकर आयाहूं ! मेरे विचारमें यही यथार्थ भक्तिहै । इस विषयमें आपका क्या अभिलाषहै सो कहिये ॥ १० ॥

अहं तदनुवक्ष्यामि वेदवाक्यानुसारतः ।
यदि विष्णुः स सर्व्वत्र तदा कं हन्ति को हतः ॥ ११ ॥

तिसके पीछे मैं वेदवाक्यके अनुसार उत्तर दूंगा । सब स्थानोंमें विष्णुजीहैं, यदि यह सिद्धान्त निश्चय है तो कौन किसका नाश करताहै ? अर्थात कोई नाश करताभी नहीं, किसीका नाश होताभी नहीं ॥ ११ ॥

हन्ता विष्णुर्हतो विष्णुर्वधः कस्यास्ति तत्र चेत् ।
युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशासनात् ॥ १२ ॥

वध करनेवालाभी विष्णु, हत होनेवालाभी विष्णु, फिर भला किसका वध होगा ! विशेष करके वेदकी आज्ञाहै कि यज्ञ और युद्धमें वध करना वधमें नहीं गिनाजाता है ॥ १२ ॥

इति गायन्ति मुनयो मनवश्च चतुर्दश ।
इत्थं युद्धैश्च यज्ञैश्च भजामो विष्णुमीश्वरम् ॥ १३ ॥

महर्षिलोग और चौदह मनु ऐसाही कीर्त्तन करते हैं । हमभी ऐसेही युद्ध और यज्ञसे ईश्वर विष्णुजीकी पूजा किया करते हैं ॥ १३ ॥

अतो भागवतीं मायामाश्रित्य विधिना यजन् ।
सेव्यसेवकभावेन सुखी भवति नान्यथा ॥ १४ ॥

इस प्रकार भागवती मायाका अवलम्बन कर विधिविधान करके सेव्यसेवकभावसे पूजा करके साधक सुखी होता है और प्रकारसे सुखी नहीं हुआ जा सकता ॥ १४ ॥

भूपा ऊचुः–निमेर्भूपस्य भूपाल ! गुरोः शापान्मृतस्य च ।
तादृशे भोगायतने विरागः कथमुच्यताम् ॥ १५ ॥

राजाओंने कहाः–हे राजन् ! राजा निमिने गुरु वसिष्ठजीके शापसे शरीरको छोडाथा (१) परन्तु इस प्रकारके भोगायतन शरीरमें तिसको

---

(१) सूर्यवंशमें इक्ष्वाकुनामक एक राजा था। तिसके निमिनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । निमिने एकवार सहस्रवर्षमें पूर्णहोनेवाले यज्ञका अनुष्ठान कियाथा इस यज्ञमें वशिष्ठजी होता हुएथे। यथा–

" इक्ष्वाकुतनयो योऽसौ निमिर्नाम स तु सहस्रसंवत्सरं सत्रमारंभे वशिष्ठञ्च होतारं वरयामास १ "
(विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

परन्तु वशिष्ठजीने कहा कि, इस्से पहले इन्द्रने पांच शतवर्षका यज्ञ करनेके अर्थ हमको वरण किया है, अतएव तुम कुछ समयतक ठहरो, इन्द्रका यज्ञ कराकर तुम्हारा ऋत्विक् बनूंगा ।वशिष्ठजीके यह वचन सुनकर निमिने कुछ उत्तर न दिया, बरन् चुपरहा । विष्णुपुराणमें कहा हैः–

" तमाह वशिष्ठः अहमिन्द्रेण पंचशतवर्षं यागार्थं प्रथमतरं वृत्तः तदनन्तरं प्रतिपाल्य-
तामागतस्तवापि ऋत्विक् भविष्यामि इत्युक्तः स पृथिवीपतिर्न किञ्चिदुक्तवान् " ॥ २ ॥
(विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

वशिष्ठजीने विचारा, " मौनं सम्मातिलक्षणम् । " इसके अनुसार वह इन्द्रके यज्ञमें चलेगये । यथाः–

वसिष्ठोऽप्यनेन समन्वीप्सितमित्यमरपतेर्यागमकरोत् ॥ (विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

तिस कालही निमि गौतमादि महर्षियोंसे यज्ञ कराने लगा । इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर वशिष्ठजी निमिका यज्ञ करानेको शीघ्रतासे वहां आये तब देखा कि, गौतमजी निमिका यज्ञ करा रहे हैं, तिसकाल राजा निमि सो रहाथा । तब वशिष्ठजीने यह कहकर उसको शापदिया । मुझको तो मने नहीं किया और इस राजाने गौतमजीपर कर्मभार अर्पण कियाहै, अतएव (इस पापसे) निमि विदेह (देहहीन) होवै । यथाः–

क्यों विराग हुआ ? अर्थात् यज्ञके अन्तमें देवताओंने प्रसन्न हो उसको बचाय देहमें प्रवेश करनेकी अनुमति दी, तब वह किस कारणसे त्यागी हुई देहमें प्रवेश करनेको सम्मत न हुआ ॥ १५ ॥

शिष्यशापाद्वशिष्ठस्य देहावाप्तिर्मृतस्य च ।
श्रूयते किल मुक्तानां जन्म भक्तविमुक्तता ॥ १६ ॥

सुना है कि महर्षि वशिष्ठजीने इस (निमि) शिष्यके शापसे देह छोड़ कर फिर देहको ग्रहणकिया । भक्तको तो मुक्ति प्राप्तहोती है । अतएव मुक्तजनका फिर किस प्रकारसे जन्म होसकता है ॥ १६ ॥

अतो भागवती माया दुर्बोध्याविजितात्मनाम् ।
विमोहयति संसारे नानात्वादिन्द्रजालवत् ॥ १७ ॥

ऐसे स्थानमें भगवानकी माया ज्ञानीलोगोंसे भी नहीं जानी जाती । यह माया इन्द्रजालकी समान संसारमें फैल रही है और लोगोंको मोहित करती है ॥ १७ ॥

" सोऽपि तत्कालमेवान्यैर्गौतमादिभिर्यागमकरोत् । समाप्ते चामरपतेर्यागे त्वरावान् वशिष्ठो निमेः कर्म करिष्यामीत्याजगाम । तत्कर्मकर्तृत्वञ्च तत्र गौतमस्य दृष्ट्वा अथ स्वपते तस्मै राज्ञे मामप्रत्याख्यायैतदनेन गौतमाय कर्मान्तरमर्पितं यस्मात् तस्मादयं विदेहो भविष्यतीति शापं ददौ " ॥ (विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

निमिकी निंद्रा भंग हुई । उसने जागकर कहा, दुष्ट गुरुने हमसे कोई बात न पूछी, मैं सोताथा कोई बात न जानसका, इस अवस्थामें उन्होंने मुझको शाप दिया, इस कारण उसका देहभी पतन होगा निमिने यह शाप देकर देहको छोडदिया । यथाः—

"प्रतिबुद्धश्चासाववनीपतिरपि प्राह यस्मान्माम्। असम्भाष्य अजानत एव शयानस्य शापोत्सर्गमसौ दुष्टगुरुश्च कार । तस्मात्तस्यापि देहः पतितो भविष्यतीति प्रतिशापं दत्वा देहमत्यजत् " ॥

उस शापसे वसिष्ठजीका तेज मित्रावरुणके तेजमें प्रवेश करता हुआ। अनन्तर उर्वशी नामक स्वर्गकी वेश्याका (रूप) देखकर मित्रावरुणका वीर्य स्खलित हुआ । उसी वीर्यसे वसिष्ठजीने दूसरा जन्म पाया । यथाः—

" तस्माच्छापाच्च मित्रावरुणयोस्तेजसि वसिष्ठतेजःप्रविष्टम् उर्वशीदर्शनोद्भूतवीर्यप्रपातयोः सकाशात् वसिष्ठो देहमपरं लेभे " ॥ ६ ॥ (विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्याय)

इस प्रकार परस्परके शापसे दोनोंने प्राण छोड़े । फिर निमिराजा सब लोगोंके नेत्रोंपर निमेषरूपसे स्थिति करने लगे । राजा निमि परमतेजस्वीथे इनके तेजस्वी होनेका प्रमाण उपरोक्त वृत्तान्तसे प्रामाणिक होता है ।

इति तेषां वचो भूयः श्रुत्वा राजा शशिध्वजः ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो भक्तिप्रवणया धिया ॥ १८ ॥

वचन बोलनेमें श्रेष्ठ राजा शशिध्वजने उनके यह वाक्य सुनकर भक्तिसे हृदयमें प्रणाम करके फिर कहना आरम्भाकिया ॥ १८ ॥

शशिध्वज उवाच–बहूनां जन्मनामन्ते तीर्थक्षेत्रादियोगतः ।
दैवाद्भवेत्साधुसंगस्तस्मादीश्वरदर्शनम् ॥ १९ ॥

शशिध्वजने कहा–तीर्थ, क्षेत्र आदिके दर्शनफलसे बहुत जन्मके पीछे दैवके अनुग्रहसे जीवको साधुका संग प्राप्त होता है। इस साधुसंगसेही जीवको ईश्वरका साक्षात् होता है ॥ १९ ॥

ततः सालोक्यताम्प्राप्य भजन्त्यादृतचेतसः ।
भुक्त्वा भोगाननुपमान्भक्तो भवति संसृतौ ॥ २० ॥

फिर विष्णुलोकमें जाय आदरपूर्णहृदयसे भगवानका भजन करता है। इस प्रकार जीव अनुपम भोग्यवस्तु भोग करके संसारमें भक्त होता है ॥ २० ॥

रजोजुषः कर्म्मपराः हरिपूजापराः सदा ।
तन्नामानि प्रगायन्ति तद्रूपस्मरणोत्सुकाः ॥ २१ ॥

रजोगुणका अवलम्बन करनेवाले सदा कर्म करते रहकर नारायणजीकी पूजा करते, सदा नारायणजीका नाम गाते हैं और सदा नारायणरूप स्मरण करनेको उन्मुख रहते हैं ॥ २१ ॥

अवतारानुकरणपर्वव्रतमहोत्सवाः ।
भगवद्भक्तिपूजाढ्याः परमानन्दसंप्लुताः ॥ २२ ॥

वे लोग भगवानके अवतारका अनुकरण करते हैं एकादशी आदि पर्व २ में व्रत करते हैं, महोत्सव, भगवानके प्रति भक्ति, भगवानकी पूजा इन सब कार्योंसेही उनके हृदयमें आनन्दका प्रवाह प्रवाहित होताहै ॥ २२ ॥

अतो मोक्षं न वाञ्छन्ति दृष्टमुक्तिफलोदयाः ।
मुक्ता लभन्ते जन्मानि हरिभावप्रकाशकाः ॥ २३ ॥

उन समस्त भक्तजनोंने भोगके फलका उदय प्रत्यक्ष किया है, इसी कारणसे वह मोक्षकी प्रार्थना नहीं करते । भक्तजन स्वर्गभोग करनेके पीछे जन्मग्रहण करके हरिभाव प्रगट किया करते हैं ॥ २३ ॥

हरिरूपाः क्षेत्रतीर्थपावना धर्म्मतत्पराः ।
सारासारविदः सेव्यसेवका द्वैतविग्रहाः ॥ २४ ॥

भक्तजन नारायणकेही रूपहैं । वे समस्त क्षेत्र और तीर्थोको पवित्र करतेहैं । वह धर्मानुष्ठानमें तत्पर रहतेहैं । वह समस्त सार असारको जानतेहैं । वह सेव्यसेवक इन दो मूर्त्तियोंमें रहतेहैं ॥ २४ ॥

यथावतारः कृष्णस्य तथा तत्सेविनामिह ।
एवं निमेर्निमिषता लीला भक्तस्य लोचने ॥ २५ ॥

जैसे कृष्णजीने अवतार लियाथा, वैसेही उनके सेवकभी समय २ पर अवतार लिया करतेहैं । इसी कारणसे निमि, भक्तोंके नेत्रोंपर निमेषरूपसे स्थिति करताहै, यहभी केवल भगवानकी लीलाहीहै ॥ २५ ॥

मुक्तस्यापि वसिष्ठस्य शरीरभजनादरः ।
एतद्वः कथितं भूपा माहात्म्यं भक्तिभक्तयोः ॥ २६ ॥

वसिष्ठजी मुक्त होकरभी जो शरीर ग्रहण कियाथा तिसकाभी कारण यहीहै । हे राजाओ ! यह आपसे भक्ति और भक्तका माहात्म्य कहा॥ २६॥

सद्यः पापहरं पुंसां हरिभक्तिविवर्द्धनम् ।
सर्व्वेन्द्रियस्थदेवानामानन्दसुखसञ्चयम् ।
कामरागादिदोषघ्नं मायामोहनिवारणम् ॥ २७ ॥

इसके श्रवण करनेसे मनुष्यके समस्त पाप तत्काल दूर होजातेहैं और इस्से हरिभक्ति बढ़तीहै । इस्से इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंको आनन्द और सुखका सन्दोह बढताहै । इस्से कामरागादि सब दोष दूर होतेहैं । इस्से मायामोह सबका निवारण होताहै ॥ २७ ॥

नानाशास्त्रपुराणवेदविमलव्याख्यामृताम्भोनिधिं
संमथ्यातिचिरं त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भावुकाः ।
कृष्णे भावमनन्यमेवममलं हैयङ्गवीनं नवं
लब्ध्वा संसृतिनाशनं त्रिभुवने श्रीकृष्णतुल्यायते ॥ २८ ॥
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे भक्तिभक्तमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्यासादि त्रिलोकीके विचार करनेवाले मुनिलोगोंने वेद पुराणादि नाना प्रकारके शुद्ध शास्त्रीयव्याख्यारूप अमृतसारको बहुत समयतक मंथनकर यह परमपवित्र असाधारण कृष्णप्रीतिरूप हैयङ्गवीन (१) प्राप्त कियाथा । इस्से भवबन्धन टूटजाताहै । व्यासादि मुनियोंको ऐसा (अनदेखा और अनसुना) फल प्राप्त करते देखकर लोगोंने भगवान् श्रीकृष्णजीके साथ उनकी तुलना कीहै ॥ २८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
भक्तिभक्तमाहात्म्यं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

तृतीयांशः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

सूत उवाच–इति भूपः सभायां स कथयित्वा निजाः कथाः ।
शशिध्वजः प्रीतमनाः प्राह कल्किं कृताञ्जलिः ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोलेः–राजाशशिध्वज प्रसन्नहृदयसे सभामें स्थित हुए मनुष्योंके सन्मुख अपना वृत्तान्त प्रगटकर हाथजोड़ कल्किजीसे कहने लगा ॥ १ ॥

शशिध्वज उवाच-त्वं हि नाथ त्रिलोकेश एते भूपास्त्वदाश्रयाः
मां तथा विद्धि राजानं त्वन्निदेशकरं हरे ॥ २ ॥

(१) ताजे दुहे दूधसे जो घी तैयार होता है तिसको हैयङ्गवीन कहते हैं । अमरकोषमें कहा है। "तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम्" हारावली नामक संस्कृत कोषमें लिखा है कि, करज मन्थज और कलम्बुट शब्द नवनीत (मक्खन) के पर्य्यायवाचक हैं। (ग्रंथकार)

राजा शशिध्वजने कहाः—हे हरे ! तुम त्रिलोकीके नाथहो ! यह समस्त राजा तुम्हारे आश्रयहैं। इन राजाओंको और मुझको अपनी आज्ञाके प्रतिपालन करनेमें तैयार जानो ॥ २ ॥

तपस्तप्तुं यामि कामं हरिद्वारं मुनिप्रियम् ।
एते मत्पुत्रपौत्राश्च पालनीयास्त्वदाश्रयाः ॥ ३ ॥

अब मैं मुनियोंके प्यारे हरिद्वारमें तपकरनेको जाताहूं । यह मेरे बेटे पोते सबआपहीके आश्रितहैं, आपही इनका प्रतिपालन कीजियेगा ॥ ३ ॥

ममापि कामं जानासि पुरा जाम्बवतो यथा ।
निधनं द्विविदस्यापि तदा सर्वं सुरेश्वर ॥ ४ ॥

हे सुरनाथ ! मेरा जो अभिप्रायहै सो तुम जानतेहीहो और पहले जन्ममें जो आपने जाम्बवान् और द्विविद नामक वानरका नाश कियाथा, सोभी आपको यादहीहै ॥ ४ ॥

इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्तं भार्य्यया सहितं नृपम् ।
लज्जयाधोमुखं कल्किं प्राहुर्भूपाः किमित्युत ॥ ५ ॥

राजा शशिध्वज यह कहकरभार्याके साथ गमन करनेको तैय्यार हुआ तब कल्किजीने लाजसे मुख नीचा करलिया तब राजालोगोंने इसका कारण जाननेकी अभिलाषासे कहा ॥ ५ ॥

हेनाथ किमनेनोक्तं यच्छ्रुत्वा त्वमधोमुखः ।
कथं तद् ब्रूहि कामं नः किं वा नः शाधि संशयात् ॥ ६ ॥

हेनाथ !राजा शशिध्वजने क्या वाक्य कहा!आपने इसको किस कारणसेमुख नवाय कर सुना, आप कहकर हमारासंशय दूरकीजिये ॥ ६ ॥

कल्किरुवाच-अमुं पृच्छत वो भूपा युष्माकं संशयच्छिदम् ।
शशिध्वजं महाप्राज्ञं मद्भक्तिकृतनिश्चयम् ॥ ७ ॥

कल्किजीने कहा—हे राजाओ ! आप लोग राजा शशिध्वजसेही इसका

कारण पूछें, यह आप लोगोंकी संशयको दूर करेंगे। यह राजा शशिध्वज उत्तम ज्ञानीहै और मुझमें इसकी गाढी भक्तिहै ॥ ७ ॥

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा ते भूपाः प्रोक्तकारिणः।
राजानं तं पुनः प्राहुः संशयापन्नमानसाः ॥ ८ ॥

कल्किजीके यह वचन सुनकर राजालोगोंने उनके कहनेके अनुसार संशययुक्तहृदयसे राजा शशिध्वजसे फिर कहा ॥ ८ ॥

नृपा ऊचुः–किंत्वया कथितं राजञ्छशिध्वज महामते।
कथं कल्किस्तद्वदिदं श्रुत्वैवाभूदधोमुखः ॥ ९ ॥

राजा बोलेः–हे शशिध्वज ! आप महामतिमान् और राजा हैं। आपने इस समय क्या कहा और आपके वचनको सुनकर कल्किजीने किस कारणसे मुख नीचा करलिया ॥ ९ ॥

शशिध्वज उवाच–पुरा रामावतारेण लक्ष्मणादिन्द्रजिद्वधम्।
मोक्षश्चालक्ष्य द्विविदो राक्षसत्वात्स दारुणात् ॥ १० ॥

शशिध्वज बोलेः–पहले जब रामचंद्रजीने अवतार लियाथा तब लक्ष्मणजीने इन्द्रजितका वध किया इस कारण दारुण राक्षसभावसे इन्द्रजितकी मुक्ति हुई ॥ १० ॥

अग्न्यागारे ब्रह्मवीरवधेनैकाहिको ज्वरः।
लक्ष्मणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारकः ॥ ११ ॥

अग्निशालामें ब्राह्मणका वध करनेसे ऐकाहिक (इकतरा) ज्वर लक्ष्मणजीके शरीरमें प्रवेश कर गया, इस्से लक्ष्मणजीको मोहादि उपद्रव होने लगे ॥ ११ ॥

तं व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिषजां वरः।
अश्विवंशेन संजातः श्यापयामास लक्ष्मणम् ॥ १२ ॥

अश्विनीकुमारके वंशसे उत्पन्न हुए वैद्योंमें श्रेष्ठ द्विविदनामक वानरने लक्ष्मणजीको व्याकुल देखकर एक मंत्र सुनाया ॥ १२ ॥

लिखित्वा रामभद्रस्य संज्ञापत्रीमतन्द्रितः ।
लक्ष्मणं दर्शयामास ऊर्द्धतिष्ठन्महाभुजः ॥ १३ ॥

और यही मंत्र लिखकर तत्काल रामचंद्रजीके सन्मुख ऊंचे स्थानमें रखकर लक्ष्मणजीको दिखाता हुआ ॥ १३ ॥

लक्ष्मणो वीक्ष्य तां पत्रीं विज्वरो बलवानभूत् ।
स ततो द्विविदं प्राह वरं वरय वानर ॥ १४ ॥

इस पत्रको देखकर लक्ष्मणजी ज्वररहित और बलवान् हुए । फिर लक्ष्मणजीने द्विविद नामक वानरसे कहा हे वानर ! तुम वर मांगो ॥ १४॥

द्विविदस्तद्वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह हृष्टवत् ।
त्वत्तो मे मरणं प्रार्थ्यं वानरत्वाच्च मोचनम् ॥ १५ ॥

द्विविदने यह सुन हर्षित होकर लक्ष्मणजीसे कहा, मैं प्रार्थना करताहूं कि, आपके हाथसे मेरी मृत्युहो और वानरभावसे छूट जाऊं ॥ १५ ॥

पुनस्तं लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तव ।
मोचनं भविता कीश बलरामशरीरिणः ॥ १६ ॥

फिर लक्ष्मणजीने कहा मैं दूसरे जन्ममें बलदेवरूपसे अवतार लूंगा । उस समय हमारे हाथसे तुम्हारा वानरभाव छूट जायगा ॥ १६ ॥

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखितं यस्तु पश्यति ॥ १७ ॥

"समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः"—(समुद्रके उत्तर तीरपर द्विविद नाम वानर है) इसमंत्रको लिखकर देखनेसे इकतरे ज्वरका नाश होजाता है ॥ १७ ॥

इति मन्त्राक्षरं द्वारि लिखित्वा तालपत्रके ।
यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाहिकज्वरः ॥ १८ ॥

यह मंत्र द्वारपर अथवा तालपत्रपर लिखकर दर्शन करनेसेभी इकतरा ज्वर दूर होजाता है ॥ १८ ॥

इति तस्य वरं लब्ध्वा चिरायुः सुस्थवानरः ।
बलरामास्त्रभिन्नात्मा मोक्षमापाकुतोभयम् ॥ १९ ॥

इसप्रकार लक्ष्मणजीसे वर पाय द्विविद वानर निरोगशरीरसे बहुतदिनों तक जीवितरहा । बहुत कालके पीछे बलदेवजीके अस्त्रसे निडर हो तिसने प्राण छोडे और मोक्षपदको प्राप्तहुआ ॥ १९ ॥

तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षणः ।
बलरामास्त्रयुक्तामा नैमिषेऽभूत्स्ववाञ्छया ॥ २० ॥

ऐसेही आपकी इच्छाके अनुसार सूतपुत्र लोमहर्षण नैमिषारण्यमें बलदेवजीके अस्त्रसे मृतक हुआथा ॥ २० ॥

जाम्बवांश्च पुरा भूपा वामनत्वं गते हरौ ।
तस्याप्यूर्द्ध्वगतं पादं तत्र चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ २१ ॥

हे राजाओ ! पहले जब वामनावतार हुआ, तब जिस समय वामनजीने तीन पैंड भूमिसे सब लोकोंको नाप लियाथा, तिस समय जाम्बवान्ने उनके उस चरणकी जो ऊपरके लोकोंमें स्थितथा प्रदक्षिणाकी ॥ २१ ॥

मनोजवं तं निरीक्ष्य वामनः प्राह विस्मितः ।
मत्तो वृणु वरं काममृक्षाधीश महाबल ॥ २२ ॥

मनके समान जाम्बवानका शीघ्रवेग देखकर वामनजी विस्मित होकर बोले हे ऋक्षपते ! तुम महाबली और पराक्रमीहो तुम हमसे कोई वरमांगो२२

इति तं हृष्टवदनो ब्रह्मांशो जाम्बवान्मुदा ।
प्राह भो चक्रदहनान्मम मृत्युर्भविष्यति ॥ २३ ॥

यह वचन सुनकर ब्रह्माजीके अंशसे उत्पन्नहुए जाम्बवानने हँसमुखसे कहा हमको यह वर दीजिये कि, आपके चक्रसे हमारी मृत्युहो ॥ २३ ॥

इत्युक्ते वामनः प्राह कृष्णजन्मानि मे तव ।
मोक्षश्चक्रेण संभिन्नशिरसः संभविष्यति ॥ २४ ॥

यह सुनकर वामनजीने कहा कि, जब मैं कृष्णरूपसे अवतारलूंगा तब हमारे चक्रसे तुम्हारा शिर कटेगा और तुम मुक्तिपाओगे ॥ २४ ॥

मम कृष्णावतारे तु सूर्य्यभक्तस्य भूपतेः ।
सत्राजितस्तु मण्यर्थे दुर्वादः समजायत ॥ २५ ॥

फिर जब कृष्णअवतार हुआथा, तब मैं सत्राजितनामक राजाथा । सूर्यकी आराधना किया करता । उसकाल मुझसे मणिके निमित्त कृष्णजीका एक कलंकहुआ ॥ २५ ॥

प्रसेनस्य मम भ्रातुर्वधस्तु मणिहेतुकः
सिंहात्तस्यापि मण्यर्थे वधो जाम्बवता कृतः ॥ २६ ॥

हमारे छोटे भ्राताका नाम प्रसेन था । एक सिंहने मणिके लिये मेरे छोटे भ्राताको मारडाला, फिर सिंहभी इस मणिके निमित्तसेही जाम्बवान करके मारा गयाथा ॥ २६ ॥

दुर्वादभयभीतस्य कृष्णस्यामिततेजसः ।
मण्यन्वेषणचित्तस्य ऋक्षेणाभूद्रणो बिले ॥ २७ ॥

सीमारहित तेजवाले कृष्णजी कलंकके भयसे भीतहो मणिको खोजने लगें, फिर एक गुहामें जाम्बवानके साथ इनका संग्राम हुआ ॥ २७ ॥

स निजेशं परिज्ञाय तच्चक्रग्रस्तबन्धनम् ।
मुक्तो बभूव सहसा कृष्णं पश्यन्सलक्ष्मणम् ॥ २८ ॥

जाम्बवानने अपने प्रभुको पहचाना । कृष्णजीके चक्रसे उसका मस्तक, कटागया । जाम्बवानने लक्ष्मणयुक्त श्रीकृष्णजीका दर्शन करते २ प्राण छोडदिये ॥ २८ ॥

नवदूर्वादलश्यामं दृष्ट्वा प्रादान्निजात्मजाम् ।
तदा जाम्बवतीं कन्यां प्रगृह्य मणिना सह ॥ २९ ॥

परन्तु इस ऋक्षराजने, नवदूर्वादलकी समान कृष्णजीकी श्याममूर्तिका दर्शन करके, उनको मणिके साथ अपनी जाम्बवती नामक कन्या दान करदी ॥ २९ ॥

द्वारकां पुरमागत्य सभायां मामुपाह्वयत् ।
आहूय मह्यं प्रददौ मणिं मुनिगणार्च्चितम् ॥ ३० ॥

कृष्णजीने फिर द्वारकामें आय सभामें मुझको बुलाया, उसकाल उन्होंने वह मणि जोकि महर्षियोंकोभी दुर्लभहै मुझको देदी ॥ ३० ॥

सोऽहं तां लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम् ।
विवाहेन ददावस्मै लावण्याज्जगृहे मणिम् ॥ ३१ ॥

उस कालमें मैंने अत्यन्त लजाय वह मणि और सत्यभामा नामक कन्या कृष्णजीको दानकरी । कृष्णजीने दोनोंका लावण्य देखकर दोनोंको ग्रहण किया ॥ ३१ ॥

तां सत्यभामामादाय मणिं मय्यर्प्य स प्रभुः ।
द्वारकामागत्य पुनर्गजाह्वयमगाद्विभुः ॥ ३२ ॥

कुछ दिन पीछे कृष्णजी मेरेपास मणिको रखकर सत्यभामाको साथ ले हस्तिनापुरको गये (१) ॥ ३२ ॥

---

(१) निम्ननामक राजाके प्रसेन और सत्राजितनामक दो पुत्रथे । सत्राजित सूर्यका तप किया करताथा । एक समय जब कि, सूर्यका तप कर रहाथा कि, सूर्यनारायण प्रसन्न होकर वहां आये । सत्राजित बोला—"हे देव ! जैसा तेजस्वी रूप आपका आकाशमें है ऐसेही यहाँभी देखताहूं, तुम्हारी प्रसन्नताका कोई भी चिह्न दृष्टि नहीं आता । तब सूर्य भगवान्ने स्यमन्तकनामक मणि गलेसे निकाली।मणिकी प्रभा अलग हो जानेसे सत्राजितने सूर्यनारायणकी प्रसन्न मूर्ति देखी । सूर्य भगवान्ने कहा, हे सत्राजित वरमांगो सत्राजितने वही स्यमन्तक मणि मांगी । सूर्य भगवान् वह मणि देकर आकाशमार्गको चलेगये । सत्राजित घरपर आया । इस मणिसे प्रति दिन आठ भार सुवर्ण निकला करताथा । इस मणिके प्रभावद्वारा राज्यसे अनावृष्टि, अतिवृष्टि, सर्पभय, अग्निभय और चोरोंके उपद्रव आदि दूर होगये । भगवान् श्रीकृष्णजीने उस मणिको राजा उग्रसेनके योग्य विचारकर सत्राजितसे उसके विषयमें कुछ कहा । वह बलसे भी मणिको लेसकतेथे । परन्तु जातिविरोधके भयसे मणिको बलसे न लेसके । यथाः—

"अच्युतोऽपि तद्रत्नमुग्रसेनस्य भूपतेर्योग्यमेतदिति ।
लिप्साञ्चके गोत्रभेदभयाच्च शक्तोऽपि न जहार ॥" (विष्णुपुराण–४ अंश १३ अध्याय)

सत्राजित समझ गया कि, कृष्णजीको इस मणि लेनेका लोभ उत्पन्न हुआ है । कदाचित् मुझसे मांग न बैठें, यह विचार स्यमन्तकमणि अपने भ्राता प्रसेनको देदी । इस मणिमें यह प्रभावथा कि जो पवित्र होकर इसको धारण करता उसका मंगल होता, अपवित्र होकर धारण करता तो उसका प्राण जाताथा प्रसेनने पवित्र होकर मणिको धारण नहीं किया । प्रसेनएकदिन इसमणिको धारण करके शिकार खेलने गयाथा। वहां एक सिंह प्रसेनको और उसके घोडेको मारकर स्यमन्तकमणि लेगया । उसही वनमें जाम्बवानामक ऋक्षराज रहताथा । वह शेरको मारकर मणिले आया और अपने पुत्रके खेलनेको वहमणिदेदी ।

इसओर प्रसेनको मृगयासे न आया हुआ देखकर समस्त यदुगण कानाफूसी करने लगे कि कृष्णजी इसमणिको चाहतेथे, कदाचित् उन्होंनेही प्रसेनको मार डाला और किसीका यह काम नहीं है यथा:—

"अनागच्छति,च तस्मिन्प्रदेशे कृष्णो मणिरत्नमभिलषितवान् न च प्राप्तवान् नूनमेतदस्य कर्म नान्येन प्रसेनोहन्यत इत्यखिल एव यदुलोकः परस्परं कर्णाकर्ण्यकथयत् ॥"

(विष्णुपुराण, ४ अंश, १३ अध्याय)

कृष्णजीने यह अपवाद सुना। वह यादवों की सेनाको साथ लेकर प्रसेनके घोडेका पदचिह्न देखते हुए चले। कुछ दूर जाकर देखा कि, प्रसेन घोडेके साथ सिंहके आघातसे मृत्युको प्राप्त हुआ है। सब साथियोंको कृष्णजीने सिंहके चरणचिह्न दिखलाकर अपने कलंकको धोडाला और उन्हीं चिह्नोंको देखते हुए चले। उन्होंने आगे बढकर देखा कि, सिंहको रीछने मारडाला है। तब वह रीछके चरणचिह्न देखते २ जाम्बवानकी गुफामें प्रवेश करते हुए वहांपर जाम्बवानके साथ कृष्णजीका भयानक युद्धहुआ। कृष्णजीने युद्धमें जयपाई। फिरः—

"स च प्रणिपत्यैनं पुनरपि प्रसाद्य जाम्बवतीं नामकन्यां गृहागमनार्घ्यभूतां ग्राहयामास ॥
स्यमन्तकमणिमथासौ प्रणिपत्य तस्मै प्रददौ। अच्युतोऽप्यतिप्रणतात्तस्मादग्राह्यमपि-
तन्मणिरत्नमात्मशोधनाय जग्राह ॥" (विष्णुपुराण, ४ अंश, १३ अध्याय)

कृष्णजीको प्रणाम करके फिर प्रसन्नकर जाम्बवन्तने गृहपर जाय अर्घ्यरूपमें अपनी जाम्बवतीनामक कन्या देदी वह उसके साथही उस प्रणत ऋक्षने स्यमन्तकमणिको भी दिया। कृष्णजीने कलंकको दूर करनेकी अभिलाषासे उस मणिको ग्रहणकिया। कृष्णजी मणि लेकर द्वारकामें गये। वहाँपरः—

"भगवानपि यथानुभूतमशेषयादवसमाजे यथावदाचचक्षे।
स्यमन्तकञ्च सत्राजिताय दत्वा मिथ्याभिशस्तिविशुद्धिमवाप-
जाम्बवन्तीञ्चान्तःपुरे निवेशयामास। सत्राजितोऽपि मयास्या
भूतमलिनमारोपितमिति जातसंत्रासः स्वसुतां सत्यभामां भगवते भार्यां ददौ।"

(विष्णुपुराण, ४ अंश, १३ त्रयोदश अध्याय)

जो जो बातें होगईथीं कृष्णजीने वह सब यादवोंसे निवेदन करके सत्राजितको स्यमन्तकमणि देदी वह कलंकसे छूट गये। जाम्बवतीको रनिवासमें रक्खा। सत्राजितने मनमें विचारा कि, मैंने कृष्णजीको मिथ्या कलंक लगाया, यह विचार भयके मारे अपनी कन्या सत्यभामा कृष्णजीको विवाहदी। कुछ दिन पीछे शतधन्वानामक यादव सत्राजितका प्राण संहार करके स्यमन्तकमणि ले गयाथा। कृष्ण और बलदेव दोनोंजन सत्यभामाके कहनेसे मणिके लेनेको शतधन्वाके पीछे गये। परन्तु शतधन्वा वह मणि अक्रूरजीको देकर भागाथा कृष्णजीने शतधन्वाका प्राणसंहार किया, परन्तु मणि न पाई; बलदेवजीने कृष्णजीकी बात का विश्वास न करके समझा कि, स्वयं मणिको भोगनेके कारण इन्होंने हमसे यह कहा कि, मणि नहीं मिली। यह सोच समझकर इन्होंने देश छोड़ दिया फिर यह बात प्रगट हुई कि, कृष्णजीने मणि नहीं ली बरन् मणि अक्रूरजी के पासथी। कृष्णजीने व दूसरे यादवोंने इनको मणिके धारण करनेकी सम्मति दीथी। इत्यादि ॥ (यह स्यमन्तकमणिका उपाख्यान है)

गते कृष्णे मां निहत्य शतधन्वाग्रहीन्मणिम् ।
अतोऽहमिह जानामि पूर्वजन्मनि यत्कृतम् ॥ ३३ ॥

जब कृष्णजी हस्तिनापुरमें चलेगये तब शतधन्वा नामक राजाने मेरा संहारकरके मणिको ग्रहण करलिया । इस कारणसे पूर्वजन्ममें कल्किजीने जो कुछ कियाथा, उसको मैं जानताहूं ॥ ३३ ॥

मिथ्याभिशापात्कृष्णस्य नैवाभून्मोचनं मम ।
अतोऽहं कल्किरूपाय कृष्णाय परमात्मने ।
दत्त्वा रमां सत्यभामारूपिणीं यामि सद्गतिम् ॥ ३४ ॥

मैंने कृष्णजीको मिथ्या कलङ्क लगाया इसकारणसे उस जन्ममें मेरी मुक्ति नहीं हुई । इसीसे मैं इस जन्ममें कल्किरूप परमात्मा कृष्णको सत्यभामारूपिणी रमा नामक कन्या देकर श्रेष्ठगतिको प्राप्त करताहूं ॥ ३४ ॥

सुदर्शनास्त्रघातेन मरणं मम काङ्क्षितम् ।
मरणेऽभूदिति ज्ञात्वा रणे वाञ्छामि मोचनम् ॥ ३५ ॥

मैंनेभी कामनाकीथी कि, सुदर्शनचक्रके प्रहारसे मेरी मृत्युहो, संग्राममें मृत्यु होनेसे मुक्तिहोगी, यह जानकरही ऐसी कामना कीथी ॥ ३५ ॥

इत्यसौ जगतामीशः कल्किः श्वशुरघातनम् ।
श्रुत्वैवाधोमुखस्तस्थौ ह्रिया धर्म्मभिया प्रभुः ॥ ३६ ॥

संसारके अधिपति प्रभु कल्किजी इस प्रकारसे श्वशुरका वध स्मरण करके धर्म भय और लाजके मारे नीचेको मुख नवालेते हुए ॥ ३६ ॥

अत्याश्चर्य्यमपूर्वमुत्तममिदं श्रुत्वा नृपा विस्मिता
लोकाः संसदि हर्षिता मुनिगणाः कल्केर्गुणाकर्षिताः ।
आख्यानं परमादरेण सुखदं धन्यं यशस्यं परं
श्रीमद्भूपशशिध्वजेरितवचो मोक्षप्रदं चाभवन् ॥ ३७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे शशिध्वजे-
रितचक्रमरणाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अति आश्चर्यवाले अपूर्व मनोहर इस उपाख्यानको सुनकर सभामें स्थित हुए राजालोग विस्मितहुए, सभासदोंको आनन्द प्राप्तहुआ। महर्षिजन कल्कि-गुणोंसे मोहित होगये। श्रीमान् राजा शशिध्वज करके कहेहुए इस उपाख्या-नको जो श्रवण करताहै, वह सुखी, धन्य; परमयशवान् होता और मोक्षको पाताहै फिर उसको जन्ममृत्युकी घोर पीडा नहीं सहनी पडती ॥ ३७ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
शशिध्वजेरितचक्रमरणाख्यानं नाम त्रयो-
दशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

तृतीयांशः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

सूत उवाच—ततः कल्किर्महातेजाः श्वशुरं तं शशिध्वजम् ।
समामन्त्र्य वचश्चित्रैः सह भूपैर्ययौ हरिः ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोले—इसके उपरान्त महातेजस्वी कल्किजी विचित्र वचन कह अपने श्वशुर शशिध्वजको संतुष्टकर व उनसे सम्भाषण करके चलेगये ॥ १ ॥

शशिध्वजो वरं लब्धा यथाकामं महेश्वरीम् ।
स्तुत्वा मायां त्यक्तमायः सप्रियः प्रययौ वनम् ॥ २ ॥

राजा शशिध्वजभी कल्किजीसे मनमाना वर पाय महेश्वरी मायाका स्तोत्र करनेसे मोहबन्धनसे छूट प्यारी भार्याके साथ वनको चलागया ॥ २ ॥

कल्किः सेनागणैः सार्द्धं प्रययौ काञ्चनीं पुरीम् ।
गिरिदुर्गावृतां गुप्तां भोगिभिर्विषवर्षिभिः ॥ ३ ॥

फिर कल्किजी सेनाके सहित काञ्चनीपुरीमें गये। इस पुरीके चारोंओर पहाडियोंका कोटहै, विषको वर्षानेवाले सांपोंसे इसकी रक्षाहो तीहै ॥ ३ ॥

विदार्य्य दुर्गं सगणः कल्किः परपुरञ्जयः ।
छित्वा विषायुधान्बाणैस्तां पुरीं ददृशेऽच्युतः ॥ ४ ॥

शत्रुपुरके जीतनेवाले अच्युत कल्किजी, अपनी सेनाके साथ उस कठिन कोटको भेदकर बाण चलाय विषैले सर्पोंका संहार करके पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥

मणिकाञ्चनचित्राढ्यां नागकन्यागणावृताम्।
हरिचन्दनवृक्षाढ्यां मनुजैः परिवर्ज्जिताम् ॥ ५ ॥

और देखा कि, वह पुरी बहुतसी मणियों करके और कंचनकी राशिसे सज रही है ! उसके स्थान २ में नागोंकी कन्या शोभायमान हैं,बीच २ में कल्पवृक्ष शोभित होरहेहैं, परन्तु वहांपर एक भी मनुष्य नहीं है ॥ ५ ॥

विलोक्य कल्किः प्रहसन्प्राह भूपान्किमित्यहो।
सर्पस्येयं पुरी रम्या नराणां भयदायिनी।
नागनारीगणाकीर्णा किं यास्यामो वदन्त्विह ॥ ६ ॥

इन अद्भुत बातोंको देख कल्किजीने मुसकायकर राजाओंसे कहा। देखो, कैसा आश्चर्य है ! यह सर्पोंकी पुरी है। मनुष्योंके लिये यहस्थान अत्यन्त भयानक है। इसमें केवल नागकन्यागण बसता है अब बतलाओ कि, इसमें प्रवेश करना चाहिये वा नहीं ? ॥ ६ ॥

इतिकर्त्तव्यताव्यग्रं रमानाथं हरिं प्रभुम्।
भूपांस्तदनुरूपांश्च खे वागाहाशरीरिणी ॥ ७ ॥

रमानाथ प्रभु हरि और राजालोग उस स्थानमें कुछ कर्त्तव्यनिश्चय न करसकके चिन्ता कररहे हैं, इसी समयमें आकाशवाणी हुई ॥ ७ ॥

विलोक्य नेमां सेनाभिः प्रवेष्टुं भोस्त्वमर्हसि।
त्वां विनान्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि ॥ ८ ॥

इस पुरीमें सेनाके साथ आपको प्रवेश करना उचित नहीं है, कारण कि, इस पुरीके भीतर रहनेवाली विषकन्याकी दृष्टि पडनेसे केवल आपको छोड और सबही कालके कौर होंगे ॥ ८ ॥

आकाशवाणीमाकर्ण्य कल्किः शुकसहायकृत्।
ययावेकः खड्गधरस्तुरगेण त्वरान्वितः ॥ ९ ॥

ऐसी आकाशबाणीको सुन शीघ्रतासे कल्किजी खड्ग लेकर अकेलेही घोडे पर सवार हो शुकपक्षीके साथ गमन करने लगे ॥ ९ ॥

गत्वा तां ददृशे वीरो धीराणां धैर्य्यनाशिनीम् ।
रूपेणालक्ष्य लक्ष्मीशं प्राह प्रहसितानना ॥ १० ॥

कुछ दरपर जायकर कल्किजीने एक अपूर्व कन्याको देखा इस कन्याके देखनेसे ज्ञानी लोगोंका भी धीरज जाता रहता है । अपूर्वरूपवाले कल्किजी को देखकर कन्या मुसकाती हुई बोली ॥ १० ॥

विषकन्योवाच–संसारेऽस्मिन्मम नयनयोर्वीक्षणक्षीणदेहा
लोका भूपाः कति कति गता मृत्युमत्युग्रवीर्य्याः ।
साहं दीनासुरसुरनरप्रेक्षणप्रेमहीना
ते नेत्राब्जद्वयरससुधाप्लाविता त्वां नमामि ॥ ११ ॥

विषकन्या बोली:–इस जगत्में महावीर्यशाली जाने कितने शत राजा व और दूसरे मनुष्य देहको नाश कराय कालके ग्रासमें गिरे हैं। अतएव मैं अत्यन्त दुःखिनी हूं । देवता असुर मनुष्य किसीके साथभी मेरे प्रेमकी सम्भावना नहीं है । इस समयमें आपके दृष्टिपातरूप अमृतमें बही हूं । मैं आपको नमस्कार करती हूं ॥ ११ ॥

क्वाहं विषेक्षणा दीना क्वामृतेक्षणसङ्गमः ।
भवेऽस्मिन्भाग्यहीनायाः केनाहो तपसा कृतः ॥ १२ ॥

मैं इस संसारमेंविषदृष्टिवाली दीन और अत्यन्त अभागिनी हूं । आपकी दृष्टि अमृतमय है । मैंने ऐसी कौनसी तपस्या कीथी जो आपके साथ समागम हुआ ॥ १२ ॥

कल्किरुवाच–कासि कन्यासि सुश्रोणि कस्मादेषा गतिस्तव ।
ब्रूहि मां कर्म्मणा केन विषनेत्रं तवाभवत् ॥ १३ ॥

कल्किजी बोले–हे सुश्रोणि ! तुम कौनहो ! किसकी कन्या हो ! तुम्हारी ऐसी अवस्था कैसी हुई ! तुमने ऐसा कौनसा कर्म कियाथा कि, जिस्से तुम्हारी विषदृष्टि हुई है ॥ १३ ॥

विषकन्योवाच–चित्रग्रीवस्य भार्य्याहं गन्धर्व्वस्य महामते ॥
सुलोचनेति विख्याता पत्युरत्यन्तकामदा ॥ १४ ॥

विषकन्या बोली:–हे महामते ! मैं चित्रग्रीव नामक गन्धर्वकी भार्याहूं । मेरा नाम सुलोचनाहै । मैं अपने पतिके मनको (मन वचन कायसे) आनन्द देती थी ॥ १४ ॥

एकदाहं विमानेन पत्या पीठेन सङ्गता ।
गन्धमादनकुञ्जेषु रेमे कामकलाकुला ॥ १५ ॥

एक समय मैं स्वामीके साथ विमानमें सवार हो गन्धमादनपर्वतके कुञ्जमें जाय किसी शिलापर बैठी हुई विहारादि कररहीथी ॥ १५ ॥

तत्र यक्षमुनिं दृष्ट्वा विकृताकारमातुरम् ।
रूपयौवनगर्वेण कटाक्षेणाह संमदात् ॥ १६ ॥

उस कालमें मदनमदसे अत्यन्त मतवालीथी । वहांपर विकटाकार यक्षमुनिका (विकटरूप) देखकर रूप, यौवन और गर्वके जोरसे अंधी हो कटाक्षके साथ मैंने उनको देखा और हँसने लगी ॥ १६ ॥

सोपालम्भं मुनिः श्रुत्वा वचनं च ममाप्रियम् ।
शशाप मां क्रुधा तत्र तेनाहं विषदर्शना ॥ १७ ॥

मेरे मुखसे अवज्ञा (निरादर) का जनानेवाला उपहास वाक्य सुनकर मुनिने क्रोधमें भरकर मुझको शाप दिया, उस शापसेही मैं विषदृष्टि हुई हूं ॥ १७ ॥

निक्षिप्ताहं सर्पपुरे काञ्चन्यां नागिनीगणे ।
पतिहीना दैवहीना चरामि विषवर्षिणी ॥ १८ ॥

इसके उपरान्त मैं काञ्चनी नामक सर्पोंकी इस पुरीके मध्य नागनियोंमें डालीगई । मैं दृष्टि करके विष वर्षाया करती हूं । मैं अत्यन्त भाग्यहीन और पतिहीन हो अकेली यहांपर घूमती रहतीहूं ॥ १८ ॥

न जाने केन तपसा भवद्दृष्टिपथं गता ।
त्यक्तशापामृताक्षाहं पतिलोकं व्रजाम्यतः ॥ १९ ॥

मैं नहीं जानती कि, मैंने ऐसी कौनसी तपस्या कीथी जो आपकी दृष्टिके सामने पडी । आपके दर्शनसे मेरा शाप छूट गया, इस समय मेरी दृष्टि अमृतकी वर्षानेवाली हुई है अब मैं पतिके निकट जातीहूं ॥ १९ ॥

अहो तेषामस्तु शापः प्रसादो मा सतामिह ।
पत्युः शापादृषेर्मोक्षात्तव पादाब्जदर्शनम् ॥ २० ॥

कैसा आश्चर्य है ! साधुओंकी प्रसन्नतासे शापही अच्छा है, क्योंकि ऋषिका शाप होनेसे शापके छूटनेके समय आपके चरणकमलका दर्शन हुआ ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेनार्कवर्चसा ।
कल्किस्तु तत्पुराधीशं नृपं चक्रे महामतिम् ॥ २१ ॥

यह कहकर विषकन्या सूर्यके समान विमानमें सवार हो स्वर्गमें चली गई । कल्किजीने भी महामति नामक राजाको उस काञ्चनीपुरीका महाराज किया ॥ २१ ॥

अमर्षस्तत्सुतो धीमान् सहस्रो नाम तत्सुतः ।
सहस्रतः सुतश्चासीद्राजा विश्रुतवानसिः ॥ २२ ॥

महामतिका पुत्र अमर्ष, अमर्षका पुत्र धीमान् सहस्र, सहस्रसे असिनामक विख्यात राजाने जन्मग्रहण किया ॥ २२ ॥

बृहन्नलानां भूपानां संभूता यस्य वंशजाः ।
तं मनुं भूपशार्दूलं नानामुनिगणैर्वृतः ॥ २३ ॥
अयोध्यायां चाभिषिच्य मथुरामगमद्धरिः ।
तस्यां भूपं सूर्य्यकेतुमभिषिच्य महाप्रभम् ॥ २४ ॥

जिनके वंशमें बृहन्नलनामक राजाओंकी उत्पत्ति हुई है, राजाओंमें शार्दूल उस मनुको अयोध्याके राज्यपर अभिषेकित कर नारायणजी मुनियोंके साथ मथुरामें गये । फिर वे महाप्रभावाले राजा सूर्यकेतुको उस मथुराके राज्यपर अभिषेकित कर ॥ २३ ॥ २४ ॥

भूपं चक्रे ततो गत्वा देवापिं वारणावते ।
अरिस्थलं वृकस्थलं माकन्दञ्च गजाह्वयम् ॥ २५ ॥

वारणावतमें यात्रा करते हुए उस स्थानमें देवापिको राज्यदे उसको अरिस्थल, वृकस्थल, माकन्द, हस्तिनापुर, वारणात ॥ २५ ॥

पञ्चदेशेश्वरं कृत्वा हरिः शम्भलमाययौ ।
शौम्भं पौण्ड्रं पुलिन्दञ्च सुराष्ट्रं मगधंतथा ।
कविप्राज्ञसुमन्तेभ्यः प्रददौ भ्रातृवत्सलः ॥ २६ ॥

इन पांच देशोंका स्वामी करके नारायणजी शम्भलदेशमें गमन करते हुए॥ फिर भ्राताओंके प्यारे नारायणजीने कवि, प्राज्ञ और सुमंत्रको शौम्भ, पौण्ड्र, पुलिन्द और मगधदेश दान किया ॥ २६ ॥

कीकटं मध्यकर्णाटमन्ध्रमोड्रं कलिङ्गकम् ।
अङ्गं वङ्गं स्वगोत्रेभ्यः प्रददौ जगदीश्वरः ॥ २७ ॥

फिर जगन्नाथने अपने जातिवालोंको कीकट,मध्यकर्णाटक, अन्ध्र, ओड्र, अंग, वंग, यह सब देश दिये ॥ २७ ॥

स्वयं शम्भलमध्यस्थः कङ्ककेन कलापकान् ।
देशं विशाखयूपाय प्रादात्कल्किः प्रतापवान् ॥ २८ ॥

इसके उपरान्त कल्किजीने स्वयं शम्भलदेशमें स्थित होकर राजा विशाखयूपको कंकक देश और कलापदेश यह दोनों देश दिये ॥ २८ ॥

चोलबर्बरकर्वाख्यान्द्वारकादेशमध्यगान् ॥
पुत्रेभ्यः प्रददौ कल्किः कृतवर्म्मपुरस्कृतान् ॥ २९ ॥

अनन्तर इन्होंने कृतवर्म आदि पुत्रोंको द्वारकाके अन्तर्गत चोल, बर्बर और कर्ब देश दिये ॥ २९ ॥

पित्रे धनानि रत्नानि ददौ परमभक्तितः ॥
प्रजाः समाश्वास्य हरिः शम्भलग्रामवासिनः ॥ ३० ॥

उन्होंने परम भक्तिके साथ पिताजीको धन और रत्न दिये, फिर शम्भलके उन रहवासियोंको धीरज देकर ॥ ३० ॥

पद्मया रमया कल्किर्गृहस्थो मुमुदे भृशम् ।
धर्मश्चतुष्पादभवत्कृतपूर्णं जगत्त्रयम् ॥ ३१ ॥

गृहस्थाश्रममें स्थित हो रमा और पद्माके साथ परमानन्दसे समयको बिताने लगे । त्रिलोकी सत्ययुगसे पूर्ण होगई ॥ ३१ ॥

देवा यथोक्तफलदाश्चरन्ति भुवि सर्वतः
सर्वशस्या वसुमती हृष्टपुष्टजनावृता ।
शाठ्यचौर्य्यानृतैर्हीना आधिव्याधिविवर्ज्जिता ॥ ३२ ॥

देवतालोग भक्तोंको अभिलषित फल देकरके पृथ्वीमें सब कहीं विचरण करने लगे । सर्व धान्योंसे पृथ्वी परिपूर्ण होगई । सब स्थानोंमें सब लोगही हृष्ट पुष्ट हो गये । शठता, चोरी, मिथ्याबोलना, मिथ्या व्यवहार आधि व्याधि यह सब उपद्रव पृथ्वीपरसे दूर होगये ॥ ३२ ॥

विप्रा वेदविदः सुमङ्गलयुता नार्य्यस्तु चार्य्याव्रतैः
पूजाहोमपराः पतिव्रतधरा यागोद्यताः क्षत्त्रियाः ।
वैश्या वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजापराः
शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्धरिकथालापाः सपर्य्यापराः ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विषकन्यामोक्षकृतधर्म्मप्रवृत्तिकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

ब्राह्मणलोग वेदपाठ करने लगे । स्त्रियें मंगलके कार्योंका और व्रतादि पुण्य कार्योंका अनुष्ठान करने लगीं । वे पूजा और होम करतीं व अत्यन्त पतिव्रता होतीथीं । क्षत्त्रियलोग याग यज्ञ करनेको तैय्यार हुए । वैश्यलोग विष्णुजीकी पूजा किया करते । वह विष्णुजीकी पूजामें लगे रहकर द्रव्यको खरीद बेंचकर जीवनयात्राको निर्वाह किया करते, शूद्रलोग ब्राह्मणोंकी सेवा करते हुए श्रीनारायणजीके गुणोंका कीर्त्तन श्रवणकर विष्णुजीकी पूजा करते रहकर संसारयात्राको निर्वाह करने लगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विषकन्यामोक्षकृतधर्मप्रवृत्तिकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

तृतीयांशः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

शौनक उवाच-शशिध्वजो महाराजः स्तुत्वा मायां गतः कुतः ।
का वा मायास्तुतिः सूत वद तत्त्वविदां वर ।
या त्वत्कथा विष्णुकथा वक्तव्या सा विशुद्धये ॥ १ ॥

शौनकजीने कहाः—हे सूत महाराज ! शशिध्वज मायास्तव करके कहां गये ? तुमको ब्रह्मज्ञान होगया । अतएव मायास्तुति कैसी है सो तुम कहो । मायाकी कथा और विष्णुजीकी कथा अलग नहीं है अतएव पापमोचनके लिये तुम उस मायाके स्तुतिवाक्य कहो ॥ १ ॥

सूत उवाच-शृणुध्वं मुनयः सर्वे मार्कण्डेयाय पृच्छते ।
शुकः प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम् ॥ २ ॥

उग्रश्रवा बोलेः—हे मुनिगण ! महर्षिमार्कण्डेयजीके पूछनेपर विशुद्धात्मा शुकदेवजीने उनसे अत्यन्त उत्तम मायास्तव कहाथा, मैं इस समय वही मायास्तव कहताहूं, श्रवण करो ॥ २ ॥

तच्छृणुष्व प्रवक्ष्यामि यथाधीतं यथाश्रुतम् ।
सर्वकामप्रदं नृणां पापतापविनाशनम् ॥ ३ ॥

मैंने जिसको पढा और सुना है जिसके श्रवण करनेसे मनुष्योंकी सारी कामनाएँ पूर्ण होतीहैं जिस्से सारे पाप ताप दूर होजातेहैं, ऐसे मायास्तव को कहताहूं श्रवण करो ॥ ३ ॥

शुक उवाच-भल्लाटनगरं त्यक्त्वा विष्णुभक्तः शशिध्वजः ।
आत्मसंसारमोक्षाय मायास्तवमलं जगौ ॥ ४ ॥

शुकदेवजी बोलेः—विष्णुजीके भक्त राजा शशिध्वजने भल्लाट नगरको छोड़ कर संसारसे मुक्त होनेके निमित्त मायास्तव करना आरम्भ किया ॥४॥

शशिध्वज उवाच ।

ॐह्रींकारां सत्त्वसारां विशुद्धां ब्रह्मादीनां मातरं वेदबोध्याम् ।
तन्वीं स्वाहां भूततन्मात्रकक्षां वन्दे वन्द्यां देवगन्धर्वसिद्धैः ॥५॥

शशिध्वजने कहाः—हे माया ! तुम शुद्ध सत्त्वगुणमयी हो विशुद्ध रूपिणीहो तुमहीं ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीकी माताहो, वेदमें तुम्हारी ही (महिमा) प्रतिपादित हुई है। तुम्हारी कुक्षिमें भूतगण और पंचतन्मात्रा स्थिति करतेहैं। देव, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधरगण तुम्हारी वन्दना करतेहैं, तुम सूक्ष्म और स्वाहारूपिणी और ह्रीं बीजरूपिणीहो तुम्हारी वन्दना करताहूं ॥ ५ ॥

लोकातीतां द्वैतभूतां समीडे भूतैर्भव्यां व्याससामासिकाद्यैः।
विद्वद्गीतां कालकल्लोललोलां लीलापाङ्गक्षिप्तसंसारदुर्गाम् ॥ ६ ॥

तुम लोकसे परे होरहीहो, तुम्हारे (स्वरूपमें) द्वैतभाव लगाया गयाहै, व्यास शातातपादि महर्षिगण तुम्हारी वन्दना करतेहैं। विष्णुजी तुम्हारे स्तुति के गीत गातेहैं, तुम कालरूपी समुद्रकी किलोलमें लहरातीहो, तुम्हारे कुटिल कटाक्षकी विलासलीलामें (समस्त प्राणी) संसारके प्रपञ्चमें पड़तेहैं, मैं तुम्हारी वन्दना करताहूं ॥ ६ ॥

पूर्णां प्राप्यां द्वैतलभ्यां शरण्यामाद्ये शेषे मध्यतो या विभाति।
नानारूपैर्देवतिर्य्यङ्मनुष्यैस्तामाधारां ब्रह्मरूपां नमामि ॥ ७ ॥

सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें तुम विराजमानथीं, तुम सर्व प्राणियोंके आश्रय होरहीहो, पूर्ण अथवा द्वैतभावसे तुम्हारी उपासना करनेपर तुमको प्राप्त किया जाताहै, तुम देवता, तिर्यक् (पशु आदि) और मनुष्यजातिमें अनेक प्रकारसे विभक्त होरहीहो, तुम सारे संसारकी आधारहो, तुम ब्रह्मस्वरूपिणीहो, तुमको नमस्कार है ॥ ७ ॥

यस्या भासा त्रिजगद्भाति भूतैर्न भात्येतत्तदभावे विधातुः।
कालो दैवं कर्म्म चोपाधयो ये तस्या भासा तां विशिष्टां नमामि८

तुम्हारी प्रभासे त्रिजगत् भूतपंचक करके प्रकाशमान् होरहाहै, तुम्हारे प्रकाशके विना काल, दैव कर्म, उपाधि आदि विधाताका नियत किया

हुआ कोई भाव प्रकाशित नहीं होता, तुम उसही प्रभावसे प्रभावती होरही हो, मैं तुमको नमस्कार करताहूं ॥ ८ ॥

भूमौ गन्धो रसताप्सु प्रतिष्ठा रूपं तेजस्येव वायौ स्पृशत्वम् ।
खे शब्दो वा यच्चिदाभाति नाना तामभ्येतां विश्वरूपां नमामि॥ ९ ॥

तुम चिदाभासरूपसे भूमिमें गन्ध, जलमें रस, तेजमें रूप, पवनमें स्पर्श और आकाशमें शब्द, इस भाँति अनेक प्रकारके रूपोंसे (जगत्में) विराजमान होरही हो, सारे संसारमें तुम प्रवेश कर रहीहो, अतएव तुम विश्वरूपिणीहो, तुमको नमस्कार करताहूं ॥ ९ ॥

सावित्री त्वं ब्रह्मरूपा भवानी भूतेशस्य श्रीपतेः श्रीस्वरूपा ।
शची शक्रस्यापि नाकेश्वरस्य पत्नी श्रेष्ठा भासि माये जगत्सु १० ॥

तुम ब्रह्मरूपिणी सावित्रीहो, तुमहीं महादेवजीकी भवानीहो, तुमहीं नारायणजीकी लक्ष्मीहो, तुमहीं स्वर्गके पति इन्द्रकी पटरानी इन्द्राणीहो, हे माया ! सारे विश्वसंसारमें तुम इसी प्रकारसे भासमान होरहीहो ॥ १० ॥

बाल्ये बाला युवती यौवने त्वं वार्द्धक्ये या स्थविरा कालकल्पा।
नानाकारैर्यागयोगैरुपास्या ज्ञानातीता कामरूपा विभासि ११॥

तुम शैशवावस्थामें बाला, यौवनकालमें युवतीहो, स्त्रियोंकी वृद्धदशामें तुम वर्षीयसीहो, (समस्तस्त्रियोंमें तुम्हारा वासहै) तुम कालसे कल्पितहो, तुम ज्ञानसे परे और कामरूपिणीहो, तुम अनेक प्रकारकी मूर्तियें धारण करके प्रकाशमान् होरहीहो । यज्ञ और योगसे तुम्हारी पूजा की जाती है, मैं तुम्हारी वन्दना करताहूं ॥ ११ ॥

वरेण्या त्वं वरदा लोकसिद्ध्या साध्वी धन्या लोकमान्या सुकन्या
चण्डी दुर्गा कालिका कालिकाख्या नानादेशे रूपवेषैर्विभासि ॥

तुम (सबकी) वरणीयहो, तुम उपासक लोगोंको वर और अभीष्ट देतीहो तुम साध्वी और धन्यवादके योग्यहो, लोग तुम्हारा सन्मान करतेहैं, तुम चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि समयानुसार नाम धारण करके अनेकरूपसे अनेक वेशसे, अनेक देशोंमें प्रकाशित होतीहो ॥ १२ ॥

तव चरणसरोजं देवि ! देवादिवन्द्यं यदि हृदयसरोजे भावयन्तीह भक्त्या (१)॥ श्रुतियुगकुहरे वा संश्रुतं धर्म्मसम्पज्जनयति जगदाद्ये सर्वसिद्धिश्च तेषाम् ॥ १३ ॥

हे जगदाद्ये देवि ! यदि कोई अपने हृदयकमलमें तुम्हारे उन चरणोंको जो देवादिकोंसे वन्दना किये जातेहैं-ध्यानकरे भक्तिसहित भावना करे अथवा यदि कोई कर्णकुहरमें तुम्हारा नाम श्रवण करे उसको धर्मकी सम्पत्ति प्राप्त होतीहै और वह सर्व बातोंमें सिद्धिको प्राप्त करसक्ताहै ॥ १३ ॥

मायास्तवमिदं पुण्यं शुकदेवेन भाषितम् ।
मार्कण्डेयादवाप्यापि सिद्धिं लेभे शशिध्वजः ॥ १४ ॥

इस पवित्र मायास्तोत्रको शुकदेवजीने कहाथा । महर्षि मार्कण्डेयजीसे इस मायास्तोत्रको पाकर राजा शशिध्वजने सिद्धि पाई ॥ १४ ॥

कोकामुखे तपस्तप्त्वा हरिं ध्यात्वा वनान्तरे ।
सुदर्शनेन निहतो वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥ १५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे मायास्तवो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

वनके बीच कोकामुखनामक स्थानमें तपकर नारायणजीका ध्यान करता हुआ राजा शशिध्वज सुदर्शनचक्रसे निहतहो वैकुण्ठधाममें चलागया ॥ १५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते सानुवादे भविष्ये तृतीयांशे मायास्तवो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

तृतीयांशः ।

षोडशोऽध्यायः ।

सूत उवाच—एतद्वः कथितं विप्राः शशिध्वजविमोक्षणम् ।
कल्केः कथामप्रतिमां शृण्वन्तु विबुधर्षभाः ॥ १ ॥

---

(१) शुकक्रतमभिशुद्धं हृत्सरोजे स्मरन्ति, इति पाठान्तरम् ।

उग्रश्रवा बोलेः—हे ब्राह्मणो ! यह मैंने आपसे राजा शशिध्वजकी मुक्तिका वृत्तान्त कहा । हे विबुधगण ! अब फिर कल्किजीका अद्भुत उपाख्यान कहताहूं श्रवण करो ॥ १ ॥

वेदो धर्म्मः कृतयुगं देवा लोकाश्चराचराः ।
हृष्टाः पुष्टाः सुसंतुष्टाः कल्कौ राजनि चाभवन् ॥ २ ॥

(जब) कल्किजी राजसिंहासनपर बैठगये (तब) वेद, धर्म, सत्ययुग, देवता, स्थावर जंगमादि समस्त जीवही हृष्ट, पुष्ट और संतुष्ट हुए ॥ २ ॥

नानादेवादिलिङ्गेषु भूषणैर्भूषितेषु च ।
इन्द्रजालिकवद्वृत्तिकल्पकाः पूजका जनाः ॥ ३ ॥

पहले युगमें (कलियुगमें) पुजारी ब्राह्मण लोग अनेक प्रकारके गहनोंसे भूषित देवमूर्तियोंमें इन्द्रजालीके समान व्यवहार करके (लोगोंको मोहित करतेथे । अब ऐसा इन्द्रजाली व्यवहार) ॥ ३ ॥

न सन्ति मायामोहाढ्याः पाखण्डाः साधुवञ्चकाः ।
तिलकाचितसर्वाङ्गाः कल्कौ राजनि कुत्रचित् ॥ ४ ॥

न रहा ! इससमय और कहींभी माया मोहसे शोभायमान साधुओंको धोखा देनेवाला पाखण्ड न रहा । कल्किजीके राजा होनेपर सबही सब अंगोंमें तिलक धारण करने लगे ॥ ४ ॥

शम्भले वसतस्तस्य पद्मया रमया सह ।
प्राह विष्णुयशाः पुत्रं देवान्यष्टुं जगद्धितान् ॥ ५ ॥

पद्मा और रमाके साथ शम्भलग्राममें इसप्रकारसे कल्किजी वास करने लगे । एक समय कल्किजीके पिताने उनसे कहा कि, देवतालोग जगत्का हित किया करतेहैं, इसकारण उनके लिये यज्ञ करना चाहिये ॥ ५ ॥

तच्छ्रुत्वा प्राह पितरं कल्किः परमहर्षितः ।
विनयावनतो भूत्वा धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ६ ॥

पिताजीके वचन सुन मनमें परमानंदित हो विनयसहित कल्किजीने उनसे कहा । मैं धर्म, काम और अर्थ, कामकी सिद्धिके लिये ॥ ६ ॥

राजसूयैर्वाजपेयैरश्वमेधैर्महामखैः ।
नानायागैः कर्म्मतन्त्रैरीजे क्रतुपतिं हरिम् ॥ ७ ॥

कर्मकाण्डके अन्तर्गत जो राजसूय यज्ञहै, अश्वमेध यज्ञहै व औरभी जो अनेक प्रकारके यज्ञहैं उनको करके यज्ञनाथ नारायणजी की पूजा करूंगा ॥ ७ ॥

कृपरामवसिष्ठाद्यैर्व्यासधौम्याकृतव्रणैः ।
अश्वत्थाममधुच्छन्दोमन्दपालैर्महात्मनः ॥ ८ ॥

फिर कल्किजीने (यह कहकर यज्ञका अनुष्ठान किया और) कृपाचार्य, परशुराम, वसिष्ठ, व्यास, धौम्य, अकृतव्रण, अश्वत्थामा, मधुच्छन्द, मन्दपालादि महर्षियोंको ॥ ८ ॥

गंगायमुनयोर्मध्ये स्नात्वावभृथमादरात् ।
दक्षिणाभिः समभ्यर्च्य ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ९ ॥

और वेदपारग महात्मा ब्राह्मणोंको पूजकर गंगायमुनाके मध्यमें यज्ञमें दीक्षितहो व स्नानकर दक्षिणा दी ॥ ९ ॥

चर्व्यैश्चोष्यैश्च पेयैश्च पूगशष्कुलियावकैः ।
मधुमांसैर्मूलफलैरन्यैश्च विविधैर्द्विजान् ॥ १० ॥

फिर उन्होंने अनेक प्रकारके चर्व्य, (चाबने योग्य) चोष्य, (चूसने योग्य लेह्य, (चाटने योग्य) पेय, (पीने योग्य) पूप, (पुआ उस समयभी वैद्यकशास्त्रमें पुएका वृत्तान्त पायाजाता है) शष्कुलि, (जौ के माडमें तिल चावल आदि मिलाकर यह पदार्थ बनता है) यावक, (यवका प्रकार विशेष)अधपके जौका नाम यावक है । बहुरी (चलित भाषामें कहते हैं) ताजा मांस, फल, मूल व अनेक प्रकारके द्रव्य ब्राह्मणोंको ॥ १० ॥

भोजयामास विधिवत्सर्वकर्मसमृद्धिभिः ।
यत्र वह्निर्वृतः पाके वरुणो जलदो मरुत् ॥ ११ ॥

विधिविधानसे भोजन कराय, इस यज्ञके सब अंश भलीभांतिसे पूरे हुए । इस यज्ञमें अग्निने भोजन रन्धन किये, वरुणजीने जल दिया; पवन ॥ ११ ॥

परिवेष्टा द्विजान्कामैः सदन्नाद्यैरतोषयत् ।
वाद्यैर्नृत्यैश्च गीतैश्च पितृयज्ञमहोत्सवैः ॥ १२ ॥

परसनेवाला हुवा । कमलके समान नेत्रवाले कल्किजीने मनमाने उत्तम अन्नादिसे नृत्य, गीत और बाजोंके बजवानेसे प्रति यज्ञमें अनेक उत्सवोंके करानेसे ॥ १२ ॥

कल्किः कमलपत्राक्षः प्रहर्ष प्रददो वसु ।
स्त्रीबालस्थविरादिभ्यः सर्वेभ्यश्च यथोचितम् ॥ १३ ॥

सबके आनन्दको बढाया ! उन्होंने बालकसे लेकर वृद्ध स्त्री तक सब कोही जैसा चाहिये वैसा धन दिया ॥ १३ ॥

रम्भा तालधरा नन्दी हूहूर्गायति नृत्यति ।
दत्त्वा दानानि पात्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः स ईश्वरः ॥ १४ ॥

रम्भा अप्सरा नाचने लगीं । नन्दी बाजा बजाने और ताल देने लगा । हूहू नामक गन्धर्वने इस प्रकार गाना आरंभ कियाः—

"वह छवि विसरत नाहिं विसारी ।
देह गेहकी सुधि नहिं तबते, जबते दृगनि निहारी ॥
रँग भरे वसन रसीली अँखियाँ कर कंचन पिचकारी ।
ग्वालनि मधि अलबेली आवन गावन मधुरीगारी ॥
हित सों बार २ हित हेरनि मृदु मुस्कान पियारी ।
गोल कपोलनि दोलति अलके अबिर भरीं घुँघरारी ॥
कोउ कछु कहै होइ कतहूँ कछु हौं तो तन मन वारी ।

होइ चुकी ब्रजराज कुँवर प प्रेमदास बलिहारी ॥
वह छबि बिसरत नाहिं बिसारी ॥ १ ॥
मिलोमोहि आज अचानक गैल ।
मेघमालसँग तडित लताजनु, हृदय गई दै शैल ॥
आधंचल खासि आधबदन हँसि आधहि नयन तरंग ।
आँचर उडत वक्ष निरखी जब तब धरि दहेउ अनंग ॥
इक तनुगोरा कनक कटोरा नयन श्यामसों श्याम ।
हर २ कहमन, समुझि शत्रु निज पाश पसारो काम ॥
दशन पाँतिकी काँति कहैको मृदु २ बोलत बोल ।
श्याम गौर युत "मिश्र"वरण लखि बेंचिदियो मन मोल ॥
मिलोमोहि आज अचानक गैल ॥ २ ॥

बहार-आये न अजौं वे हाय बीर ! बौंरी बनि बैरिन आमिनियां ॥ टे० ॥
गुलअनार कचनार सुहाए, औरै आँब गुलाब ले आए;
दाऊदी द्युति दामिनियां ॥
गुल्लाले लाली लहकाए, जनु होली खेलत चलिआए;
लखत जगेसे जामिनियां ॥
खेतन अति अतसी सरसाई, सरसों सुमन वसन्त ले आई;
पीत पटी कलकामिनियां ॥
सुन्दरता विकसी है वनमें, फूले ललित पलाशपवनमें;
शीतल गति गज गामिनियां ॥
आये न अजौं ॥ ३ ॥

वहार-अवतो लखिये आलिये अलियन-कलियनमुख चुम्बन करन लगे ।
पीवत मकरन्द मनोमाते, ज्यों अधर सुधारस में राते;
कहिकेलि कथा गुंजरन लगे ॥
कविवर श्रीबद्रीनारायण, निज प्यारीके करि आलिङ्गन;

लिपटे प्रसून मनहरन लगे ॥
अब तो लखिये अलिये अलियन ॥ ४ ॥"

वह जगदीश्वर कल्किजीने ब्राह्मणोंको और सत्पात्रोंको धन बांटकर ॥ १४ ॥

उवास तीरे गंगायाः पितृवाक्यानुमोदितः ।
सभायां विष्णुयशसः पूर्वराजकथाः प्रियाः ॥ १५ ॥
कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधाः ।
तत्रागतस्तुम्बुरुणा नारदः सुरपूजितः ॥ १६ ॥

पिताजीकी अनुमति ले गंगाके किनारे वास करने लगे । इस ओर विष्णुयशाकी सभामें ब्राह्मण और पंडितोंने पहले राजाओंके श्रवणमनोहरचरित्रकीर्त्तनकर संतुष्ट करतेहैं, हास्यकरतेहैं कि, इतनेमेंही देवताओंसे पूजित महर्षि नारदजी और तुंबुरु उस स्थानमें आतेभये ॥ १५ ॥ १६ ॥

तं पूजयामास मुदा पित्रा सह यथाविधि ।
तौ संपूज्य विष्णुयशाः प्रोवाच विनयान्वितः ।
नारदं वैष्णवं प्रीत्या वीणापाणिं महामुनिम् ॥ १७ ॥

महायशवान् विष्णुयशाने प्रसन्नहृदयसे उन दोनों महर्षियोंकी विधिविधानसे पूजाकी । उत्तम प्रकारसे उनकी पूजा करके विनययुक्तहृदयसे विष्णुजीके भक्त वीणापाणि महामुनि नारदजीकी प्रीतिसहित पूजाकी ॥ १७ ॥

विष्णुयशा उवाच-अहो भाग्यमहो भाग्यं मम जन्मशतार्जितम् ।
भवद्विधानां पूर्णानां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् ॥ १८ ॥

विष्णुयशाने कहाः—हमारा कैसा सौभाग्यहै ! शतजन्ममें इकट्ठा किया-हुआ मेरा भाग्य कैसा अद्भुतहै ! आप लोग पूर्णहैं । हमारी मुक्तिके लियेही आप लोगोंके दर्शन प्राप्तहुए ॥ १८ ॥

अद्याग्नयश्च सुहुतास्तृप्ताश्च पितरः परम् ।
देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात् ॥ १९ ॥

आज आपके दर्शन पानेसे व आपकी पूजा करनेसे हमारे पितृगण तृप्तहुये मैंने जो अग्निमें आहुति दीहै सो सफल हुई। आज देवतालोगभी संतुष्ट हुए॥ १९॥

यत्पूजायां भवेत्पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम्।
पापसंघं स्पर्शनाच्च किमहो साधुसंगमः॥ २०॥

जिसकी पूजा करनेसे विष्णुजी पूजित होतेहैं, तिनका दर्शन करनेसे फिर जन्म नहीं होता, तिसके स्पर्शसे पापपुञ्जका क्षय होताहै ऐसे साधुओंका समागम क्याही अद्भुतहै॥ २०॥

साधूनां हृदयं धर्म्मो वाचो देवाः सनातनाः।
कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम्॥ २१॥

साधुओंका हृदयही धर्महै, साधुओंका वाक्यही सनातन देवताहैं, साधुओंके कर्महीं कर्मक्षय होनेके कारणहैं, अतएव साधुलोग स्वयंही नारायणजीकी मूर्तिहैं॥ २१॥

मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्त्रये।
यथावतारे कृष्णस्य सतो दुष्टाविनिग्रहे॥ २२॥

दुष्टोंको दंड देनेके लिये कृष्णावतारमें कृष्णजीका नित्य शरीर जैसे भौतिक नहींहै, वैसेही इस त्रिलोकीमें वैष्णव शरीरभी भूत पंचकसे बना हुआ नहीं ज्ञात होता॥ २२॥

पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मन्मायासंसारवारिधौ।
नौकायां विष्णुभक्त्या च कर्णधारोऽसि पारकृत्॥ २३॥

हे ब्रह्मन्! मायामय संसारमें आप विष्णुभक्तिरूप नावके पार करनेवाले होतेहैं इसी कारण आपसे कुछ पूछताहूं॥ २३॥

केनाहं यातनागारान्निर्वाणपदमुत्तमम्।
लप्स्यामीह जगद्बन्धो कर्म्मणा शर्म्म तद्वद॥ २४॥

हे जगद्बन्धो! मैं किस कर्मके करनेसे इस संसाररूप पीडाके स्थानसे

छुटकारा पाय श्रेष्ठताका साधन उत्तम निर्वाणपद प्राप्त करसकूंगा, सो आप-कहैं ॥ २४ ॥

नारद उवाच—अहो बलवती माया सर्वाश्चर्य्यमयी शुभा
पितरं मातरं विष्णुर्नैव मुञ्चति कर्हिचित् ॥ २५ ॥

नारदजी बोलेः—माया कैसी शोभायमान्है, माया कैसी बलवतीहै, माया सबको कैसा विस्मित करतीहै, क्या आश्चर्यहै कि, विष्णुजी पिता माताकोभी इस मायासे नहीं छुटाते ॥ २५ ॥

पूर्णो नारायणो यस्य सुतः कल्किर्जगत्पतिः ।
तं विहाय विष्णुयशा मत्तो मुक्तिमभीप्सति ॥ २६ ॥

साक्षात् सनातन भगवान् नारायणजी जिनके पुत्रहैं, वह विष्णुयशा हमसे मुक्तिकी कामना करताहै ॥ २६ ॥

विविच्येत्थं ब्रह्मसुतः प्राह ब्रह्मयशःसुतम् ।
विविक्ते विष्णुयशसं ब्रह्मसंपद्विवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

ब्रह्माजीके पुत्र नारदजीने यह सोच विचारकर, ब्रह्मयशाके पुत्र विष्णुयशाको निर्जनमें ब्रह्मज्ञान देनेके निमित्त यह वाक्य कहा ॥ २७ ॥

नारद उवाच—देहावसाने जीवं सा दृष्ट्वा देहावलम्बनम् ।
मायाह कर्त्तुमिच्छन्तं यन्मे तच्छृणु मोक्षदम् ॥ २८ ॥

नारदजी बोलेः—(जब) देहका ध्वंस होनेपर जीवने फिर देहका आश्रय करनेकी इच्छाकी (तब उसकाल) मायाने जो कुछ कहाथा सो मैं कहताहूं श्रवणकरो, इसके श्रवंण करनेसे मुक्ति प्राप्त होतीहै ॥ २८ ॥

विन्ध्याद्रौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया ॥ २९ ॥

अपनी इच्छाके अनुसार विन्ध्य पर्वतपर स्त्रीका रूप धारणकर मायाने कहा

मायोवाच-अहं माया मया त्यक्तः कथं जीवितुमिच्छसि ३० ॥

मायाबोलीः—मैं मायाहूं, तुमको छोड़दियाहै तुम किस प्रकारसे जीवन धारण करनेकी इच्छा करतेहो ॥ ३० ॥

जीव उवाच-नाहं जीवाम्यहं माये कायेऽस्मिञ्जीवनाश्रये।
अहमित्यन्यथाबुद्धिर्विना देहं कथं भवेत्॥ ३१॥

जीवने कहाः—हे माये! मैं नहीं जिऊंगा, शरीरही जीवनका आश्रयहै "अहं" इस अभिमानसे भेदज्ञानके विना किस प्रकारसे देह धारण कर सकताहै ॥ ३१ ॥

मायोवाच-देहवन्धे यथाश्लेषास्तथा बुद्धिः कथं तव।
मायाधीनां विना चेष्टां विशिष्टां ते कुतो वद॥ ३२॥

माया बोलीः—देहधारण किये जानेपर जब भेदज्ञान होताहै, तुम्हारी बुद्धि इस समय वैसी क्यों होतीहै, चेष्टा मायाके अधीनहै, अब मायाके विना तुम्हारी चेष्टा कैसे होतीहै ॥ ३२ ॥

जीव उवाच-मां विना प्राज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा ३३॥

जीवने कहाः—हे माये! विना मेरे तुम्हारी प्राज्ञताका प्रकाश नहीं होसकता, न विषयमें स्पृहा होसकतीहै ॥ ३३ ॥

मायोवाच-मायया जीवति नरश्चेष्टते हतचेतनः।
निःसारः सारवद्भाति गजभुक्तकपित्थवत्॥ ३४॥

मायाने कहाः—जीव माया करके यंत्रके समान कार्य और चेष्टा करताहै मायासे जीवन धारण करताहै और हाथीके खाये कपित्थ फलके समान जान पड़ताहै ॥ ३४ ॥

जीव उवाच-मम संसर्गजाता त्वं नानानामस्वरूपिणी।
मां विनिन्दसि किं मूढे स्वैरिणी स्वामिनं यथा॥ ३५॥

जीवने कहा। हेमूढे! तुमने हमारे संसर्गसे उत्पन्न होकर बहुतसे नामरूप धारण कियेहैं। जैसे स्वैरिणी स्त्री स्वामीकी निन्दा करतीहै वैसेही तु किस कारणसे हमारी निन्दा करतीहै ॥ ३५ ॥

ममाभावे तवाभावः प्रोद्यत्सूर्य्ये तमो यथा।
मामावर्य्य विभासि त्वं रविं नवघनो यथा॥ ३६॥

जैसे सूर्योदयके होनेपर अन्धकार नहीं रहता, वैसेही हमारे अभावसे

तुम्हाराभी अभाव होताहै । जैसे नवीन नीरद (बादर) सूर्यको ढककर प्रकाशमान होताहै, तैसेही तुम हमको ढककर शोभायमान होतीहो ॥ ३६ ॥

लीलाबीजकुशूलासि मम माये जगन्मये ।
नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानात्वादिन्द्रजालवत् ॥ ३७ ॥

हे माये ! तुम लीलामय बीजकी कुशूला अर्थात् भुस्सीरूपहो नानात्व होनेमें हेतु, तुम जगत्के आदि, अन्त और मध्यमें इन्द्रजालके समान शोभायमान हो ॥ ३७ ॥

एवं निर्विषयं नित्यं मनोव्यापारवर्ज्जितम् ।
अभौतिकमजीवञ्च शरीरं वीक्ष्य साऽत्यजत् ॥ ३८ ॥

इसप्रकार विषय व्यापार रहित, मानसिक व्यापारसे रहित, अभौतिक जीवन रहित शरीरको देखकर मायाने उसको छोड़दिया ॥ ३८ ॥

त्यक्त्वा मां सा ददौ शापमिति लोके तवाप्रिय ।
न स्थितिर्भविता काष्ठकुड्योपम कथञ्चन ॥ ३९ ॥

मायाने मुझको छोड़कर इसप्रकारसे शापदिया कि हे अप्रिय ! (हमको जानपड़ताहै कि) तू काष्ठभित्तिकी समान अत्यन्त चेष्टाहीनहै । इस पृथ्वीपर कभी और किसी रूपमें तेरी स्थितिका (प्रत्यक्ष) नहीं होगा ॥ ३९ ॥

सा माया तव पुत्रस्य कल्केर्विश्वात्मनः प्रभोः !
तां विज्ञाय यथाकामं चर गां हरिभावनः ॥ ४० ॥

नारदजी (यह माया और जीवका उपाख्यान कहकर) विष्णुयशासे बोलेः-हे देव ! विश्वरूप, परमदेवता तुम्हारे पुत्र कल्किजीसेही इस मायाकी उत्पत्ति हुईहै, तुम उस मायाका तत्त्वजानो और नारायणजीका ध्यान करते हुए इच्छानुसार पृथ्वीपर विचरण करो ॥ ४० ॥

निराशो निर्ममः शान्तः सर्व्वभोगेषु निस्पृहः ।
विष्णौ जगदिदं ज्ञात्वा विणुर्जगति वासकृत् ।
आत्मनात्मानमावेश्य सर्व्वतो विरतो भव ॥ ४१ ॥

तुम आशा और ममताको छोड़ो, पार्थिव विषयभोग वासनाको जलाञ्जलि देकर शान्तिरसमें अभिषेकित होवो। तब समझ सकोगे कि, यह जगत विष्णुजीके (विराट्प्रभावसे) स्थिति करताहै और भगवान् विष्णुजी इस प्रत्यक्ष परिदृश्यमान जगत्में प्रविशे हुएहैं। इस प्रकार ज्ञानका उदय होनेपर जीवात्माको परमात्मामें संयुक्त करके सर्व प्रकार की कामनाओंसे विरतहोना उचित है ॥ ४१ ॥

एवं तं विष्णुयशसमामन्त्र्य च मुनीश्वरौ ।
कल्किं प्रदक्षणीकृत्य जग्मतुः कपिलाश्रमम् ॥ ४२ ॥

विष्णुयशासे इसप्रकार सम्भाषण करके दोनों महर्षि कल्किजीकी प्रदक्षिणा करके कपिलजीके आश्रममें चलेगये ॥ ४२ ॥

नारदेरितमाकर्ण्य कल्किं सुतमनुत्तमम् ।
नारायणं जगन्नाथं वनं विष्णुयशा ययौ ॥ ४३ ॥

जब नारदजीके मुखसे विष्णुयशाने सुना कि मेरे पुत्र कल्किजी जगन्नाथ नारायणहैं, तब वह संसारको छोडकर वनमें चलेगये ॥ ४३ ॥

गत्वा बदरिकारण्यं तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
जीवं बृहति संयोज्य पूर्णस्तत्याज भौतिकम् ॥ ४४ ॥

विष्णुयशाजी बदरिकाश्रममें जाय दारुण तप करनेके द्वारा आत्माको परब्रह्ममें मिलाय पूर्णस्वरूप होकर पांच भूतके बनेहुए शरीरको छोडते हुए ॥ ४४ ॥

मृतं स्वामिनमालिङ्गच सुमतिः स्नेहविक्लवा ।
विवेश दहनं साध्वी सुवेशैर्दिवि संस्तुता ॥ ४५ ॥

स्वामीके प्रेमके वश हुई पतिव्रता सुमति अपने मृतकपतिको हृदयसे लगायकर अग्निमें प्रवेश करती हुई। देवलोकमें देवता लोग श्रेष्ठ वस्त्र पहरकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥

कल्किः श्रुत्वा मुनिमुखात्पित्रोर्निर्याणमीश्वरः ।

सबाष्पनयनं स्नेहात्तयोः समकरोत्क्रियाम् ॥ ४६ ॥

मुनियोंके मुखसे पिता माताके स्वर्ग जानेका वृत्तान्त सुनकर स्नेह के मारे कल्किजीके नेत्रोंमें जल भरआया, (और उन्होंने) श्राद्धादि क्रियाकी ॥ ४६ ॥

पद्मया रमया कल्किः शम्भले सुरवाञ्छिते ।
चकार राज्यं धर्म्मात्मा लोकवेदपुरस्कृतः ॥ ४७ ॥

लोकाचार और वेदाचार करनेवाले धर्मात्मा कल्किजी, देवताओंके भी प्रार्थित शम्भलग्राममें स्थितहो रमा और पद्माके साथ राज्यपालन करनेलगे ॥ ४७ ॥

महेन्द्रशिखराद्रामस्तीर्थपर्य्यटनादृतः ।
प्रायात्कल्केर्दर्शनार्थं शम्भलं तीर्थतीर्थकृत् ॥ ४८ ॥

तीर्थकोभी पवित्र करनेवाले परशुरामजी तीर्थ पर्यटन करते हुए महेन्द्र पर्वतके शिखरपरसे उतरकर कल्किजीका दर्शन करनेके निमित्त शम्भल ग्राममें आये ॥ ४८ ॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय पद्मया रमया सह ।
कल्किः प्रहर्षो विधिवत्पूजाञ्चक्रे विधानवित् ॥ ४९ ॥

परशुरामजीको देखतेही विधानके जाननेवाले कल्किजी आनन्दके सहित पद्मा और रमाके साथ सिंहासनसे उठकर विधिविधानसे उनकी पूजा करते हुए ॥ ४९ ॥

नानारसैर्गुणमयैर्भोजयित्वा विचित्रिते ।
पर्य्यङ्केऽनर्घवस्त्राढये शाययित्वा मुदं ययौ ॥ ५० ॥

उन्होंने परशुरामजीको उत्तम गुणकारी अनेक रसवाले द्रव्योंसे भोजन कराय अमोल वस्त्रवाले विचित्र पर्यंक (पलंग) पर शयन कराया ॥ ५० ॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं पादसंवाहनैर्गुरुम् ।
संतोष्य विनयापन्नः कल्किर्मधुरमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

गु परशुरामजी भोजन करके विश्राम करतेहैं कि, इतनेमें पांव पलोटकर कल्किजीने उनको संतुष्ट कर विनयसे नवते हुए मधुर वचन कहे ॥ ५१ ॥

तव प्रसादात्सिद्धं मे गुरो त्रैवर्गिकञ्च यत् ।
शशिध्वजसुता यास्तु शृणु राम निवेदितम् ॥ ५२ ॥

हे गुरो ! आपके प्रसादसे हमारे अर्थ, धर्म, काम यह तीनों वर्ग सिद्ध होगयेहैं इस समय शशिध्वजकी पुत्री (रमा) का एक निवेदन है (उसको) श्रवण कीजिये ॥ ५२ ॥

इति पतिवचनं निशम्य रामा निजहृदयेप्सितपुत्रलाभमिष्टम्
व्रतजपनियमैर्यमैश्च कैर्वा मम भवतीह सुदाह जामदग्न्यम् ५३
इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विष्णु-
यशसो मोक्षो रामदर्शनं च नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पतिके यह वचन सुनकर रमाने मनमें हर्षितहो परशुरामजीसे बूझा कि-किसप्रकारसे यम, नियम, जप या व्रतका अनुष्ठान करनेसे मैं अपना मनमाना पुत्र पाय सक्तीहूं ॥ ५३ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विष्णुयश-
सो मोक्षे रामदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

तृतीयांशः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

सूत उवाच-जामदग्न्यः समाकर्ण्य रमां तां पुत्रगर्द्धिनीम् ।
कल्केरभिमतं बुद्ध्वाकारयद्रुक्मिणीव्रतम् ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोलेः-रमाको पुत्रकी अभिलाषावाली देख और कल्किजीके अभिप्रायको जानकर परशुरामजीने उस्से रुक्मिणीव्रत कराया ॥ १ ॥

व्रतेन तेन च रमा पुत्राढ्या सुभगा सती ।
सर्व्वभोगेन संयुक्ता बभूव स्थिरयौवना ॥ २ ॥

उस व्रतके प्रभावसे सती रमा पुत्रवती, सौभाग्यवती, सर्वभोगयुक्त और स्थिरयौवनवाली हुई ॥ २ ॥

शौनक उवाच—विधानं ब्रूहि मे सूत व्रतस्यास्य च यत्फलम् ।
पुरा केन कृतं धर्म्यं रुक्मिणीव्रतमुत्तमम् ॥ ३ ॥

शौनक बोले—हे सूत ! इस रुक्मिणीव्रतका विधान कैसा है ! फल कैसा है ? और किस आदमीने इस परमश्रेष्ठ व्रतको कियाथा, सो आप हमसे कहैं ॥ ३ ॥

सूत उवाच—शृणु ब्रह्मन्राजपुत्री शर्म्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
अवगाह्य सरोनीरं सोमं हरमपश्यत ॥ ४ ॥

उग्रश्रवाने कहा--हे ब्रह्मन् ! मैं सब कहताहूं श्रवण करो कि, वृषपर्वा नामक दानवनाथकी एक शर्मिष्ठानामक कन्या थी । एक समय वह सरोवरके जलमें घुसकर जलविहार करती थी कि, इतनेमें उमासहित भगवान् महेश्वरको देखती भई ॥ ४ ॥

सा सखीभिः परिवृता देवयान्या च संगता ।
शम्भुभीत्या समुत्थाय पर्य्यधाद्वसनं द्रुतम् ॥ ५ ॥

शर्मिष्ठा और उसकी सखियें और देवयानी उनको देख भय पाकर डरती हुई शीघ्र सरोवरसे बाहर किनारेपर आई और अपने २ वस्त्र पहरने लगीं ॥५॥

तत्र शुक्रस्य कन्याया वस्त्रव्यत्ययमात्मनः ।
संलक्ष्य कुपिता प्राह वसनं त्यज भिक्षुकि ॥ ६ ॥

उस समय देवताओंके गुरु शुक्राचार्यकी कन्या देवयानीने (अपने वस्त्रोंके धोखेमें) शर्मिष्ठाके वस्त्र पहरेथे इस प्रकार कपडोंका अत्यन्त उलटपन देखकर शर्मिष्ठाने कुपित होकर कहा, हे देवयानी ! हे भिक्षुकि ! हमारे वस्त्र छोड़ ॥ ६ ॥

इति दानवकन्या सा दासीभिः परिवारिता ।
तां तस्या वाससा बद्ध्वा कूपे क्षिप्त्वा गता गृहम् ॥ ७ ॥

दानवराजकी कन्या शर्मिष्ठाने यह कहकर दासियोंकी सहायतासे उसके वस्त्रके द्वारा देवयानीको बाँधकर एक निकटके कुएमें उसको डालदिया और अपने घरकी ओरको चलीगई ॥ ७ ॥

तां मग्नां रुदतीं कूपे जलार्थी नहुषात्मजः ।
करे स्पृश्य समुद्धृत्य प्राह का त्वं वरानने ॥ ८ ॥

देवयानी कुएँमें गिरकर रोनेलगीं, इसी समयमें नहुषका पुत्र राजा ययाति जल पीनेके लिये वहां पहुँचा और देवयानीका हाथ पकड उठाकर कहा कि, हे वरानने ! तुम कौन हो ? ॥ ८ ॥

सा शुक्रपुत्री वसनं परिधाय ह्रिया भिया ।
शर्म्मिष्ठया कृतं सर्वं प्राह राजानमीक्षती ॥ ९ ॥

शुक्रकी पुत्रीने लाज और भयके मारे वस्त्र पहरकर राजाकी ओर निहार शर्मिष्ठाकी सारी करतूत कह सुनाई ॥ ९ ॥

ययातिस्तदभिप्रायं ज्ञात्वानुव्रज्य शोभनम् ।
आश्वास्य तां ययौ गेहं तस्याः परिणयादृतः ॥ १० ॥

फिर देवयानीके अभिप्रायको जानकर राजा ययातिने उसके पाणिग्रहण करनेका अभिलाष किया । कुछ दूरतक साथ जाय भली भाँति समझाय बुझाय राजा अपने गृहको चले गये ॥ १० ॥

सा गत्वा भवनं शुक्रं प्राह शर्म्मिष्ठया कृतम् ।
तच्छ्रुत्वा कुपितं विप्रं वृषपर्वाह सान्त्वयन् ॥ ११ ॥

फिर अपने घरपर पहुँच पिता शुक्राचार्यसे शर्मिष्ठाका समस्त व्यवहार देवयानीने कहा । इस वृत्तान्तको सुनतेही शुक्राचार्य कुपित हुए, दैत्योंका राजा वृषपर्वा उनको समझाने लगा ॥ ११ ॥

दण्डयं मां दण्डय विभो कोपो यद्यस्ति ते मयि ।
शर्म्मिष्ठां वाप्यपकृतां कुरु यन्मनसेप्सितम् ॥ १२ ॥

और कहा—हे विभो ! जो हमारे ऊपर आपका क्रोध हुआ हो,

और मैं दण्डके योग्य होऊं अथवा आपकी अपकारिणी शर्मिष्ठाके ऊपर जो क्रोध हुआहो तो जो इच्छाहो वह दण्ड आप दीजिये ॥ १२ ॥

राजानं प्रणतं पादे पितुर्दृष्ट्वा रुषाब्रवीत् ।
देवयानी त्वियं कन्या मम दासी भवत्विति ॥ १३ ॥

अपने पिता शुक्राचार्यके चरणोंमें दैत्यराजको गिरा हुआ देख देवयानीने क्रोधमें भरकर कहा कि,आपकी यह कन्या हमारी दासी होजाय॥ १३॥

समानीय तदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः ।
ययौ निजगृहं ज्ञानी दैवं परमकं स्मरन् ॥ १४ ॥

दैवको बलवान् जानकर ज्ञानी राजाने शर्मिष्ठाको लाय देवयानीकी दासी करदिया और अपने गृहको चलागया ॥ १४ ॥

ततः शुक्रस्तमानीय ययातिं प्रतिलोमकम् ।
तस्मै ददौ तां विधिवद्देवयानीं तया सह ॥ १५ ॥

फिर शुक्राचार्यने राजा ययातिको बुलवाय प्रतिलोम विवाहके अनुसार विधिविधानसे देवयानीको दान किया । देवयानीके साथ उसकी दासी शर्मिष्ठा भी दीगई ॥ १५ ॥

दत्त्वा प्राह नृपं विप्रोऽप्येनां राजसुतां यदि ।
शयने ह्वयसे सद्यो जरा त्वामुपभोक्ष्यति ॥ १६ ॥

राजकुमारी शर्मिष्ठाको समर्पण करनेके समय शुक्राचार्यने राजासे कहा— जो तुम इस कन्याको शयनभवनमें बुलाओगे तो तत्काल तुमको जरा अवस्था प्राप्त होगी ॥ १६ ॥

शुक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा राजा तां वरवर्णिनीम् ।
अदृश्यां स्थापयामास देवयान्यनुगां भिया ॥ १७ ॥

शुक्राचार्यके यह वचन सुनकर राजा ययातिने भयके मारे देवयानी की सहेली परम रूपवती शर्मिष्ठाको ऐसे स्थानमें रक्खा जहां उसपर अपनी दृष्टि ही न पडे ॥ १७ ॥

सा शर्म्मिष्ठा राजपुत्री दुःखशोकभयाकुला ।
नित्यं दासीशताकीर्णा देवयानीं तु सेवते ॥ १८ ॥

दुःखित, शोकसे सन्तापित, भयसे आकुल वह राजकुमारी शर्मिष्ठा प्रतिदिन शत दासियोंके साथ मिलकर देवयानीकी सेवा करनेलगी ॥ १८ ॥

एकदा सा वनगता रुदती जाह्नवीतटे ।
विश्वामित्रं मुनिं सा तं ददृशे स्त्रीभिरावृतम् ॥ १९ ॥

एक समय गंगाजीके तीरपर वनमें बैठी हुई शर्मिष्ठा रोरही है इतनेमें उसने देखा कि, महार्षि विश्वामित्रजी स्त्रियोंके साथ हैं ॥ १९ ॥

व्रतिनं पुण्यगन्धाभिः सुरूपाभिः सुवासितम् ।
कारयन्तं व्रतं माल्यधूपदीपोपहारकैः ॥ २० ॥

यह महर्षिजी स्वयं व्रतको धारण किये हुए सुगन्धित पदार्थोंसे भूषित हैं, पवित्र गन्धवाली परम रूपवती स्त्रियें उनके चारों ओर बैठीहैं । यह विश्वामित्रजी धूप, दीप, माल्यं व अनेक प्रकारके उपहारोंसे इन स्त्रियोंको व्रत करारहे हैं ॥ २० ॥

निर्म्मायाष्टदलं पद्मं वेदिकायां सुचिह्नितम्
रम्भापोतैश्चतुर्भिस्तु चतुष्कोणं विराजितम् ॥ २१ ॥

विश्वामित्रजीने वेदिकाके ऊपर आठ दलका पद्म बनाया है वेदीके चार कोनोंमें चार कदलीके वृक्ष लगेथे ॥ २१ ॥

वाससा निर्मितगृहे स्वर्णपट्टैर्विचित्रिते ।
निर्मितं श्रीवासुदेवं नानारत्नविघट्टितम् ॥ २२ ॥

वस्त्रनिर्मित (डेरे) गृहके भीतर सुवर्णके बने हुए पीठपर मणिजडित और सुघटित वासुदेवजीकी मनोहर मूर्त्ति विराजमानथी ॥ २२ ॥

पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकैः शुभैः ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्यथामन्त्रैर्द्विजेरितैः ॥ २३ ॥

(पूजाका विधान यह है कि) पुरुषसूक्त पढ़कर मनोहर, अनेक

प्रकारके सुगन्धित जलसे पंचामृतसे और पंचगव्यसे स्नान करके उच्चारित यथोक्त मंत्रसे ॥ २३ ॥

स्नापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।
पञ्चभिर्दशभिर्वापि षोडशैरुपचारकैः ॥ २४ ॥

वासुदेवजीको स्थापन कराय भद्रपीठमें कर्णिकाके ऊपर (वासुदेवकी मूर्त्तिको) स्थापितकर सोलह और पंद्रह उपचारोंसे अथवा दश उपचारोंसे पूजा करे ॥ २४ ॥

पाद्यमध्वश्रमहरं शीतलं सुमनोहरम् ।
परमानन्दजनकं गृहाण परमेश्वर ॥ २५ ॥

हे परमेश्वर ! तुम्हारी मार्गथकावटको दूर करनेके लिये यह परम प्रीतिकारी शीतल और सुन्दर पाद्य है इसको ग्रहण करो ॥ २५ ॥

दूर्वाचन्दनगन्धाढ्यमर्घ्यं युक्तं प्रयत्नतः ।
गृहाण रुक्मिणीनाथ प्रसन्नस्य मम प्रभो ॥ २६ ॥

हे रुक्मिणीवल्लभ ! हे वासुदेव ! यत्नसहित इस दूर्वायुक्त व चन्दनचर्चित अर्घ्यको स्थापित किया है, शरणागतजनोंका निवेदन किया अर्घ्य ग्रहण करो ॥ २६ ॥

नानातीर्थोद्भवं वारि सुगन्धि सुमनोहरम् ।
गृहाणाचमनीयं त्वं श्रीनिवास श्रिया सह ॥ २७ ॥

हे कमलापते ! अनेक तीर्थोंका पवित्र जल संग्रह किया है, तुम और लक्ष्मीजी इस मनोहर सुगन्धित जलको अपने आचमनीय स्वरूपमें ग्रहण करो ॥ २७ ॥

नानाकुसुमगन्धाढ्यं सूत्रग्रथितमुत्तमम् ।
वक्षःशोभाकरं चारु माल्यं नय सुरेश्वर ॥ २८ ॥

हे सुरेश्वर ! अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंकी माला गूंथीहै, यह माला तुम्हारी छातीकी शोभाको बढावैगी, हे देव ! इस शोभायमान मालाको ग्रहणकरो ॥ २८ ॥

तन्तुसन्तानसन्धानरचितं बन्धनं हरे।
गृहाणावरणं शुद्धं निरावरण सप्रिय ॥ २९ ॥

हेहरे ! (तुम अनादि, अनन्त महापुरुषहो) तुमको कौन ढक सकताहै? तथापि तुम और तुम्हारी प्यारी लक्ष्मीजी सूत्रसन्धानसे रचित इन शुद्ध आवरणवस्त्रको ग्रहणकरो ॥ २९ ॥

यज्ञसूत्रमिदं देव ! प्रजापतिविनिर्मितम्।
गृहाण वासुदेव त्वं रुक्मिण्या रमया सह ॥ ३० ॥

हेदेव ! प्रजापतिने इस यज्ञसूत्रको बनायाहै, तुम और तुम्हारी भार्या रुक्मिणी और लक्ष्मीजी इस यज्ञोपवीतको ग्रहणकरें ॥ ३० ॥

नानारत्नसमायुक्तं स्वर्णमुक्ताविघट्टितम्।
प्रियया सह देवेश गृहाणाभरणं मम ॥ ३१ ॥

हे देवताओंके स्वामिन् ! इन मोतियोंसे जड़े, सुवर्णके बने, रत्नमय आभरणोंको तुम और तुम्हारी भार्या ग्रहणकरें ॥ ३१ ॥

दधिक्षीरगुडान्नादिपूपलड्डुकखण्डकान्।
गृहाण रुक्मिणीनाथ सनाथं कुरु मां प्रभो ॥ ३२ ॥

हेरुक्मिणीवल्लभ ! दही, दूध, गुड़, अन्न, पुआ, लड्डू, खांड आदि ग्रहण करो, हेदेव ! मैं अनाथहूं मुझे सनाथकरो ॥ ३२ ॥

कर्पूरागुरुगन्धाढ्यं परमानन्ददायकम्।
धूपं गृहाण वरद वैदर्भ्या प्रियया सह ॥ ३३ ॥

हे वरद ! तुम रुक्मिणीजीके साथ परमानन्दको देनेवाली, कपूर और अगरकी गन्धसे युक्त इस धूपको ग्रहणकरो ॥ ३३ ॥

भक्तानां गेहशक्तानां संसारध्वान्तनाशनम्।
दीपमालोकय विभो ! जगदालोकनादर ॥ ३४ ॥

हे भगवन् ! तुम संसारविलासी भक्तोंके संसारी (मोहरूप) अन्धकारको दूर करतेहो; तुम समस्तसंसारमें आदरसहित कृपाकटाक्ष चलाओ; अब इस साधारण) दीपकपर नेत्रोंका संचार करो ॥ ३४ ॥

श्यामसुन्दर ! पद्माक्ष ! पीताम्बर ! चतुर्भुज ! ।
प्रपन्नं पाहि देवेश रुक्मिमण्या सहिताच्युत ॥ ३५ ॥

हे पद्मपलाशलोचन ! हे श्यामसुन्दर ! हे पीताम्बर ! हे देवदेव ! हे चतुर्भुज ! आप और भगवती रुक्मिणीजी हम पर प्रसन्न होवैं (और) हमारी रक्षा करें ॥ ३५ ॥

इति तासां व्रतं दृष्ट्वा मुनिं नत्वा सुदुःखिता ।
शर्म्मिष्ठा मिष्टवचना कृताञ्जलिरुवाच ताः ॥ ३६ ॥

स्त्रियोंके इस व्रतको देखकर दुःखित हुई शर्मिष्ठाने महर्षिजीको प्रणाम किया और हाथ जोडकर मीठे वचनोंसे बोली ॥ ३६ ॥

शर्म्मिष्ठोवाच—राजपुत्रीं दुर्भगां मां स्वामिना परिवर्ज्जिताम् ।
त्रातुमर्हथ हे देव्यो व्रतेनानेन कर्म्मणा ॥ ३७ ॥

शर्मिष्ठा बोली—हे देवियो ! मैं अत्यन्त अभागिनी हूं, राजकुमारीथी; परन्तु भाग्यदोष करके पतिके संगसे वर्जितहूं । इस व्रतका अनुष्ठान किस प्रकारसे होता है सो उपदेश करके आप हमारी रक्षा करें ॥ ३७ ॥

श्रुत्वा तु ता वचस्तस्याः कारुण्याच्च कियत्कियत् ।
पूजोपकरणं दत्त्वा कारयामासुरादरात् ॥ ३८ ॥

शर्मिष्ठाके यह वचन सुनकर उन स्त्रियोंने दयाके वशहो, कुछ २ पूजाकी सामग्री दे आदरसहित उसको वह व्रतकराया ॥ ३८ ॥

व्रतं कृत्वा तु शर्मिष्ठा लब्ध्वा स्वामिनमीश्वरम् ।
सूत्वा पुत्रान्सुसन्तुष्टा समभूत्स्थिरयौवना ॥ ३९ ॥

उस व्रतको करके शर्मिष्ठा अपने प्यारे पतिको पायकर पुत्रवती और स्थिर यौवनवाली हुई ॥ ३९ ॥

सीता चाशोकवनिकामध्ये सरमया सह ।
व्रतं कृत्वा पतिं लेभे रामं राक्षसनाशनम् ॥ ४० ॥

सीता (१) और सरमा (२) ने अशोकवनमें इस व्रतको कियाथा उसही पुण्यके फलसे फिर जानकीजी राक्षसनाशी रामचंद्रजीके साथ मिलीं ॥ ४० ॥

बृहदश्वप्रसादेन कृत्वेमं द्रौपदी व्रतम् ।
पतियुक्ता दुःखमुक्ता बभूव स्थिरयौवना ॥ ४१ ॥

बृहदश्वके प्रसादसे द्रौपदी (३) इस व्रतको करके पति युक्तहो, दुःखसे छुटकारा पाय स्थिर यौवनवाली हुईथी ॥ ४१ ॥

---

(१) एक समय राजा सीरध्वजने सन्तानकी कामनासे यज्ञ कियाथा । उस यज्ञ भूमिको जोतनेके समय हलकी सीतासे (हलकी पद्धति, हलके चलनेपर मिट्टीमें जो दाग पडता है) एक कन्या उत्पन्न हुई थी । सीतासे उत्पत्ति होनेके कारण सीतानाम हुआथा । विष्णुपुराणमें कहाहैः—

तस्य पुत्रार्थं यजनभुवः कर्षतः सीरे सीता दुहिता समुत्पन्नासीत् ॥

(विष्णुपुराण, ४ अंश, ५ अध्या०)

विदेह, जनकादि सीरध्वजके दूसरे नाम हैं । इनकी कन्या सीता हुई उनकेही जानकी वैदेही आदि दूसरे नामथे, वह पृथ्वीसे उत्पन्न हुई थीं इस कारण उनको धरणिकुमारी व अयोनिजा कहा जाताथा । महादेवजीका धनुष तोड़कर रामचंद्रजीने सीताका पाणिग्रहण किया । जनकदुलारीने जिस प्रकार असाधारण गुणोंकी स्वामिनी होकर जन्म लियाथा और जैसी वह पतिपरायणा थीं, ऐसे दृष्टान्त पृथ्वीपर अत्यन्त विरल हैं । बहुतसे नये रोशनीवाले कहते हैं कि, यदि देवता और देवगुणोंका अस्तित्व यथार्थ है, तो निःसन्देह सीताजी वही देवता हैं । इसमें सन्देह नहीं कि, सीताजीने स्त्रियोंका आदर्शहोकर जन्म लियाथा ।

(२) सरमा—बिभीषणकी भार्याका नाम है । वह अत्यन्त सुशीला और पतिरता थी । सीताजीने इसी सरमाकी सेवकाईसे और धीरज बँधानेसे अशोक वनमें जीवन धारण कियाथा । सरमाका चरित्र अत्यन्त उदार शुद्ध और सरलथा ।

(३) द्रौपदी—द्रुपदराजाकी कन्याका नाम है द्रौपदीका विवाह स्वयंवरकी रीतिसे हुआ । देश२ से राजालोग आयेथे । एक निशाना बनाया गयाथा और नियत किया गया कि, जो इस लक्ष्य (निशाने) को भेदै उसकेही साथ द्रौपदीका विवाह होगा । सबके पीछे अर्जुनने उस लक्ष्यको भेद डाला ।राजाओंने डाहके वश होकर अर्जुनसे युद्ध करना आरम्भ किया । युद्धमें विजय पाय द्रौपदीको संग लेकर अर्जुन अपने आश्रमको चलागया । यह समय पाण्डवोंके अज्ञातवास करनेकाथा ।यह भिखारीका वेश धारण करके दिन बितातेथे । उसदिन थके थकाये आश्रममें जायकर अर्जुनने कहा—भैया ! आज बड़ा थकगयाहूं । कुंती जी घरके भीतरसे बोली बेटा ! जो कुछ इकट्ठा करके लाएहो पांचों भय्या बांटलो । अब बड़ी अनबन आनपड़ी ! एक स्त्रीको किस प्रकारसे पांच जन बांट सकें ? माताकी आज्ञा किस प्रकारसे लंघन की जाय ? अन्तमें कुन्तीकी बातही मानी गई । पांचों पाण्डवोंने राजा द्रुपदकी पुत्री द्रौपदीके साथ विवाह किया । इस प्रकारसे द्रौपदीका विवाह हुआ ।

(महाभारतमें यह कथा बिस्तारपूर्वक लिखी है)

तथा रमा सिते पक्षे वैशाखे द्वादशीदिने ।
जामदग्न्याद्व्रतं चक्रे पूर्णं वर्षचतुष्टयम् ॥ ४२ ॥

कल्किजीकी रमाने वैशाखमासके शुक्लपक्षमें द्वादशीतिथिके दिन परशुरामजीको पुरोहित बनाय रुक्मिणीव्रतका आरम्भ किया । चार वर्ष बीत जानेपर रमाका रुक्मिणीव्रत पर्ण होगया ॥ ४२ ॥

पट्टसूत्रं करे बद्ध्वा भोजयित्वा द्विजान्बहून् ।
भुक्त्वा हविष्यं क्षीराक्तं सुमृष्टं स्वामिना सह ॥ ४३ ॥

हाथमें रेशमका डोरा बाँधकर रमाने अनेक ब्राह्मणोंको भोजन कराया, फिर उत्तम बना हुआ क्षीरयुक्त हविष्यान्न (खीर) स्वामीके साथ भोजन करके ॥ ४३ ॥

बुभुजे पृथिवीं सर्वामपूर्वां स्वजनैर्वृता ।
सा पुत्रौ सुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ ॥ ४४ ॥

निज जनोंसे युक्त होकर अखण्ड पृथ्वीको भोगने लगी । अनन्तर पतिव्रता रमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए । एक पुत्रका नाम मेघमाल और दूसरे पुत्रका नाम बलाहक था ॥ ४४ ॥

देवानामुपकर्त्तारौ यज्ञदानतपोव्रतैः ।
महोत्साहौ महावीर्य्यौ सुभगौ कल्किसंम्मतौ ॥ ४५ ॥

यह दोनों सौभाग्यवान् महापुरुष दान, धर्म, योग, यज्ञ, तपादिका अनुष्ठान करके देवताओंका उपकार करते रहते थे । इन दोनों अत्यन्त उत्साही पुत्रोंपर कल्किजी अत्यन्त प्रसन्न थे ॥ ४५ ॥

व्रतवरमिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्ध्या भवति विदितत्त्वा पूजिता पूर्णकामा । हरिचरणसरोजद्वन्द्वभक्त्यैकताना व्रजति गतिमपूर्वां ब्रह्मविज्ञैरगम्याम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
रुक्मिणीव्रतं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

जो इस व्रतका अनुष्ठान करतेहैं वे लोग सब प्रकारसे सुख, सम्पत्ति और समृद्धिको पातेहैं । उनके सर्व प्रकारके अभीष्ट सिद्ध होजातेहैं, ब्रह्मज्ञानका उदय होताहै । वह हरिजीके चरणकमलमें एकान्तमनसे भक्तिमानहो उस श्रेष्ठगतिको पातेहैं, जो महर्षियोंको अगम्य, अनहुई और अपूर्वहै ॥ ४६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
रुक्मिणीव्रतं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

तृतीयांशः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

सूत उवाच–एतद्वः कथितं विप्रा व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अतःपरं कल्किकृतं कर्म्म यच्छृणुत द्विजाः ॥ १ ॥

उग्रश्रवा बोलेः—हे ब्राह्मणगण ! यह मैंने आप लोगोंसे त्रिलोकीमें विख्यात रुक्मिणीव्रत कहा । इसके उपरान्त कल्किजीने जो जो कर्म कियेथे वह कहताहूं श्रवण करो ॥ १ ॥

शम्भले वसतस्तस्य सहस्रपरिवत्सराः ।
व्यतीता भ्रातृपुत्रस्वज्ञातिसम्बन्धिभिः सह ॥ २ ॥

इस प्रकारसे कल्किजीने भ्राता, पुत्र, जाति, सम्बन्धी और निज जनोंके साथ एक हजार वर्षतक शम्भलग्राममें वास किया ॥ २ ॥

शम्भले शुशुभे श्रेणी सभापणकचत्वरैः ।
पताकाध्वजचित्राढ्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ३ ॥

ध्वजा और पताकाओंसे विभूषित शम्भलनगरी अपने चौराहोंकी शोभासे इन्द्रकी अमरावतीकी समान शोभायमान होने लगी ॥ ३ ॥

यत्राष्टषष्टितीर्थानां सम्भवः शम्भलेऽभवत् ।
मृत्योर्मोक्षः क्षितौ कल्केरकल्कस्य पदाश्रयात् ॥ ४ ॥

इस शम्भलग्राममें अड़सठ तीर्थोंका निवास हुआथा। अकलंक कल्किजीके पदाश्रयके प्रभावसे शम्भलनगरमें मृत्यु होनेपर मोक्षकी प्राप्ति होनेलगी ॥ ४ ॥

वनोपवनसन्ताननानाकुसुमसंकुलैः ।
शोभितं शम्भलं ग्रामं मन्ये मोक्षपदं भुवि ॥ ५ ॥

वहांके वन उपवनादि अनेक प्रकारके कमनीय फूलोंसे सज गयेथे। हमको जानपड़ता है कि, वह परम रमणीय शम्भल ग्राम पृथ्वीमें मोक्षपदरूप गिना गया था ॥ ५ ॥

तत्र कल्किः पुरस्त्रीणां नयनानन्दवर्द्धनः ।
पद्मया रमया कामं रराम जगतीपतिः ॥ ६ ॥

पुरस्त्रियोंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले जगत्के नाथ कल्किजी इस शम्भलग्राममें पद्मा और रमाके साथ अभिलाषाके अनुसार क्रीडा करने लगे ॥ ६ ॥

सुराधिपप्रदत्तेन कामगेन रथेन वै ।
नदीपर्व्वतकुञ्जेषु द्वीपेषु परया मुदा ॥ ७ ॥
रममाणो विशन्पद्मारमाद्याभी रमापतिः ।
दिवानिशं न बुबुधे स्त्रैणश्च कामलम्पटः ॥ ८ ॥

वह इन्द्रके दिये हुए कामगामी रथपर सवार हो परमप्रसन्न हृदयसे नदी, पर्वत, कुंज और द्वीपोंमें प्रवेशित होकर रमा, पद्मा आदि कामिनियोंके साथ विहार करने लगे। कामसे लम्पट हुए स्त्रैण उन रमापतिको दिनरातका विचार न रहा ॥ ७ ॥ ८ ॥

पद्मामुखामोदसरोजशीधुवासोपभोगी सुविलासवासः ।
प्रभूतनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गुहाविशेषे प्रविवेश कल्किः ॥ ९ ॥

इसके उपरान्त एक समय पद्माके मुखामोदरूप कमलमधुगन्धके भोग करनेवाले कल्किजी एक पर्वतकीगुहामें प्रवेश करते हुए, जो कि, बहुतसी इन्द्रनील मणियोंके द्वारा शोभायमान होरहीथी ॥ ९ ॥

पद्मा तु पद्माशतरूपरूपा रमा च पीयूषकलाविलासा ।
पतिं प्रविष्टं गिरिगह्वरे ते नारीसहस्राकुलिते त्वगाताम् ॥ १० ॥

कमलके समान, सुवर्णसम रंगवाली पद्मा व अमृतपात्र रूपा रमाने भी पतिको गिरिगुहामें प्रवेश करते देखकर सहस्र दासियोंके साथ उस स्थानमें प्रवेश किया ॥ १० ॥

पद्मा पतिं प्रेक्ष्य गुहानिविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात् ।
रमाबलायूथसमन्विता तत्पश्चाद्गता कल्किमहोग्रकामा ॥ ११ ॥

मनकी हरनेवाली पद्मा अपने पतिको गुहामें प्रवेश करते हुए देखकर विहार करनेकी अभिलाषासे पतिके पीछे २ उस गुफामें गई । कल्किजीके साथ अत्यन्त विहार करनेकी अभिलाषासे रमाभी स्त्रियोंके साथ उनके पीछे २ प्रवेश करने लगी ॥ ११ ॥

तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्वरान्ते कान्ताभिरात्मप्रतिमाभिरीशम् ।
कल्किञ्च दृष्ट्वा नवनीरदाभं ततः स्थितं प्रस्तरवन्मुमोह ॥ १२ ॥

इसके उपरान्त पद्मावतीने देखा कि, उस इन्द्रनीलमणिमय गुहाके बीच नवीन बादरके समान कान्तिमान् ईश्वर कल्किजी, अपनी समान रूपवान् स्त्रियोंके साथ विराजमान होरहे हैं । यह देखकर पद्मा मोहके मारे चेष्टा रहित और पत्थरसी हो गिरपड़ी ॥ १२ ॥

रमा सखीभिः प्रमदाभिरार्त्ता विलोकयन्ती दिशमाकुलाक्षी ।
पद्मापि पद्माशतशोभमाना विषण्णचित्ता न बभौ स्म चार्त्ता १३ ॥

स्त्रियोंके साथ व्याकुलनेत्रोंसे रमाभी कातरहो चारोंओर देखने लगी । शत २ पद्माके समान शोभायमान पद्माभी शोकितहृदय और कातर हो एक साथ प्रभाहीन बनगई ॥ १३ ॥

भूमौ लिखन्ती निजकज्जलेन कल्किं शुकं तं कुचकुंकुमेन ।
कस्तूरिकाभिस्तु वदग्रमग्रे निर्म्माय चालिङ्ग्य ननाम भावात्

पद्माके नेत्रोंमें जो काजलथा उस्से भूमि अंकित होने लगी, वह

कुचमें लगेहुए कुंकुमसे कल्किजीको, शुकको व कस्तूरीसे निकटकी भूमिको धूसरित करके तिसके ऊपर गिरी ॥ १४ ॥

रमा कलालापपरा स्तुवन्ती कामार्दिता तं हृदये निधाय ।
ध्यात्वा निजालङ्करणैःप्रपूज्य तस्थौ विषण्णा करुणावसन्ना १५॥

मधुर वचन बोलनेवाली कामदेवके भारसे दुःखी हुई रमा हृदयमें कल्किजीका ध्यान करके अपने अन्तःकरण रूपी फूलोंसे पूजा करके दुःखभारसे दबनेके कारण शोकित हो गिरपडी ॥ १५ ॥

क्षणात्समुत्थाय रुरोद रामा कलापिनः कण्ठनिभं स्वनाथम् ।
हृदोपगूढं न पुनः प्रलभ्य कामार्दितेत्याह हरे प्रसीद ॥ १६ ॥

फिर उसने क्षणभरके पीछे उठकर मोरके समान ऊंचे स्वरसे रोना आरंभ किया वह अपने हृदयमें स्वामी कल्किजीका आलिंगन न करने पाकर कामके वश हो कहने लगी, हे नारायण ! प्रसन्न होवो ॥ १६ ॥

पद्मापि निर्मुच्य निजाङ्गभूषाश्चकार धूलीपटले विलासम् ।
कण्ठञ्च कस्तूरिकयापि नीलं कामं निहन्तुं शिवतामुपेत्य ॥१७॥

पद्माभी अपने अंगके शृंगारको छोडकर धूरिमें लोटने लगी उसका शरीर धूरिसे मलीन और कण्ठ कस्तूरी करके नीलवर्ण होनेसे ऐसा जानपडने लगा मानो उसने कामदेवका नाश करनेके लिये शिवरूप धारण कियाहो ॥ १७ ॥

कलावतीनां कलयाकलय्य क्षीणेक्षणानां हरिरार्त्तबन्धुः ।
कामप्रपूराय ससार मध्ये कल्किः प्रियाणां सुरतोत्सवाय १८॥

कातरनेत्रवाली प्यारी विलासिनियोंके विहारवासनाको जानकर उनकी कामना पूर्ण करनेके निमित्त और सुरतिका उत्सव करनेको आरत जनोंके बन्धु नारायणजी उनके बीचमें आगये ॥ १८ ॥

ताः सादरेणात्मपतिं मनोज्ञाः करेणवो यूथपतिं यथेयुः ।
सानन्दभावा विषदानुवृत्ता वनेषु रामाः परिपूर्णकामाः ॥ १९॥

जिस प्रकार हथनियें यूथपति हाथीके समीप (उत्सुकताके साथ) जाती हैं, वैसेही स्त्रियें अत्यन्त प्रसन्नहो आनन्दित हृदयसे कल्किजीके निकट आईं, उनका शोक सन्ताप दूर होगया। उसही वनमें उनकी कामना पूर्ण हुईथी १९

वैभ्राजके चैत्ररथे सपुष्पे सुनन्दने मन्दरकन्दरान्ते ।
रेमे स रामाभिरुदारतेजा रथेन भास्वत्खगमेन कल्किः॥२०॥

उदार चरित्रवाले, परमतेजस्वी, कल्किजी, विमलप्रभावशाली, आकाशगामी, प्रकाशमान रथमें सवारहो पद्मा व रमा आदि स्त्रियोंको संगले फूलोंकी शोभासे शृंगारित, वैभ्राजकवन, चैत्ररथ और नन्दनकाननमें जायकर विहार करनेलगे ॥ २० ॥

पद्मामुखाब्जामृतपानमत्तो रमासमालिङ्गनवासरङ्गी ।
वरांगनानां कुचकुंकुमाक्तो रतिप्रसंगे विपरीतयुक्तः ।
मुखे विदष्टा रसनावशिष्टामोदः स्म कल्किर्न हि वेद देहम् २१॥

पद्माके वदनकमलका मधुपान करनेसे मत्त, रमाके आलिंगन करनेसे उत्पन्न हुए सौरभसे लुभाए श्रेष्ठ युवतियोंके कुचकुंकमसे लिपटेहुए कल्किजी विपरीत रतिके प्रसंगमें लिप्त हुए। स्त्रियें उनके मुखको काटने लगीं। वह प्यारियोंके मुखके अमृतको पान करके ऐसे विह्वलहुए कि, उनका शरीरभी उनके वशमें न रहा ॥ २१ ॥

रमासमानाः पुरुषोत्तमं तं वक्षोजमध्ये विनिधाय धीराः ।
परस्पराश्लेषणजातहासा रेमुर्मुकुन्दं विलसच्छरीराः ॥ २२ ॥

रमाके समानरूपवाली धीरा स्त्रियोंने पुरुषोत्तम मुकुन्दको अपने स्तनोंमें धारण करके क्रीडा करना आरम्भ किया। उनका पुलकित शरीरं परस्पर श्लेष होनेसे सबही हास्य करने लगीं ॥ २२ ॥

ततः सरोवरं त्वरा स्त्रियो ययुः क्लमज्वराः
प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरे विहारिणा ।

सरः प्रविश्य पद्मया विमोहरूपया तया ।
जलं ददुर्वराङ्गनाः करेणवो यथा गजम् ॥ २३ ॥

श्रमसे थकीहुई स्त्रियें फिर दूसरे वनमें विहार करनेवाले प्यारे कल्किजी-के साथ शीघ्रतासे सरोवरपर गईं । जिस प्रकार हथनियें यूथपतिके अंगपर जल छिडकती हैं, वैसेही यह श्रेष्ठ स्त्रियें, अनुपम रूपवती पद्माके साथ सरोव-रमें गोते लगाय नहायकर कल्किजीके शरीरपर जल वर्षाने लगीं ॥ २३ ॥

इति ह युवतिलीला लोकनाथः स कल्किः
प्रियशुवतिपरीतः पद्मया रामयाद्यः ।
निजरमणविनोदैः शिक्षयँल्लोकवर्गा
ञ्जयति विबुधभर्त्ता शम्भले वासुदेवः ॥ २४ ॥

तरुणियों (स्त्रियों) के साथ लीला करनेमें लोभी देवताओंके स्वामी आदिनाथ, लोकनाथ कल्किजीकी जयहो । उन्होंने शम्भलग्राममें अपनी प्यारी रमाके साथ व औरभी प्यारी स्त्रियोंके साथ मिल अपने किये विहारा-दि विनोदसे समस्त लोगोंको उपदेश दियाथा ॥ २४ ॥

ये शृण्वन्ति वदन्ति भावचतुरा ध्यायन्ति सन्तः सदा
कल्केः श्रीपुरुषोत्तमस्य चरितं कर्णामृतं सादराः ।
तेषां नो सुखयत्ययं मुररिपोर्दास्याभिलाषं विना
संसारः परिमोचनञ्च परमानन्दामृताम्भोनिधेः ॥ २५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्कि-
वर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो विचारवान् साधुलोग श्रुतिमार्गका अमृतस्वरूप भगवान् कल्किजीका यह चरित्रामृत आदरसहित श्रवण, कीर्त्तन अथवा ध्यान किया करते हैं, दास्यभावसे उन मुरकेमारनेवाले भगवान्की सेवाके सिवाय उनके हृदयमें और किसीकी प्रीतिका संचार वा सुखका उदय नहीं होता; उनको ऐसा ज्ञात होता

हैं कि, इस परमप्रीतिरूप अमृतमय संसारसे मुक्ति होनेकी अपेक्षा अधिक सुखकी सम्भावना नहीं है ॥ २५ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

तृतीयांशः।

ऊनविंशोऽध्यायः।

सूत उवाच—ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मणा सहिता रथैः।
स्वैःस्वैर्गणैः परिवृता कल्किं द्रष्टुमुपाययुः ॥ १ ॥

सूतजी बोलेः—इसके उपरान्त देवता और ब्रह्माजी सब मिलकर अपने २ सेवकोंके सहित रथोंपर सवारहो कल्किजीका दर्शन करनेके निमित्त आये ॥ १ ॥

महर्षयः सगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणाः।
समाजग्मुः प्रमुदिताः शम्भलं सुरपूजितम् ॥ २ ॥

महर्षि, गन्धर्व, किन्नर और अप्सरायें हृदयमें आनन्दितहो देवताओंसे पूजित शम्भल ग्राममें आये ॥ २ ॥

तत्र गत्वा सभामध्ये कल्किं कमललोचनम्।
तेजोनिधिं प्रपन्नानां जनानामभयप्रदम् ॥ ३ ॥

उन्होंने सभामें प्रवेशकरके देखा कि, तेजके समूहके ढेर, कमल के समान नेत्रोंवाले कल्किजी, शरणमें आये हुए जनोंको अभय देरहे हैं ॥ ३ ॥

नीलजीमूतसंकाशं दीर्घपीवरबाहुकम्।
किरीटेनार्कवर्णेन स्थिरविद्युन्निभेन तम् ॥ ४ ॥

उनकी कान्ति नीले बादरके समान है। बाँहें दीर्घ और पुष्ट हैं। उनका मस्तक स्थिर सौदामिनी (बिजली) की समान; सूर्यके समान तेज पुंजयुक्त किरीटसे शोभायमान होरहा है ॥ ४ ॥

शोभमानं द्युमणिना कुण्डलेनाभिशोभिना ।
सहर्षालापविकसद्वदनं स्मितशोभितम् ॥ ५ ॥

सूर्यके समान प्रकाशमान कुण्डलोंसे उनका वदनमंडल विराजमान होरहा है। विशेष करके हर्षकी वार्त्ता करनेसे उनका यह मुखकमल प्रफुल्ल होरहाहै और मुस्कानसे शोभायमान होरहा है ॥ ५ ॥

कृपाकटाक्षविक्षेपपरिक्षिप्तविपक्षकम् ।
तारहारोल्लसद्वक्षश्चन्द्रकान्तमणिश्रिया ॥ ६ ॥

उनकी कृपाकटाक्षके चलनेसे शत्रुलोग अनुगृहीत होरहे हैं । उनकी छातीमें पडाहुआ मनोहर हार बीचमें पिरोईहुई चन्द्रकान्तमणिकी कान्तिसे ॥ ६ ॥

कुमुद्वतीमोदवहं स्फुरच्छक्रायुधाम्बरम् ।
सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् ॥ ७ ॥

कुमुदनी प्रसन्न होरहीथीं । इन्द्रधनुषके समान उनके वस्त्र शोभाको विस्तार कररहे हैं उनका शरीर सदा आनन्दसमूहके रससे हर्षित हो रहा है ॥ ७ ॥

नानामणिगणोद्योतदीपितं रूपमद्भुतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा ये चान्ये समुपागताः ॥ ८ ॥

उनका अनुपरूप अनेक प्रकारके मणियोंके किरणोंसे प्रकाशमान होरहा है देवता, गन्धर्व और जो कोई आयेथे उन सबने कल्किजीको इस प्रकारसे देखा ॥ ८ ॥

भक्त्या परमया युक्ताः परमानन्दविग्रहम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः परमादरात् ॥ ९ ॥

वह सबही परमभक्तियुतहो आदरपूर्वक परमानन्दमय शरीरं कमलदलके समान नेत्रवाले कल्किजीका स्तोत्र करने लगे ॥ ९ ॥

देवा ऊचुः—जयाशेषसंक्लेशकक्षप्रकीर्णानलोद्दामसंकीर्णहीश

देवेश विश्वेश भूतेश भावः । तवानन्त चान्तः स्थितोऽ
ङ्गातरत्नप्रभाभातपादाजितानन्तशक्ते ॥ १० ॥

देवतालोग बोलेः—हे देवदेव विश्वेश्वर ! हे भूतनाथ ! तुम अनन्तहो । तुम्हारे अन्तरमें समस्त भाव विराजमान हैं; हे भगवन् ! तुम प्रचण्ड अग्निरूपहो; तुम्हारे कनभर स्पर्शसे इस संसारका क्लेशराशिरूप अगणित ईंधन भस्म होजाताहै; तुम्हारे चरणकमलमें कान्तिका जाल भासमान होरहाहै; तुम्हारे उन्हीं पाँवोंसे (सर्पराज) अनन्त (शेष).की प्रबल शक्ति दबगईहै हे देव ! तुम्हारी जयहो ॥ १० ॥

प्रकाशीकृताशेषलोकत्रयात्र वक्षःस्थले भास्वत्कौस्तुभ
श्याम । मेघौघराजच्छरीरद्विजाधीशपुञ्जानन त्राहि
विष्णो स दारा वयं त्वां प्रपन्नाः सशेषाः ॥ ११ ॥

हे जगदीश ! तुम्हारी श्यामवर्ण छातीमें प्रकाशमान कौस्तुभमणि विराजमानहै; मणिकी किरणमालासे त्रिलोकी उज्ज्वल होकर प्रकाशित होरहीहै; इस्से ऐसा जानपड़ताहै कि, मानो पूर्णचन्द्रमा मेघमालाके भीतर विराजमान होरहाहै । हेदेव ! विपत्तिमें पडकर स्त्री, पुत्र और परिजनोंके सहित आपकी शरणमें आयेहैं आप हमारी रक्षाकरें ॥ ११ ॥

यद्यस्त्यनुग्रहोऽस्माकं व्रज वैकुण्ठमीश्वर ।
त्यक्त्वा शासितभूखण्डं सत्यधर्माविरोधतः ॥ १२ ॥

हे ईश्वर ! यदि हमपर तुम कृपा किया करतेहो, तो इस भूमण्डलको जोकि सत्यधर्मके अविरोधसे शासित होरहाहै—त्यागकर वैकुण्ठमें यात्रा करो ॥ १२ ॥

कल्किस्तेषामिति वचः श्रुत्वा परमहर्षितः ।
पात्रमित्रैः परिवृतश्चकार गमने मतिम् ॥ १३ ॥

देवताओंका यह निवेदन सुनकर कल्किजी आनन्दित हुए और पात्र मित्रोंके साथ मिलकर वैकुण्ठ जानेकी अभिलाषा करते हुए ॥ १३ ॥

पुत्रानाहूय चतुरो महाबलपराक्रमान् ।
राज्ये निक्षिप्य सहसा धर्मिष्ठान्प्रकृतिप्रियान् ॥ १४ ॥

प्रजाके परमप्यारे, परम धार्मिक, महाबली पराक्रमी चारों पुत्रोंको कल्किजीने बुलाकर तिस कालही राज्यपदपर अभिषेकित करदिया ॥ १४ ॥

ततः प्रजाः समाहूय कथयित्वा निजाः कथाः ।
प्राह तान्निजनिर्याणं देवानामुपरोधतः ॥ १५ ॥

फिर उन्होंने समस्त प्रजाको बुलाकर अपना वृत्तान्त जताया और कहा कि, देवताओंके कहनेसे हमको वैकुण्ठकी यात्रा करनी पडैगी ॥ १५ ॥

तच्छ्रुत्वा ताः प्रजाः सर्वा रुरुदुर्विस्मयान्विताः ।
तं प्राहुः प्रणताः पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ॥ १६ ॥

यह वचन सुनतेही विस्मित हो सारी प्रजा रोने लगी । जिसप्रकार पुत्र अपने पितासे कहतेहैं, वैसेही वह (प्रजालोग) ईश्वरको प्रणाम करके कहने लगे ॥ १६ ॥

प्रजा ऊचुः—भो नाथ सर्वधर्मज्ञ नास्मांस्त्यक्तुमिहार्हसि ।
यत्र त्वं तत्र तु वयं यामः प्रणतवत्सल ॥ १७ ॥

प्रजा लोग बोलेः—हेनाथ ! आप सम्पूर्ण धर्म जानतेहैं, हम लोगोंको छोड जाना आपको उचित नहींहै। आप प्रणतवत्सलहैं, जहांपर आप जायँगे वहींपर हम जायँगे ॥ १७ ॥

प्रिया गृहा धनान्यत्र पुत्राः प्राणास्तवानुगाः ।
परत्रेह विशोकाय ज्ञात्वां त्वां यज्ञपूरुषम् ॥ १८ ॥

इस संसारमें धन, पुत्र और गृह सबके लिये प्याराहै तौ, परन्तु आप यज्ञपुरुषहैं,आपसे समस्त शोक दुःखकी शान्तिहोतीहै, यह जानकर हमारे प्राण आपके अनुगामी हुआचाहते अर्थात साथ चलना चाहतेहैं ॥ १८ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा सान्त्वयित्वा सदुक्तिभिः ।
प्रययौ क्लिन्नहृदयः पत्नीभ्यां सहितो वनम् ॥ १९ ॥

प्रजाके ऐसे वचन सुनकर कल्किजीने सदुपदेश देकर उन्हें समझाया और शोकितमनसे दोनों भार्याओंके साथ वनको चले गये ॥ १९ ॥

हिमालयं मुनिगणैराकीर्णं जाह्नवीजलैः ।
परिपूर्णं देवगणैः सेवितं मनसः प्रियम् ॥ २० ॥

फिर कल्किजी मुनियों करके सेवित, गंगाजलसे परिपूर्ण देवताओं करके सेवित अन्तःकरणमें हर्ष करनेवाले हिमालय पर्वतपर ॥ २० ॥

गत्वा विष्णुः सुरगणैर्वृतश्चारुचतुर्भुजः ।
उषित्वा जाह्नवीतीरे सस्मारात्मानमात्मना ॥ २१ ॥

जाय देवताओंके साथ बैठ चतुर्भुज विष्णुरूप धारणकर अपनेको स्मरण करने लगे ॥ २१ ॥

पूर्णज्योतिर्मयः साक्षी परमात्मा पुरातनः
बभौ सूर्यसहस्राणां तेजोराशिसमद्युतिः ॥ २२ ॥

तिसकाल सहस्रसूर्यके समान उनका तेज प्रकाशित होने लगा । वह पूर्ण ज्योतिर्मय साक्षिस्वरूप सनातन परमात्मा दीप्तिमान् होने लगा ॥ २२ ॥

शंखचक्रगदापद्मशार्ङ्गाद्यैः समभिष्टुतः ।
नानालङ्करणानाञ्च समलङ्करणाकृतिः ॥ २३ ॥

उनका आकार अनेक प्रकारके अलंकारोंका अलंकाररूप होगया । वह शंख चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्गादि करके उपासना किये जाने लगे ॥२३॥

ववृषुस्तं सुराः पुष्पैः कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
सुगन्धिकुसुमासारैर्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ २४ ॥

उनके हृदयमें कौस्तुभमणि, शोभायमान होने लगी देवता लोग उनके ऊपर सुगंधित फूल वर्षाने लगे, चारों ओर देवताओंके नगाडे बजने लगे॥ २४ ॥

तुष्टुवुर्मुहुः सर्वे लोकाः सस्थाणुजंगमाः ।
दृष्ट्वा रूपमरूपस्य निर्याणे वैष्णवं पदम् ॥ २५ ॥

जब कल्किजीने विष्णुपदमें प्रवेश किया तब उन अरूप विष्णुजीका

रूप दर्शन करके स्थावर जंगम सब कोई मोहित हुये और स्तोत्र करनेलगे ॥ २५ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पत्युः कल्केर्महात्मनः ।
रमा पद्मा च दहनं प्रविश्य तमवापतुः ॥ २६ ॥

अपने स्वामी महात्मा कल्किजीका ऐसा बडे अचरजका रूप देखकर रमा और पद्माने अग्निमें प्रवेश करके उनको पाया ॥ २६ ॥

धर्मः कृतयुगं कल्केराज्ञया पृथिवीतले ।
निःसपत्नौ सुसुखिनौ भूलोकं चेरतुश्चिरम् ॥ २७ ॥

कल्किजीकी आज्ञाके अनुसार धर्म और सत्ययुग सपत्न रहितहो परम सुखसे चिरकालतक पृथ्वीमें विचरण करने लगे ॥ २७ ॥

देवापिश्च मरुः कामं कल्केरादेशकारिणौ ।
प्रजाः संपालयन्तौ तु भुवं जुगुपतुः प्रभू ॥ २८ ॥

प्रभु देवापि और मरुनामक दो राजा कल्किजीकी आज्ञाके अनुसार प्रजा-पालन करके भूमण्डलकी रक्षा करने लगे ॥ २८ ॥

विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् ॥ २९ ॥

विशाखयूप राजा कल्किजीका इस प्रकारसे जाना सुनकर अपने पुत्रको राज्यदे वनको चलागया ॥ २९ ॥

अन्ये नृपतयो ये च कल्केर्विरहकर्षिताः ।
तं ध्यायन्तो जपन्तश्च विरक्ताः स्युर्नृपासने ॥ ३० ॥

औरभी जो राजालोग कल्किजीके विरहमें कातर हुएथे, वह राजसिंहास-नसे विरक्त हो केवल कल्किजीका नाम जपते हुए उनकीही मूर्तिका ध्यान करने लगे ॥ ३० ॥

इति कल्केरनन्तस्य कथां भुवनपावनीम् ।
कथयित्वा शुकः प्रायान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥

इसप्रकार अनन्त कल्किजीके जगत्पवित्रकारी वृत्तान्तको वर्णन करके शुकदेवजी नरनारायणाश्रममें चलेगये ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेयादयो ये च मुनयः प्रशमायनाः ।
श्रुत्वानुभावं कल्केस्ते तं ध्यायन्तो जगुर्यशः ॥ ३२ ॥

शान्तिगुणका अवलम्बन करनेवाले मार्कण्डेयादि ऋषिगण कल्किजीका माहात्म्य सुनकर उनका ध्यान करके उनका यश गाने लगे ॥ ३२ ॥

यस्यानुशासनाद्भूमौ नाधर्मिष्ठाः प्रजाजनाः ।
नाल्पायुषो दरिद्राश्च न पाखण्डा न हैतुकाः ॥ ३३ ॥

जिन कल्किजीके शासनकालमें पृथ्वीके बीच कोई प्रजाही अधार्मिक, अल्पायु, दरिद्र, पाखण्ड और कपटाचारी न रही ॥ ३३ ॥

नाधयो व्याधयः क्लेशा देवभूतात्मसम्भवाः ।
निर्मत्सराः सदानन्दा बभूवुर्जीवजातयः ॥ ३४ ॥

सबही जीव आधिव्याधिशून्य, क्लेशरहित, मत्सरताहीन हो देवताओंके समान सदानंदमय हुएथे ॥ ३४ ॥

इत्येतत्कथितं कल्केरवतारं महोदयम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ॥ ३५ ॥

यह उन्हीं महोदय कल्किजीके अवतारकी कथा कहीं। इसके श्रवण करनेसे धन यश और आयुकी वृद्धि होकर परम मंगल होताहै और अन्तमें स्वर्गकी प्राप्ति होतीहै ॥ ३५ ॥

शोकसन्तापपापघ्नं कलिव्याकुलनाशनम् ।
सुखदं मोक्षदं लोके वांछितार्थफलप्रदम् ॥ ३६ ॥

विशेष करके उस्के श्रवण करनेसे पाप, शोक व सन्ताप दूर होजाताहै। कलिकालसे उत्पन्न हुए उद्वेगका नाश होजाताहै। सुख मिलताहै, मोक्षप्राप्ति होतीहै और अभीष्टफलभी मिलजातेहैं ॥ ३६ ॥

तावच्छास्त्रप्रदीपानां प्रकाशो भुवि रोचते ।

भाति भानुः पुराणाख्यो यावल्लोकेऽति कामधुक् ॥ ३७ ॥

जबतक लोकमें इच्छित फल देनेवाले पुराणरूप सूर्यका उदय नहीं होता, तबतकही इस पृथ्वीपर और और शास्त्ररूप दीपके उजालेका प्रकाशहुआ करताहै ॥ ३७ ॥

श्रुत्वैतद्भृगुवंशजो मुनिगणैः साकं सहषा वशी
ज्ञात्वा सूतममेयबोधविदितं श्रीलोमहर्षात्मजम् ।
श्रीकल्केरवतारवाक्यममलं भक्तिप्रदं श्रीहरेः
शुश्रूषुः पुनराह साधुवचसा गंगास्तवं सत्कृतः ॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते तृतीयांशे कल्किनिर्याणो नामोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

महर्षिशौनकने भृगुवंशमें जन्म लियाथा और अतिशय जितेन्द्रिय थे वह और इकट्ठेहुए महर्षिलोग इस परम प्रीतिकारी भक्ति रसके आश्रय भगवान् श्रीहरिके अवतारका वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते भये । और भलीभांति जानते हुए कि, लोमहर्षणके पुत्र सूत इसप्रकार ज्ञानगौरवमें प्रसिद्धहैं । महर्षिके हृदयमें पुनर्वार नारायणजीकी कथाके श्रवण करनेका अभिलाष उत्पन्न हुआ; उन्होंने सूतजीसे कल्किजीके पढेहुए गंगास्तोत्रको पूछा ॥ ३८ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किनिर्याणो नाम ऊनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

तृतीयांशः ।

विंशोऽध्यायः ।

शौनक उवाच–हेसूत ! सर्वधर्मज्ञ यत्त्वया कथितं पुरा ।
गंगां स्तुत्वा समायाता मुनयः कल्किसन्निधिम् ॥ १ ॥

शौनक बोलेः–हेसूत ! तुम सब धर्मोंके जाननेवालेहो, तुमने पहले कहाहै कि, मुनिजन गंगाजीकी स्तुति करके कल्किजीके निकट गमन करतेहुए ॥ १ ॥

स्तवं तं वद गंगायाः सर्वपापप्रणाशनम् ।
मोक्षदं शुभदं भक्त्या शृण्वतां पठतामिह ॥ २ ॥

उस गंगास्तोत्रको तुम कहो । उसको भक्तिपूर्वक श्रवण करनेसे या पाठ करनेसे कल्याणकी प्राप्ति होतीहै, मोक्ष मिलताहै और समस्तपापोंके ढेर क्षयको प्राप्त होजातेहैं ॥ २ ॥

सूत उवाच—शृणुध्वमृषयः सर्वे गंगास्तवमनुत्तमम् ।
शोकमोहहरं पुंसामृषिभिः परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥

उग्रश्रवाबोले:—हे मुनिगण ! शोकमोहके नाश करनेवाले ऋषियोंके कहे हुए परमश्रेष्ठ गंगास्तोत्रको कहताहूं श्रवणकरो ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः—इयं सुरतरंगिणी भवनवारिधेस्तारिणी
स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः ।
सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालनी
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ॥ ४ ॥

ऋषिलोग बोले:—यह देवनदी संसाररूप सागरसे (जीवजातिका) उद्धार करतीहै, यह देवनदी भगवान् कमलापति नारायणजीके चरणकमलसे उत्पन्न होकर पृथ्वीपर प्रवाहित हुईहै, इनके प्रसादसे भवभय दूर होकर पापकी कीचड धुल जातीहै । वह कल्याणी प्रसन्नमूर्ति भगवती भागीरथीजी सुमेरुके शिखरपरभी वर्तमानहै, उस जलके (स्पर्श) से देवताओंके हृदयमेंभी प्रीति रसका उदय होताहै । (संसारके) समस्त जीव गंगाजीकी स्तुति करतेहैं ॥ ४ ॥

भगीरथमथानुगा सुरकरींद्रदर्पापहा
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिरःपताका सिता ।
सुरासुरनरोरगैरजभवाच्युतैः संस्तुता
विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ॥ ५ ॥

यह देवीजी भगीरथके पीछे पृथ्वीधाममें आईथीं । इन देवीजीने

एरावतका दर्प चूर्ण किया था । गंगाजी महादेवजीके मुकुटकी प्रभारूपिणीहै, हिमालयके शिखरकी मानो श्वेत पताकाहै । ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी, देव, दानव, मनुष्य, सर्पादि इन महादेवीजीकी स्तुतिको गाया करतेहैं । गंगाजी मुक्तिपदको देतीहै (संसारकी) पापराशिको दूर करतीहै ॥ ५ ॥

पितामहकमण्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता
श्रुतिस्मृतिगणस्तुताद्विजकुलालवालावृता ।
सुमेरुशिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता ।
सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ॥ ६ ॥

ब्रह्माजीके कमण्डलुसे इस गंगारूपी लताकी उत्पत्ति हुईथी । उस लताका बीज मुक्तिहै और ब्राह्मणगण इस लताके आलवालरूपहैं । सुधर्मरूप फलवाली इस लतामें सुखरूप पत्रावली शोभायमान होरहीहै । यह लता सुमेरुपर्वतके शिखरको भेद करके उदित हुईहै और त्रिलोकीमें व्याप्त हो गई है। श्रुति व स्मृति आदि धर्मपुस्तकमें इनकी स्तुति गाई गईहै ॥ ६ ॥

चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा
मुनींद्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसंदर्शन-
प्रणामगुणकीर्त्तनादिषु जगत्सु संराजते ॥ ७ ॥

इनके निर्मल जलका दर्शन करनेसे, इनको प्रणाम करनेसे, इनके गुणकीर्तन करनेसे जगत्के सब अमंगलोंका क्षय होताहै । इन्हींसे सगरवंशवालोंकी मुक्ति हुईथी । महर्षि जह्नुकी यह पुत्रीहैं, देवलोकमें यह मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्धहैं ॥ ७ ॥

महाभिधसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तनी
सफेनजलहासिनीसितमरालसंचारिणी ।
चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ॥ ८ ॥

जो शान्तनु राजाकी रानी हुईथीं, हिमालयके शिखर जिनके स्तन रूपहैं, फेनसमूहसे शोभायमान जल जिसका हास्यस्वरूपहै, श्वेतवर्णके हंसगण जिनकी गतिके रूपहैं, समस्त तरंगें जिनके मानो हाथहैं, प्रफुल्ल (खिले हुए) कमलोंकी पांति मानो जिनकी मालारूपहै । वह रस करके हर्षित हुई चालसे समुद्रकी कामना करके चली जारहीहैं ॥ ८ ॥

क्वचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणा
क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनन्तसंपूजिता ।
क्वचिद्रविकरोज्ज्वला क्वचिदुदग्रपाताकुला
क्वचिज्जनविगाहिता जयति भीष्ममाता सती ॥ ९ ॥

किसी स्थानमें मुनिलोग स्तुति करतेहैं, किसी स्थानमें अनंत देवता पूजा करतेहैं, किसी स्थानमें कल २ शब्द होताहै, किसी स्थानमें घोर उग्र नाके आदि जलजीव विचरण कररहेहैं, कोई स्थानमें सूर्य भगवान्की किरणों करके प्रकाशमान होरहीहैं, किसी स्थानमें भयंकर नाद करता हुआ जल गिररहाहै, किसी स्थानमें जनगण स्नान करतेहैं, ऐसी भीष्मजीकी माता सती भागीरथीजीकी जयहो ॥ ९ ॥

स एव कुशलो जनः प्रणमतीह भागीरथीं
स एव तपसां निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं
स एव विजयी प्रभुः सुरतरंगिणीं सेवते ॥ १० ॥

जो गंगादेवीके (चरणोंमें) प्रणाम करताहै, वही अच्छा चतुरहै । आदरके साथ जो गंगाजीका नाम ज़पताहै यथार्थमें वही तपस्वीहै जो मनुष्य गंगाजीके नामका स्मरण करताहै, वही सब पुरुषोंमें श्रेष्ठहै जो पुरुष इस देवनदीकी सेवा करसकताहै, वही निःसन्देह विजयी और सबका स्वामीहै १०

तवामलजलाचितं खगशृगालमीनक्षतं
चलल्लहरिलोलितं रुचिरतीरजम्बालितम् ।

कदानिजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः संस्तुतोऽ-
प्यहं त्रिपथगामिनि ! प्रियमतीव पश्याम्यहो ॥ ११ ॥

हे त्रिपथगामिनि ! हे भगवति ! कब तुम्हारे निर्मलजलमें हमारा (मृत) देह भासमान होगा ? पक्षी, शृगालादि (मांसलोलपजीव) इस मृतक शरीरको छिन्न भिन्न करेंगे, चंचल तरंगमालामें डोलता हुआ और किनारेके सुन्दर शिवारसे यह शरीर कब सजेगा ! कहो ? तब मैं (तुम्हारे जल स्पर्श करनेके बलसे) सुरलोकको चला जाऊंगा । देवता, मनुष्य और सर्पगण मेरी स्तुति पढेंगे, मैं कब वहांसे (स्वर्गसे) अपनी मृतक देहकी ऐसी दशा देखूंगा ? ॥ ११ ॥

त्वत्तीरे वसतिं तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं
त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंलापनं पावनम् ।
गंगे मे तव सेवनैकनिपुणोऽप्यानन्दितश्चादृतः
स्तुत्वा त्वद्गतपातको भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम्॥ १२ ॥

हे भागीरथि ! कब तुम्हारे किनारेपर वास करके तुम्हारे पवित्र जलमें स्नान करके उसको निहारूंगा, तुम्हारा नामस्मरण करूंगा, तुम्हारे पृथ्वीमें आनेका शुद्ध उपाख्यान कीर्त्तन करूंगा, हे देवि ! केवल तुम्हारी सेवा करने-सेही मेरे हृदयमें (अनदेखे) प्रीति रसका उदय होगा, लोग मेरा आदर करेंगे मेरे किये पापोंका ढेर निःसन्देह दूर होजायगा, तब मैं शान्तचित्तसे पृथ्वीपर विचरण करूंगा ॥ १२ ॥

इत्येतदृषिभिः प्रोक्तं गंगास्तवमनुत्तमम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पठनाच्छ्रवणादपि ॥ १३ ॥

इस परम मनोहर गंगास्तोत्रको मुनिलोगोंने पाठ कियाथा । इसके पढने अथवा श्रवण करनेसे स्वर्ग व यश मिलता है और परमायु बढतीहै ॥ १३ ॥

सर्वपापहरं पुसां बलमायुर्विवर्द्धनम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने गंगासान्निध्यता भवेत् ॥ १४ ॥

प्रातःकालके समय, मध्याह्न कालके समय वा सन्ध्याके समय इस स्तोत्रके (पढने या श्रवण करनेसे) सदा गंगाजीसे निकटता होतीहै, सब पाप क्षय होजाते हैं और बल बढ़ता है व आयुभी बढ़ती है ॥ १४ ॥

इत्येतद्भार्गवाख्यानं शुकदेवान्मया श्रुतम् ।
पठितं श्रावितं चात्र पुण्यं धन्यं यशस्करम् ॥ १५ ॥

मैंने शुकदेवजीसे इस भार्गवाख्यानको सुनाथा, इसके पढने या श्रवण करनेसे पुण्य होता है, धन मिलताहै यश बढता है ॥ १५ ॥

अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम् ।
पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम् ॥ १६ ॥

इति० श्रीकल्किपु० भा० भवि० तृ० गंगास्तवो नाम
विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

जो लोग भक्तिके सहित भगवान् विष्णुजीके परम विस्मयकारी कल्किरूप धारण करनेके उपाख्यानको श्रवण करते अथवा पढते हैं उनके सर्व प्रकारके अमंगल दूर होजाते हैं ॥ १६ ॥

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
गंगास्तवो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

तृतीयांशः ।

एकविंशोऽध्यायः ।

अत्रापि शुकसम्वादो मार्कण्डेयेन धीमता ।
अधर्मवंशकथनं कलेर्विवरणं ततः ॥ १ ॥

उग्रश्रवाजी बोलेः—पहले तो इस कल्किपुराणमें बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके साथ (१) शुकका संवाद, फिर अधर्मके वंशका कीर्त्तनकथन फिर कल्किजीके वृत्तान्तका वर्णन लिखागया है ॥ १ ॥

---

(१) श्रीशुकदेवजीने महर्षिकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीके औरससे जन्म लियाथा । श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि, यह माताके गर्भसे उत्पन्न होतेही तप करनेके लिये वनम चले गयेथे । शुकदेवजी परम ज्ञानी

देवानां ब्रह्मसदनप्रयाणं गोभुवा सह ।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयशोगृहे ॥ २ ॥

गोरूपधारी पृथ्वीके साथ देवताओंका ब्रह्मलोकमें जाना फिर ब्रह्माजीके वाक्यानुसार विष्णुयशाके गृहमें विष्णुजीके जन्मकी कथा ॥ २ ॥

सुमत्यां स्वांशकैर्भ्रातृचतुर्भिः शम्भले पुरे ।
पितुः पुत्रेण संवादस्तथोपनयनं हरेः ॥ ३ ॥

शम्भलग्राममें सुमतिके गर्भसे विष्णुजीके अंशद्वारा चार भ्राताओंकी उत्पत्ति, फिर पितापुत्रका संवाद, कल्किजीका यज्ञोपवीत ॥ ३ ॥

पुत्रेण सह संवासो वेदाध्ययनमुत्तमम् ।
शस्त्रास्त्राणां परिज्ञानं शिवसंदर्शनं ततः ॥ ४ ॥

पितापुत्रका साथ रहना, कल्किजीका वेद पढना, तदुपरान्त कल्किजीका अस्त्र शस्त्र विद्याका सीखना शिवजीका दर्शन ॥ ४ ॥

कल्केः स्तवं शिवपुरो वरलाभः शुकापनम् ।
शम्भलागमनं चक्रे ज्ञातिभ्यो वरकीर्त्तनम् ॥ ५ ॥

कल्किजीका कियाहुआ शिवस्तोत्र, महादेवजीसे कल्किजीका वर पाना, शुककी प्राप्ति, फिर कल्किजीका शम्भलग्राममें लौटआना, जातिवालोंको महादेवजीसे वर पानेका वृत्तान्त सुनाना ॥ ५ ॥

विशाखयूपभूपेन निजसर्वात्मवर्णनम् ।
महाभाग्याद्ब्राह्मणानां शुकस्यागमनं ततः ॥ ६ ॥

और योगीथे इन्होंनेही राजा परीक्षित्को श्रीमद्भागवत सुनाईथी । कूर्मपुराणमें कहाहैः–
" द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शङ्करः । अंशेनैवावतीर्य्योर्व्यां संप्राप परमं पदम् ।
शुकस्याप्यभवन्पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्विनः । भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुःकृष्णो गौरश्च पञ्चमः ॥
कन्याकीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता । "(कूर्मपुराण)

श्रीशुकदेवजीके विषयमें अनेक मुनियोंके अनेक मत देखे जाते हैं।एक भागवतमेंही मतभेद दिखाई देताहै। इसके अतिरिक्त महाभारतके हरिवंशपर्वमें और अग्निपुराणके प्रजापति सर्गनामक अध्यायमें. शुकदेवजीका वृत्तान्त लिखाहै, विस्तारभयसे उसको नहीं लिखा ॥

विशाखयूपराजाके कहनेसे अपने स्वरूप और ब्राह्मणोंके माहात्म्यका वर्णन करना, तदुपरान्त शुकका आना ॥ ६ ॥

कल्किना शुकसंवादः सिंहलाख्यानमुत्तमम् ।
शिवदत्तवरा पद्मा तस्या भूपस्वयंवरे ॥ ७ ॥

कल्किजीके साथ शुकका कथोपकथन, शुककृत सिंहलका वृत्तान्त वर्णन, महादेवजीके दिये हुए वरके अनुसार पद्माके स्वयंवरस्थलमें ॥ ७ ॥

दर्शनाद्भूपसंघानां स्त्रीभावपरिकीर्त्तनम् ।
तस्या विषादः कल्केस्तु विवाहार्थं समुद्यमः ॥ ८ ॥

पद्माका दर्शन करतेही राजाओंका स्त्री भावको प्राप्त होजाना, पद्माके विषादका वर्णन, विवाहके लिये कल्किजीका उद्योग करना ॥ ८ ॥

शुकप्रस्थापनं दौत्ये तया तस्यापि दर्शनम् ।
शुकपद्मापरिचयः श्रीविष्णोः पूजनादिकम् ॥ ९ ॥

फिर शुकका दूतकार्यमें भेजाजाना, पद्माका शुकके दर्शन पाना, शुक और पद्माका परस्पर परिचय, फिर श्रीविष्णुजीकी पूजा आदिका कहना ॥ ९ ॥

पादादिदेहध्यानञ्च केशान्तं परिवर्णितम् ।
शुकभूषणदानञ्च पुनः शुकसमागमः ॥ १० ॥

चरणसे लेकर केशतक विष्णुजीके ध्यानका वर्णन करना, फिर पद्माका शुकको भूषण देना, अनन्तर कल्किजीके साथ फिर शुकका समागम होना ॥ १० ॥

कल्केः पद्माविवाहार्थं गमनं दर्शनं तयोः ।
जलक्रीडाप्रसङ्गेन विवाहस्तदनन्तरम् ॥ ११ ॥

पद्माके साथ विवाह करनेके लिये कल्किजीकी यात्रा, जलक्रीड़ाके प्रसंगसे कल्किजीके साथ पद्माकी जान पहिचान, फिर विवाहका होना ॥ ११ ॥

पुंस्त्वप्राप्तिश्च भूपानां कल्केर्दर्शनमात्रतः ।

अनन्तागमनं राज्ञा संवादस्तेन संसदि ॥ १२ ॥

कल्किजीका दर्शन पातेही राजालोगोंका पुरुषभावको प्राप्त होजाना, फिर अनन्तमुनिका आना, सभाके स्थानमें राजाओंके साथ अनन्तका संवाद ॥ १२ ॥

षण्ढत्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तवः ।
मृते पितरि तद्विष्णोः क्षेत्रे मायाप्रदर्शनम् ॥ १३ ॥

अनन्तमुनिका षण्डरूपसे जन्मकथन, शिवस्तोत्र, तदुपरान्त अनन्तके पिताकी मृत्यु होनेके पीछे विष्णुक्षेत्रमें मायाका दर्शन ॥ १३ ॥

अत्राख्यानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यवैभवम् ।
राज्ञां प्रयाणं कल्केश्च पद्मया सह शम्भले ॥ १४ ॥

अनन्तका आख्यान, अनन्तका ज्ञान, वैराग्य और वैभव, राजाओंका जाना फिर पद्माके साथ कल्किजीका शम्भलको जाना ॥ १४ ॥

विश्वकर्मविधानञ्च वसतिः पद्मया सह ।
ज्ञातिभ्रातृसुहृत्पुत्रैः सेनाभिर्बुद्धनिग्रहः ॥ १५ ॥

फिर विश्वकर्माके द्वारा शम्भलपुरीका बनाया जाना फिर पद्माके साथ, जातिवालोंके साथ, भ्राताओंके साथ इष्टमित्रोंके साथ, तिनके पुत्रोंके साथ और सेनाके साथ कल्किजीका विश्वकर्माकी बनाई पुरीमें वास करना. फिर बौद्धोंका दमन ॥ १५ ॥

कथितश्चात्र तेषाञ्च स्त्रीणां संयोधनाश्रयः ।
ततोऽत्र वालखिल्यानां मुनीनां स्वनिवेदनम् ॥ १६ ॥

बौद्धोंकी स्त्रियोंका लडनेके लिये आना फिर वालखिल्यनामक मुनियोंका आना और अपना वृत्तान्त कहना ॥ १६ ॥

सपुत्रायाः कुथोदर्या वधश्चात्र प्रकीर्त्तितः ।
हरिद्वारगतस्यापि कल्केर्मुनिसमागमः ॥ १७ ॥

पुत्रके सहित कुथोदरी नामवाली राक्षसीका माराजाना, हरिद्वारमें गये हुए कल्किजीके साथ मुनियोंका समागम ॥ १७ ॥

सूर्यवंशस्य कथनं सोमस्य च विधानतः ।
श्रीरामचरितं चारु सूर्यवंशानुवर्णने ॥ १८ ॥

फिर सूर्यवंशका वर्णन, चन्द्रवंशका वर्णन, सूर्यवंशके प्रसंगमें श्रीरामचंद्रजीके चरित्रका वर्णन ॥ १८ ॥

देवापेश्च मरोः संगो युद्धायात्र प्रकीर्तितः ।
महाघोरवने कोकविकोकविनिपातनम् ॥ १९ ॥
भल्लाटगमनं तत्र शय्याकर्णादिभिः सह ।
युद्धं शशिध्वजेनात्र सुशान्ताभक्तिकीर्त्तनम् ॥ २० ॥

संग्राम करनेके लिये मरु और देवापिका आना, अनन्तर महाघोर कोकविकोकका वध, कल्किजीका भल्लाटनगरमें जाना, शय्याकर्णादिके साथ संग्राम, राजा शशिध्वजके साथ कल्किजीका युद्ध, सुशान्ताकी भक्तिका कीर्त्तन ॥ १९ ॥ २० ॥

युद्धे कल्केरानयनं धर्मस्य च कृतस्य च ।
सुशान्तायाः स्तवस्तत्र रमोद्वाहस्तु कल्किना ॥ २१ ॥

अनन्तर संग्रामभूमिसे कल्किजीका और धर्म व सत्ययुगका आना, सुशांताका कियाहुआ कल्किस्तोत्र, उसी स्थानमें कल्किजीके साथ रमाका विवाह होना ॥ २१ ॥

सभायां पूर्वकथनं निजगृध्रत्वकारणम् ।
मोक्षः शशिध्वजस्यात्र भक्तिप्रार्थयितुर्विभोः ॥ २२ ॥

सभामें राजा शशिध्वजका पूर्ववृत्तान्तकथन, अपने गिद्धपनका कारण विभु कल्किजीसे भक्तिकी प्रार्थना करनेवाले शशिध्वजका मोक्षपाना ॥ २२ ॥

विषकन्यामोचनञ्च नृपाणामभिषेचनम् ।
मायास्तवः शम्भलेषु नानायज्ञादिसाधनम् ॥ २३ ॥

तदुपरान्त विषकन्याका उद्धार, राजाओंका अभिषेक फिर मायास्तव, तदनन्तर शम्भलग्राममें बहुतसे यज्ञोंका अनुष्ठान ॥ २३ ॥

नारदाद्विष्णुयशसो मोक्षश्चात्र प्रकीर्त्तितः ।
कृतधर्मप्रवृत्तिश्च रुक्मिणी व्रतकीर्त्तनम् ॥ २४ ॥

फिर नारदजीसे विष्णुयशाकी मोक्ष, सत्ययुगके धर्मका स्थापित होना रुक्मिणीव्रतका वर्णन ॥ २४ ॥

ततो विहारः कल्केश्च पुत्रपौत्रादिसम्भवः ।
कथितो देवगन्धर्वगणागमनमत्र हि ॥ २५ ॥

अनन्तर कल्किजीका विहार, कल्किजीके पुत्र पौत्रादिकोंकी उत्पत्ति फिर शम्भलग्राममें देवता व गन्धर्वोंका आना ॥ २५ ॥

ततो वैकुण्ठगमनं विष्णोः कल्केरिहोदितम् ।
शुकप्रस्थानसुचितं कथयित्वा कथाः शुभाः ॥ २६ ॥

तदुपरान्त विष्णु कल्किजीका वैकुण्ठमें जाना कहागया है। फिर इस मधुर कथाको कहकर शुकदेवजीका प्रस्थान ॥ २६ ॥

गंगास्तोत्रमिह प्रोक्तं पुराणे मुनिसंमतम् ।
जगतामानन्दकरं पुराणं पंचलक्षणम् ॥ २७ ॥

और पश्चात् इस पुराणमें मुनियोंका कहाहुआ गंगास्तोत्र कहा है। यह कल्किपुराण पंचलक्षण (१) युक्त है, यह जगतको आनन्दसन्दोह का देनेवाला है ॥ २७ ॥

सकल्कसिद्धिदं लोकैः षट् सहस्रं शताधिकम् ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वानां सारं श्रुतिमनोहरम् ॥ २८ ॥

जो लोग कलिकलुषसे पूर्ण हैं, इसके श्रवण करनेसे उनकोभी सिद्धि प्राप्त होजातीहै। इस पुराणमें छः हजार एकसौ श्लोकहैं; यह सर्व शास्त्रार्थ के तत्त्वका सारहै इसके सुनतेही लोगोंका मन हरण होजाताहै ॥ २८ ॥

चतुर्वर्गप्रदं कल्किपुराणं परिकीर्तितम् ।
प्रलयान्ते हरिमुखान्निःसृतं लोकविस्तृतम् ॥ २९ ॥

---

(१) शास्त्रमें पुराणके पांच लक्षण कहे हैं। यथाः–

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणिच । वंश्यानुचारितञ्चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंश्यानुचरित, पुराणक यह पांच लक्षण हैं। सर्ग-सृष्टि। प्रतिसर्ग-प्रलय। वंश-, सूर्य चंद्रादि वंशका वर्णन। मन्वन्तर–मनु लोगोंका अधिकार । वंश्यानुचरित-अनेक वंशोमें जिन लोगोंने जन्म लिया है, उनके चरित्रका वर्णन।

कहाहै कि, इस कल्किपुराणसे चतुर्वर्ग फल प्राप्त होजाते हैं । प्रलयके अंतमें यह नारायणजीके मुखसे निकलकर जगत्में विस्तारित हुआहै ॥२९॥

अहो व्यासेन कथितं द्विजरूपेण भूतले ।
विष्णोः कल्केर्भगवतः प्रभावं परमाद्भुतम् ॥ ३० ॥

भगवान् वेदव्यासजीने ब्राह्मणरूपसे पृथ्वीपर अवतारले इस पुराणको कहाहै।इसमें विष्णुरूप भगवान् कल्किजीके परम अद्भुत प्रभावका वर्णन हुआहै ३०

ये भक्त्यात्र पुराणसारममलं श्रीविष्णुभावाप्लुतं
शृण्वन्तीह वदन्ति साधुसदसि क्षेत्रे सुतीर्थाश्रमे ।
दत्त्वा गां तुरगं गजं गजवरं स्वर्णं द्विजायादरात्
वस्त्रालङ्करणैः प्रपूज्य विधिवन्मुक्तास्तु एवोत्तमाः ॥ ३१ ॥

जो लोग साधु समाजमें, (पुण्यक्षेत्रमें, पुण्य तीर्थमें और महर्षि आदिके) आश्रममें वस्त्राभूषण आदिसे ब्राह्मणोंकी पूजाकर आदर सहित गो, अश्व हाथी, सुवर्ण, आदि (तिनको) देकर भक्तिके साथ विष्णुभावपूर्ण, सब पुराणोंका सार इस शुद्ध कल्किपुराणको कीर्त्तन अथवा श्रवण करेंगे उन पुरुषश्रेष्ठ महापुरुषोंकी मुक्ति निश्चय है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१ ॥

श्रुत्वा विधानं विधिवद्ब्राह्मणो वेदपारगः ।
क्षत्रियो भूपतिर्वैश्यो धनी शूद्रो महान्भवेत् ॥ ३२ ॥

विधिविधानसे कल्किपुराणको श्रवण करनेसे ब्राह्मणको वेद विषयमें निपुणता उत्पन्न होती है,क्षत्रियको राज्यकी प्राप्ति और वैश्य धनवान् होता है, शूद्रभी महान् हो सकता है ॥ ३२ ॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां पठनाच्छ्रवणादपि ॥ ३३ ॥

इस पुराणके पढने अथवा श्रवण करनेसे पुत्रका चाहनेवाला पुत्रको पाता है, धनका चाहनेवाला धनको लाभ करता है और विद्यार्थीको विद्याकी प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥

इत्येतत्पुण्यमाख्यानं लोमहर्षणजो मुनिः ।

श्रावयित्वामुनीन्भक्त्या ययौ तीर्थाटनादृतः ॥ ३४ ॥

लोमहर्षणके पुत्र महर्षि सूत भक्तिके साथ शौनकादि मुनियोंको यह पुण्यावह पौराणिक उपाख्यान सुनाय तीर्थोंमें पर्यटन करनेको चलेगये ॥ ३४ ॥

शौनको मुनिभिः सार्द्धं सूतमामन्त्र्यधर्मवित् ।
पुण्यारण्ये हरिं ध्यात्वा ब्रह्म प्राप सहर्षिभिः ॥ ३५ ॥

योगशास्त्रमें विशारद, धर्मके जाननेवाले महर्षि शौनकजी, मुनियोंके सहित उग्रश्रवाजीका ध्यान करते हुए ब्रह्मको प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥

लोमहर्षणजं सर्वपुराणज्ञं यतव्रतम् ।
व्यासशिष्यं मुनिवरं तं सूतं प्रणमाम्यहम् ॥ ३६ ॥

समस्त पुराणोंके जाननेवाले लोमहर्षणके पुत्र सूतजी, व्यासजीके शिष्यथे; वह व्रतादि करते रहतेथे; मैं उनको प्रणाम करताहूं ॥ ३६ ॥

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ३७ ॥

समस्त शास्त्रोंकी आलोचना करके, वारम्वार विचारकर, यह (सर्ववादि सम्मत) सिद्धान्त हुआ है कि, सदा श्रीनारायणजीका ध्यानकरो ॥ ३७ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ३८ ॥

वेद, पुराण और रामायण समस्त शास्त्रोंके प्रारम्भ, मध्य और शेष भागमें सब जगहही श्रीनारायणजीके नाम और लीला गाये गये हैं ॥ ३८ ॥

सजलजलददेहो वातवेगैकवाहः
करधृतकरवालः सर्वलोकैकपालः ।
कलिकुलवनहन्ता सत्यधर्मप्रणेता
कलयतुकुशलंवः कल्किरूपः स भूपः ॥ ३९ ॥

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

जो पवनके समान वेगगामी घोड़ेपर सवार होते हैं, जिनके हाथमें कराल करवाल (तरवार) विराजमान है, जिन्होंने कलिकुलको ध्वंस

किया है, जिन्होंने (इस पृथ्वीपर) सत्यधर्मको स्थापित किया है, वह सजल बादलके समान कान्तिमान् हैं, वह समस्त लोकके स्वामी कल्कि रूपी भगवान् श्रीनारायणजी तुमलोगोंका मंगल विधान करें ॥ ३९ ॥

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विषयसूची नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

लावनी—कलियुगही कलियुग छाय रह्यो दिशि चारो । अबकस न
कल्कि अवतार वेगि प्रभुधारो ॥ द्विजवर कुलीन कारज कुली-
नके करहीं । पढ़िबो तजि परदेसिनके पायन परहीं ॥ राक्षसन
हेत अगनित नित गैयां मरहीं । ऋषि वंशज लखि २ लाज न
कछु उरधरहीं ॥ ब्रह्मण्य देव गोपाल जो नाम तिहारो ॥
अबकस न कल्कि० ॥ १ ॥
धनगयो बिलायत 'अनुत्साह' बलखोयो ! प्रगटे मत कुमत अनेक
प्रेमपथ गोयो ॥ सब विधि निजता तजि जन समाज सुख सोयो ।
मूरख न सुनहिं बुध बृंद बहुत दुख रोयो ॥ हे पतित उधारण !
भारत पतित उधारो ॥ अबकस न कल्कि० ॥ २ ॥
कोउ निज नारिनको मारि मानसिक मारै । कोउ नर कहाय
आचरण तियनके धारै ॥ कोउ मनके हित धन धर्महिं बेचे डारै ।
कोउ हिन्दू ह्वै तुरकीपर तनमन वारै ॥ कर लै तिच्छन तरवारि
मलिच्छन मारो । अबकस न कल्कि० ॥ ३ ॥
ऋषि नाहिन जे सुखदायक पंथ चलै हैं । नहिं रहे वीर जो धर्म हेत
कटिजै हैं ॥ कहँ बचे धनिक जो दुख दारिद्र हरिलै हैं । अब तो पापी
पेटाहिके दास सबै हैं ॥ परतापहि केवल तव पदपद्म सहारो ॥
अबकस न कल्कि अवतार वेगि प्रभुधारो ॥ ४ ॥

कल्किपुराणं भाषाटीकासमेतं सम्पूर्णम् ।

पुस्तकमिलनेका ठिकाना खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर"स्टीम्-प्रेस-बम्बई.